

प्रकाश-दीप

परम पूज्य श्री १०८ घाताचाय श्री वृषसागर जो महाराज की महती अनुकंपा से, सम्मग्यान शिरोमणि श्री १०५ विजयमति माता जी, सिद्धांत विशारद द्वारा लिखित यह “आत्म चिन्तन” घाताचाय जी श्री के शुभाशीर्वादपूण आदेश से प्रकाशित कराके उन्हीं के कर-कमलों में सविनय समर्पित करती हूँ। परम-पूज्य माताजी के तप-स्वाग, साधना, के साध-साध अग्यात्मिक चिन्तन की यह महत्त्वपूर्ण कृति कल्याणेश्वर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

—वसुधरा जन



श्री १०५ विजयमति माता जी
सिद्धान्त विहार

1

2

3

4

5

6

प्रथम खण्ड आत्म - चिन्तन

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्री वीतरागाय नमः श्री सरस्वतीदेव्यै नमः श्री परमगुरुवे नमः श्री आ०
मो० स० स० स० १०८ श्री आ० महावीरकीर्ति महाराज श्री गुरुवे नमः
सब श्री १०८ आ० मो० स० श्री आध्याय शिरोमणि श्री सभतिसागर
जी महाराजाय नमो नमः ॥

अपना-वभव

हे आत्मन् देख सत्सार की विडम्बना जो पन्नाय अनन्ता बार पा लिए,
जिनका अनेको बार भोग कर लिया उन्हें पर्याप्त बदलने पर पुनः पुनः नया समझकर हँस
बनता है कभी उन्हीं को पुराना कहकर शोक। स्वयं का भेष बदल रहा है पर
वस्तु का भी हैं वे वही इसे अनानवश भूत रहा है। यह है ससारी-अज्ञानी आत्मा का
ग्रहसन। यही है राग-द्वेष का बीज यही है सत्सार कद्वि का मूल। नया साल आया।
अरे कितने बप आया और चल गये आते हैं और जात हैं आयेंगे और जायेंगे यह
कोई नयी बात नहीं है, यह सब कान्द्रव्य का स्वाग है। इसे तू अनादि से देखता
आया है, यही नहीं इसके साथ भग्री कर स्वयं अपने को भूल, नाना रूप धरता इसके
साथ भटकता आ रहा है। हे भाई, आत्मन् नया यह नहीं है नया तो वह है जिसे
आज तक तूने कभी नहीं देखा नहीं पाया नहीं भोगा। वह है सौकान्तिक देवा की
निवास भूमि ब्रह्मलोक दक्षिणेंद्रपद्म इन्द्रपद शचिपदवी लाक्षपाल मीधमैत्र के सर्वार्थ
सिद्धि के अहमित्र आत्मा। इनको पाने का प्रयास कर। इनके मित्र ही फिर वह
अन्तिम अमृतपूव नवीन स्थान मिलेगा, जहाँ से इन स्थानों का भी नवीनत्व समाप्त
हो जायगा। अर्थात् मोक्ष शिवसुख स्वानुभव आत्मार्थ, सुख शान्ति निराकुलता।
प्रतिवर्ष जीवन में आने वाले समय में क्या नवीनता है? हाँ इसकी क्षणिक चाल के
माध्यम से तू विरक्त हो मयम धारण कर तपाराधन कर अपने चिरस्थायी आत्मवभव
की शीघ्र में जुट जाये तो अवश्य यह तुझे नूतनता में पत्रेचाने वाला मित्र होगा।
सयम धर धन फल, वरान्य अपना यह है नयान्न का सार।

हे भगवन् ! आप कृतकृत्य हैं। यह पूरा सत्य है। कारण आप अनाकुल हैं।
जहाँ कुछ भी करना है वहाँ आकुलता है बेचनी है धवलता है। आकुलित जीवन
अस्थिर है दुखी है। दुख है तो फिर अ-पाबाध सुख कैसे हो सकता है? आपका
सुख निराबाध-साधन है अतः आकुलता नहीं है। कुछ करना है यदि यह रह जावे
तो सफलता नही बन सकेगी। आप सज्ज हैं कुछ जानना बाकी नहीं। सब
जान ही लिया तो कुछ करने की शेष कैसे रह सकता है? अर्थात् नही रह सकता।
अनन्त ज्ञानी का शेष ही क्या रहा। फिर आप अनन्त शक्ति युक्त हैं। जहाँ अनन्त

धाय है वहाँ काम कैसे बाकी रह सकता है। कार्य उसी का अवशेष करने को रहेगा
 त्रिगम उसे करने की विलसता है। आप मयह शक्तिहीनत्व है ही नहीं, फिर कुछ भी
 करना नस रह सकता है। अतः कृतकृत्य विशेषण यथायथा साधक ही है। श्रीभगवान्
 कृतकृत्य है क्योंकि मयर्था है। अनन्त दशन के समस्त कुछ भी अदृश्य नहा एव साध
 सब दृश्य लिया फिर उस अधूरा क्या छोड़ा जा सकता है? कभी नहीं। हे प्रभो !
 धायक अनन्त धनुष्य आपर कृतकृत्यपने के साधक हैं। मार यहा है कि जो भगवान्
 है वही तू है। हे आत्मन् तू जनाति कान से करता घरता फिर रहा है न यह करना
 पूरा हुआ है न हागा। ध्यय परेशान हो रहा है जहाँ अपूराता है वहाँ इच्छा है इच्छा
 आकुलता की कारण है आकुलता दुःख की जननी है। अनएव हे माधो ! तू कृतकृत्य
 भाव को समान कर। जो कर्ता हाता है वही भीता। कर्ता भीता की कभी कृति
 ही नहीं क्योंकि आत्मा पर का कर्ता भीता है ही नहीं। अमय्य मय्य कस हो
 सजना है। कभी नहीं। अन्तु तू जानी ध्यानी परम बीनरागी ह। कृतकृत्य अपने
 का समस्त उगा रूप अता म स्थिर हो। वही परमात्मा बन जायगा।

[illegible]

ससार रमणीक नाट्यशास्त्रा ह कम मूत्रधार ह जीव अभिनेता है। मान राजा भेष-यापक ह सोम राजा आभूषण। ममता का जामा पहनकर राग-द्वेष व मूत्र पर नृत्य करता ह। आज तब अनादि काल से इसी उतार चढ़ाव में झूम रहा ह। है भाई, अब इस नकली रूप को छोड़ अपने असली रूप को ममाल। यह कर्मा स्त्रव का द्वार जब तक खुला रहेगा तब तक दगका की भीड़ आती रहेगी कोई भाई बनकर, कोई ताई व मार्ग तो कोई लुगाई जमाई कभी बाप चाचा ताऊ, कभी मास समुर ठकुराई आदि। इनका ताता लगा ह आत हैं कुछ कहते हैं कुछ सुनते हैं कोई कुछ बता है ता कोई कुछ देता ह। परंतु यह सब मान बाह्य दिखावा है पर ह आत्म स्वरूप के घातक हैं। तू लुभाना है फमना ह इनका प्रेम म अधा हा रहा ह तभा तो अपने म छुन अपने खजाने का भूल न्न पर पत्थरों का अपना धमक मान रहा ह। जो माना सो माना अब असन को छोड़ मत को पा। इस ही अपना। धय तरा पिता ह क्षमा जननी ह मनाप धाता ह दया भगिना ह दीक्षा रमणी ह रत शय आभूषण हैं तप तरा हिनयी मित्र है। इनसे प्रीति नया। शीत वस्त्र है उसे आपात्मस्तर ओढ़। दया धम की सदब है समय सनिक और वराध्य रत को साव ले ले। सवग की विस्तार म निर्वे की गानीभर कर निकल पड़ निभय होकर। विषय तुटेरे आयग मजधज क कभी हसते कभी रोते कभी भोने बनकर कभी चालाक से तू न्धर दखना ही मन। अपने अस्त्र शस्त्र और भाग को छोड़ना मत। स्वय धक जायेंग रह जायेंग जैसे दून के साथ लौचने वाले पेठ पीछ पर मकानादि। निभय बनो विश्वस्त रहो शिव द्वार पर अवश्य पढ़व जायोग निविघ्न एक जिन। ज्ञान की रोशनी म देख नेना अपना पराया। अपने का अपनाओ तो पर स्वय छूट जायेगा। तू पुण्य पाप के क्षमने म मत उत्तम ये दाना तुझ से भिन्न है पर त्यागने का प्रेम है पाप त्यागा जाता है पुण्य स्वय छूट जाता है अपने शुद्ध स्वभाव म जान आत यही लक्ष्य बना।

हे आत्मन मनाविकारा को रोकने का सर्वोत्तम साधन पहला स्वाध्याय है। तत्त्वावलोकन तत्त्वचिन्तन म सलग्नचित्त निविकल्प हो जाता है। विन्तु स्वाध्याय का रम तभी आवेगा जब हम सामारिक उत्तमनों से हट कर उसी म तल्लीन ह्याग। स्वाध्याय करना मान शास्त्र का पटना ही नहीं है अपितु उसका अर्थावगम करना अथ समझकर तन्नुसार चिंतन करना चिन्तन क अनुसार आचरण करना। दूसरा, सरल और सहज उपाय जिन गुण स्तवत है। जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति म सलग्न मन एकाग्र होता है। बीनराग क चरणाम्बुज म मस्त मन मधकर डूब कर समाहित हो जाता है। बाह्याभ्यन्तर अन्य विकल्प न जाने कहीं विलीन हो जान हैं। जिन गुण गान म संगीत होता है, लय होती है उसी ध्वनि मे हृदय बीणा क तार झट्टत हो उठन हैं तब वह अपने मे अपना ही स्वर सुनता है सुनत-सुनते तदगुण रूप परि णमि हो जाता है यह है चमत्कार भक्ति का भक्त बन जाता है भगवान। तीसरा

प्रसन्न होता है यही नहीं दूसरो को इसमें फँसाने के लिए मास्टरी करता है। गवाही देता है परकी करता है। इतना ही नहीं अपना लन मन, धन व्यय भी करने से नहीं चूकता। निज स्वरूप को भूलकर इसे ही अपना कसब्य मानता है। उचिन्तानुचित का ध्यान न कर मनमाना आचरण करता है। सज्जातिस्व का परित्याग कर देता है। अनानि काल से यही इसकी दुर्नीति चली आ रही है। इसी में अपना गौरव समझता है महत्ता मानता है। उत्तम व्रत की उपेक्षा कर देता है। कामाद्य जाति सज्जाति बुज्जाति कभी भी भूल जाता है। नीच ऊँच का विचार नहीं करता। यह अंध से भी अधिक महा अंधा है। इस ही विषय से विमूढ़ रावण को घोर नरक में जाना पड़ा अमना राना को उमय सोक में दुःशा सहनी पड़ी। अनका उन्नाहरण है इससे कुफल के। किसी पुण्य विषय से जीव स्वदार सत्ताप से स्व पनि सतोप व्रत धारण किया, कभी-कभी अतिचार लगाया ता कभी निरतिचार पालन किया। दोनों में कुफल गुफल को भोगा। हे भाई आत्माराम अब तू सब अच्छा बुरा देख सुन भोग चुका। अब यथाय को समझ। उत्तरात्तर स्वग सुख की ध्वखा ब्रह्मव्रत के आनन्द का प्रत्यक्ष फल लिखाती है। स्पष्टान्तिय के विषय का सबया त्याग ही ब्रह्मव्रत महाव्रत है। यह व्रत आज तुम तारे अनन्त पुण्य के फलस्वरूप मिला है। इसे अमूल्य निधि समझ। इससे रक्षण का सतत प्रयत्न कर। नव कोटि से १८ ०० भी को धान का सतत प्रयत्न कर। इसा में तेरा अपना मुख निहित है। शील की नव वाश का ध्यानकर। अनिचारों का परिहार कर।

हे आत्मन रमना इन्द्रिय के बन्ध होकर तू अनन्त दुखों को उठाता आया है। रमना का विषय मात्र चार अंगुल में है। देखो प्राप्त मंह में डाला कि जिह्वा के अग्र भाग पर लगते हा छट्टा मीठा खारा, चरपरा आम्ल आदि रस का स्वाद आना है। गले में उतरते ही स्वाद नौ दो ग्यारह हो जाता है। कि तु इस अनिक सुख के लिए जीव अहनिज हिंसादि पापों को करता है। भक्ष्य और अभक्ष्य के विचार से भूय हा हो जाता है। होटल बाजार आदि का अमर्यान्ति भोजन करता है। हे साधा ! तुम विचार करो तुमने रसना इन्द्रिय विजय महाव्रत धारण किया है। अब रसा का विकल्प क्या ? शाक नन्दा मेवा मिष्ठान्न की चर्चा क्या ? खारे ताते में राप ताप किसलिए ? रुने सुख का विचार क्यों करना ? पर घर में एक बार निर्दोष गुड पाणिपात्र में गाबरी करने का तरा प्रण है अयाचक वृत्ति तरा गुण है फिर श्रावक के प्रति रागद्वेष हान का क्या कारण ? काहुँ दे न दे जसा चाह वसा द जब चाह तब दे। तुम्हें तो आगमानुसार विधिपूर्वक उचित समय पर जो कुछ मिल उभा में से सत्ताप पूर्वक यथावश्यक ले लेना है। तभी तो रसान्तिय विजय हागा। जा इस व्रत का निरतिचार शुद्ध मोन से अयाचक वृत्ति से पालन करता है उसा का पाना वरणा कम का विषय उत्तरोत्तर क्षयापन्नम बढ़ता जाता है। भाव का पुटि हाती है। सतोप प्रकट होता है। लोलुपता का नाश भ्रष्टा और भक्ति

का पात्र बनता है। अवश्य इन्द्रियाँ और मन उसके आधीन हो जाते हैं। विषयों की उत्तमता निस्तब्ध हो जाती है। भवग और वराग्य का पोषण होता है। उपमग परीपह महन की शक्ति आती है। कम निजरा रूप वशी हो जाता है। कपामो का निग्रह होना है। अतः हे विजयाभिलाषी तू महानगनी चतुर है। रगता के यस न हुआ तो समार का किनारा निकट है।

देखो एक एक इन्द्रिय के विषयासक्त जीव भयकर कष्ट उठाते हैं। यहाँ तब कि मरण को भी प्राप्त हो जाते हैं। रमना का वशवर्ती सुभीम चक्रवर्ती सातवें नरक में पहुँचा। स्वशत्रु इन्द्रिय के विषय राजसा मान से त्रिजगत्त्रिधाधिपति रावण अभी तीसरे नरक में विराजमान है। धूराण इन्द्रिय के वश हो भौरा कमन में गंधी के लिए बन्ध हो जाता है और प्राण गवा देना है। इसी प्रकार पतंग चक्र इन्द्रिय के वश हो अपनी जीवन लाला समाप्त कर देता है और हिरण्य श्रोत्रिय के विषयासक्त हो अपना जीवन समाप्त कर देता है। मनुष्य के पाँचा इन्द्रिय द्वार खोल रहे हैं। प्रत्येक इन्द्रिय स्वतन्त्र अपने अपने विषय में दौलती रहती है। कहा भी उह स्थिरता नग है। फिर भना बर्याण कैसे हा? अरे भाई सबका सार यही तो निवृत्तता है कि इन्द्रियाँ को विषया से यावत्त करो। जितना विषया से वराग्य होगा उतना ही जाव सुखी होगा प्राप्ति पायगा। आनन्द विषय सेवन में नहीं है उनका त्याग में है। शान्ति राग में नहीं है किन्तु वराग्य में है। सुख भोग में नहीं, विराग में है। कारण पराधीन सुख नहीं होता। पराधानता सतत दुःखाना है। स्त्री पयाय पराधीन होने से दुःख रूप है पति विधि नारि सजी जग माँहि पराधीन मयन में सुख नानी उक्ति प्रसिद्ध है इससे स्पष्ट हो जाता है छूने से चखने से मूषन दग्धन सुनने से होने वाला सुख पराधीन है पयाय नहा क्षणिक है सबका नहीं सुखामास है मृगनृत्णा है। प्रत्येक के भोग के अनन्तर प्रमाद आयास थम आकृष्यता और चिन्ता लगी है। अतः हे आरमन तू मावधान हो। अतः कन्ती स्वप्न सेमर के कूप और द्वापण पय की प्राप्ति का त्याग कर। अपने में अपने अतीन्द्रिय सुख का अवपण कर। घ्राण के वशवर्ती हो अपने निज स्वरूप को धून अज्ञान का धून फिर पर मन चढ़ा।

हे आरमन तू बार-बार सम्बाधित किया जा रहा है। तब अन्तर यह समझ में भा आ रहा है कि इन्द्रिय विषय सभी तुम्हारे (आत्मा) के धानक हैं बुरे हैं ये त्याग्य हैं। प्रपण भी दग्धना है अनुभव करना है फिर भी क्या कारण है कि मनम व्यावर्तन नहा हुआ? पुनः-पुनः उहा में घम जाता है। आखिर यह कमजोरी क्यों है? कभी मे चार घमना है इसका पना लगा। जिघ्रार द्वार है उसे रोक। दमतावरणी कम के क्षयापनाम से दग्धन शक्ति प्रकट हुआ है देखने रूप क्रिया सत्य ही होनी चाहिए किन्तु ज्ञानावरणी का उन्मूलन होने से अज्ञान का पर्ण आ जाता है वह अज्ञान माह में अभिज्ञा कर मृदु-मय्य दृष्टि को विह्वल कर देना है फलन शुभा शुभ के

विवेकहीन होने से वस्तु स्वरूप को मयाप नहीं देख पाता है तब यग-तद्वा दृश्या म
 लुभा जाता है और भटक जाता है। यही कारण है कि नहीं चाहने पर भी कभी
 कभी जीव-मन भटक जाता है पना नहीं चलता जब विधर कैसे खसक गया। यह
 मन की दशा पूर्व मिथ्या अभ्यास का दुष्परिणाम है। अज्ञान हटे तो सन्ज्ञान जाग्रत
 हो। मोह मन्त्रि का बमन कर सब राग द्वय परिणति छूटे। राग-द्वय में अभाव
 से कुछ भी देखो कुछ भी जानो उससे जीव आत्मा की कोई क्षति नहीं हो सकती।
 यह है साम्यभाव का महात्म्य। समता भाव विषय व्यावृत्ति का उपाय है। चम का
 काम है देखना यह उसका स्वभाव है सामने आया पदाय चमकेगा ही उसमें राग
द्वय परिणति करना न करना अपना काम है। पनाप तो कहता नहीं कि मुझ दखो
सरागे या निते। वास्तव में यह अच्छा बुरा है भी नहीं। यह तो अपना ही
स्वभाव है। अतः तू सनानी जीव है विषया में प्रवृत्ति मन कर। चक्षुरिन्द्रिय क
विषय में आसक्त पतन की भाँति विमूढ़ हुआ तो जीवन भयकर खनरे में पड़ जायेगा
दुर्गति का प्राप्त होगा। अतः अपना वरण कर।

देखो सप्ताह में सात स्वर हैं। माना य ७ नरक द्वार हैं। य सात घोर
 सागर हैं। किन्तु ये सातों शुभा शुभ उभय प्रकार हैं। अशुभ स्वप्न के कारण हैं ता
 शुभ सत् परम स्थानों के साधक। सात सत्वों के धोतक। सात शीलो के नापक।
 सातों शुभ स्वर शा माना सात ऋषियों के उत्पत्तिक हैं। इ भाई एक ओर भयानक
 बाधा है दुःख और अशान्ति है तो दूसरी ओर सुख शान्ति अक्षय पत्त का साधक
 सामग्री है। दोनों से ऊपर उठकर तेरा अपना निज स्वभाव है। एक आत्म स्वभाव
 का धातक है और दूसरा उसका साधक। एक में सनाव है आहुता सक्त और
 अधीरता है तो दूसरे में सौम्यता, समता विफल्य और धय एव क्षमता है। इसी
 क्षमता में भाह ममता का अभाव होने से स्व स्वरूप को ओर उन्मुखता है। इ नानिन्
 साधो ! तू अपना हित सोच। जिसमें तेरा कल्याण हा बही कर। विषया में आसक्ति
 दुःख ही है। इन सप्त स्वरो में अनासक्त हो। यदि सुन्दर कर्मोप पला है ता नीन
 राग प्रभु की स्तुति पूजा स्तोत्र पाठ पढ़ गा भक्ति कर रावण ने कलाश गिरि पर
 अपनी नसी से तबूरा बजाकर रम्य स्वर में अहूत प्रभ का गुनगान किया फलन
 अहूत पत्त का ही बंध किया। जो जिसकी आराधना करेगा उसे वही आराध्य पद
 सिद्ध होगा यह नित्यदेह है। पञ्चपरमेष्ठिया का स्तवन करने से उहा पत्तों की
 पावर जीव अनुक्रम से अपने स्व स्वभाव की उपसिद्धि कर लेता है। हि साधा।
 यह वेष्ट भी तेरा नहीं है, इसमें भी मोह ममता मत कर किन्तु इस निर्मोप
 प्राप्त करने से यह तेरे निज पत्त का साधक है। अतः इसकी भक्ति पूजा में
 समम हो।

हे आत्मन तू तिल्य स्वभावी है। विहार तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्थान
 सुरक्षित सुनिश्चित एक ही है। यहाँ से वहाँ जाता तेरा निज स्वभाव नहीं है।

किन्तु यह विहार पर रूप है। यह माय है पर क्या विहार जड़ का है ? यदि जड़ का माना जाय तो मुँह का भी विहार होना चाहिए। आप कहेंगे मुँह भी तो जाता ही है रेल में मोटर में गाड़ी आदि में। आप भी जाते हैं। ठीक है परन्तु मुँह इच्छा से तनी से जाया जाता और हम स्वयं इच्छा से जाते हैं। यह इच्छा क्या ब्रह्माय है ? जीव की परिणति इच्छा शक्ति है जो जीव को तब स्थान से दूसरे स्थान पर समन कराता है। यह चरना शक्ति का विहार है या यों कहिए कि यह आत्मा का विभाव रूप परिणमन है। अतः इस ब्रह्मात्मिक शक्ति का निमित्त ही विहार का कारण है। तू इस रहस्य को समझ। अब प्रश्न यह उठता है कि आगिर विहार क्यों करता ? अनादि काल से यह आत्मा कम जास से लिपटा आया है वह कर्म शक्ति आत्म शक्ति से उपयोग रूप से घग मिल गई है। दोता के सयोग से एक तीसरी विलक्षण शक्ति पैदा हुई और उसमें हुआ संसार भ्रमण। भ्रमण से भ्रमण को मिटाना है। विवेकपूषक मत्नाचार से लिया गया विदार ही अशुभ को मिटा सकता है। इसीलिए साधजन शब्द मिट्टी मात्रा की ब्रह्माय जिन दशनायें गुरु ब्रह्मायें समाधि स्थान अवेषणाथ एक निरपेक्षापाय की लक्षण करने के लिए स्वातन्त्र्य को विहार करते हैं। हे साधो ! तू भी इस उत्तम विहार में संसार भ्रमण रूप विहार का नाश कर तभी तेरा विहार साधक होगा। अनात्मिकाल का ज्ञान छेनेगा। आत्मस्वरूप मिलेगा। निजघाम में पहुँचने वाला ही विहार कर।

जावन में अनर्की समस्याएँ हैं। ये पहली बनकर आती हैं जिनका मुआना सरल नहीं। स्वभाव और विभाव का अन्तर्गत चलता है। मातारिक जीवन जड़ चेतन के सयोग का परिणमन है। जड़ और चेतन अनात्म से इनने घल मिल कर एकाकार हो गये हैं कि इनका पृथक् करना अति दुर्लभ हो गया है। पुद्गल परमाणु और आत्म प्रदेशों का एक क्षेत्र बगाहू हो जाने से इनकी पहिचान दुर्लभ है। बिना समझ इनको जुटा-जुटा करना अति कठिन है। तो मा जीव में ज्ञान शक्ति है। विवेक गुण है भेद विज्ञान प्रणाली है स्वसंवेदन आधार है। स्वानुभूति के माध्यम में वह अपने चिन्तन में मन स्वरूप विज्ञानमयी आत्मा को प्रज्ञा के द्वारा चहूँ तो तत्काल ज्ञात कर पृथक् कर सकता है। हे साधो तू इस रहस्य को समझ। विकारों का सख्या अनन्त है और उनको देखने जानने समझने की तरी निज ज्ञान शक्तियाँ भी अनन्त हैं, जिन्हें इन जड़ रूप परमाणुओं में आच्छादित कर रक्खा है। तू द्रव्य स्वभाव को समझ जिन वाणों का अज्ञान कर मिथ्या मोह विभ्रम को छेड़ ज्ञान की तराजू पर तौल और चारित्र के पलटे पर रखकर सावधान की डबी परक इस अपनी वस्तु छांट के। तप किये बिना आत्म शोधन नहीं हो सकता। मोहित किये बिना उसकी पहिचान नहीं हो सकती और बिना पहिचाने का नहीं सपता। अतः संघर्ष को हड़ करों तप धारण कर उसे वृद्धित करो ज्ञान वैराग्य ब्रह्मा। संवेग और निर्वेग का पोषण करो। तभी तुम्हारा साधु पत्र साधक होगा। कयामें

पिशाच है ये स्वयं भी आक्रमण करती हैं और अपने परिवरों को भी पीछे नगा देती हैं जो चारों ओर से आकर चिपटती नहीं थपिसु अपना मोहक रूप दिखाना कर फुसलाती भी हैं। अतः इनसे सावधान रहा।

ह साधो यदि तुझे सच्चा सुख चाहिए तो दुःख को गले लगा। साधारण या व्यावहारिक दृष्टि में जो दुःख है वही वास्तव में तब सच्चा बंधु मित्र है उपकारी है। देखो तुम मरण से डरत हो, दूर भागते हो पर विचार करो क्षण केना से त्राण जिताने वाला यह मरण ही है घोर यातनाओं से रक्षा करता है जीण-जीण कुटिया से निकाल कर सुन्दर नवीन महान में से जाकर बसाता है ऐसे उपकारी मित्र की तू उपेक्षा करता है। यह क्या तरीका सज्जनता है? विवेक है? बुद्धिमानी है? नहीं कभी नहीं यह तो कृतघ्नता है। तू विवेकी है शानी है महान है। बुद्धि का सही उपयोग कर। मरण से तनिक भी मत डर। इन्द्रियाँ इन्हें देख। इनका क्या स्वभाव है। ये घातलू हैं ठग हैं भयंकर घोर हैं। चोरी करते हैं और छीना जोरी भी। इनको पोष-शोष कर बनात जाओ ये शोष शोष कर तुम दीमक जमा खोखला करती जायेंगी। अतः मज्जरित असहाय रुज घिनावना बनाकर दूर हो जायेंगी कोई भी साथी न होगी। तब उस असमय अवस्था में यही सच्चा मित्र जिसकी तू उपेक्षा कर रहा है जिससे भय ही नहीं घणा भी करता है गाली भी देता है वही आकर त्राण देता है उस कष्ट से रक्षण करता है। इसलिए ह भाई उसके स्वागत की पहले से तयारी कर। इन्द्रिय गिरियों का त्याग कर। राग-द्वेष मोह ममता को छोड़। निज स्वरूप को भज। जब तक इन्द्रियाँ मस्ती में मग्न रही हैं तब तक इनकी ठग विद्या को समझ कर इनसे जप-तप सयम दत्त नियम त्याग आदि कर आत्मा की सिद्धि कर ले और इनके घोषा देने के पहले ही तू इनको लात मार कर समाधि मिट्ट कर ले।

हे साधो आश्रय परीपह जयी बनी। बध-बधन सहन करना सरल है किन्तु कष्ट-वचन निंदा गाली सुनकर साम्यभाव धारण करना अति कठिन है। परन्तु ऐसा करना ही क्षमा भाव रखना ही आश्रय परीपह जय है। यह व्रतों की जननी है। इसके रहने से तप की शोभा है। तप का सार है। तप अनन्त कर्मों का नाशक है उसकी रक्षा यह परीपह जय है। तू शानी है भय्य है। हे शान्तिन शान्त जग है, योगात्मक है। तू उसमें क्यों विकारी होता है। फिर वह यह तो कहता नहीं कि तुम भुझे सुनो समझो? तुम स्वयं उधर उपयुक्त होते हो। अरे भाई जब वह तेरा स्वभाव नहीं स्वभाव साधक भी नहीं, प्रेरक भी नहीं फिर तुम क्यों उधर जाते हो और क्या उन्हें सुनते हो और फिर क्यों सुनकर उनमें राग द्वेष पैदा करते हो? इष्टा निष्टा बुद्धि करते हो? यह तुम्हारी अज्ञान दशा है, विभाव परिणति है इसका त्याग करने से ही तुम स्व स्वभाव में प्राप्त हो सकते हो। तुम समता रस के भोगी हो साम्य धन के अधिपति हो। रतत्रय निधि के धनी होकर विकारी बने भिरवारी क्यों

बनते हो ? शरीर जड़ है। इसे ही मगारी लोग मगने मानते हैं और हमी के मान मात्र मित्र का सम्बन्ध जोड़ने है। इसी में हमारा निम्न बताया कर राग प्रवृत्त करने लग नवीन कर्मों का गवय कर चतुर्गति प्रपन्न करते हैं। यह अपना गता है। गू प्रवृत्त पानी हुआ है तबम बन। आचोग का त्याग कर दामा मगिग से इन जोधमिग को बुझा और स्वमवेग्न से आमो य आनन्दारम का पान कर।

हे आम्नन तू गुग गागर है। बड़ा आम्नन है गुग गागर का हुआ है। गुग कहा है ? घन सम्मति वैभव संनति भोग विनाम पानि विगया म अनामि से तू भटक भटक कर देग क्या ग्राज गुग नहीं भी रंगमान भी गुग की शक्त नहीं पायी फिर क्यों बावरा हुआ है। क्यों क्यों कर हाका त्याग भी कर गिया। अरे त्याग क्या किया ये तो त्याग है ही। तेरी है ही क्या ? क्यायों का परिग्याग किया पर ये भी पर स्वरूप हा है। पर ही को तो छोड़ा। छोड़ है पर चतु को ग्रहण करना पारी है तू क्या चोर है उह देग भी मन। सब त्याग दीं फिर अब उधर क्या शक्तिता है ? पीछी कमण्डलु गास्त्र केना धनी ऐ क्या पर नहा है ? इनम भी ममता क्या, राग क्या ? सध का क्यामोह क्या ? अरे अनित विचार कर ये सब तरे आरम पतन क हेतु हैं। निविकल्प गता क धानक है। ये परिग्रह है इनम आसक्ति पूवक ह्य रौद्र ध्यान का कारण हो जायेगा। विवेकी तू तू ही है। अपन ही को अपना मान उसी पर विवशास कर (नव तत्वों क बीच रहकर भी यह नव तत्वा से निराला है एक है अधण्ड है। ज्ञान-दर्शन केना स्वरूप है। बाकी सब सयांगी हैं पर हैं, तुझसे पृथक् हैं। उनम से परमाणु मात्र भी तरा नहीं है और न तू उनका है। उनसे तरा कोई काय सिद्ध न हुआ और न हो सकता है। सोम कपाय का मूलोच्छेदन कर यह बड़ी वक्क है स्वय भी आक्रमण करती है और अपन परिहार को भी भेजती है। अत इससे तू हर राग सावधान रह। तनिक भा विमल गया तो बस तेरी अमूर्त्य निधि वराग्य को घूमिस कर देगी। मोह राजा क चतुग्न मे पसा दगी। जहाँ के द्वारा वास की अवधि का कोई ठिकाना नहीं है। ह साधो विनारा अति निकट आ चुका है जीवन तरणी को भले प्रकार साध।

साग जय बाधाओं को सहन करना परमावश्यक है। ये यातनाएँ हमारे दामा गुण की परिचायक हैं। धर्म की घोलक हैं। सहन शक्ति की परीक्षक हैं। इनसे पार होने पर जीवन विवासा-मुख होता है। आरम-शक्ति बढ़ती है। आत्म बल प्रकट होता है मान कपाय का नाश होता है। शम दम का भाव जाग्रत हाता है। स्वाभिमान को बल मिलता है और अन्तरंग शक्तियों का विकास हाता है। बटु मधु बाणा में साम्य भाव रखने का अभ्यास होता है। अपना परीयह स्वयमेव विजित हो जाती है। कपाया का परिग्रम पटता है। वराग्य की पुष्टि होती है। मवेग प्राप्त होता है। साय ही शीत उष्ण भूय प्यास आग्नि की बाधाओं पर भी आधिपत्य हो जाता है। अत साध का विहार करना सायक है। धम ध्यान की सिद्धि होती है।

समाधि का पान होता है। समाधि योग्य क्षेत्र गुप्त व देश की मायणा हो जाती है। निर्विकल्प ध्यान की सिद्धि होती है। मोह ममता का नाश होता है। पान ध्यान की वृद्धि होती है। यत्र यत्र का व्यवहार आचार पद्धति पात हाती है। सिद्ध क्षत्र अनिशद क्षत्र, निषदाणि निषधिकाणि स्वाना का दशन स्पन्द-वातावरण काल आदि का नाम जानकारी हा जाती है। जिससे समाधि की मायणा सिद्धि होती है। मानव जीवन या माधु जीवन म समाधि का सर्वोत्तम महत्त्व है। समाधि जघन्य रूप म भी यदि एव बार सिद्ध हो जाय तो नियम स ७ = भव म आत्मा परमात्मा बन ही जायगा। हे मुमुक्षु आत्मन् ! अपने इस उद्देश्य को सम्मुख रखकर तुम विहार करा। आत्मा की सिद्धि करो तभी तुम्हारा विहार साधक हागा। ध्यानि पूजा, लाभ प्रतिष्ठा का प्रयोगन तनित्र भी मत आने दो। धम प्रचार के साथ जात्म धम उपनधि का नश्य बनाओ।

हे आत्मन तू दशन पान चारित्र का धनी है। आज वह तरी सम्पत्ति छरी हुई है तू उसे खोलकर देख भल प्रकार सम्हाल गाँव का गवाकर बगान बन रहा है। इसका कारण है स्व स्वभाव से चिप कर पर म लिपटना। राग द्वेषाणि बपाय विभाव हैं पर हैं। शोध जीव का शत्रु है माग शोध का मन्त्री है माया पुरोहित है सोम कानवाल है। जहाँ शोध राग आव कि मन्त्री जा मूछ तान कर पड हो जात हैं हाँ-हाँ आपका अपमान असह्य अपमान हुआ है शोध का डहा स्थिताय बिना य बस म नही हो सकते माया आकार भव प्रकार ममज्ञानी है सत्य है मान की बात मानना ही चाहिए। सोमराम जी का तो कहना हा क्या दान पवानन जीम लपलपात सार टपकाते नाक छिनकत सटखटाते बस तयार हो जात हैं बिकनी चुपडी बातें बनाने। हाँ हाँ ससार की सब वस्तुआ न अधिपति आप हा हैं। आपका सबसंग्रह कर ही सना चाहिए। मुदर मुडील रम्य कमनीली भइवीनी दखा बितनी छवीनी है बितनी रगीली है अमुक मे य गुण है अमुक म यह अच्छा है यह बुरी। अरे बुरी भी है ता क्या हुआ संग्रह तो कर हा लेना चाहिए पडी रहगा एक ओर। समय पर काम आयगा। अरे बरत पडन पर छाटा दग और छोटा पगा काम आता है। कोई वस्तु बुरी भती नहीं सब सचय करो रखते जाओ। यह सोम का परमा जीव का मन मस्तिष्क इन्ध्रि हाय-पाव आदि सबका बगल दगा है। न इधर का रहता है न उधर का। हे आत्मन तू सुन है साध है पर य मन भूल की तुझ पर यह अपना रग बड़ाय बिना रह सकता है। पाठी कमण्डलु गान्ध बेष्टन पीवी पाटा साड़ी आदि की साज-सज्जा कमर दमक आदि स्थितान्ता किंतु तू सावधान रह। इनक पपद म पड़कर यदि तू अपन स्वभाव बर्तव्य स्वरूप से च्युन हो गया तो बस समझ से, सवार म इन सोर और परनाक दाना से छत्र हो आयगा।

प्रकट होगा निर्वेद बड़ेगा समार शरीर और भग्न अप्रिय होंगे । उस समय भ्रम पटान हटेगा नान रवि उन्मि हागा । तब चारित्र शिविका म आच्छ हो शिव रमणी के वरण को प्रवाण होगा । यही सच्चा घर द्वार होगा यही शाश्वत सतति और सम्पत्ति होगा । हे माई शिव गामो बन ।

मोह यश मुरागुर नर सार हैं इमे कसे जीता जाय ? प्रश्न कठिन के साथ जटिन-मा प्रतीत हाता है । इसका टुंगिल चारो ओर फला है फिर मध्या-वर म प्रिययां जुने जुने हैं । एक ओर से भुलझाओ कि दूसरी ओर टाग उलझना और दांत टूटना बाकी नहा रहना । घर का मोह छाडा तो घरना की ममता ने आ पकडा नारी बन्धन शिथिल किया कि माँ की ममता आँखों म झूमने लगी । उधर से दृष्टि फरी तो सतान का स्नेह पास आ फला । उस जाल को काटा तो सम्पत्ति का घ्यामाह और इससे पीछा छड़ाया तो परीयकार दया ने आ धरा । ज्यों त्यो यन से पार हुआ तो काया की माया म आ गिरा । इन विकल्प समस्या म उधड़ चुन म पडा छटपटाता है । शरीर बिगड़न का बि ता दुबरा होने की आशका आदि नाग विकल्प जाल आ घरते हैं । इन विकल्प जानो म से यदि किसी प्रकार पार होना है तो फिर मान की नाक आडी आती है पूजा आदर सत्कार मान-सम्मान आदि के फलुर मेघ बा घिर जाते हैं और निज स्वरूप का भान नही होने देते । कराति पूजा लाभ की चाह म फल कर परमुखापसी हो जाता है । मोह राज का दाब जगता है जीव समझना है मेरे भवन मेरे हिरणी हैं आज्ञाकारी हैं अनुकूल हैं म जो चाह ना वही ये करेंगे किन्तु होता है विपरीत । बाह बाह म फूला देख भवन समझ लेते हैं कि ये मठात्मा जय जय नाद चाहते हैं बस गारे शुरू हो जाते हैं चुलना गगन भेनी नारी मे साधक का साधना स्वर मिथिन हो जाता है । जो भवन चाहे वही उनकी वाणी उपदेश आगम शास्त्र हो जाता है फलत पवन का गत तयार ।

काम विकार विजय करना धनि कठिन है । स्त्री माय का त्याग कर घर वार का परित्याग कर भी इस पर विजय पाना दुलभ है । यह अनदि से चारों गनिया म जीव पर हावी होता आया है । देव दाभव सुर असुर नर पनु आि सब हा इस बंसी से हार खाकर इसे पते का हार बनाये हुए हैं यहाँ तक कि नारवी भी इसकी ज्वाला म झुलस रहे हैं जहाँ केवन नपुसकत्व ही है । अनादि स सहचर होने के कारण यह एक नमयिक स्वभाव बन गया है । बगानियों ने भी इसे नमयिक प्रवृत्ति निम्न किया है । बालक की बालिका और बालिका को बालक का दशन भी न हो ता भी यह मन्न दाह उहें सताय बिना नहीं रहनी । यह ज म बात स्वभाव ह जो प्रारम्भ म प्रच्छन्न रहना है और इन्धिवल पत्तर प्रकट हो जाता है । इसीलिए भेन विनागी साधु जन इसके कारण इन्धिय पोषक धियवों का परित्याग करने हैं । एकाकी निष्पूह ही आत्म भावना म निमग्न रहने हैं । दान्तानुप्रेषा का

दत्त चित्त चितवन करते हैं। स्वानुभूति में तीन आत्मोत्पन्न गुण का स्वगन्धन द्वारा अनुभव करते हैं। मन और इंद्रियों पर विजय करते हैं। शुद्ध नीरस रक्षा मूत्रा एक बार दिन में एषणा शुद्धिपूर्वक पाणिपात्र आहार कर इस नैमिषिक प्रवृत्ति पर विजय कर तीन लोक के अग्निाशय बनते हैं। हे आत्मन तू साधु है तेरा भी यही वक्तव्य है वस्तु स्वरूप विचार स्वाध्याय प्रसी बन सत्सार प्रनाम्न त्याग मन्त्र राज पर विजय पाना है तो एषणा समिति पर विशेष ध्यान दे। तत्त्व विचार कर। आगम चतुर्बन्त। आगम अगाध है उसी में गोते लगा।

हे आत्मन तू स्वप्न है। स्वप्न-प्रज्ञा का दुष्प्रयोग करने से तू बन्धन में पड़ा स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने से सत्सार बन्धन को प्राप्ति हुआ। कम बन्धन से जकड़कर स्व स्वरूप से व्युत्पन्न हुआ। बाह्य पदार्थों में निजत्व बुद्धि कर भटक रहा है। पर पन्थाय परिग्रह है क्योंकि पर वस्तु के ग्रहण का भाव बिना भ्रूणों का नहीं जाना भ्रूणों ममता दोष सलक्ष एक ही पर्यायवाची हैं। इनमें ग्रहण का भाव परिग्रह है उत्तम आनन्द होना परिग्रह सत्प्रधानात्मी रीति ध्यान है जो महान् दुर्गति नरक का कारण है। नरक की यातना अनेकों बार सहन की अब भी यदि उसी का साधन रत्न शिवा कर्तारों में पमा रहा तो स्व-स्वरूप की ओर कब-कैसे प्रवृत्ति हागी। हे ज्ञानिन् सावधान हो स्व-स्वरूप का पहिचान, अपनी वस्तु पर दृष्टि कर। निज भाव पर दृष्टि रख, तभी संसार का अन्त हो सकता है। परीन सत्सार हान पर ही सत्त्वा सुख आत्मोत्पन्न गुण की प्राप्ति हागी। परम सुख दुःख नहीं है। स्वप्न का अन्त मोह मिथ्यात्व से दुःख है और अपने ही ज्ञान सम्पन्न व और श्रद्धान है। ये ताना रूप ही आत्मा है यही आत्मा का स्वरूप है। सत्सार की गति विधि की समझा योगों की गति का अन्त पतन करो। बलिपुत्र है कुटिल लोग हैं स्वाय से भरे हैं भौतिकता में सब तक डूब हैं आध्यात्म से दूर हट रहे हैं ननिक स्वर भवित होना जा रहा है भावों का प्राचुर्य है। भाग विनासों में सब तक डूब रहा है। इन सब प्रतिकूल बाधावरण में अब हिंसा आर से तुम्हें पतित बनाने का ही साधन किया जायेगा। उत्थान की ओर बढ़ने पर गिराने का प्रयत्न किया जायेगा। इस अवस्था में भा तुम्हें सब उद्यम धन साहस बन बुद्धि और पराक्रम का अवलम्बन सत्सर अन्त उद्देश्य की पूर्ति करना है। यही सत्त्वा पुरपाय है यही साधना की साधकता है। यही सत्त्वा स्वप्न-प्रज्ञा है।

मिथ्यात्वभावना जीवार्त्मा स्वप्न अपने स्वरूप को भ्रूया हुआ है। इनका नहीं अज्ञानवश नाना प्रकार अय रूप निज स्वभाव मानकर विविध कर्तव्य कर उनमें उलझ रहा है। कलन भ्रमिन् हो दुःखी होकर नाना कष्टों का निहार बन रहा है। दुःखों की ज्वाला में झुलनता हुआ जीव निजस्वरूप से अनभिज्ञ हो पर पन्थाय में निरन्ध्र कहना करता है। कलन अपने से दूर हटना जाता है। पर कर माय्यगर्भ पौद्गलिक है, झग है। जैसे कोई जीव का सगण कर्म ही को कहता है

[illegible]

इसका अर्थ है कि यह एक ही बात है। यदि हम इसे
अधिक विचारपूर्वक देखें तो हमें पता चलेगा कि यह वास्तव में
एक ही बात है।

हन्नी पैसायी यना बा उसाय नायाहूँ

पुनः विदुः ज्ञानं वीरान्य महेन्द्रम् ।

इहं वा । मन्त्रगुणि ही मन्त्रा इति

हो ग्यो न। वा सजना है। धरा म

यह भाग्य स्वभाव अनूयय गम्य

विषय-व्यापार क

तत्र स्थायमानुराग

ਹੀ ਸੁਖ ਧਾ ਪਰ ।

समष्टि भाषा :

६। उन

ਭਾਗਾਂ ਦੇ : ੨

भारत है, जेय है

अथगुणर मं

अनुयाय कुरी ।

कोई कम के उपाय का कोई कम का पतानुभव को तो कोई कम को धन्य आत्मा समझ रहा है कोई राग रूप रूप विभाव परिणामों को जाब समझता है तो कोई कम मिथिन अशुद्ध जीव की क्रियाओं को कोई कहता है भाठ बाठ स बनी हुई घाट व समान भाठ कमों का संगोच को छोड़कर जीव नामक द्रव्य कोई भिन्न नहीं है जिन्हा की मायता है भूत अतुष्टय का सघन ही जीव है इत्यादि, किन्तु सब सवर्णों वातराग धानी मे ये सभी कल्पनाएँ असत्य मन गड़बड़ है क्योंकि ये समस्त अध्वनमान जड़ रूप हैं पुद्गल से निष्पन्न हैं आत्मा जीव चेतन स्वरूप इनसे भिन्न अनुभव में आता है । जड़ कभी धनन नहीं हो सकता । यदि जड़ चेतन एक हो जायें तो एक का अभाव हो जायेगा । जड़ मिटा तो शुद्ध चेतन रहने पर मसारी-छाँ हो जायगा ममार नहीं तो मृत्ति जिसको हागी सो मत्ति का भी अभाव टहरेगा । सबल झूझा हा जायेगी । यदि जड़ चेतन हो जाय तो भी अयाय अभाव होगा । पुद्गलय न रण्गा । अन ह जानिन् साधो ! तुम आत्मा का सही स्वरूप समझो कम और आत्मा का अनादि सयाग सम्बन्ध है जो हमारे मिथ्या अज्ञान असम भाव से पला आ रहा है और राग द्वेष मोह स जटिल बन रहा है इन विभावों को हटान का प्रयास करो । सम्यक् पुद्गलय-तपश्चरण-ध्यान स्वाध्याय सयम इन्द्रिय विजय शम दम करने स दोना पृथक् पृथक् हा जायेगे और फिर सुहारा ज्ञान दमन चनन स्वभाव आत्मा शाशन अमर अजर हो जायगा परमात्मा बन जायगा ।

ययाय वस्तु स्वरूप का ज्ञाता ही उग सही रूप में पा सकता है । ह मुमुक्षु यदि तू अपने असती रूप को पाना चाहता है तो स्वय को सर्वांग स पान का जानन समनन का प्रयास कर । इसे ज्ञान करने का सर्वोत्तम उपाय ज्ञान और व ज्ञय है ज्ञाना बरागी बनने का उपाय सम्यग्दृष्टि बनना है । बिना सम्यक्तत्व के प्राप्त और पुष्ट विद ज्ञान बराव्य घोखल हैं अस्तु माह राग-द्वेष का परित्याग कर सम्यक्तत्व ग्रहण कर । सम्यग्दृष्टि ही सच्चा ज्ञानी भेद विज्ञानी बनकर अपन में स्वय प्रविष्ट हो स्वय को पा सकता है । अपन में अपन को पाये बिना कल्याण नहीं हो सकता । यह ज्ञान स्वभाव अनुभव गम्य है स्वसर्वन से उपलब्ध होने वाला है निजानुभव विषय-कषणा का त्याग स हो सकता है । इन्द्रिय विषयानुराग जब तक होगा तब तक स्वात्मानुराग कैसे हो सकता है ? एक काल में एक हा भाव जाग्रत हागा या तो स्व या पर । स्व स्व है और पर पर है । अपने आत्मानु को छोड़कर अय समस्त भाव विभाव विभावोत्पादक सचित्ताचित्त व मिश्र भाव द्रव्य पर ही हैं । उन पर द्रव्यों में से एक परमाणु मात्र भी अपना आत्मा का भाव नहीं हो सकता है । इस पर विषयों में ममत्व श्याग यही निष्परिणता है । परिग्रह बोझ है भार है लेप है यह तनिक भी रहेगा जो ससार सागर के ऊपर नहीं आ सकता । भवसागर में डूबेगा ही । अन ह आत्मन अंतरङ्ग से मूर्च्छा भाव हटाकर अपने में अनुराग करो । आत्मा में रचि बढ़ाओ ।

कभी अंधकार रूप परिणमित होता है और न अपने तेज रूप स्वभाव का प्रकाश करता है। अपितु बाह्य आवरण में ही रह कर अज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा है जो स्वभाव से शुद्ध ज्ञान दान करनेवाला है परन्तु कर्मवृत्ति के कारण अज्ञान हो जाता है। निरयोनि रहने वाला है। हाँ प्रथम आवरण रूप का नाश अवश्य होना चाहिए। यही कार्य है भग्न भुग्न अवस्था करना है।

हे आत्मन् तू अपनी वस्तु की ओर बर। निज में निज को ध्यान में लाओ। अपनी पत्थर आप में जाने से ही हो सकती है। अरुण घर में बसा देना जा संसार को पीठ नियायना। निज वस्तु की वही पायना जा पर वस्तु नष्ट होवेगा। गुण वही है जिससे पाकर फिर दुःख न हो। उग वही पा सकेगा जो पर निमित्तक सुख की प्राप्ति छाड़ना। ज्ञान वही है जहाँ अज्ञान न हो। वह उग ही प्राप्त होगा जिससे साक्षात्क प्रतिभापित हाथा एक साथ। गति क्या है? जहाँ ही आगनि-युनरागमन न हो। वह किम मिलेगी? जिगन धमन व कारण कम का नाश किया है। जाव क्या है? ज्ञान दानमयी धनता। वह कहाँ है? आत्मा में। आत्मा धनता का क्या संयोग है? नहीं तात्पर्य है। क्योंकि अतृप्त है। आत्मा और धनता एक ही है। फिर पृथक्-पृथक् से क्या कहाँ? अनादि से वह ज्ञान धनता कम धनता और कमजोर धनता रूप विरूप हो रही है विपरिणमन के कारण उत्तम सहा रूप नष्ट नहीं आता। कैसा? विचार हान से अज्ञान रूप पर भाव के धुम जान से। अब कैसा भिन? जिहोने पा लिया है उसको वहीं व उत्पन्न से या तत्पुनर्जन मान पर धनने से। जाना होकर भी क्यों अज्ञान हो रहा है अपन स्वभाव भूत जान से। स्वभाव क्यों धनता? मोह मन्त्रि का पान करने से। मोह मध क्या दिया? मिथ्यात्व व पत्थर में पड़ जाने से। क्या आया फन्दे में अनादि से उगी का अनुभव होने से धनता जान दो अब उत्तमो। अब तो ज्ञान धनता का अनुभव करो। अपने स्वभाव को समझो आप में आओ स्व को स्व में जानो। विषय भोग कपायों को त्यागो। पर की ओर पर मुग्ध हाकर दस्यु क्या धन हो? अपनी गति को पूजो गवा या छाकर भिन्न क्या धनने हो? उठो तपो अपन में धनता अपन में धनो अपन में। कम यही करना है।

हे आत्मन् सम्पन्न व आठ अंगों में प्रभावना नामक अंग विशेष महत्व पूर्ण है। इसका व्यवहार में तो 'वर जिन धम नियाव' अर्थात् नाना प्रकार के शुभ रूप जिन भक्ति रथात्मक पञ्चकल्याणाणि इत्यादि सिद्धवन्ति विधान सम्पन्नत्वानि निवाण शान्ति तीव्रवन्ता धनुविध सप विहार आनि कराकर जिन धम की वद्धि करना चाहिए। अर्थात् इन उपायों से जैनधर्म का माहात्म्य प्रकट करना मिथ्या हठियों का मान धूर कर सद्धर्म प्रचार करना धर्म का उद्योतन करना धर्मोपदेशानि द्वारा अज्ञान धम दूर कर लोगों का सम्बन्ध यथाध धम समझाना या समझवाना

हे आत्मन् राग जीव की पामी है । रेशम की डोरी की प्रणयी के सहज पुन जाती है उनमन मुनजना अयत दुप्पर हो जाता है । द्वेद मिटाना सरन है किन्तु राग प्रम का पत्ता जया जयो मुलशाओ धूलता उलशता जाता है । यह राग आग है जिसकी दाह म समस्त ससारी प्राणी जल रहे हैं । जनते हुए भी खजनी व रोगी के सेक की भांति साना रूप मानकर उगी म धुसते हैं यह है कम राग की प्रभुता का महत्व । यह अप्रशस्त और प्रशस्त के भ्रम से दा रूप धारण किय हुए है । प्रपय तो विषय भाग कपाय सम्बन्धी अप्रशस्त राग ही नहीं छूटता यदि वेन वेन प्रकारण अशुभ पत्ताय स प्रीति हटता है—समत्व क्षीण होता है तो शुभराग की ओर उन्मुख होता है उसमें आसक्ति कर उसे भी विवृत कर डालता है पुन गुरु आदि के निराग से किसी प्रकार सहा सातिशय पुण्य रूप शुभ राग को समझा तो उसी म सान हा उस पकड़ने की चेष्टा करता है यह पकड़ ही दुखनायक है अरे सीढ़ी चढ़न जाओ मजिल पार होगी किन्तु यदि एक दो सीढ़ी चढ़कर उसी को पकड़ बठ गय ता भाई कभी भा शिखर नहीं पाओगे और यदि शिखर तक पहुच भी गय और बड़ी अड गय तो उसके तल पर कसे जा सकोग नाव जया त्या लहर तूफाना को पार कर किनार पर जा लगी जीर बठने वाला बहे कि यह नाव बड़ी उरकारी है इसन मुस पार लगाया है अब इसे कसे छोड़ा जाय ? तो क्या वह तट के रम्य दृश्य का अनुभव आनंद स सनता है ? कभी नहीं । इसी प्रकार ह स धो । तू सतार व किनार पर आ चुका है अब इस वेप ओर इन उपकरणों के प्रलोभन म मत फस जाना । सावधान हो ।

हे मुज आत्मन जग जजाल स पार हो । यह जजाल बाहर ससार म नही है किन्तु तेर ही अंदर है । तेरा सतार ओर मोक्ष तर ही पास है । अपना भूल से अज्ञान, मोह मिथ्यात्व से तू स्वयं निभ्रम हुआ आज तब भटकता रहा और अब स्वय ही अपने उत्पित् अपने ही सदज्ञान से इस अनादि भ्रान्ति को नष्ट कर । तेरा सम्पन्न दशन ज्ञान ओर चारित्र्य तुझम ही विद्यमान है तेर ही प्रमाद अज्ञान राग द्वय रूप विभावो स तर ही द्वारा आच्छान्ति किय गय हैं । अब तू जब चाह तब अपने ही पुण्यय स अपने ही कर्तव्य द्वारा अपने म छिदे अपन रत्नत्रय रूप स्वभाव को स्वय ही प्रकट करने म पूण समय है । पर म अपनी खोज मत कर । पर म आया भाव छोड । पर को निज समझना ही ता अज्ञान है अर भाई रतींगा आ गई साल पीला और पीला राफ आदि विपरीत स्थिते सगा । चम्पु रोग निवृत्त गया हृष्टि साफ हा गई तो साल साल और पीला पीला ही रह गया । बम यहा तो आत्मस्वरूप का सन है । मय छाय रवि आच्छान्ति हो गया तिमिर छा गया मय पल्ल हटे प्रकाश आ गया । क्या सूर्य म अघवार या या सूर्य का प्रकाश नष्ट हो गया ? नहीं मुगलाना जाय न सूर्य म अघवार या न प्रकाश ही उसका नष्ट हुआ । वस्तु अपन स्वभाव स कभी ऋत नही हाती । सूर्य म स्वभाव से प्रकाश है न बट

कभी अंधकार रूप परिणमित होता है और न अपने तेज रूप स्वभाव का त्याग ही करना है। अपितु बाह्य आवरण मेघों से आवृत अवश्य हो जाता है। इसी प्रकार आपका आत्मा है जो स्वभाव से शुद्ध ज्ञान दर्शन धनता से युक्त है। कर्मावृत्त हान से मलिन है। कर्मावृत्त हटत ही आत्मा ज्यों की त्यों शुद्ध-शुद्ध परमात्म स्वरूप ज्ञान दशन परिचय का पुञ्ज है। निर्योग्य रहन चाता है। हाँ प्रथम आवरण रूप कम का नाश अवश्य होना चाहिए। यही कार्य हे भव्य तुझे अवश्य करना है।

४ आत्मन् तू अपनी वस्तु की धीरे धीरे। निज में निज को ध्यान से निज को पा सकेगा। अपनी धर पर आप में जान से ही हो सकती है। अपने घर में वही आयेगा जो ससार को पीठ छिपायेगा। निज वस्तु को वही पायेगा जो पर वस्तु से नेह त्यागेगा। शुद्ध वही है जिससे पाकर फिर दुःख न हो। उग वही पा सकेगा जो पर निमित्तक सुख की ध्वनि छाड़ेगा। ज्ञान वही है जहाँ अज्ञान न हो। वह उस ही प्राप्त होगा, जिस लोकात्माक प्रतिभापित होगा एक साथ। गति क्या है? जहाँ स आर्गन-मुनरागमन न हो। वह किस मिलेगी? जिगने ध्रमण के कारण कम का नाश किया है। जाव क्या है? ज्ञान दशनमया धनता। वह कहाँ है? आत्मा में। आत्मा धेड़ना का क्या संयोग है? नहीं, तात्पर्य है। क्योंकि अपृथक् है। आत्मा और धनता एक ही है। फिर पृथक्-पृथक् से क्या कहाँ? अनादि में वह ज्ञान धनता, कम धनता और कर्मफल धनता रूप विरूप हो रही है विपरिणमन के कारण उसमें सहो रूप नजर नहीं आता। कस? विकार होने से अज्ञान रूप पर भाव के घुम जान से। अब कैसे मिले? जिहने पा लिया है उसको उहीं के उत्पन्न में या सदनकुल माग पर चलने से। जानी होकर भी क्यों अज्ञान हो रहा है अपने स्वभाव भूत जान से। स्वभाव क्यों भूत? मोह मन्त्रि का पान करने में। मोह मद्य क्या पिया? मिथ्यात्व के पत्रे में पड़ जाने से। क्यों आया फाँदे में अनादि से उसी का अनुभव होने से चला जान दो अब उमको। अब ता ज्ञान धनता का अनुभव करो। अपने स्वरूप को समझो आपे में आओ स्व को स्व में जानो। विषय भोग कषायों को त्यागो। पर की धीरे पर मुग्ध होकर दस्य क्या बन हो? अपनी गति की पूजा गवा या छपाकर भिक्षुक क्या धनत हो? उठो तपो अपने में धुसो अपने में वगे अपने में। बस यही करना है।

हे आत्मन सत्यम्ब के आठ अंगों में 'प्रभावना' नामक अंग विशेष महत्व पूर्ण है। इसका व्यवहार में ता 'हर जिन धर्म दियावे' अर्थात् ज्ञान प्रचार के शुभ रूप जिन अति रसास्व पचरसध्यानादि द्रष्टव्य सिद्धचक्रादि विद्यान सम्प्रेषणानि निवाण धर्माणि तावद्वन्ना अनुविध सध विहार आनि कराकर जिन धर्म की वृद्धि करना चाहिए। अर्थात् इन उपायों से जनधर्म का माहात्म्य प्रकट करना मिथ्या दृष्टियों का मान दूर कर सद्धर्म प्रचार करना धर्म का उद्योतन करना धर्मोपदेशानि द्वारा अज्ञान धर्म दूर कर ज्ञान को सच्चा यथाध धर्म समझाना या समझवाना

प्रभावना है। निश्चय म स्वार्थ गुणों का वृद्धि करना, आत्म शक्तियों का पोषण करना नैतिक स्तर को पुष्ट करना भौतिकवाद से ऊपर उठना त्याग सयम, वराग्य का पोषण धारण पालन वर आत्म का शुद्धि करना विषय विकारों का परित्याग करना प्रभावना अंग है। हे साधो ! तुम व्यवहार के माध्यम से निश्चय रूप आत्म प्रभावना की सिद्धि करो। द्वांश प्रकार तपो का आचरण करने में अनुरक्त हो आ। राग-द्वेषादि विषय-वैषम्यों का त्याग करने से आत्मा का पोषण होगा। विषय भोग आत्मा के शोषक है इस पराङ्मुख होकर आध्यात्म दृष्टि बनाओ। अतर्मुख होकर आत्मा को परमात्मा बनाने में दत्तचित्त होना चाहिए। इससे किण्व आत्मा अनात्मा का भेद जात होना अनिवार्य है और उसके लिए आग माध्याम स्वाध्याय ज्ञातज्ञा। ज्ञान के द्वारा ध्यान की सिद्धि। एकाग्र मनोवृत्ति ही ध्यान है। तत्त्वस्वरूप चिन्तन ही एकाग्र चित्त वृत्ति का साधन है। अब हे मुमुक्षु साधो ! आत्मज्ञान अपने में अपनी वस्तु की खोज में अग्रज का सहाया सात करो वही माय वय का उद्देश्य है सत्य है वर्तमान।

[illegible]

है। ह भव्यात्मन् बल-वीर्य को बिना छिपाय तपस्वता से तपश्चरण करो ज्ञान ध्यान से आत्म शोधन करो। आत्म शुद्धि के बिना परमात्म की सिद्धि नहीं हो सकती।

हे आ मन बीतराग मुद्रा का दर्शन करने से भावो म परम वराग्य की प्राप्ति होती है। शान्त मुद्रा अनरात्मा की मुमुक्षु शांति को जगा देती है। परम वीररागी प्रभु की सौम्य छवि मुख का सोन बहा देती है। एक अपूर्व शांति-मताप हृदय म प्रादुर्भूत होता है। त्रिविध वराग्य वद्विगत होता है। ता० २ फरवरी १६७८ सायबाज अयोध्या म पहुँच कर श्री १००८ आदीश्वर प्रभु की अनुपम मनान् विम्ब का दर्शन कर माना धन्याप शान्त हो गये। ता० ३२ ७८ को पवित्र लीयकरा के जन्म स्थानों का दर्शन कर अपूर्व आनन्द हुआ। हे मुमुक्षु परमात्म स्वल्प जिन विम्ब का तू सतत चिन्तन ध्यान व स्मरण कर। श्री जिन विम्ब का महा मस्तकामिषक करन से व करान से भव भव व अनन्त पातक नष्ट हो जाते हैं। जलाभिषेक बाह्य मल का प्रभावित करता है तो दुग्ध दही का अन्तर्गुण राग दम का विनाश करता है साम्य भाव जगाता है। सभी पक्षि का अभिषेक ममस्त शारारिक रोगा-व्याधिया का नाश करता है तो चान्न से अन्तरङ्ग कषायानि मनो का प्रभावित होता है। तभी न इसका महत्व स्त्री पर्याय का नाम बन्धराया है। नरन परिग्रह त्यागी साधु सत भी जिनाभिषेक बड़ा भक्ति और धृष्ट से दखन है।

जिन निषाण महात्मक अष्ट कर्मों के नष्ट करने की प्रेरणा प्रदान करता है। भगवान न किम प्रसार समस्त सामारिक बभ्रव का पूजन नवकोटि स परि त्याग कर समय धारण किया पालन किया ध्यानानि प्रवाल कम शत्रुओं का सहार किया महा तजस्वी अष्टाष्ट बल नान रूपा मय उन्नि किया और पुन निज शुद्धा भा म सोन हा प्रमश शेष ७२ व १३ प्रकृतियों को नष्ट कर परमात्मा बन गये। इस प्रकार विचारने से ध्यान की सिद्धि होती है। परम वराग्य पुष्ट होता है, ज्ञान की वद्धि होती सम्पत्त्व हृद होता है। आत्म भाव जाग्रत होता है। अनन्त गृणा का विकास होता है। निर्विकल्प भाव उत्पन्न होत है। माना सकल्प विकल्पा की श्रु श्रुता टूट जाता है।

हे आत्मन् विचार कर आज के जिन ही प्रथम तीर्थकर आदि प्रभु साक्षात् भगवान परमात्मा हुए। धर्म ध्यान से ऊपर वी पहुँचे हो हो चुक व। शुक्ल ध्यान व पुण्यवत् वित्त, एकत्व वित्त के द्वारा मूढम क्रिया निवृत्ति का प्राप्त कर सम वशरण की विभूति से शोभित हुए। चारों ओर वभ्रव का धवाबीध मानुषी हा नहीं देवी विभूति भी धरा पर आ प्रभु व चारों ओर छा गई था। परो चरणों का कुम्भन करनी मिन्नीनी करती मस्तक हाकती नाना प्रकार चापलूसी कर रिक्ताने का प्रयत्न कर रही थी। पही नहीं प्रभु के ऊपर भी छत्रत्रय के बहाने नृत्य कर रही

आप में आपको पावो । अपने में अपने को पाना ही मोक्ष माग है । भोग है स्वानुभव है परमात्म शुद्ध दशा है ।

विचार क्यों होता है ? निमित्त मिलने पर तदनुसार स्वयं परिणमन करने से । कम उन्मत्त या उत्तीरणा को प्राप्त होते हैं । क्यों ? उनका स्वभाव है । स्थिति पूरा होने पर उन्हें पन दता है । असाता का उन्मत्त आया दुःख होगा ही निमित्त पाकर वह बूझ देगा । सत्य है कि तुम उन्मत्त काल में यदि निश्चय नय से हम विचार करें कि जड़ रूप पुनः कम मुक्त चेतन स्वरूप का क्या अविष्ट कर सकता है ? मैं तो जाना हूँ यं अचेतन जड़ है अपने जड़ रूप स्वभाव से आय है चले जायेगा । इस प्रकार विचार करने पर य आर और गय । उनमें दृष्टान्ति बुद्धि नष्ट होने से राग-द्वेष नहीं हुए और राग-द्वेष बिना नवीन शुभाशुभ कम भी नहीं आये साम्य भाव होने से पुरातन कम समूह निजरा को प्राप्त हो गये आत्मा ह का हो गया कमभार कम हो गया । विचार आया नहीं । स्वभाव प्रकट हो गया । मय हूँ गय नय छाये नहीं तो स्वभाव से सविता का प्रकाश फला हाया उम कीन रोष सकता है ? कोई नहीं । ह मुमुक्षु ज्ञानी बनो भू विज्ञानी बनो । स्व पर का भान हुए बिना अपनी पराई चीज की पहिचान नहीं हो सकती । बिना ज्ञान ममता भाव का ग्रहण नहीं हो सकता अज्ञान का अनुभूति नहीं हो सकती अनुभूति का आस्था नहीं आ सकता और आस्था बिना आनन्द नहीं आ सकता । अतः स्व पर का भू ज्ञान परम आश्चर्य है । भू ज्ञानी के नवीन कर्मस्व नहीं हाता पुराना निर्मल हो जाता है । आत्मा निमित्त हो प्रकाशमान हो जाता है कम यहा ता स्वोपनिधि है आ म तरह की प्राप्ति है । निजानन्द रस है । ह भाई "योग" कर तू एक बार स्वगर्विणी का आश्वासन कर । निजानन्द का प्रसी उसी रस में निमग्न हो जाना है । पर भार स्वतः हट जात है । आपम ही आपको पाकर सत्य ब निए सीन हुआ शिव गुण भागा बन जाता है ।

हे आत्मन् ! अपने विचारों पर हर क्षण दृष्टि रख । भाव-विचार पाये व शुभ है या अशुभ विचारों सही है या गलत अच्छी है या बुरी । उन पर पनी दृष्टि रखना । स्वयं प्रतीति करी य क्या हुए ? कहां से हुए ? इनकी जन्म मृति क्या है ? मूल हेतु क्या है ? उत्पत्ति का बीज कौन क्या है ? स्वभाव क्या है ? बाध क्या है ? हानि । उत्तर भी स्वयं याचिन । य शुभाशुभ भाव विचार विचारों प्रकाश कर्मों के उदय हान पर ही होती है । कम जड़ स्वभाव है जड़ अचेतन निमित्त हान से निमित्त भी जड़-मुक्त स्वरूप होना यह निश्चय है । मुक्त से हा मुक्त-मयी हार बनेगा चीं से चीं का और साह से सट का । य वैदिक-राज-द्वय पर परिणाम से ही हुआ है राग-द्वेष पर है—विचार है विचार है अतः य शुभाशुभ भाव ही आत्मा के स्वभाव महा विचार का हा है । अन्तर्विचारों से आत्मज्ञान विगर्भित हा इनका उत्पत्ति स्थान है । जन्मे जन्म से हा दान-रहता है उन्मो

प्रकार विकारी मन में ही विकार रहता है। क्या हृण पर पत्थरों में निजत्व बुद्धि हानि है। पर वो निज क्या माना? क्याकि अपने को भूल गया। अपने का भूला क्या? इसलिए कि पर को निज मान लिया। पर को निज क्या माना? इस कारण कि अतादि से पर का साथ पनिल्ल सम्बन्ध बनाया आया है। यह सम्बन्ध इतना गहरा क्या? मिथ्यात्व के बन्ध से। मिथ्यात्व कस हू? सम्बन्ध अमि से छिन्न मित्र हानि है। सम्बन्ध तो वही है? आत्मा में अन्तर। वह वस कब मिले? कम विपन्न तप हानि पर या गमर गमर तट के पार आ ज्ञान पर। सवित्ति जागन पर भाग विपन्न क्याया से विरति बराय हानि पर। बराय कम हो? यथाय तप का सही चिन्तन करने पर। तत्त्वार्थमात्र कम हू? आगम ज्ञान हानि पर। आगम ज्ञान कम मित्र? ज्ञानावरण कम का क्षापन उत्तम या क्षय हानि पर। यक्षम हो? क्या भाव रखने में मरन परिणामी हानि पर अहंकार मान क्याय का नाश हानि पर।

आवस्था नगरा अति प्राधान्य प्रभव सम्पन्न होने के साथ ही भारतीय धार्मिक मतादि का जोड़ न बनाने निश्चय है। सपन ज्ञानि बन गमर को भयकरता का प्रयत्न करता है। नीरव दन प्रत्य तत्त्व भावना एवं अत्यन्त भावना का दृश्य अभिधन करने हैं। यहाँ का गूजा साक्षात् सम्बन्ध गमर का क्षणिकत्व परिवर्तनीय प्रभव का गन्तव्य है। हे मानव तप धन भाग सब क्षणिक है। अहंकार पतन का मूल है। अधिमान को छाया से प्राणा उगा प्रकार विगलता है। (ग) मत्प्राप्ति उत्तम धर्म का निश्चय में अनिवार्य रूप से निश्चय ही है। अहंकार भूलकर भा ज्ञान ध्याना तप द्वारा ज्ञानि कुल वसु ज्ञान आदि का कभी गरी करता चाँहि। यहाँ की एक एक ईश्वर बराय भव का उत्तर करती है। यहाँ का दृष्ट-दृष्ट रीति रीति एवं रीति में पुनः-पुनः कर वस वस प्रयत्न होते हैं। ज्ञान-पतन अवस्थ प्रयत्न का निमित्त है। समभव हू एवं मात्र ज्ञानि का गन्तव्य उगाय है। गन्तव्य बन। उत्पन्न कर वस हमारी यह रीति हू। मरत छत्ती पर न जात रिता प्रभव आपा रिता ज्ञान इसी बड़ा रिता मर गन्तव्य रिता ही पुनः एवं गन्तव्य रिता ही रिता रिता रिता का धुनि बन विपन्न गन्तव्य। विपन्न गन्तव्य और गन्तव्य। प्रत्य और बराय व हो है जो भी १००० समर वस स्वामा अमर वस मुनिराज का व इन समर वस रीति-रीति को ज्ञान पार कर अन्तर अमर वस व स्वामी बन। १००० मन्त्र ज्ञानि वस भी अज्ञान रीति गमर का इस वस मर मर मुं से बरा। अज्ञान-मत्प्राप्ति बरा। अज्ञान पति का रीति बरो। अज्ञान रीति गन्तव्य का व अज्ञान अज्ञान रीति रीति। वस व वसो हाथ ही जाना जाना।

यहाँ है अज्ञानि मत्प्राप्ति का रीति-रीति। इनका ही प्रयत्न में प्रयत्नि-रीति व रीति में है। वस वस वस की रीति हूरी वस। भवज्ञान मीनर तीर्थकर वस वस स्वामी रीति का वस में वस वस हू वस की वस वस का समर

वभव लेकर। पर क्या वह भी रह सकता था? नहीं। सब अद्विष्ट है, नाशवान है परिहाय है आत्मस्वरूप के शुद्ध स्वभाव को विकृत करने वाला है तभी तो प्रभु ने शभव स्वामी ने भागा ईश की छोई के समान नीरस पात कर फेंक दिया पाछे मुड़कर भा न दखा। उन की दृष्टि में उसकी असारता इत्यायन समान बोधी सुन्दरता विशुद्ध बन नियोजना सम्यक् प्रकार आ चुकी थी फिर भना क्या उसमें रमत क्या पुलन क्यों अपनाते? ठीक है। सही है। भोग राग है। स्वानुभूति के घानक है। श्रुदात्मा को आच्छादित करने वाले वभव का घटागोप अधकार का प्रभाव है। चमकन वाली विद्युत घनघोर वर्षा की निमित्त है उसी प्रकार कौंधने वाला जन घन वभव धार समारुद्ध का कारण है मोह अधकार का निमित्त है। माह मन्त्रि है। वह आत्मव है जिसका पान कर मानव वैमुध हो जाता है। आपा पर का मान नहीं रहता। स्व ओर पर की पक्षिचान ही नहीं कर पाता। हे भव्यजना जानी, आज भा अद्भ-खण्डित शिखर आपका मज्जा बराग्य मयम त्याग भाव का मार्मिक उपन्यस दे रहा है। सुनो बानो के परदे घालकर, विचारो हृदय पट उद्धारित कर मनन करो चित्त वसति एकाग्र कर अमल करो इन्द्रियों का दमन कर और ग्रहण करो कथामों का शमन कर। सभी होगा वास्तविक दशन ध्यावस्ती का नहीं तुम्हारा स्वयं का। अपने निज रूप का। श्रुदात्मा का। मिलना आश्रयन निरावाध अवलम्ब मुध। आज ध्यावस्ती से विहार किया।

हे भव्यात्मन्! मानव जीवन का प्रत्यक्ष क्षण अमूल्य है गया समय जा नहीं सकता मिल नहीं सकता। गया समय की चित्ता न कर वनमान का मधुपयोग करो। आयु का एक-एक क्षण विनाश का कारण है श्वासाच्छ्वासों की मज्जा परिमित है कम, वही बिस्व प्रकार समाप्त होगी अगम्य है। जहाँ इनका अन्त होगा वहाँ वन मान मानव पर्याय का मुनिश्चित विनाश हो जायगा। फिर चाहे लाख उपाय कार्य करता रहे वह क्षण आ नहीं सकता। हे मुमुक्षु इस पर्याय के क्षणों को समाला त्याग से होल से मयम से शम, दम नियम रूप चारित्र्य से। यह सभी हागा जब शरीर का मोह दूरेगा आ मा से नह हागा स्व-स्वभाव में प्रीति होगा इन्द्रिय विन्या से अरवि होगी। ज्यों ज्यों स्व की गवित्ति होगी सुलभ विषय भा नीरस हा जावेगे, जस जैसे विन्या पल बट प्रनीत होगे स्वसुविनि होती जायगा। एक म्यान में दो धारण नहीं आ सकता। उसी प्रकार एक समय में विषय भोग और मास का हापन ज्ञान-बराग्य नहीं हो सकता। आत्मा इस शरीर में है, आत्मा स्वभाव में निर्मल निर्मित्य निरजन, शुद्ध है शरीर मलिन अमुविष्य सत्य घातु निर्मित्य निज है। दोनों १९ की भाँति एक दूसरे के विमुध हैं। फिर भना एक के ओपन से दूसरे का ओपन या एक के पोपन से दूसरे का पोपन कस हा सकता है? नहीं हो सकता। दोनों स्वभाव भग्य स्वरूप से विभिन्न हैं। अत आत्मा का पोपन शरीर का कोपन और शरीर सम्बन्धी रूप-रूप विषय-वपामों का ओपन है और विरपाणि

वभ्रव सेवर । पर क्या वह भी रह सकता था ? नहीं । सब अथिरे है नाशवान है परिहाय है आत्म स्वरूप क शुद्ध स्वभाव को विवृत करने वाला है तथा ता प्रभु ने शभव स्वामी ने भागा ईश की छोई के समान नीरस नात कर फेंक दिया पीछे मुठकर भा न दखा । उन की दृष्टि म उसकी असारता इत्यवण समान बापी मुन्तरता विशुद्धत निगधना सम्यक प्रकार आ चुकी थी फिर भला क्या उसम रमन क्या घुलने क्या अपनाते ? ठीक है । सही है । भाग राग है । स्वानुभूति क घातक है । शुद्धात्मा को आच्छादित करने बाव वभव का घटाटोप अधकार का प्रताक है । चमकने बापी विद्युत घनघोर क्या की निमित्त है उमी प्रकार कौंधने वाला जन, घन वभव घोर ससार ख का कारण है मोह अधकार का निमित्त है । माह मन्त्रि है । वह आसव है जिसका पान कर मानव वसुध हो जाता है । आपा पर का मान नहीं रहता । स्व और पर की पहिचान ही नहा कर पाता । हे भव्यना जात्रो भी अद्भुत खणित गिखर आपको सच्चा वराग्य मयम त्याग भाव का मामिक ग द रहा है । मुता बाना के परदे खोलकर, विचारा हृदय पट उद्धारित कर करो चित्त वत्ति एकाग्र कर अमल करो इन्द्रिया का दमन कर और ग्रहण त्याग का शमन कर । तभी होया वास्तविक दशन थावस्ती का नही तुम्हारा । अपने निज रूप का । शुद्धात्मा का । मिलमा शाश्वत निरावाध अखण्ड थावस्ती स विहार किया ।

भयात्मन् ! मानव जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है गया समय आ नहीं ले नहीं सकता । गय समय की चिन्ता न कर वनमान का सदुपयोग करो । एक-एक क्षण विनाश का कारण है श्वासा-प्रासाओं की सत्या परिमित है किस प्रकार समाप्त हागी अगम्य है । जहाँ इनका जन होगा वहाँ वन पर्याय का मुनिश्चित विनाश हो जायगा । फिर चाहे लाख उपाय काई क्षण आ नहीं सकता । हे मुमुक्षु रग पर्याय के क्षण का समाप्ता से समय से शम दम नियम रूप चरित्र म । यह तभी होगा जब छूटेगा आ मा से नेह हागा स्व स्वभाव म प्रीति हागा चन्द्रिय होगी । "यो यो स्व की मविति हागा सुलभ विषय भा नीरस हा मय" जैसे-जैसे विषय पल कट्टु प्रतीत होंगे स्वमविनि होनी जायगी । एक म्यान न दा खण्य नहीं आ सकते । उनी प्रकार एक समय म विषय भोग और मान का आपक जान-बराग्य नहीं हो सकते । आत्मा इस शरीर म है, आत्मा स्वभाव से निमल नितित्त निरजन शुद्ध है शरीर मलिन अमुचित सप्त धातु निर्मित तित्त है । दोनों ३६ की भाँति एक दूसरे के विमुख हैं । फिर भला एक क शोषण स दूसरे का शोषण या एक क पोषण से दूसरे का पोषण कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता । दोनों स्वभाव सक्षण स्वरूप से विभिन्न है । अत आत्मा का पोषण शरीर का पोषण और शरीर सम्बन्धी राग-द्वेष विषय-व्याप्यों का शोषण है और विषयादि

प्रकार विकारी मा मे ही विकार रखा है। क्यों हुए पर पण्यों में विचार बुद्धि होन में। पर को निज का माना? काहि अपने को भव गया। अपने को भूना क्या? इगलिए कि पर को निज माना गया। पर को निज का माना? इग कारण कि अज्ञान से पर के साथ अनिष्ट सम्बन्ध बताया आया है। यह सम्बन्ध इगता मन्त्रा क्या? मित्राण के बच मे। मित्राण के हूँ? सम्बन्ध अग्नि से छिन्न भिन्न होन में। सम्बन्ध कहाँ है? आत्मा में अन्तर। यह के बच मिले? कम विचार सधु होन पर मा मगार-भागर तन के पर आ जो पर। मरिणि जाया पर भाग विषय कपाया स विरति-धराम्य होने पर। धराम्य के हो? यथार्थ सत्य का सगी विनयन करने पर। सत्वाभ्यास के हो? आगम जाना हो पर। जगम पात बस मित? पाताकरणी कम का क्षयोपम उपशम या क्षय हो पर। ये के हो? दया भाव रखा स मरन परिणामी हूँ पर अहंकार मान कपाय का पात होन पर।

श्रावस्ती नगरी अति प्राचीन यम्य सम्पन्न होन के साथ ही भारतीय धार्मिक गस्कति का जीवन तज्ज्वल निष्ठा है सधन शानि धन मगार की भयभरना का प्रश्न करत हैं। नीरव वन प्रण एकत्व भावना एवं अत्यन्त भावना का दृश्य उपस्थित करत हैं। यहाँ के गुजते सजाव पण्डहर सगार के क्षणित्य परिश्रमशील धम का सन्ना दने हैं। हे मानव तन धन भोग सब क्षणित हैं। अहंकार पतन का मून है। अभिमान की चाटी से प्राणी उगा प्रकार विनयता है जमे मट्टायामी उपशम श्रणी के शिखर से अनिवाय रूप से गिरना ही है। अहंकार भूलकर भा जान ध्यान तप पूजा जाति कुट वपु धन आदि का कभी नहीं करना चाहिए। यहाँ की एक एक ईंट बराम्य भाव का उन्न करती है। ईंटों के टख-टख रोड ककड़ एक स्वर में पुकार पुकार कर बह रहे स प्रतीत होते हैं। उत्थान पतन अराटय प्रवृत्ति का नियम है। समभाव ही एक मात्र शान्ति का गुण का उपाय है। सहनशील बना। उछल कर धन हमारी यह दशा हुई। मरी छाती पर न जान कितना यम्य आया कितनी सहनाइयां मजी रितने महोग्य हुए कितन ही मुझ रच गये कितनी ही विभूति विपरी रत्ना की घूलि धन बिखर गई। किन्तु सब आये और गये। धन्य और बढभागी य ही हैं जो श्री १००८ सभव नाथ स्वामी श्रमण चद्र मुनिराज सराय इम समस्त राग रग यम्य को लात मार कर अजर अमर पन के स्वामी बन। हे भय्या मन् प्राणिमा आप भी आपन रम्य ससार के इग चक्र मज झुर मुन से बचा। आत्म साधना करो। आरम्भ परिग्रह का त्याग करो। आप न त्यागे तो यह आपको अवश्य छोड़ देगा। परलोक खाली हाथ ही जाना होगा।

यह है अजिहारी महाराज का राजप्रामाण। इसके ही प्रोक्षण में प्रतिनिधिताना मध्याह्न में १२ बजे रत्ना की वष्टि हुयी थी। भगवान तीसर तीथकर सभव नाथ स्वामी हुयी के प्राणन में अवतरित हुए पुण्य की पराकाष्ठा का समस्त

वभव लेकर। पर क्या वह भी रह सकती था? नहीं। सब अधिर है नाशवान है परिहाय है आत्म स्वरूप व शुद्ध स्वभाव को विहृत करने वाला है तभी तो प्रभु ने शभव स्वाभी ने भागा ईश्वर की छोई के समान नीरस पात कर पेंक निया पाछे मुड़कर भा न दखा। उन की दृष्टि म उसी अमारता इन्धण समान बांधी मुन्हरना किशुनवन निगधना सम्यक प्रकार आ चुकी थी फिर भना क्या उमम रमन क्या पुलन क्यों अपनाते? ठीक है। मही है। भोग रोग है। स्वानुभूति व घानक है। शुद्धात्मा को आच्छादि करने वाले वभव का घटागोप अधकार का प्रताक है। चमकने वाली विद्यत घामोर वर्षा की निमित्त है उनी प्रकार कीछने वाला जन, घन वभव घोर समारुध का कारण है मोह अधकार का निमित्त है। माह मन्त्रि है। वह आसव है जिसका पान कर मानव वमुध हो जाता है। आपा पर का मान नहीं रहता। स्व और पर का पहिचान ही नहीं कर पाता। हे भव्यजना आओ, आज भा अट्ट-खण्डित शिपर आपको मच्चा धैरग्य समय त्याग भाव का मामिक उपन्यस द रहा है। सुनो बाना व परदे खालकर, विचारो हृदय पट उद्धारित कर भनन करो वित्त वित्त एकाग्र कर अमल करो इन्दिया का दमन कर और ग्रहण करो कपाया का भनन कर। तभी होगा वास्तविक दशन श्रावस्ती का नहीं मुन्हरा स्वय का। अपने निज रूप का। शुद्धात्मा का। मिलगा शाश्वत निराबाध अग्रण सुख। आज श्रावस्ती स विहार किया।

हे भगवात्मन् ! मानव जीवन का प्रत्येक क्षण अभूतप्य है गया समय आ नहीं सकता मिल नहीं सकता। गया समय की चिन्ता न कर वनमान का गदुपयोग करो। आयु का एक-एक क्षण विनाश का कारण है इशामोच्छवागों की मन्था परिमिन् है जब, कहां किस प्रकार समाप्त होगी अगम्य है। जहां इनका अन्त हागा वहीं वन मान मानव पर्याय का मुनिश्चित विनाश हो जायगा। फिर चाह लाख उपाय काई करता रहे वह क्षण आ नहीं सकता। हे मुमुक्षु इस पर्याय के क्षणों को ममाना त्याग स शील स समय से शम दम नियम रूप चारित्र्य म। यह तभी हागा जब शरीर का मोह छूटगा आ मा स मेह हागा स्व स्वभाव म प्रीति होगी इन्दिय विषया से अरवि होगी। 'यो' 'या' स्व की सवित्ति हागी सुलभ विषय भी नीरस हा जायेगे जैसे-जैसे विषय पन बट्ट प्रतीत हागे स्वमविति होती जायगी। एक म्यान म दो खण्ड नहीं आ सकते। उनी प्रकार एक समय म विषय भोग और माक्ष का साधक जान-बराग्य नहीं हो सकते। आत्मा इस शरीर मे है आत्मा स्वभाव स निमल निर्लिप्त निरजन शुद्ध है शरीर मलिन असुचित्प सप्त घातु निर्मित लिप्त है। दोनों ३६ की भांति एक दूसरे के विमुख है। फिर भना एक के शोषण स दूसरे का शोषण या एक क पोषण स दूसरे का पोषण कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता। दोनों स्वभाव लक्षण स्वरूप से विभिन्न है। अत आत्मा का पोषण शरीर का शोषण और शरीर सम्बन्धी राग-द्वेष विषय-कपायों का शोषण है और विषयादि

का पोषण आत्मा का पोषण है। आत्मा शाश्वत है स्व-स्वरूप है अपना स्वभाव है
अतः इसी का पोषण करना मनुष्यवर्ग के पाने का सार है।

हे मुमुक्षु अपने जीवन की कमियाँ को खोजो, उन्हें दखो और चुनकर फेंक दो। फिर वे न आये इसके लिए गावधान हाँ जाओ। गुणों की खोज करो गुण बहो गये नहीं हैं वे आपका हैं आप ही में हैं आपने ही रहेगें दोषों से आच्छादित हैं वे हूँ कि वे प्रकट हो जायेंगे। पर को भी देखो समझा उनसे गुण-दोषों से परिचय करो दोषों में स्नेह मत करो उपेक्षा करो मुझ पर तो जहाँ के तहाँ छाड़ दो। गुणा को देखो ग्रहण करा वृद्धिगत करो अपने में मिलाकर अपने गुणों का विकास करो। ई भाई निश्चय और व्यवहार की ठाम परिपाटी का सम्यक् अध्ययन करो। प्रथम व्यावहारिक जीवन का शासन करो सत्साधारण पासा मिष्टाचार बनों प्राणी-मात्र में मित्रता स्थापित करो गुणता का देखकर गुनकर हूँ मैं में प्रसन्नता भरो प्रसन्न हो जाओ दुखी प्राणियों पर कृपा भाव-धारण करो तुम्हारा अहित करने वाले शासन वाले के प्रति मात्सर्य भाव धारण करो। अपने विरोधियों से प्रतियोग बन्ता सने का कभी विचार मत करो। अपना व्यवहार सरल बनाओ, सत्कार तुम्हारा मित्र होगा तुम मसार में अपने बने जाओ तुम्हारा व्यवहार धर्म परिरक्षक होगा बगल उमका उपेक्षा कर आग बड़ जाना अब रुक न जाना उममें उगना नहीं पैसना नहीं यश में स्थिति में पूना में, नाम में बहो भी अटक न जाना। प्रलोभनों का त्याग में पड़े तो भया वहाँ मुँहो होकर विनम्र रह जाओगे। बस यहाँ से उतर उगता ही आपका अपना विकास है उद्यान है आत्म शक्ति का पोषण है। अपने आत्म-स्वरूप में स्थिति अकारण प्रीति रवि ही सम्प्राप्ति है उनके अंग प्रथम का यथावत समझना जानना हाँ सम्यग्ज्ञान है और उगी में सीत हो जाता बहानी मगना सम्यक् धारित है। ये सब अपने ही में, अपने द्वारा आप ही हैं। यही स्वात्मोन्नति है विमान है परमात्म है निजस्वरूप की प्राप्ति है। हे आत्मन् इसा रहस्य का उन्पादन करो।

एक सग हीरा की कपी है एक समय काँटा। तोपने पर जो उनसे घटा घटा है बाव हमारा। सावधानता मानव का जीवन है। सनक जीवन धर्म से रगित रहना है। मैं कौन हूँ? पूरा क्या करना है? क्या करना चाहता हूँ? क्या हो रहा है? क्या हो रहा है? आत्मा प्राण विमल मलिन में निरन्तर भूँजित है बही अपना भान बनना है। सम्यक्सी विचार करना है मैं कर्म और कर्म का पल सब भिन्न भिन्न है। मरा इनमें कोई सम्बन्ध नहीं। मरा स्वभाव मगल सब इनमें विराता है विमान है आ विराती हुना है बहू एक साथ रह ही नहीं सकता। मन पथम जान, कर्मिण विमल मगल उद्यम सम्यक् और अकारण एवं आहार मित्र अवस्था एक साथ होते हाँ रहना। इनमें म कोई एक ही हुना है सब एक साथ नहीं। इसी बहू एक तुम्हारा स्वभाव और पर कर्म एवं कर्मफल में एकत्र नहीं हाँ मगना।

यही भग्न विनाश है। अपने में जब अपना ही अनुभव करता है। सभी वह अपने को पाता है। हे आत्मन तू अपने में अपना अनुभव कर निज में निज का देख। यह सभी होगा जब तुम अनादि के सत्कारों को छोड़ कर अपने ही को स्मरण करोगे।

निजानन्द रसास्वादी ससार भय से मुक्त होता है। निभय हा स्वच्छन्द स्वानुभव रूप उद्यान में विहार करता है। महाप्रतापी की क्यारियों में विकसित समिति कुसुमा की सहार दूता है। त्रिगुप्ति रूप घाग में प्रजा सूची से विरा विरा कर शम द्रम के मुस्ताओं को गूँथ-गूँथकर पारित्र शिविका का मजाता है। शील का परदा लगाता है मयम की क्षुब्ध घटिया लटका कर पड़ावशकी की गद्दी बिछाता है। वेधदक निर्भीक मवार होकर निवत पड़ता है निजन नीरव, घनघोर बाह्य वनप्रहा में कन्धराओ में झाड़-झाड़ों में मूलकता प्रसन्न होता आनन्द मजाता मस्ती में झूमता निर्द्वन्द्व निमोह निमग्न एकाकी अपनी धुन में अपनी जगन में अपने वश में अपने ही स्वर में अपने ही गान में और अपनी ही नान में जग को भूला विषया को छोड़ा भीषों से बंध मोड़ा, शिव से नाता जोड़ा बाह्य रे निजानन्द रस भागी।

मन का प्रभत्व निराला है। यह निश्चया करन में बड़ा चतुर है विवेकहीन है। किन्तु ठगने में अति निपुण है। जीव को बचिन कर चकमा देने में नहीं चूक सकता। हाँ विवेकशील प्राणी अवश्य इस पर अधिकार पा लेता है। जो इस पर शासन करता है वही महान वन भक्त है। मन की लगाम जो बस कर पकड़ लेता है उसके विषय कषाय विकार इन्द्रिया सब बशी हो जाते हैं। बाह्य इन्द्रिय विषया में शिथिलता आने पर आशा का ताता जजरित हो जाता है। राग-द्वेष मोह का प्रश्रिया मूलजाने लगती है। आत्मा पुष्ट हो जाता है। आध्यात्म शक्ति का पोषण होने लगता है। नतिक उत्थान प्रारम्भ हो जाता है। अन्तर्मुखी भावना हो जाने में बाह्य ससार का प्रलोभन अनायास नष्ट हो जाता है। शरीर से हट कर हृष्टि आत्मा में लग जाती है। जहाँ शारीरिक मोह ममता नष्ट हो जाती है वहाँ शरीर के पोषक आरम्भ परिग्रह सग्रह का भाव धन भव का योग-सग्रह आदि की अभिनाया स्वयं समाप्त हो जाती है। शरीर के साथ ससार का समस्त सम्बन्ध है माता पिता भाई बंधु भगिनी भोजार्थ वेदा-वेदी, भाई-जमार्थ आदि। हे भाल प्राणी तू निज परिणति को भूल शरीर को अपना मान रहा है इसके परिणाम स्वरूप शरीर सम्बन्धियों के साथ स्वात्म सम्बन्ध की कल्पना कर रहा है। पर ये सब तेरे न थे न हैं और न हो ही सकेंगे। फिर क्यों व्यर्थ इनमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि कर कर्मासव करता है? मिथ्या अज्ञान प्रमाण और कषाय के बशीभूत मिथ्या भ्रम में पड़ कर पर को आपा और आपे को पर कल्पना कर उनमें (पर पक्षियों में) मेरा तेरा अपना, पराया आदि नाना विरूप कर करके निपटाता रहता है। यही आसव का हेतु है जो अशुचि, दुःखमय नश्वर और दुःखपन्न स्वरूप हैं। ये ही आत्मा के साथ मित्रकर

खिलाने पिलाते हैं स्वयं भा उसका खात पीते हैं उसका यही आना-जाना प्रारम्भ करने हैं आस पास पास पड़ीसियां भयद् चर्चा करने से बाज नहीं आते कि यह हमारा परम मित्र है हमसे और इसमें कोई दुरब नही है। सब विश्वस्त हो जाते हैं। इस क्रिया के सम्मान में उसे आपको मन्त्रणा अवश्य मिली किन्तु शान्ति की सलक भी नहीं आई सुख नही बन नहीं सब कुछ करत धरत रहने पर भी बेचनो इस बात की बनी दुयी है कि कही मेरी वसन्त न खन जाय। इसके लिए आप चौकन्ने रहने हैं, खात-पीने उठते बठन सोन जागन आत जाते आप किसी भी हालत में स्थिर नही रह सकत कहा आगे-पीछ पत्ता भी खटका कि आप चौक उठत हैं किसी ने दर बाजा खटखटाया कि पुलिस की आशका से काप जात हैं गाडी आई तो मानों प्राण पछेरु उठ गये भन्ने ही वह आपका दोस्त ही आया हो। कोई भी दो व्यक्ति परस्पर बात करने हुए आपकी आर झाँकने लग ता बस आपकी गन्त शक्त जयगी पलक गिर जायेंगी यह होगी आपकी दशा इस समय जो कुछ भाव भगिमा आपका अंदर चल रही है यह सब है अन्तः । हर व्यक्ति अपन अपने को टंगले अपराधी अपराध काल के पुनर्प्राप्त बनाने में माना विकला के झून में गूनता ६ अपराध करत समय जो उसकी दशा होती है वही जाने क्षण भर भा बन रहा पाया अपराध करने के बाद एक क्षण सुखामास की सास लेता है कि पुन अपराधना की प्रणाली उसे विह्वल कर देती है। पश्चात्ताप की ज्वाला में झनमने लगता है। क्या ऐसा किया ? मैं चाहता नही या ऐसा कैसे हो गया मैं तो यह कहता चाहता था मुह से ऐसा निकल गया क्यों निकला कब निकला कब निकला ? अब इनका क्या परिणाम होगा इसका प्रकट होने पर मैं किस अवस्था पर पहुँचूंगा मेरा अपमान होगा या सम्मान या त्रुपमान लोग मेरी आर देखें आँखों के नशारे से एक दूसरे को मेरी गुस्ताखी समझाते हैं दखो उधर उगली उठान हैं वह देखा माठ हिले अवश्य मेरी ही चर्चा होती होगी मैं ही इनके वार्त्ताप का विषय हूँ क्या कलूँ बिघर जाऊ वहाँ छिपू तब अपनी सफाई दू कि मैं अपराधी नहीं हूँ या जावकर मेरे अपराध नहीं किया। अथवा कभी आप सोचते हैं। क्या हुआ गलती हा गई मानव कमजोरियों का खजाना न छानस्य अधूरा है ज्ञान ओछा है शक्ति अलस है विद्या बुद्धि सीमित है यदि यत्ना हुई तो क्या हुआ होना स्वाभाविक है। आप साहस बगैरते हैं क्षमा माचना करना चाहते हैं कर्म बढ जाते हैं चरना प्रारम्भ किया पहुँचे उस व्यक्ति का बहुरा देखते ही मान कपाय तमनमा कर आपके गाल पर तमाचा जड देती है और आप निन मिला कर सारे सत्राय अरमानों को उसी क्षण बिछेर कर पल्ला साड देने हैं क्षमा भाव पुन शोध का भयकर रूप धारण कर लेती है, मोह-तम घिर जाता है सप्रेम की कामना सजीव हा उठनी है माया आँखों भीतर ही भीतर नपेन्ना शुरू कर देती है और वही लोभ ताजा-सा हा सामने आ जाता है।

क्षण भर का मुख त्रिगुण घातक निराशा का अघकार घटा मुसुरा रहा पल का विश्राम त्रिगुण अनन्तर प्रमाण की तन्हा अगहार्ई म रही थी एक निशान त्रिगुण का निराशा का नूपान था एक क्षण का उ पान जिसके पीछे का छत्रका छपार था । तुम सोचत थे विषय में भोग रहा हूँ पर परिणाम में क्या बिच्य तुमको भूम रहे थे । ओह कितनी कटारता है इन भागा की कितनी है इनम कितना स्वाय है ? और दगो कितनी बचपान है । अट स्म एक साथ कर सजकर आय धावा किया हूँ सुभा क्या अपन को भूमकर मुख को अशानी हाकर मोह मदिरा पीकर । हुआ क्या ? भागा उन्हें मधर लगा पल अना नारस हुआ उर्य म आया घातक बना । धुरकत आये मोहित किया हावी बघन म पडा पीड़ा हुयी पुकार की कौन सुने ? बांधने वाला तो घमक था अब तो एक ही गति थी बघन का पल पीडा गहन करना करना ही हु ना बिना वह मानने वाला ही बर था । दशो दशा पांच प्रकार रम ५ वणो द्विविध और गन्त स्वरों की हुयी । सब अपना-अपना साज-समाज सकर आय और तुम उ जान म, उनकी धुगाम धागमुगी म कम कर अपने को धाय धाय इत-इतय मा कर एंट म अकड़ते रहे । ऐसे अकड़ कि बाह्य बला के घरे म स्वयं को उनमा अपने को भूल गये उहाँ म लिय गये । अपनी गुध बुध ही नहीं रही उत मुह की भांति उनमें उलट गये जो आकाश माग भूल कर नलिनी म पय भीध मुख भूलत है । इस दशा म क्या हागा ? पश्चात्ताप निराशा हाथ मनना और बार बार फिर घनना । य हृष्य विचारने पर तरे सामने चल चित्र की भांति आयेगे तुम उह ध्यर्थ न जान दा उनम राग हृष्य मत करा किन्तु उनस अपना बराग्य भाव पुष्ट करो । निश्चय करा इन विषया से परे और कुछ है वही मेरा है वहा मैं हूँ जिसे मुस पाना है । अब इनम नहा पेमना है न अटकना है न लुभाना है न टगाना है । बीती ताहि विसारि दे आग की मुख सेहुँ सोकोति चरितार्थ करा । तभी निज कल्याण म स्व स्वरूप म रवि और पर रूप से विरक्ति हा सक्ती है ।

स्वाधीनता किमम है जहाँ परावलम्बन न हो । मुख क्या है ? जहाँ पुन दुःख की संभावना न रहे । जाना कहीं ? जहाँ से पुन आना न हो । लेना क्या ? जिसे लौटान की चिन्ता न करनी पड । देना क्या ? जिसे लेने का प्रसंग ही न आवे । जानना क्या है ? जिसके जान सोने की आवश्यकता न पड । भोजन किस बहत हैं ? जिसका खा लेन पर पुन दुःखा ही न सगे । पानक क्या है ? जिसको पीकर फिर प्यास न सताव । बैठना कहीं ? जहाँ से कभी उठना न पड । बनना किधर ? जहाँ अचन हो जाय । जानी क य ही प्रश्नोत्तर उसे निज घर तक पहुँचाने म सहायक होत हैं । इनक होते ही पूव की अज्ञान दशा क हृष्य उमस बेपटा प्रतिभासित होने लगती है । अपनी करनी पर स्वय ही उसे आश्चर्य के साथ शोभ होता है । यह शोभ अशान्ति उत्पन्न कर बिराग्य जगाता है । बिराग्य से सयम भाव प्रादुर्भूत होता है उसने त्याग

का अकुर जमता है। यही त्याग करण्य और समय निज स्वरूप का भान दसता है उसे उद्भूत करता है जमन पुष्ट करता है। अततोपरवा उसी के माध्यम से तब आत्मा स्वयं अपने में अपने ही प्रयास से अपने को अचल स्थिर कर सग कति लीन हो जाता है। इस समय परमात्म व्यपदेश पाता है। भगवान बन जाता है। विश्व वध हो जाता है। जब वह कसे इस पन् पर आया इसका विवलय नग रह जाता है जब सब बसा रहेगा यह चिन्ता नहीं होती। क्योंकि विवलयों का शाय आशा कम नोकम नहीं रह फिर कारण के अभाव में काय बसे हो सरता है। नही होता। हे आत्मन् तुम इन प्रश्नों को जीवन के अङ्ग बना कर उत्तर की ओर सगो और पारर उही रूप बनो।

मन ही ता है। यह है भी मनमाना। चाहे जिधर चरेंगे। न कोई राह निर्धारित है न समय न कोई संगी-साथी है न मित्र। एत मीजी है। अर यही नहीं अल्हड है एवम् सापरवाह। न कोई इता नदी न उद्देश्य बिना नाथ का भसाराम है। व्याकरण देखा इसे नपुसक काई इस स भी जीर अथ से भी। वास्तव में यह हीजडा है बुद्धि विहीन विवेक शून्य ईश्वर अति चञ्चल तभी न इस लोक में बन्दर बहा है। हिता हिन का कोई विचार है। निरकुश चाहे जिधर दोड़ता है। यही नहीं अन्य द्विद्रव्यो—स्पर्शन रस, द्रव पण और कण इह भी दगाता है सबका नेता बना ह राजा है जो राजा। सब राजा तथा प्रजा। इसे अवश्य चरिताथ करता ह। प्रतिक्षण इसके शासन के निर कातून कम दगुलशम बल्लत रहते हैं कभी कभी तो निमित्त मान में एक साथ इतों मनोरथ आ उपस्थित हान हैं। क्षण मात्र राजा और फिर रक हो जाता है एक प म मायु और दूसर म सुच्छा गुण्डा बेईमान कोई सारा नहीं इसकी सब सत्य की कद अमन वही सज्जन और नर्त्त दुजन जब किस पर मुग्ध और जब निमि विरक्त। आ इसके चार सग बस उसकी धूल पिटाये बिना नहीं छोडगा। कभी मन राज क चाणु म पैसा मोह मन्त्रि का पान करा पथ भ्रष्ट कर देगा तो कभी मन क बाल में पैसा भगामन्य क विवेक शून्य। कर्मो-द्रव्यो के प्रलोभन से हरा डे धोरेन्द्रियों में जान को पना कर बध्द दगा है। यह निरकुश गज है। मनोमन हे समय क मादक मोह विषय वत म य घटक दोड़ता है। अपने मालिक जीव राज के मन्त्रि भी अर्या नहीं करना अणिग उस धोर निन्ता का पान बना दुग्धि का दण बना देता है। हे आत्मन् तू मावधान हो हमके जान से अपना रक्षण कर। जानपुत्र से सनन सावधान हो। एत पर सजारी कर। सगाम अपने विवेक रूपी कर प पफ। इसका कग जान मय द। आ यह चाहे यह कभी भूल कर भी मत कर। जो मन्त्रि-व्य क सज्जन अर्या पर अधिहार जमा विचारों का शोधन कर उन पर कही हिन रथ भी नेता बर्याण है। एह मनारोप से मज्ज निज स्वका मज्ज निज ह करे।

ह भूम्योत्तम नय विभाग वा सम्यक् परिज्ञान कर। नयों का व्यापार अति अस्तुत है। ये सभी आपेक्षिक हैं। एक भी स्वतंत्र नहीं। बाह्य म देखने से सब स्वतंत्र से दृष्टिगत होने हैं किंतु वस्तुतः उस रूप में नहीं हैं। बाह्य रूप म मान लिया तो कम यही मिथ्यात्व होना। मिथ्यानय समार बर्द्धक है। अनन्त समार का कारण है। आत्म म सिद्धा है निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा नया सम्यक्। अर्थात् अपेक्षा रहित नय सभी मिथ्या स्वरूप हैं और अपेक्षा सहित सचे हैं। अभिप्राय यह है कि एकान्त नय वस्तु स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन नहीं हो सकता। पन्था व्यवस्था सापेक्षा नय ही कर सकता है। वस्तु के विवर्णित अंश के निरूपण को नय कहा जाता है। अस्तु नयों के अन्वेष भेद हैं जितनी वचन प्रणाली हैं उतने ही नय हैं। इन नय समूहों का यथार्थ स्वरूप समझे बिना वस्तु का यथाथ परिज्ञान नहीं हो सकता है। अस्तु स्वरूप समझ बिना स्व तत्वावबोध भी नहीं हो सकता। चिन् परिचय बिना सुख शांति भी नहीं प्राप्त हो सकती है। परमात्मकान पर वस्तु पर धन पर स्त्री मां सोन व्यवहार में भी आपनि विपत्ति की कारण है फिर पर लोक म ये कैसे साधक हो सकती हैं। प्रत्यक्ष देखा जाता है जीव अकेला जन्म लेता है और स्वयं एक ही मरण पाता है अकला ही जाता है। इस दशा में पर म आया मानना भ्रम अज्ञान प्रमाण और मिथ्यात्व ही है। ये ही संसार का कारण है। वा ही सोच है—मह जोन और परमोन। दो ही कारण हैं—विषय-रूपाय और ज्ञान-विराग्य। दोनों म एक अपना और एक परमा है। जड़ और चेतन दो ही तत्त्व हैं। जड़ परमा है। समार है संसार का कारण है। चेतन अपना है अपने स्वरूप का कारण है ज्ञानमय है। हे भूम्य इसे पहिचानो जीवन म उतारो धारो ग्रहण कर निज स्वरूप पहिचानो। तमा तुम अपनी वस्तु के सत्त्व धनी कहता सचते हो। आज तो तुम बहु अपराधी बन हो जो अपना वैभव लुटा कर खोर बना बंधन में पड़कर दुःखी हो रहा ह।

ह भूम्योत्तम तू जिन स्वरूप है। तरा आत्मा शुद्ध अधण्ड एक रूप है। तबोत्कीर्णायक स्वरूप है। तू अपने लक्ष्य म इसे स्पष्ट समझ। यही अवाग्य सत्य है। पर की शोक और सुधार में तू अपना समय अब तब खोता रहा। न तो अपने को पहिचाना न पहिचानने की चेष्टा की। खेर क्या वस्तु हाथ नहीं आता है। गते शोक न करणीयम् विगत वस्तु का या समय का विपादन करना भी उचित नहीं। कर्मभान को सफल बनाना बुद्धिमत्ता है। अब तुम्हें सम्झाव मिला है इसका उपयोग करो अभिवृद्धि करो पर भवतब जब तक मुक्ति न मिले साध-साध रह एसा उपाय करो। एक बार छोटी वस्तु मिलना दुर्लभ होना है फिर सम्भवतः जसा रत्न मिला जान पर किस प्रकार हाथ मग सकता है? विचार करा। तुम मूढ़ हो गुन्धुर हो अहंनिष्ठ इसकी बोली लगामो मुक्ति रूनी कपात बना करा समय पहना मिलाओ त्याग की दीवाने मकबूल करो विराग्य की संकल जड़ का ज्ञान का रूप

भूराभा । निज तज शक्ति प्रकटाओ निज परिणत म जाओ । पर धर धूमना छाड़ो ।
आनम भाव जयाओ । जग जजाल मिटाओ । परी बन् करो । स्थिर हा जाओ बस
मुख है शान्ति है पान है आनन्द है मुक्ति का द्वार है ।

हे भव्यात्मन अनिशय क्षमा और क्षमस्व त्रिन विम्बो क दशन करने से मन
पावन होता है पाप भार हल्का और पुण्य बद्धन हाता है । जीवन में शान्ति आती
है । बराह्य पुष्ट होता है । समय की वृद्धि होती है । पान का विकास और ध्यान
की निष्ठ होती है । मिथ्यात्व का नाश और सम्यक्त्व की वृद्धि होती है । सम्यग्ज्ञान
के ५ पक्ष से समार शरीर भोगों से बराह्य जाग्रत होता है, पुष्ट होता है और बद्धन
होता है । चमत्कारों के पुञ्जों की चोनि से आनोक मिलता है जिससे श्रद्धा अकाट्य
रूप धारण करती है । ससार के प्रनाभन अपना अमर नहा डाल सकते । मिथ्या
चमत्कारों से रक्षण होता है । साध जीवन निश्चरता है । समय को बल मिलता है ।
त्याग भाव वृद्धि को प्राप्त होता है । बाह्य जड रूप बहानिक क्षणिक चमत्कारों में
विश्वास प्रचार का आवरण नहीं रहना । आध्यात्मिक शक्ति बनाने का अनायास प्रयास
हानि लगता है । आध्यात्म ज्योति चमकती है । अन्तरात्मा परमात्मा की आर प्रयाण
करती है । जड के अन्तर प्रच्छन्न चतुस प्रकट हो जाकने लगता है । उसकी विरणों
में मन आलापित हो उठता है । क्षणिक इन्द्रिय विषया का प्रलोभन नहीं रहता ।
विषयमानीत आनन्द का चाह जाग्रत हो उठती है । उपाहरण के लिए त्रिनाकपुर
अनाय क्षम । साया जावन सरल गाँव में सिर दण करने वाले सिनमा रश्मि,
न विषय पापक व्यापार । शांत नीरव बानावरण । प्रभु नमिषवर का अविद्य ।
मनान विम्ब शांत छवि सौम्य मूर्ति नाशा दृष्टि एकाग्र चित्तन मुग पक्षमन
निचल ध्यान । ओह ज्ञान से अपार आनन्द मिलता है, अनुपम शान्ति आता है ।
आ जग जन हो क्या चर उधर भटकत हो अपन में अपन को दखो वहाँ का
है अयन कहा भी कुछ नहीं है ।

एक आशा इगका जाल यह कब शुरू हुआ वहाँ से प्रारम्भ हुआ कि
हुआ ? ओह बड़ी विम्बना है । न उत्तर है न मतोप । तृष्णा बन्ना है, पान में बन्ना
वहाँ बुझ ? यह तो बड़ ही रही है । बढ़नी जा रही है । व्यक्त हुआ । हुनर हुआ ।
सोचा छोड़ दूँ । सोड़ दूँ । मह मोड़ लूँ । लगा भा जैसे छू रहा है । मित्रिन् हूँ
है । कुछ डीला पड़ रहा है । दखू तो विघ्न म ? अर हट्ट, हट्ट, हट्ट
साचा शिथिल हुआ पर वहाँ ? वह तो और जम गया । हट्ट, हट्ट, हट्ट
रहगा सोच कर छोड़ दिया पर पाया तो अधिक कठोर, बट्ट, हट्ट, हट्ट
मुग ही तोड़ दिया वही कठोर से कहीं घाट से । एक हट्ट, हट्ट, हट्ट
की धुन की उधर गाँठ घुल गई हट्ट बट्ट गया हट्ट, हट्ट, हट्ट
बनी जातिम है यह । गिरगिट से कम नहीं । हट्ट, हट्ट, हट्ट
वही स यही । उधर से उधर से हट्ट, हट्ट, हट्ट

यह तो स्वागियो के पीछे भी पिसती जाती आ रही है। हर है बेगारमी की। वही स्वयं का बिजपट बिछाव है, तो वहीं धम प्रम का, वहीं वारसत्य में छुप गई तो वही परोपकार के बाजार में। दाव देवती है। वही करता है जो करता है। चाहे आवश्यक हो या अनावश्यक। मार्जार है पकरी। आग्न से बाज नहीं आ सकती। पेट भरा ह तो क्या शिकार पाया कि उछनी ? बस आशा नागिन क्या कम है ? दूध पिलाते जाओ बिय लेने जाओ। प्राण भी लगी कष्ट भी देगी। यही है दूधका काम। न इधर जन न उधर। अरे दखो अग्नि ई धत पाकर भमकनी है (निधन) बिना ई धन के शांत हो जाती है। किन्तु यह उभयव्यय समान है। पापा तो भी आशा बढ़नी है और न मिल तो भी जीव को जलाती हो रहनी है। फिर क्या किया जाय ? आशा का त्याग। परिग्रह प्रमाण। इच्छा निरोध। समय का धारण। वस्तु का पालन योगों का निरोध विषया का त्याग मत।

हे भव्य तरा क्या है ? तू किसका है ? मर्रा क्या है ? मैं किसका हूँ ? बड़े अटपटे प्रश्न हैं ? भना इनके उठन की आवश्यकता ही क्या है ? स्पष्ट तो स्थिर रहा है मर्रा शरीर है घर है इन्धियाँ हैं उनक विषय हैं क्योंकि उनको मीने ही ता अजन किया है भाव विचार मर है दुःख सुख भी मर्रा है धन जीवन स्त्री पुत्र आत पिता सब ही तो हैं मरे फिर इसम पुछता ही क्या है जो ? ठीक है। मर तुम्हारे सहा। पर यह तो बताओ यह क्या किसका है ? बाहरे प्रश्न यह तुम्हें नहीं सोच रहा कि यह सोने का है पीला कमबीला चिकना भारी साफ तो है। ठीक कहा यह कहा सोने का है क्योंकि यह सुवर्ण रूप है तमय है यही न ? हाँ ठीक है तब तो यह हुआ कि जा जिसका होता है वह उससे तमय होता है तद्रूप होता है ? ठीक है न ? बिल्कुल सही माने का आभूषण हेम मय और चानी का रजत मय होता है सभी तो यह सोने का है यह चानी का है व्यवहार होता है। ठीक है। अब आओ अपन मूल प्रश्न पर। आप कहते हैं शरीर धन, पर विषय मरे हैं ? क्या यह सही है ? जा जिसका होता है वह उस रूप ही होता है। तो क्या इन जड़ पदार्थों रूप आप भी जड़ हैं ? है ! यह क्या बर सब सगायी है ? भला व जड़, मैं धनन व भुक्त रूप कम हो सकता है और मैं उन रूप भा बस हा सकता हूँ ? भला सोचो तो ? ठीक है आप जोरन क्या है ? भाग ही न ता कहा था व मरे प्रत्यक्ष है सब आप जड़ हो गए। मर्रा-नहीं यह कम हो सकता है ? मैं धनन हूँ जानी हूँ दृष्टा हूँ विषय निमित्त तत्र पुञ्ज हूँ। फिर आप ही कहिये व सब पर है या आप मय हैं ? अरे बाबा सब पर है जड़ है पुद्गल है न न मर रहा है हाय हाय मैं कहाँ भटक गया ? अरे र ! व सब सुखम अद्वय मित्र है न मैं दूधका हूँ और न म मरे हैं मैं तो मैं हूँ भुक्त म ही हूँ मर्रा मैं ही हूँ भग्न सब पर है न मैं उनका हूँ और न व मर है। मैं उनका जाता नहीं व मर कम नहीं। वे अवन स्वल्प है मैं स्वयं भुक्त रूप हूँ यही भद विमान है। यही ज्ञान बनता है। यहा निजामानुमति है। अब तक धम था, पिप्प्या बुद्धि

धी मोह का नशा या अज्ञान का परदा था। अब हटा। परस्व बुद्धि मष्ट हुयी पर म आपा का भ्रम समाप्त हुआ। अज्ञानतम नशा। बस अब जो कुछ धूलि कचरा बाकी है उसे हटाना है झटका है, झड़ता रहेगा पर सावधान इस ओर होना है कि वही नवीन मलवा न आ जावे जम न जाव छा न जाव। ठीक है यतना सावधानी तो बहुत कुछ हागी यही तो सवर है अब क्या है यह स्थित हुआ कि निजरा चालू है। पुराना आ रहा है चाहे मद रूप स जाव चाहे तेजा से पर नया तो नहीं आ रहा। व्यय होता रहेगा और आप बन्द तब तो एक न एक दिन पराया सब धाली हो ही जायगा बस रह जायगा स्वय मोह नहीं अहम मात्र स्व आत्मा शुद्ध आत्मा निरञ्जन निर्विकार पानपुञ्ज ज्योतिस्वरूप निमज्जात्मा बम यहा मैं हूँ यही मेरा है यही साश्वत है यही मुक्ति है मोक्ष है शिव है।

हे मय्यात्मन् अनादि स तू भ्रम में है। अब नान आया। विवक जगा। अब न विससना। यही तरा अपना स्वभाव है। इसी में रहो। अब तक कम और कमफल चेतना में ही पड़ा रहा। ज्ञान चेतना का आभास ही नहीं मिला। ज्या-ज्यो कर अब आपे की आर उन्मुख हुए हो वही ठहरने की चेष्टा करो, उमी म रम उसा का अनुभव लो स्वाद आने पर ही तो उसमें सप जायेगी। बिना एक तान हुए आनन्द कहां मिल सकता है। एकत्व विभक्त का आनन्द भी एकरव विभक्त ही है। तू उमी म तमय हो अरे तमय क्या होना है अपन म आ जाना है। सीन तो पर म होना है पर पर ही है निज तो उसमें भिन्न है। पर म सुख कहां शांति कहां! निराकुलना कहां है? यह सब भ्रम जाल है। माया है। तू आवे म आकर अपन म अपना अन्वेषण कर। पा गया कि पार हा गया। बस फिर क्या है? न ममार है न सान्ति न सम्पत्ति, न शरीर न विषय न विषयी। सभी का व्यापार समाप्त। मात्र एक जाता हट्टा रह जायगा। फिर किसमें सीन हाव? अस्तु अपने स्वभाव में।

बाहू रे स्वाथ। कितना दूर है तू। किसमें? अपने से। निजहृदय स। बहुत असीम। लम्बा राहू है मजिल दूर है अति दूर। माग कंटकाकीण है ऊबड़-खावड़ भी कहीं कीचड़ है ता कहीं पानी। माग है असयम उसमें माया के गत्र हैं भयकर, राग-द्वेष की है ऊँचाई-नीचाई मोह की पक और ममता का पाना भरा है सवालव। भला सोचो तो यह स्वाथ की अगर किछर जा रही है क्यों जा रही है? स्वार्थी का मन कुटिल रहता है वधन बमत्य स भरा हुआ, बाप बुचुष्टाओं के बग से टनी। इस परिस्थिति में जीवन का सौन्दर्य किस प्रकार 'चमक' सकता उज्ज्वल भविष्य की शान्त भीतल सुखद किरणें किस प्रकार बिछर सकती हैं? स्वाथ स्वय अघा है। कह अपने ही को नहीं देख पाता फिर तुमको किस प्रकार स्थिता सकता है? बड़ी विडम्बना है इसकी। इस माँ में अनायाम शत्रु बनाने का यह सरद उपाय है। निन्दा का जनक और अविश्वास की जननी है। जहाँ देखा निरस्कार सहान्द्र तयार

उसी प्रकार मन का भी हेतुनाश का ज्ञान करना जिज्ञासा उत्प्रेष प्रवृत्ति करना, शुभाशुभ विचार करना है। परमात्मों में उनज्ञा आत्मा विद्वत्त्व विपरीत भाव अज्ञानात्मि रूप परिणाम करता है तो मन भी उसी प्रकार विकार भाव को प्राप्त हो निजाम स्वभाव के प्रतिबुद्ध व्यापार करता है वास्तव अपराधी स्वयं जीव है। मन एक तो जड़ है दूसरे भाव मन उत्पत्ति से उत्पन्न है, परन्तु उपचरित वस्तु स्वभावमूल नही हो सकती। सायोगी पदार्थ परायेगी होते हैं। पर की शक्ति से अपना जोर चलाता है। पराई प्रेरणा से नाचता है। मन का भी यही राग है। मन हे साधो ! तुम सर्व शक्तिमान हो। सब प्रकार मुक्त हो। पर निमित्तों का सेश भी समाप्त न रहे तत्त्वबुद्ध प्रक्रिया करो। गरमाहट है तो दूध गरम रहेगा अग्नि बुझी है तो दूध ठण्डा पड़ना प्रारम्भ हो जाता है और शान शान एक दम शान नीन हो जाता है। वन यही हाल तुम्हारा आत्मा का है मन का भी यही हाल है। पर विषयों का आत्मबल लेकर दौड़ता है। भीति पणियों का जितना अधिक प्राप्त होगा मन की दौड़ भी उतनी ही तीव्र होगी और आत्मा का निजाम भी उतना ही आच्छादित होता जायेगा। मन मनोवश राखना है तो परमपद मयाग का नाम करो वह त्याग से होगा सत्योप से होगा सृष्ट्या के परिहार से होगा वन निजम मयम धारण से होगा। मन का दास सत्तार का गुलाम है। मन की दौड़ समस्त दिग्ग म है। वह जितने से जायगा उधर ही दौड़ना पड़ता है। जो मन को निजाधीन कर सता है वह समस्त संसार को स्वाधीन बना सता है। मन की शक्ति सभी एक शक्ति है जब उमका साकार माग विषय व्यापार बन हो। विषय कम करने के लिए उमका विपरीत चलने की आत्म शक्तियों की आवश्यकता है। मन स्वभाव से आत्म वन की ओर ही समतल करता है। यह मनोमहा बुद्धि है। ज्ञाता बुद्धि के बिना वह नहीं हो सकता। चञ्चल तीव्र गति युक्त अज्ञ की समतल को बिना अधिकार में नहीं आ सकता। मन एक है उमके सहयोगी पाव है। मनका बल पावर वह और अधिक पावर हो जाता है। हे भाई हमारी सम्पूर्ण शक्ति विज्ञ की सम्पूर्ण प्रवृत्ति समस्त कर उन पर ज्ञान विज्ञ का प्रतिबल लग भी। प्रतिबल भी लाने की आवश्यकता नहीं भाव जिज्ञा परिचरित कर दा। अनुभव भावों में प्रवेग न होना है। शुभ में प्रवृत्ति करावा। शुभ व्यापार का अर्थ ही शीघ्र विदुत्त्व पदार्थों पर ज्ञान की शक्ति का प्रवृत्ति है। यह पुष्ट धूमि टटारही है। वही न करना है बलवान न बनना है न जाना न करना है न विज्ञ, न मुक्ति है न वेदोप है विज्ञ कर है ? ज्ञ है वगैरे है। अर्थ का समाधान। जीवन देखना है उम ? स्वयं ज्ञाना। वगैरे बनना है। उमा का साधारण है वगैरे। यह ज्ञान में तत्त्वबुद्धि स्वयं अर्थ का निराधार है। साकार का निराकार का ज्ञान होता है।

आज बनायास प्रश्न उठा मैं कौन हूँ ? आज पीछे का स्मरण किया। भूत
 की ओर दृष्टिपात किया बड़ा आश्चर्य हुआ। देखा अनोखी रील सामने आई क्या
 मिनेमा है या टेनीविजन। अरे यह तो स्मृति पटल पर स्वयं भरे ही अनक रूप हैं।
 मैं कौन हूँ ? इसका उत्तर बच्ची बच्ची बेटो सठकी छोटी जीजी बहूत बुझा
 भानजी भनीजी नन्द भौमा अर यह क्या ? तागा लगा है मर रूप का।
 क्या जाकर हूँ इनसे कौनसा रूप मरा हा सक्ता है ? निगय हो नहीं कर पायी
 कि दूसरी रील आना प्रारम्भ हा गर्ह। बहू दुलहित सादी भाभी मामी देवराती
 बाकी और फिर माँ और मामी साईं दादी नानी और न जान क्या-क्या ? अब तो
 और भी पतीजा हुई। क्या समझू अपन को। कस निगय करूँ ? मैं कौन हूँ। एक
 चित्रपट पूरा नहीं हाता कि दूसरा शुरू हा जाता है। क्या पलट हा गई आ दखा
 अब तो मास्टली विदूषी महिना मारी रस गुणवती गीलवती गुणना चतु।
 घर्मा-मा त्यागी और फिर घनी मयमी माघ्या त्यागी बरागी आनि अनक रूप
 आये और गये। अवात्तर रूपों का ता क्या कहता आई सध्या ही नहा है। न जाने
 प्रतिनिधि बितने आय और गय। रहा आई नहा ? अब कसे निगय करूँ कि कौन हूँ।
 विचारा रमान में आया एक स अनक ये रूप आय और गये इनका मझा जाया
 किमको रहा ? हाँ वह कौन है ? अवश्य आई जाता हटा है। वह कहाँ है ? वह
 मुझमें ही है वही मैं हूँ। खेनना रूप। न खी हूँ न क्या न बच्ची न बच्चा न गुरप,
 न नगुमक और न आय ही आई है। बस वही एक नागा हटा ही मैं हूँ। फिर ये
 सब क्या है ? य जात है ज्ञाना सोना ताना-बाना है पर्यायो का। क्या ? क्याकि य
 रपाया नहा आ अपना निज स्वभाव हाता है बिपरित हा रही है प्रपञ्च प्रमाण
 बनित भा हाता नहीं। य सब हासन नखर है बिपरित हा रही है प्रपञ्च प्रमाण
 है। अज ये कोई भी मैं नहीं और मैं भी इनमें स आई रूप नहीं। यह मुनिविषय है।
 मैं तो मैं हूँ। ज्ञायक स्वभाव। क्योंकि बितने जीवन क चल बिच आय य प्राय-या
 है। अज स्मरण जान की पर्याय है। जान रूप हा मैं हूँ। मैंने देखा अज हटा भी मैं
 ही हूँ। निरवय हुआ मैं आरमा हूँ वह जाता हटा है दातों का एकाकरण चटना
 है-जीव आत्मा। रत-वय घर्मे। मुनिद है यह रूप आत्मा स अद्यत् अभिन्न
 तत्त्व।

बचावों की प्रक्रिया एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। ये उत्पन्न क्यों होती है ?
 इनका परिणामन किस प्रकार होता है ? इन प्रश्नों का समाधान पात्र ही इनकी
 मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट हो जाती है। दृष्टिगत पदार्थों का अव्यक्ति मानसिक उपजन
 की जाती है। मन के संघर्ष में मजबूत मस्तिष्क में बिबिधता-मौलिक पदार्थ हाता है
 ह जोड़ की गुण्य पर्याय है यही अवस्था है इनका वह रूप जो है। मान सन्निध
 आर बिना व्यक्ति के प्रति कोई आभा बरत है किन्तु वह आरक अनुभूत शिवा
 नहीं करता बस यही से संघर्ष प्रारम्भ हा जाता है। अन्तरङ्ग बहम वापस हा बच्चा

हे आरम्भ जीवन विनाम नहीं है यह भोगों का दास नहीं यह बन्धन गुनाम नहीं है । न यह तन का बन्धन है न मन का गुनाम । न शक्तियों का दास है और न समार का बन्धन । न कर्मों ने इसे शरणा है न भाषा के जाल में लिपटा है । फिर क्या है ? यह है अनादि स अपने अज्ञान से विहृत बन्धन विगह्ना पितृता रूप । रक्त विहृत होना है पीव बन जाता है बन्धन है पीडा देता है पका ता बढ़ता है चमड का धीर कर कभी अस्थि निकालकर ता कभी मसि-येगिया का प्रशसन कर । यही नहीं स्वभाव म भी बढ़ता है एक दो स्थान से नहीं अपितु नव द्वारों से । क्या यह जीवन है ? नहीं यह तो जीवन का विकार है ऐसा विकार जो मने के रम में फास करस डालकर निकालकर फेंक दिया जाता है । जिसका कोई उपयोग नहीं भूत नहीं । भला ऐसा विकार क्या तेरा हा सकता है ? कभी नहीं । दम्पस गुड हुआ मधुर स्वाद मिल रूप धारण कर घास सुन्दर मृत्ताना मन मोहक हा जाता है । बस यही हाल है जीवन का । इसमें समय का पाम करस डालो । बराम्ब न चूहले भट्टी पर चढ़ा दो सया दो ध्यान की अनल कर्म का इधन जलने का बे घटक दिवक न बचने से अज्ञान मन निकाल फेंका । बस फिर देखो जीवन क्या है ? जो बस चक्षुओं से न दिया अब स्थि नेत्रों से स्थि जायगा अनायास । बस यही होगा सच्चा स्थायी अमर अचल एक अनोखा ध्रुव अपना जीवन । पात्रा पात्रो रे भाई अपने ऐसे सुन्दर जीवन का । कहा मिलेगा ? स्वयं तरे में ही आच्छन्न । कब मिलेगा ? अब तू चाहेगा । कसे मिलेगा ? स्वयं के पुण्यास से । निरंतर के अभ्यास से । भक्त विज्ञान के प्रकाश से । प्रज्ञा के प्रहार से । तप के साध से । ध्यान के प्रभाव से । हे भाई साधो ! जाग जाग बटुन सो चुका अब गफन मन फम । तन्ना छाड दृष्टि खोप अगडाई ताड सावधान हा स्व और पर नई पहिचान । एक ओर आधा-आधा भिनकर एक अगर है और दूसरी ओर नो । बस दो का समझा कि मयदा सनम रास्ता साफ मजिल पार रह जायगा स्व एक । एक एक हा है । सारा कुराफात खत्म क्याकि दा का परना फास । वह नहीं रह मकेगा क्याकि आश्रय विहीन हा जायगा । बस अब ओ कुछ बचेगा बनी है जीवन ।

लौकिक जीवन अजीब उत्तन है । एक विधिय पहुँची है । कभी शमन का रग आना है कभी बचपन का रग कभी किशोर की विमलय ता कभी यौवन का बसत । पीछे से शाकना बना जाता है भयानक कष्टप्र बुझा का पतनड । उनड गया बिलर गया, बस रह गया सूखा टूँठ । करा उपजम किमनय आयेंगी पुण लियेंगे रग भरेगा पतिपाई झुमेगी बसत आदगा भौरे गुजेंगे (विलासी) हरा भरा रसीला उपवा चहक उठगा । कब तक ? कद ज्नि तक मूर्त ओ बन् क्षणो तक । यह भी नहीं बस एक क्षण । फिर क्या होगा ? वही जो हा चुका था । हे बुद्धिमन इस पहली को देख । ऐसे नहीं जसा अनादि स दगना आ रहा है दिन दृष्टि सम्मगदृष्टि से निहार विनाकि । समझ इस रहस्य को स्थि प्रनरङ्ग ज्ञान स-सम्मानन निमल ज्योति से । एक निशट रह सूच्य व्यवहार से सम्मय चारित्र से अपना ही

अपने को बुराहम्य पवित्र उगम बता देता है। यह है अनोखे इमरा मन्त्र प्रभुत्व और महिमा।

मानव का सबसे बड़ा सार है ईर्ष्या काहू। अन्त को वृद्धि, प्रगति और विद्या बच विकास आदि को गह्रा नहीं, बरता ईर्ष्या है। इसी को ईर्ष्या की परिहार परिणाम अन्त का हर प्रकार में पराभव मारता है। अपने प्रायेण रूप में विघ्न देना की जगह करता है। हर प्रकार विघ्न का उसे नीचा और अन्त का ऊँचा करने की चेष्टा करता है। पतन ईर्ष्या का समय सति, उपयोग दूसरे का अहित करने में ही व्यय होता है जिसे वह हर अपने पास उपलब्ध सामग्री भोग विषय समय आदि का भाग भी नहीं देना बल्कि रात दिन साहू की साहू में जलकर दुर्गो हाथा रहता है। अन्तिम अन्त अपमान कर ह्यति का भाव प्रकट करता है। यही गहरी पक्षा-कोशक स्पष्ट बना को निन्दा में जोड़ देता है। स्वभावतः वह पर ओ उगम ऊँचा है उसी किन में जट जाता है फलतः अपमान डाट मार और अपमान का भाव बनाई किन्तु इसकी वह परवाह नहीं करता। उसे तो एक ही धा सवार रहनी है किने का अगले को नीचा दिखाना छोटा बनाना सबकी दृष्टि में उसे पतित बनाना। पर तो यह है कि ईर्ष्या भयंकर विष है जिस निन्दा की मोती में मर का मूत्र सिन्धी मोती जतना के बीच उछावता फिरता है। दुबुद्धि अज्ञाना मूल इस विष के विपाक हो उतका अधानुकरण करते हैं और धीरे धीरे उतकी पुण्य रूप विष में टकरा कर अपना फिर फोड़ते हाथ-पांव तोड़ते बेहोश हो हाँकर पड़न लगते हैं। यह है ईर्ष्या का दुष्परिणाम। हे भव्यात्मन् तू सत्त्विकी है अपने सम्पत्ति विरक्त के अपना विकास कर उत्थान कर। पर विभूति, पर मुक्ति में प्रमाण धारण कर ईर्ष्या के स्थान पर प्रतिस्पर्धा को जाग्रत कर। अपने से बड़े का सम्मान आनंद एवं अनु स्थान का भाव धारण करो। आपका विकास अनायास होता जायगा।

मानव जीवन की अभिवृद्धि में प्रतिस्पर्धा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह दुर्लभ आदेश का पोषण कर उत्थान करता है। अपने से अधिक धन जन गुण वधवशी पुण्यभावा को देखकर हर्ष होता है और साथ ही स्वर में भी ऐसा ही बर्न देने की गुणों का प्राप्त कर इसी प्रकार का अवका इससे भी अधिक प्रशंसा यह योग प्रभुत्व धान का प्रयास कर यह महत्वाकांक्षा जाग्रत होती है। पुण्य वृत्ता का देख गुणवत्त का भाव होता उत्पत्ति का कारण है यथा जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन कर उनके गुणों से अनुक्षण उनके जीवन के कार्यों में हमारी श्रद्धा भक्ति, अनुशासन तथा तनुभार स्थान, समय वन नियम चारित्र्य पालन धारण ये सब प्रतिस्पर्धा का प्रकट निराल रूप है। हे मुमुक्षु शरापर ही करना है ता छोटा छोटा बयो करना धोव यन् का व्यापार करना चाहिए। सांगारिक विषय मानव की प्रतिस्पर्धा से वे दिन प्रदत्त जाये कि मु उनसे परमाद्य की मिद्धि नहीं हो सकती। नैतिकता नहीं पतन सबकी आत्मा का विकास साधन नहीं हो सकती। आत्मा की वृद्धि के बिना सबका दुर्ल

सार है। यही जैन मिथ्यात्व का अनौपचारिक है। आराम शान्ति का उपाय है। भूख प्राप्ति का परम साधन है।

हे भग्यारामन् अपने बनेबन का विचार कर। तू कौन है? क्या कर रहा है? और करना क्या चाहिए? वास्तव में मनुष्य गर्वोपरि है और गवस नीच भी है। उच्च और नीच शुभाशुभ कर्म पर निर्भर करता है। शुभ क्रिया शुद्धाचरण करने से मनुष्य महान बनता है और अशुभ क्रिया दुराचरण से मानव मृगा का पात्र हो जाता है। यही कारण शरीर के साथ है। यह अस्थियों का ढाँचा मृत के गारे से चिना हुआ मगजानि से पलस्तर कर चमड़े में मढ़ा गया है। स्पष्ट करने योग्य भी नहीं है क्योंकि मल-मूत्र में व्याप्त है। फिर हमको अपेक्षा क्यों है? इसलिए इसमें चैन राजा निवास करता है। चैत्र्य ही मैं हूँ मेरा ही मैं हूँ और मृत में ही मैं हूँ। क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है। मैं निश्चल जाता हूँ और यह (शरीर) पड़ा ही रह जाता है। फिर विचारणीय यह है कि आखिर एक बार निवृत्त कर फिर इसमें पलना ही क्यों है? इसका उत्तर इसी की शुभाशुभ क्रियाएँ हैं। अपनी करनी से यह स्वयं बना बनता है और स्वयं छूटना है—मुक्त होना है। शुभ कर्म से उर्वर्ण का सन्दर मुहोल आकर्षक शरीर पाता है और अशुभ कर्म से महा बुडोल िच शरीर में जा अन्वता है। मनी विनाप गुरुपाथ—प्रणा के उपयोग से शुभाशुभ क्रियाओं से ऊपर उठकर शुद्ध स्वभाव में आ जाता है और फिर शरीर रूपी कारागार से मानव के लिए मुक्त हो जाता है। यही हमकी स्वाधीन अवस्था चिरम्बायी है। इसी का नाम मुक्ति है। सारांश यह है कि स्वयं का भेद विज्ञान करना अनिवार्य है। इसका परिणाम करने के लिए जिनागम का मयन करना अत्यावश्यक है। इन्द्रिय भोग विषयों में उलझना उच्छेद मेवम करना उत्तम आसक्ति रखना उनके बाह्य रूप पर सुगुं हाना ससार का बड़ाना है। ससार की परम्परा स्वयं जीव बढ़ाना है और स्वयं ही बम करता है। मग तत्त्व को सम्यक प्रकार समझना मानवता का सार है। हे आत्मन् हम शरीर पित्र में जीव शुक्ल बानी है। इसे पड़ाओ समझाओ। सिमित हुआ स्वयं बचन मुक्त हो जायगा।

मानव जीवन में प्रकृति महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति का कण-कण मानव जीवन को उन्नति की प्रेरणा का मुख्य केन्द्र रहा है। सम्पूर्ण लोक प्रकृति है। ससार स्वभाविक है। अद्वितीय है। स्वभाव निष्पन्न और साश्वत है। किन्तु इसमें रहने वाली वस्तुओं परिवर्तनशील हैं। इसीलिए यह नाटयशास्त्र है। बम ३ सूत्रधार है। जाव अभिनेता है। प्रकृति से प्रेरित बम से दण्डित मानव नामा स्वाग बनाना फिर रहा है। एक ओर मुस्तुराणा सुमन कहता है हर्षोल्लस हा जीवन का आनन्द से तो सा दूमरी और मुर्झायी पतियाँ और बूझती हुई प्रेरणा दे रही हैं हे मानव सज्जत बनला अथवा जीवन बिखर कर मिट्टी में मिला जायगा। चीन्हा कहता है भया यश-कमाना है तो कमानो नहा तो कण पक्ष की भाँति अपयश रूप राहु के गाल में

त्याग है। किंतु अनादि मोह मिथ्यात्व के वश उसे ही अपना मान लिया था। उसने
 निमित्त से अय भी नाना पदार्थ विचार भाव परिणामों को अपना लिया। यही
 नीचे उक्त ही अपना मान लिया। इस ध्रुव अज्ञान का त्याग ही त्याग है। अब देखना
 है कि ये पर रूप राग-द्वेष मोह शोध मान माया साम-चेन्द्रिय नियम व्यापार
 किम प्रकार हमारे साथ चारों ओर में लिपटे हैं। इनके निवास में हम अपने का
 छिपाये हुए हैं। यम उम परते का उन्मात्न कर देना ही त्याग है। काम विकारों में
 अपने को हटाना। ज्ञान-ज्ञान चेतना रूप स्व स्वभाव में आना। अपने घर में आ
 गया तो पुराने का याग क्या करना वह तो पहचान ही त्यक्त हो गया। हे भाई
 क्या तो पुराने का याग क्या करना वह तो पहचान ही त्यक्त हो गया। हे भाई
 कत व्यक्त है समझा उपस्थित क्या है जानने का प्रयत्न करो निज का स्वरूप क्या
 है नाचा वग पर रूप समार शरीर भोगों का त्याग-निर्हार अनायास हो जायगा।
 बाई वह शोध का त्याग करो। आत्मा जीवात्मा प्रयत्न करता है बार बार प्रयत्न
 करता है पुन-पुन असफल हो जाता है। धृमनाता है, कहता है अरे मैं तो इस दुः
 का छाड़ना चाहता हूँ छूटता ही नहीं न जाने कहाँ से आ जाता है। अरे भैया इस
 छाड़न का प्रयास मत तो अच्छा है अपने स्वभाव में क्षमा में रहने का प्रयत्न करो
 शीघ्र संपत्ति मित्रगी और यह अनायास ही छूट जायगा आना स्वयं रुक जायेगा।
 जहाँ त्रिमयी पूछ नहा सम्मान नहीं वहाँ वह स्वयं आना बन्द कर देगा। यही हान
 है विकारों का परभावों का। सर्व अपने को सम्भासन का प्रयास करा।
 मानव विभाग का सर्वोत्तम उपाय है सहिष्णुता। पर के गुण धर्म स्वभाव
 अथ प्रभुता यश आदि का अनुकूल अपने को बना लेना सहिष्णुता है इसी प्रकार
 दूसरों का दुःख साथ सामानास आदि में दुःख गुण हर्ष विषाद की अनुभूति होना
 सहिष्णुता है। सहिष्णु व्यक्ति की दृष्टि विशाल और ज्ञान परिमार्जित होता है।
 स्व जीव पर अर्थात् अपने पराये का भ्रमभाव नहीं रहता। सारा ससार उसका
 और वह सब जगत् का ही होता है। उसकी दृष्टि में अच्छे-बुरे का भ्रमभाव नहीं
 रहता। समभाव आश्रय हो जाता है। तेरा मेरा का भाव समाप्त हो जाता है। तू
 तू मैं मैं अनर्थों की जड़ है। जहाँ मेरा-तेरा का भाव पदा हो जाता है वहाँ एक
 दूसरे का निरन्तर पराभव करने की प्रकृति आश्रय हो जाती है। जगत् पर भाव
 त्रिमयी प्रति है उसका साथ भी अमर प्रतिमासित हान सगता है। मिथ्या बुद्धि
 जगत् प्रति पर बना मनी है। तब जगत् प्रत्येक काय में प्रत्येक वचन में प्रत्येक
 विचार में विचार ही प्रतीत हान सगता है भल ही वे निजों साथ ही क्यों न रहें।
 जगत् अमर बनता मिथ्या भाव से अनुभास्य हो जाता है और उससे अशुभ —
 बन्धन होने लगता है। यह वाच का परिणाम आत्मा का घातक बन अध्यात्मिक
 बान्धन का अभिज्ञान बन जाता है। नैतिक पतन का कारण अनाचार दुराचार आदि
 अनाचार बुद्धिजन होने लगता है। हे भ्रातृमन ! यदि तू आत्म-यागेच्छ है तो सहिष्णु
 बन। समाधान बन। धैर्य से आगे बढ़। यही अनन्त का संपादन वाणी का

सार है। यही जन मिद्वान का अनौपव्य है। आत्म शान्ति का उपाय है। सख प्राप्त
का मयन साधन है।

हे भव्यात्मन् अपन कनय का विचार कर। तू कोन है ? क्या कर रहा है ?
आर कन्ता क्या चाहिए ? वास्तव में मनुष्य सर्वोपरि है और सबसे नीच भी है।
उच्च और नीच शुभाशुभ कम पर निर्भर करता है। शुभ क्रिया शुद्धाचरण करने से
मनुष्य महान बनता है और अशुभ क्रिया दुराचरण से मानव घणा का पात्र हा जाता
है। यही कारण शरीर के साथ है। यह अस्थियों का ढाँचा धून के गार से बिना
हुआ मज्जा स पतस्तर कर चमड़े से मड़ा गया है। स्पष्ट करने योग्य भी नहा है
क्याकि मन-भूत से व्याप्त है। फिर इनकी अपेक्षा क्या है ? इसलिए इसम चैनन
राजा निवास करता है चैनय ही में हू भेरा ही में हू और मुख में ही में हू। क्याकि
प्रत्यक्ष देया जाता है। मैं निकल जाना हू और यह (शरीर) पड़ा ही रह जाता
है। फिर विचारणीय यह है कि आखिर एक बार निवृत्त कर फिर इसम पलता
ही क्यों है ? इसका उत्तर इसी की शुभाशुभ क्रियाएँ हैं। अपनी करनी से यह स्वय
कन्ती बनता है और स्वय छूटता है—मुक्त होता है। शुभ कम से उच्चवर्ण का सुन्दर
सुडोन आकषक शरीर पाता है और अशुभ कम से भद्दा कुडोन निन्द्य शरीर भ
जा अन्वता है। यही विशेष पुण्याय—प्रणा के उपयोग से शुभाशुभ क्रियाओं से ऊपर
उठकर शुद्ध स्वभाव में आ जाता है और फिर शरीर रूपी कारागार से सदय के
लिए मुक्त हो जाता है। यही इसकी स्वाधीन अवस्था चिरस्थायी है। इसी का नाम
मुक्ति है। सांगश यह है कि स्वपर का भेद विज्ञान करना अति अनिवार्य है। इसका
परिज्ञान करने के लिए जिज्ञासु का भयन करना अभावश्यक है। इन्द्रिय भाग
विषयो में उन्नतता उह सवन करना उनमें आसक्ति रखना उनका बाह्य रूप पर
मुग्ध होना ससार का बड़ाना है। ससार की परम्परा स्वय जीव बनाना है और स्वय
ही कम करता है। इसा तत्त्व को सम्यक् प्रकार समझना मानवता का सार है। हे
आत्मन् तम शरीर पिञ्जे में जीव शुक्त कन्ती है। इस पन्थाओ समझाओ। शिखित
हुआ स्वय वधन मुक्त हो जायगा।

मानव जीवन में प्रकृति महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति का कण-कण मानव
जीवन का उन्नति की प्रेरणा का मुख्य केंद्र रहा है। सम्पूर्ण जीवन प्रकृति है। ससार
स्वभाविक है। अकृत्रिम है। स्वभाव निष्पन्न और साधवत है। किन्तु इसमें रहने
वाली वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। इसीलिए यह नाट्यशाला है। कम से सूत्रधार है।
जाव अभिनेता है। प्रकृति से प्रेरित कम से दग्ध मानव नाना स्वाय बनाना फिर
रहा है। एक ओर मुस्तुराता सुमन कहता है हर्षोत्फुल हा जीवन का आनन्द ले
तो तो डूमरी और मुझापी पत्तियों आँसू बहानी हुई प्रेरणा दे रही हैं हे मानव सृष्ट
करनी अवस्था योवन बिलर कर मिट्टी में मिला जायेगा। चाँ" कहता है भया यश
कमाना है तो कमाता नहीं तो कश्च पक्ष की भाँति अपयश रूप राहु के गान में

कतव्यनिष्ठता उपाय की कुञ्जी है। कतव्य परायणता जीवन का निषाड है। सुख वाक्य पालन में है। शांति कतव्य व जानने समझने में। कुछ करना है ? यत् विकल्प अशान्ति है। क्या किया जाय इसका समाधान ही शांति है। आत्मी निष्ठता बड़ा हो आप पृच्छिये ठीक हैं ? अर बाबा न ठीक का चिकाना न बड़ाक का इमी उग्रद धुन की अशान्ति बनो हुयी है। जब वह निर्धारित कर ले कि अमुक काम करना है तब संयत् कहता है अब शान्ति आई। वन्त परेशान हुआ। उगाहरण के निष्ठ क्या के माता पिताओं का सीजिय। यौवन प्राप्ति क्या का विवाह करने की चिन्ता म किन्ने पाकल हाते हैं। खाते-पीते सात जागते चलते फिरते एष ही बीमारी क्याग्नन करते हो। किन्ती अशान्ति इस समय हानी हांगा वो हो जान। दहेज की माँग चुकी तो बस समझो जान बची तब बहग कुछ शांति मिली किन्तु चार अशान्ति आ गई। फिर पर कज हो गया कुछ क्यादान व व्यापार म बमी रह गई तबकी घर ही म रह गई। पति कहना है बस पत्नी नहा सास को नहेन मत भासिक नहीं। समुर को खानिरदारी नापसद। अब क्या कर ? कोई करना है दावा करो कोई कन्या को असन योनि कहकर पुनर्विवाह का दावा करगना चाहता है तो कोई शिपिन बनाओ का नारा लगाता है तो कोई आर्थिका आनि बनान का। अनेका विकल्प छड हा गए। क्या शांति मिली नही। एक शांति के पीछ हज़ार अशान्तियों का ताता लगा रहना है। फिर वही प्रश्न शांति कसे मिल ? यही हानि व्यापार आनि का है। करना भी सब कुछ है फिर वहाँ सुख शांति है ? विरवनात्मक दृष्टिकोण से परीक्षण करने पर उत्तर होगा कि सासारिक सब और उसक पान पर प्राप्त शान्ति दोना ही राशवान है। फिर इनम सुख शान्ति भ्रान्ति हो तो हुई ?

मानव दुःखी क्यों ? इस प्रश्न पर विचार करने से विनिष्ठ होना है कि आमक्ति विषयाशक्ति दुःख का मूल कारण है। मानवोचित पदार्थों व अतिरिक्त वस्तुओं का भी भोग्यभोग करना आज का मानव चाहता है जबकि उचित पदार्थों की उपलब्धि भी उसे दुर्लभ है। दुर्लभता का कारण विपरीत या मिथ्या पुनर्भाव है। अरे भाई कोई ग्राम ला खाना चाहे और बीज हमारी का बाये तो क्या आम मिले। रम ही से रमण करना चाहे और पर रमणी पर कष्टि डाले तो क्या राशण की दशा नीमी नहीं होगी ? धन राज बभव चाहे और पर सम्पत्ति की हप्पन का प्रयत्न करे तो क्या कौरवों जैसी दुःखा हुए बिना रह सकती है कभी नहीं। नाना प्रकार वस्त्राभूषण चाहे और पराये बस पटी निजोरिया पर नज़र लगाय रहे तो जेप व दिवडे म ही बन् होकर उनका भात्र होगा। भात्रन तो चाह और उसकी सीमा न रस तो ? अजीण हुए बिना नहीं रह सकता। पट भरना ला तो है ? माँष मछली अण्ण आनि मे भरे तो तामसिक कृति भू परिरणाम शेर आनि खूबार पणुआ जैता ही आचरण होगा। भय और दम्ब का ही प्राग्भाव होगा। जीवन काष्ट है। एक ओर दानवता की मुई है और दूसरी ओर दक्क का काटा बीज म है मान क्या। अघर दृष्टि होगी चुम्बक की तरह उधर ही जीवन झुक जायेगा। सदाचार

आन म निह न यही मेरा कहा हो जाता है । मा इमी का उदय न कर । इमी की पान का प्रयत्न कर ।

प्राप्त होता है । एक पदार्थ करता है । दूसरा पद म आता है । तो तीसरा समाधान करता है । अब देखिये ये तीन भाग या चीजें हैं । जिस चीज म कार्य क्रम होता है तीसरा का रहना आवश्यक है । (कायागुक्ता) कारणगुक्ता कार्य होता है । कारण भी दो प्रकार हैं उत्पत्ति और निमित्त । यही मैं प्रथम विभाग पर विचार करता हूँ । पुनः पद म आता यह उत्पत्ति समझ लीजिये । जिसके पद म आता तात्पर्य प्रश्न उठता है । मैं के पद म किम निमित्त से ? यदि मयोज से । अब आप देखिये पुनः कर कार्य के सम्पन्न के किम उनके माना निता रूप कारण का साधन होता अनिवार्य है । मयाग अनिवार्य सभी चीजों पर निर्मित ही होती है । दो पदार्थों के बिना बिना संयोग शब्द की उत्पत्ति हो नहीं सकती । जब तक संयोग समाप्त न होगा तब तक शुद्ध द्रव्य की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती । मयोज के अभाव के लिए तदनुकूल उत्पत्ति करना होगा । यह भी एक निमित्त ही है । अर्थात् निमित्त को मिटाने और नैमित्तिक की सिद्धि के लिए भी अन्य निमित्त अपेक्षित है । यथा यम उत्पन्न करने के लिए बीज निमित्त है वगैरे उत्पत्ति पद-कार्य या नैमित्तिक अब यह नैमित्तिक निमित्त वन गया उग समझ अब हमारी दृष्टि गई पुनः का ओर । पुनः पुनः रूप कार्य भी कारण हो जाता है कम प्राप्ति के दोरान म । यह क्रम पद पान पर स्वयं दख गया । इसी प्रकार संसार के प्रत्येक क्षेत्र का क्रम है । अनुपपन्न कार्य करता है अशुभ शुभ और शुद्ध । अशुभ से हटने के लिए निमित्त मिलाना होगा । शुभ रूप नैमित्तिक की सिद्धि के लिए पुनः शुभ से शुद्ध म आने का निमित्त मिलाना । अब रही बात पहले निमित्त के हटाने की । सा उनके लिये कोई पुरुषार्थ आवश्यक नहीं । वृक्ष उगा बीज पर्याप्त स्वयं हट गई । पुनः के अनन्तर वृक्ष आने पर पुनः का पुष्प करने के लिए कोई पुरुषार्थ अपेक्षित नहीं है । इसी प्रकार शुभ म आन का जो तीव्र प्रयत्न करो अशुभ स्वयं बीजों दूर स्वयं हो जायेगा । शुद्ध की सिद्धि के उत्तम करो । पुरुषार्थ सही रहेगा और परिष्कृतता पायेगा शुभ जहाँ का तद्दी रह जायगा । पुरुषार्थ करना होगा निमित्त पटाने होगे । उसका साम ही निमित्त सही होना चाहिए । यदि निमित्त विवृत हुए और जो ताव परिश्रम किया तो भी सफलता नहीं मिल सकती । यह है उत्तम प्रयत्न । व्यवहार और निश्चय का यही सम्बन्ध है । व्यवहार से निश्चय की सिद्धि हो सकती है । यही अनेक न सिद्धान्त है । यही व्यापार प्रक्रिया है । यही जिनगीम कार्य माय जिनगीमी है ।

कई कहे मोन्द चलती है । क्यों ? बताया जा रही है इसलिए । चावक क्या है ? निमित्त । यदि चावक निमित्त न हो ता चरना का कार्य कैसे होगा ? चलने की शक्ति तो दिव्यमान भी फिर कहावत हुई । सोचा तो बात है चावक रूप कारण के न हान से । सब कारण अपेक्षित है । चलनी गाड़ी दूर गई सड़क पर ।

क्यों ? पट्टाल समाप्त हो गया इसलिए । कोई कहे पट्टोल रूप कारण स्वयं
 आ जायेगा और माटर चल देगी । यह अशुभव है । न तो मोटर ही पट्टाल के पास
 जा सकती और पट्टोल ही स्वयं गाड़ी में आकर घुम सकता है । फिर क्या होगा ?
 मनुष्य का पुरुषार्थ रूप निमित्त ही सबल सहायगी निमित्त ही उस धनाने में समर्थ
 है । वह निमित्त हम जुगना ही होगा । स्पष्ट हुआ कि उपादान रूप कारण को
 काय रूप या मिट्टि करने को हम मजबूर सही योग्य निमित्त साधन एकत्रित
 करना ही होगा । बिना निमित्त के नमिसिक् की सिद्धि नहीं हो सकती । मन्त्र
 निमित्त काय करता देखा जाता है । भगवान् अरहन्त देव जीवमुक्त हैं । चारों
 घातियाँ कमनष्ट हो चुक अन्त चतुष्टय प्रकट हो गये । अन्त शक्ति रहने हुए
 भी फिर क्या नहीं मिट्टालय में आ बिराजते ? उपादान तो पूर्ण परिपक्व है ।
 यही कारण सामन आता है कि शेष चार अघातियाँ कर्म रूप निमित्त राकने वाला
 है उस पुरुषार्थ द्वारा जब तक पृथक् नहीं किया जायगा तब तक मुक्ति की सिद्धि
 नहीं हो सकती । अतएव निमित्त भवत्त अपात प्रभुत्व उन्नी प्रकार दिखता है
 अने उपादान । आटा कमी का नाश कर आरमा मुक्त हो जाना है । साक्षात्भाग
 में पहुँच जाता है परन्तु उसमें ऊपर नहीं जाता क्या कि वहाँ से आग घम
 रूप निमित्त की अभाव है । निमित्त की शक्ति कम नहीं है । सनिमित्त हमारे
 सहायगी साधनों में जन सद्य है । जिस प्रकार पूजन विधान तीर्थयात्रा विवाह
 शादी आदि विज्ञान कार्यों में अपने भाई बंध कुटुम्बीजन पाम-पद्मीनी जाति
 बंध आदि सहायगी कारणा की समायन कर उस काय को विशेष सरलता साध
 घानी एवं सुन्दर रूप से सम्पान्ति कर लिया जाता है । उसी प्रकार मान्य रूप
 कार्य की सिद्धि के लिए भी हमें त्याग भम दम प्रवृत्त्या धारण चरित्र
 पावन आदि निमित्तों का सकलन पानन मथावन रक्षण आदि निमित्तों का एकत्रित
 करण करना परमावश्यक है । निमित्तों के जुगने से नमिसिक् की सिद्धि आमान
 हो जाती है । मान लिया जाय हमें आहार दान करना है । यदि हम आहार माभषी
 तयार न करें पात्र प्रवीक्षा न करें पत्ताहून कर नवघा भति आदि निमित्तों को
 नहीं जुटावें तो क्या आहार दान रूप किया हो सकती है ? कदापि नहीं । हमें
 भोग चाहिए । मोक्ष तो चाहें किन्तु मान्य सिद्धि की साधनभूत निमित्त रूप दीक्षा
 धारण न कर शुद्ध मन से आत्म चिन्ता करें । मन वचन काय का शुभरूप निर्मल
 पवित्र न बनाये शुद्ध का लक्ष्य न रखें तो क्या हमें मुक्ति रूप साध्य अनायास
 मिल सकता है ? कभी नहीं । अरे भाई मन्त्रन या भी चाहिए । चाहा चाहते
 रहा चाहते हुए उसका नाम रटते रहो पर आपको भी या मन्त्रन कभी नहीं प्राप्त
 हो सकता है । हाँ यदि तदनुकूल आप पुण्याथ करें निमित्त जुगनें तो अवश्य
 मिलेगा । दूध जमाओ दही होने पर उसे मथानी के सहारे मथो । मथने पर
 ऊपर तरते हुए घी को भी पान के लिए हाथ खलाकर उसे निकालना लपाना
 आदि क्रिया रूप पुरुषार्थ निमित्त मिलायगा सभी उसे भी प्राप्त होगा और पुनः

भी परिग्रह महान कष्टदायी है। यह परिग्रह शुभ राग रूप भी परम मोक्ष अवस्था का बाधक है। प्रथम अशुभ परिग्रह का परिहार करो शुभ म आओ शुभ की वृद्धि करो इतना बतलाओ कि वह स्वयं परिपक्व हो जाय इतना परिपक्व हो कि स्वयं मुक्ति रूप रस टपकने लग। बस फिर क्या है पूरा रस चुआ नहीं कि छिलका गुस्ती अपन आप ही प्रयत्न हो जायेंगी। तथा स्व तत्त्व मात्र रह जायेगा। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि मार्ग शुभ त्याग नहीं जाना अपितु स्वयं ही छूट जायेगा। अस्तु प्रयास सानिध्य सम्पत्तव्य युक्त पुण्य को पकाने का करना है न कि पुण्य को छाड़ने का। अरे भाइ अपना यथायत्न सफल करो।

मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है। जन सिद्धान्त मानव को सजी पञ्चद्रिय मानता है। सजी का अर्थ ज्ञान है। ज्ञान का तात्पर्य विवेक हेतुोपादेय का ज्ञान। कर्तव्य का ज्ञान। वास्तव में मनुष्य भव ही एकमात्र ऐसा है कि जिसमें आत्म स्वरूप की पहिचान हो सकती है। आत्मा स्वयं ज्ञान रूप है। ज्ञान आत्मा है और आत्मा ज्ञान है। यद्यपि यह आत्म तत्त्व जीवमात्र में विद्यमान है। जीव के अभाव में शरीर मिट्टी है बिना पुतला इ मह प्रत्यक्ष है। बुद्धि मस्तिष्क की उपज है। बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज हाता चला आ रहा है और आगे भी अनन्त भविष्य तक होता ही रहेगा। इससे स्पष्ट है कि बुद्धिजीवी होने पर भी बुद्धि रूप मानव नहीं है। बुद्धि एक पर्याय है। ज्ञान गुण का विकार है। विकार बुद्धि क हटने पर मम्यक ज्ञान (बुद्धि मस्तिष्क) बुद्धि का निचोड़ है। बुद्धि मस्तिष्क की उपज है। मस्तिष्क भूमि और बुद्धि बाये जाने वाला है बीज। ज्ञान उसका फल है। समार में प्रत्येक प्राणी जनता है और यथावत् यथाशक्ति मानता भी है। बस यही मानवता है। बह्म का आभेदाभाव है कि वितर्कणी भूमि निष्कल विघ्न बाधा रहित है तो बुद्धि रूपी पीड़ा बसा ही होगी। जिसके गर्भ आते ही सबत्र सुख और शान्ति स्थापित हो जाती है। यह रत्नाकर है स्रजाची है धर्म का। यदि हम मधुर सुन्दर सुधाल धर्मात्मा समाज सेवा भाव से युक्त रहना है तो सर्वप्रथम हम अपने मन मानस की स्वच्छता कर लेनी चाहिए। मानसिक कुराफात ही ता नाना कष्टों का कारण है। मानसिक विवृति के रहने से सुख शान्ति स्वप्नवत है। मन की प्रणय जटिन है। यह जटिलता उत्तरातर उत्तरी जाती है। इस उत्तमन में कौन कर मानव विपत्तियों का ज्ञान मिटाना है और स्वयं अपने में अपने आप ही उत्तमता ही रहना है। यही मसार की परिपक्वता है। ससार बढ़ता है। जितना बढ़ता है वही मूल कारण है। मूल को काट दिया तो आप बुद्धि एक जायगी। बढ़ती बन्द हो जायगी हैं। हे भगवात्मन् तू अपने मूल हेतु का सत्य और उत्तम निकालने का प्रयत्न कर।

अमनोप क्या है ? वनमान स्थिति का अपूर्ण समझना ही अमनोप है। यह स्थिति चाहे धर्म के सम्बन्ध में हो शुभ हो धन के विषय में हो या तन मन आदि सम्बन्धी हो। इस अपूर्णता का विघटन मात्र कम सिद्धान्त कर सकता है साव द्य पुण्यस्य म सत्त्वोपना। शुभाशुभ कर्मानुसार भागोपयोग की सामग्री उपलब्ध या

अनुपपन्न्य हानी है और उस प्राण वस्तु की वृद्धि या हानि हमारे सम्मत् पुण्याद पर निर्भर करती है। जैसा हमारा परिश्रम होगा वसा ही फल प्राण होगा। ही यदि दुःख तो प्राण्य वस्तु भी नष्ट हो जाती है और पुण्यादय है तो अन्त थम भी विनिष्फल प्रदान कर सकता है। कम मिद्वान का सही रूप ज्ञात कर मातव ईश्वरी को जवाला से बच सकता है। यही नहीं अपितु वह अपन का प्रेम मित्रता स्नेह कथा और ममता से भी ऊपर उठा सकता है। गमार् और गमारातीन अवस्था को समझ कर अपना माग प्रशान्त बना सकता है। हम स्वयं को यथायथा से अधिक गुणो धनी धनी मान बैठते हैं और अन्त का जीवित्य से कम। वस यही हमारे दुःख का कारण का और दुःखति का कारण हो जाता है। विपमना कष्टनायी है किन्तु ही जिस क्षण में जहाँ नव है वहाँ तक विपमना मानना काय कारी भी है। पयाय पर्याया को प्रशान्ति किय बिना उड़ा रूनी। नारी उस पयाय में नर नहीं बन सकती, नर नारी हा नहीं सकता। उमी प्रसार नीव कुलोत्पन्न उच्च कुलीन नहीं हो सकता और ऊँच नी नहीं हो सकता। जन्मजान कम मिद्वान तदभव पर्याय में अकटय है। ही पुण्याद करना सवन आवश्यक है यथायथा यथाशक्ति यथानुकूल। विनाश करन का सबसे अधिकार है मयानानुसार। पशु भी दव हो सकता है दव पशु भी। मानव अनुरा हो सकता है भगवान भी मारी पूय हो सकती है नाररी कूकरी भी। य सब पर्याय कम सिद्धान्तानुसार ही चलती है। नारी भी भगवान हो सकती है। वतमान रूप का विनाश कर आण तन्नुकूल पुरुष पर्याय उत्तम सदन उत्तम कुल वत पर्याय पाकर। उमम से पुण्याद अपाति है। रमाग समय तपश्चरण जो द्यात। स्वयं ऊपर उठा है वही हमारे को उठा सकता है या उठाने में सन्नेने बन सकता है।

दया स्वयं स्वच्छ है तो हमारे से दान लियाकर उत मिटाने का प्रयत्न कर सकता है। अथवा स्वयं ही बाला मैला कुचला है तो पर का दोष दिन प्रहार लिया सकता है? नहीं लिखना सकता। अपने को बनाने का प्रयत्न करो। स्वयं स्वच्छ बना। बनान का मतलब दाढ़ी मूछ बनाना नहीं पर महान दूधान बनाना नया। भात प्राणिया को उतू बनाना नहा किमी को निधन दुमी रोमी पाकिन बनाना नया। और न अपने को ही भोगी विषामी बनाता है। अंगु स्वयं का रमाग बनाना मयमी बनाना मन्तारी बनाना नैष्ठिक बनाना सिष्टाकारी बनाना मन्त्रकारी बनाना ध्यानी धैनी तासवी साधक बनाना और वह बनान लिख बनन क ब द कुल भा बनना बाकी ही न रहे आवे। यह है सचको कथा का पुण्याद का कथा। य सब सुम स्वयं बना। पर से बनान की कदू है कदू का। कदू कदू मुग्ध मन्त्र बना मैत्र। मुग्धारा नवगा बनान उम वा बना स्वयं मुग्ध कदू का दैव मुग्धने नाम आवेन सुम ही बन आवेन एव

समान एक रूपा तो भी सब अपना अपना अस्तित्व व्यक्तित्व लिहाय सबका अपना अपना स्वरूप होगा चिन्तन घन । यही तो निजाने हागा । ह आत्मन् अन्वर्तक नष्ट को एक साथ सम्पुन करो । अपनी शक्ति अपने में लगाओ । अपने प्रयाग अपने ही पर करो । अपना बना तो जग बनता रहेगा । अपने सुधार म सबका सुधार है इसे समझा ।

ज्योति पुज भगवान महावीर का अमर जीवन आज स प्रारम्भ हुआ । तो क्या यह जिन सबका सब एक समान एक ही वातावरण हो सकता है ? नहीं यह हमारे जीवन के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है । मानव कमजोरियाँ का पुन है । कमजोरियाँ हर एक के जीवन में आती हैं । आती नहीं बल्कि रहती हैं उमम समाहित हुई हैं । वह स्वय ही उनसे अनभिज्ञ है । यह अवोधता जन्मजात होने में इतनी गहरी होती है कि वह धेष्टा करन पर भी बार-बार उस समझन में अमकन हो जाता है । फलत जीवन पगडड़ी उसी प्रकार मोड़ लेती है जैसे पहाड़ी नदी । बल रहित नदी यत्र तत्र भटक जाती है । वही भी उमका ठिकाना या मुनिविषय माग नहीं रहता । यह अज्ञान भी अज्ञान का साथी है । मोह का बच्चा है । निम्मात्व के कारण मोह मदिरा का पान कर अज्ञानी मानव अहर्निश विपरीत क्रिया में फनकर दुःख उठा रहा है । मोह से पर में निजत्व बुद्धि मान बड़ा है । यही दुःख का भूत है । पर वस्तु परिग्रह है । परिग्रह नरक का कारण है । यदि हम अत्यासक्ति हुई तो निगो का द्वार है । भयकर विपत्ति का कारण है । कम यही तो समार परिभ्रमण का चक्र है । राज जिन इसमें उलझा जीव धूमता ही रहता है । उसे स्थिरता कहाँ ? हे भ्रम्यात्मन् अपने स्वरूप को समझन की चष्टा करा । आपे में आओ । निज में निज की खोज करो । पर स्वय छ जायेगा । पर का सम्बन्ध हुआ कि स्व मिला । यही स्व सवित्ति है । यही स्वगान है । यही आत्मानुभव है । यही निजानुभव है । जहाँ धमा भाव आया कि क्रोध विभाव वसे ही गायब हो जाता है जैसे वायु वेग से मेघ समूह । मादव से मान आजव से भाया और मानोप से सोम उसी प्रकार छिन जान हैं जैसे रवि किरणों से उलूक । मच्छरों की सन-सन तभी तक गूँजती है जब तक प्रभात का प्रकाश न आवे । उसी प्रकार रग-रूप तभी तक भनभनाते हैं साम्य भाव की निर्मलता-स्वच्छता जब तक नहीं आती । अपनी सफाई करो ।

हे भय भगवान बनता है तो भगवान के पप पर चलो । उसी का अनुकरण करा । प्रभु कौन है । हमारे जैसा ही मानव । हाँ उसने मानवता से ऊपर उठकर अपनी शक्तियों का विकास कर लिया है । उसे पाने को लघुना का सहारा ला । विनय को धारण करो । शीत पालन करो । शील टण्डी नहीं है । चारित्र को सर करन की बपारी नहीं है । मयम मात्र शरीर की ब दता नहीं है । गान मात्र शम्भरा पर नाम छानना नहीं है । विद्या काई साहित्यिकों का डेर लगाना नहीं है । बुद्धि का अमिताय मुनर रूखनी को चपुन म फना उसका जीवन घन शीनरत्न हुआ

तन रूप नहीं और तन आत्मा बतन रूप नहीं है। क्योंकि प्रयत्न देया जाता है वि-
 शरीर निष्क्रिय पड़ा रह जाना है और चेतन रूप आत्मा घृष्य होकर निवृत्त जाता है।
 विचार करो और आत्मा और कर्म अति निष्ठ हैं अनादिकाल से मिले हुए हैं और नीर
 बन् एकाकार है। किन्तु न तो आत्मा के एक भी परमाणु अनात्मा जब कभी रूप नहीं हो
 सकता न हुआ और न होगा उसी प्रकार कर्म आत्मा चेतन रूप न हुआ न होता है और
 न होगा। अब सुनिर्णीत हो गया कि प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने रूप है अपना ही बाय
 है अपना ही कर्म है अपना न कर्ता है न कर्म है। सब अपन-अपन में स्वतन्त्र हैं।
 कोई भी शून्य अर्थ का कर्ता नहीं है और कोई भी हमारा कर्ता नहीं है। हे आत्मन्
 स्वयं स्वतन्त्र है एक है अतः स्वरूप है। पर रूप एक परमाणु मात्र भी तेरा
 नहीं और तब एक प्रदेश मात्र भी पर का नहीं हो सकता। फिर विचार करो भस्मा
 पर का कर्ता और भोक्ता आत्मा किस प्रकार हो सकता है? आत्मा आत्म भाव का
 ही कर्ता है। शुद्ध निश्चय तब से आत्म भाव का कर्ता भोक्ता आत्मा है और परभाव
 का कर्ता भोक्ता पर ही है। यही शुद्ध निश्चय है। अब रह गया ब्रह्महार। व्यवहार
 से आत्मा भूत है। कर्मबद्ध है। इसी से यह अशुद्ध है। अशुद्ध के समस्त नाते अशुद्ध
 ही होंगे अस्तु जितने भी बन्तुत्व भाक्तत्व आदि भाग्य हैं वे सब विभाव हैं। विभाव
 स्वभाव नहीं हो सकते। स्वभाव विभाव होना असम्भव है। हे माई स्वभाव में
 भावा। विभावों में भटकते अनादिकाल हो गया। तू अब राक्षस। भटकना भुरा
 है। अज्ञानवश भटकना या सा भटक लिया। अब मन भ्रम। भ्रम या घृणा। अब
 रम का नाम हुआ। भ्रम ही मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के कारण जीव दुःख उगता
 गया है। आगे भी उठाना रहेगा। तेरा स्वरूप सम्भाल। तू अपना कर्ता स्वयं आप
 । चाहे स्वभाव कर चाहे विभाव। स्वभाव रूप परिणामन करोगे स्वभाव ही
 गने को मिलेगा। विभाव रूप परिणाम तो विभाव के ही भोक्ता होबोगे। स्वभाव
 जत्व को पाना है और विभाव निज को खोना है। क्या कोई विवेकी अपनी वस्तु
 खाना चाहेगा? यदि सो गई तो क्या उसे खोजने का प्रयत्न नहीं करेगा। अपनी
 [कितने प्रिय नहीं? सब अपनी चीज पाना रखना बढ़ाना और रतित रखना
 न हैं। हे आनिन् तुम अपने स्वभाव को खोज चुके हो वहीं कभी है तो उसकी
 करो। उसी में दत्त वित्त हो जाओ। जहाँ पूर्णता होगी वहीं शुद्ध स्वभाव में
 ये। बस यही भोक्तृ है। तुम अपने में शुद्ध पर से नितित्वा हो जाओगे और
 का मित्र कम मो कर्म मात्र कर्म आदि विभाव अपने स्वभाव में आ जायेंगे।
 ने तुम्हारा कोई सम्बन्ध होगा और न उनका ही तुमसे कोई भी किसी प्रकार
 बंध रहेगा। दही चीनी मिली है सो गिरिनी है। दही दही रूप में हो जाये,
 तीनी में तो गिरिनी नामक औपाधिक वस्तु समाप्त हो जायेगी। शुद्धाशुद्ध
 आत्मा की दो अवस्थाएँ हैं। शुद्ध अपनी निज स्वरूप पर निरपेक्ष स्वतन्त्र है इसने
 कभी पर सयोग नहीं होगा एक बार प्राप्ति होने पर। सयोग रूप अशुद्धावस्था है
 को परापेक्ष है। जैसी-जैसी पर की अपेक्षा होती है उसी तरह माना रूपता होती

मलवा से घरे अपने मकान को हस्तगत करलो। फिर बूझा झाड़ते रहता। अस्तु हे भग्यात्मन् तू सम्पत्त्व रूपी महल को प्रथम खरीद से। अपना बख्श कर। मिथ्यात्व मोह का मूलोच्छेत्कर।

एक एक क्षण पर दृष्टि रखलो। विचारा कर्म आगे गया या पीछे। बूद-बूद से घड़ा भर जाता है। अन्तर अन्तर से विग्न हो जाता है। पार्श्व पार्श्व से घनाइय हो जाता है। एक एक रत्ती से पहाड़ बन जाता है। एक-एक गुण मण से महान बन जाता है और एक एक वस्तु विषय के त्याग से सब मूल बट जाता है। एक एक कर्म के परिहार से आत्म शुद्ध होता है। विकारों से रहित होकर यही परमात्मा कहलाता है। प्रत्येक क्षण को देखो। इसका अभिप्राय यह नहीं कि कात द्रव्य का परमाणुओं को दलने के लिए दुर्बल लगाकर बठ जाओ। यह अय नहा कि उनका लक्षण निर्धारित करो। फिर क्या है? उस क्षण में तुमने क्या किया? उसका प्रतिफल क्या हुआ? विकास या हानि। हुआ तो अवश्य ही कुछ न कुछ होगा। किन्तु विकास हुआ तो किसका? राग या विराग का और हास हुआ तो किसका स्वभाव का या विभाव का। दोनो ही विराधी हैं। दोनो ही सहोदर हैं। दोनो का आश्रय एक है। दोनो ही दुम्हारे आश्रित हैं। यद्यपि एक दूसरे में घुस पड़े हैं। बूना हल्दी का संयोग किया तो लाल रंग बन गया। एक दूसरे में घुस पड़े हैं। बूना हल्दी का संयोग किया तो लाल रंग बन गया। स्वभाव और विभाव का दोनो का मिले प्रेम किया गल लगे। गलवाह पड़त हो दोनो का बागा उत्तर गया पानी ढलते ही मोती की चमक को भाति। दोनो विद्वक् हो गये विकारी। इस विकार को समझो। समझकर विश्वास करा और जुट जाओ पुन पृथक् कर शुद्ध स्वभाव में लाने को बस यही प्रतिक्षण को दलन समालन का है।

एक प्रश्न उठता है। मानव कूर क्या हो जाता है? विचार करने पर दो कारण समझ में आत हैं। प्रथमतः पूर्व भव के मस्कार दूसरा वर्तमान भव में नुगस कर्म। दोनो का अन्दर अगान छिपा है। दोना में अहंकार पुन सिद्धाई देता है। दाना में अहंकार गुंजता है। अहंकारी अपने को बड़ा समझता है जिस समय वह अपने अज्ञानभार से दबाने लगता है अन्तराधी को जम दता है। अन्तराधी होत ही निरपराध की ओर उसकी दृष्टि जाती है। साथ ही निरपराध से उत्पन्न बराति उसके हृदय से टकराती है। अब उसका अपराध उसके तिरस्कार और माग हाति का साथ मिश्रित हो जाता है। साथ ही साथ अहंकार भी उभर पड़ता है इस घमण्ड का पूर में वह गले तक डूब जाता है और अपने समस्त कुकर्मों के भार का भा सादे रह जाता है। अब यही से उसकी करना निकलना प्रारम्भ होती है। वह अपने प्रत्येक काय को

अपन ही दृष्टिकोण से अपन बहलपन के साथ ओझने लगता है और दूसरे के सदगुणों पर परदा डालने लगता है। इसी मनावृत्ति की प्रक्रिया नृनसना का रूप धारण कर लेती है। वह कुबर्षों को ही सत्कर्म कहता है सरस्वती से अरुनी रणा करता है सत् व्यापारों की वृद्धि करता है शुभ कार्यों का गना योग्यता है। कबर्षी मित्र और सत्कर्मों शत्रु बन जाते हैं। दुजना का गिरोह परिवार हो जाता है सनों का सद्गुण इनका होना है शिकार। य शिकारी अपने दुष्टरूप में निष्णात हो जाते हैं। इसी सम्पूर्ण गतिविधि मात्र पर पोछा में ही इतत बाध होने लगती है। यह प्रक्रिया इन गहरी हो जाती है कि माना स्वाभाविक जन्मजात अनादि कातीन हो। उनरोत सत्कारा की वृद्धि से कुमयति बढ़कर भयङ्कर रूप धारण कर लेती है। भाजानिन् तृप्त रहस्य को समझ। अहंकार का त्याग कर। अपने गुरुजनो का विनय कर। विनय पाप रूप खाटे मस्कार अकुरा का धुन चुन कर निवास केकेगी नम्रता में शुभ भाव और शुभ भावा में शुद्ध भावा क अकुर निवर्तत है यह मुनिश्चिन समझ।

हे भव्यात्तम ! गुरु भक्ति सतार तारक है। चारित्र की प्राप्ति वृद्धि और स्थिति गुरु भक्ति से ही हो सकती है। गुरु स्वयं चारित्र हैं। वे चारित्र पालन करते हैं उनका जीवन चरित्र की भाँति हमारे जीवन को प्रभावित करता है। उनका प्रभाव छाप अमिट पड़ता है। क्योंकि उसका चारित्र पुस्तकीय नहीं होता बल्कि व्यवहृत होता है। प्रत्यक्ष त्रियाएँ जीवन को विषय अनुप्राणित करती हैं और तत्काल प्रभावित करती हैं। सच्च राग द्वेषादि विकार शून्य होते हैं। वितराग भाव के रूप में होते हैं। विषय ब्यापों से अछूत रहते हैं। ज्ञान ध्यान तप में लीन होते हैं। यह कारण है कि गुरुमार्गों उनका जीवन परीक्षण में निष्णात होता हुआ उन सदगुणों का आधार बनता जाता है। उन्हें अपने जीवन में उतारना हुआ आत्मज्ञान बनता जाता है। वास्तविक तप साक्षात् सत्तिका जीवन् तपोभूति हो जाता है वह तप का प्रतिभा समय को आधारशिला और वैराग्य का प्रतिबिम्ब हो जाता है। पत्र प्रत्यक्ष अभिचार्या विषय अनुपायी स्वयमेव अनायास योग्य तद्गुण सम्पन्न हो जाते हैं। यही है सच्च गुरु का सच्चा जीवन सच्चे गुरु का सही प्रार्थना सरय गुरु का सत्य प्रभाव। यह प्रभाव आत्म या आत्मा की छाप अमिट विवासावच्छिन्न होती है। गुरु की उपस्थिति में तो मार्गगत होता ही है उनकी अनुपस्थिति में भी वे अपने अमर गुणों इतत व्यापारा निरंतर माग प्रगटन करते रहते हैं। श्री १०८ ती श्री गिरोमणा आ र बा ब बा बू श्री ताराधन आचार्य महावीर जीनि का श्री का पञ्चन करिब निर्मल आरन बा आ उनके पादिक शरीर से बहिष्पत होकर निम्न जल में व्याप्त हो भाव श्री प्रतिबन्धित हो रहा है। तीर्थ क्षत्री क कल-जल में स्थिती उनकी अन्तर्मात्र बाणी अन्तर्मात्र की सावधान कर रही है। छन्द है ऐसी जल-मात्र। चरित्र बापों की यह भागी अपना जीवना धार बनना अति पार है।

सत्योद्घाटन पर य " कोई बड़े वि अन्त बचन अन्त छरी या अन्त निद्रान्त
 व प्रति अगहिनपुत्रा है अपवा उनका निराकार करना है तो यह अन्त मरत नहीं
 होगा। यह तो वय अगमोह या मोक्षिक यन्त्रिणा है। वैदिक आचार्यों को इति
 कर हम जन मेव बनना चाहता यह दुवारी पुत्र है। मुद्रावरण का रक्षण क्या
 कभी भी मानवता व प्रति पुत्रा हो सकता है। अन्तर्गत नहीं। हम अन्त उन्मय
 मन्त्रा का पोषण व गिर उन्मय व वि व द्वारा "ता मुद्र अन्तर्गत छरण वान
 है ता हमका अमिन्मय यह नहीं है कि हम निम्न धनी के अन्तिमों को पुत्रा को
 हन्ति मे दयते हैं उनके अन्त अन्तारकार अन्तारकार करने हैं। हा यदि कोई निम्न
 जाति का व्यक्ति रक्षावरण म है दग्ध है पुत्रा मगा है तो हमका वयन है दवा
 "कि उन्मय दुःख निवारण करने म गहायक बनें। उन्मय अन्तर्गत सद्गुण अन्तर्गत कर
 । मधुर बापी प्रान्त कर उन्मय अन्तर्गत हैं। वह यही तो चाहता ही है। पुत्रा
 पेट भर दन् नगा है वयन दे दा । वयन अन्तर्गत विचार विचारन मे उन्मय
 पुत्र मान्य हापी ? क्या उन्मय अन्तर्गत सेन ता वह पुत्रा होगा ? क्या उन्मय अन्तर्गत
 विवाहाति करन म उन्मय प्रमत्ता हापी ? य गभी प्रमत्त बेगुने है। उन्मय तो अन्तर्गत
 वयन चाहिए। विल मय कि अन्त उन्मय अन्तर्गत पुत्रा हो गई। एक वयन मोक्ष है पुत्रा
 प्यामा नंगा आरम्य भोजन अन्तर्गत वयन की मायना करता है। किन्तु अन्तर्गत करने
 साथ त्रिनामो त्रिनामो या पन्नामा उन्मय यह मुद्रावरण कभी नहीं करता। फिर
 का आवश्यक्ता है हम उन्मय पुत्रों और उन्मय अन्तर्गत म और पुत्राएँ यह अन्तर्गत है।
 कोई भी पन्ना कोई भी विषय और कोई भी व्यक्ति हमका अन्तर्गत कर अन्तर्गत
 काय नहीं करा सकता और न हम ही अन्तर्गत अन्तर्गत बिना कर ही मयन है फिर
 मया आर्षों म पुत्र का ओष्ठ माय भरे। क्या नहीं अन्तर्गत अन्तर्गत उन्मय अन्तर्गत
 उन्मय अन्तर्गत म प्रवृत्त हा ?

अन्तर्गत नीति है नीच सगति व बुद्धि का त्याग हाता है मध्यम मे मध्यम
 बुद्धि होती है और उन्मय अन्तर्गत म उन्मय बुद्धि होती है। यह पुत्र हमारे आरम्य
 विचारन की कञ्जा है। ह आरम्य अन्तर्गत अन्तर्गत उन्मय का सगति मिता वयन और
 हन्म का तोष कर अन्तर्गत कर। अन्तर्गत पन्ना में देर न मयगी।

हे मन्त्रावरण तु अन्तर्गत वन। वह विष्ट का त्याग कर। बाह्य पन्नाओं म
 तुम्हारा अन्तर्गत मा नहीं है। तुम भी अन्तर्गत व कछ नहीं हो। किन्तु अन्तर्गत सद्गुण
 बाह्य रूप को ही दवा बाह्य पन्नाओं का ही जाना और उन्मय बाह्य अन्तर्गतों म
 रमण करना रहा। यही कारण है कि उन पर अन्तर्गत के साथ ही तु अन्तर्गत मागा
 जाइता आया उन्हें ही अन्तर्गत माना उनमें ही श्रुति की, उनका सम्मय जोड़-जाड़
 कर अन्तर्गत की भी उन्मय का मान लिया। फलत निम्न स्वयं का मान ही नहीं रहा।
 अन्तर्गत होकर अन्तर्गत का स्वांग बनाय हुआ फिर रहा है। हे आरम्य जो हुआ
 मो हा पुत्रा किन्तु अब तो अन्तर्गत हो। इन पर अन्तर्गत म अन्तर्गत हुए अन्तर्गत दुःख
 सद्गुण विय कर रहा है और यदि इनसे माता नहीं ताका तो आगे भी दुःखी होता

निकन सकता है। धर्म से काम लो। उपमग परीपहो से विचलित नहीं होना। अपने निश्चय को अटल बनाय रहो विघ्न बाधाएँ आपने सकल को मिटाने के प्रयत्न में स्वयं ही मिट जायेंगी। तुम्हारा स्वरूप द्यपण बत स्वाच्छ हो जायगा।

हे आत्मन् विचार करो। अग्नि सवत्र वर्जयेत्। तुम पर मे जितनी आशक्ति कराने उतने ही माया जाल में फसकर ब्रष्ट उठाओग। आज तक जो भी आयत्तियाँ सही हैं उनका मूल अज्ञान है अज्ञान मोह और प्रमाद का जहाँ त्रियोग मिथुन हुआ कि बस सत्ता बढ़ा। मित्र तत् सटाई तीनों का योग मिला कि रोग बढ़ा। य तीना शरीर के रोगों की बढ़ती का कारण है और तीनों ही मसार के कारण है। इसा प्रकार सत्ता के नाश करने के भी तीन ही उपाय हैं—१ सम्पत्ति २ सम्पत्ति और ३ सम्पत्ति चारित्र्य। इन तीनों का योग ही मुक्ति का कारण है। मयत्र तीन का योग ही काय की सिद्धि करने वाला है। तीन ही बंधन का कारण हैं और तीन ही मुक्ति के कारण हैं। तू तीनों से बड़ा है और तीनों ही में सुना है। हे भाई तीना का प्रयत्न कर। प्रथम सम्पत्ति का धारण कर सम्पत्ति और सम्पत्ति चारित्र्य का प्राप्ति कर बंधन का छान करो। अनात्मिकालीन परत प्रता का नाश करो। स्वान्त्य स्वतन्त्रता अपन आधीन होना। अत्मा स्वभाव में आना। निज भाव में रमण करा। अपने में रह रहा ही स्वतन्त्र है। निज स्वभाव में तीन हो जाया। अपने में स्वसर्वेदन करना स्वाधुभूति ही निजान है। निजान में तीन होना ही स्व स्वस्थानुभूति है। इसी का अनुभव करो।

हे आत्मन् क्षण क्षण की पहिचान कर। प्रविक्षण तुम्हारा जीवन नवीन नवीन हो रहा है। बन्धनी बहार का समय। क्यों बदल रहा है। बदलता बन्धन तुम कहाँ हो? तुम में भी कुछ परिवर्तन हो रहा है या नहीं? यदि हाँ रहा है तो क्या वह यथाय है अथवा पर निमित्तक मात्र भ्रम जाल। यदि भ्रम है तो क्यों तुम उत्तम रूप विचार करते हैं? रागी द्वयो होने का क्या मतनव? अल रीति से करना? सुखी सुखी क्यों होना? अपना-पराया क्या है? मरा तरा क्या है? माह ममता क्यों है? क्या बसता है? क्यों आकर्षण है? क्या विवर्ण है? सकल विकल्प क्यों? तरा स्वरूप इन सबसे पारा है। तू शापक है दर्शक है। बस जाना हँप्ता रह। जा हाना है होने दे। उसमें तटस्थ हो। आपा स्वयं मिल जावेगा।

हे साधो! मनोरोध आत्म साधना का उत्तम उपाय है। मन केन्द्र है। अग्नि रूपी विजयिषा का तार मन में केन्द्रित है। सबका संचालन यहीं से होता है। यह शान्त हुआ कि सब सुप्त रह जायेंगी। पावर हाऊस में स करंट चालू हुआ तो सब प्रकाश है और पावर हाऊस बंद हुआ तो सब अंधकार। जिनका ही स्विच बंद सगल रहो चालू नहीं हा सकना यही दशा है मन राजा और इन्द्रिय प्रजा की। यथा राजा तथा प्रजा। मन पवित्र है निर्मल है शम है तो सभी इन्द्रिय सागर भी उद्गुल्ल उत्तम ही होंगे और यदि मन असत्य है विषय-वासनाओं से व्याप्त है विकारों से अनुरजित है तो समस्त इन्द्रियाँ तन्मूढ सम्पत्ति विषयसक्त ध्वनि

निकल सकता है। धर्म से काम लो। उपसर्ग परीपहों से विचलित नही होना। अपने निश्चय को अटल बनाये रहो बिना बाधिए, आपके सत्त्व को मिटाने के प्रयत्न में व क्षय ही मिट जायेंगे। तुम्हारा स्वरूप दण वत स्वच्छ हो जायगा।

हे आत्मन् विचार करो। अति सबन्न वर्जयत। तुम पर मैं जितनी आशक्ति कराने उतन हा माया ज्ञान में फसकर बण्ट उठाया। आज तक जो भी आपत्तियाँ सही हैं उनका मूल अज्ञान है अज्ञान मोह और प्रमाद का जही नियोग मिथ्यता हुआ कि बस गलत बड़ा। मित तल सदाई तीनों का योग मिला कि रोष बड़ा। ये तीनों शरीर के रागों की बढ़ती का कारण है और तीनों ही सत्कार व कारण है। इसा प्रकार सत्कार के नाश करने का भी तीन ही उपाय हैं—१ सम्मन्धान २ सम्मन्धान और ३ सम्मन्ध चारित्र्य। इन तीनों का योग ही मुक्ति का कारण है। सबन्न तीन का योग हा कार्य की सिद्धि करने वाला है। तीन ही बन्धन के कारण हैं और तीन ही मुक्ति के कारण हैं। नू तीनों से बड़ा है और तीनों ही में सुता है। हे भाई तीनों का प्रयत्न कर। प्रथम सम्मन्ध व को धारण कर सम्मन्धान और सम्मन्ध चारित्र्य का प्राप्त कर बन्धन का छान करो। अनात्मीकालीन परत प्रता का नाश करो। स्वानन्द स्वतन्त्रता ज्ञान आधीन होना। अत्मा स्वभाव में जाना। निज भाव में रमण करा। अपने में रन रहना ही स्वतन्त्र है। निज स्वभाव में लीन हा जाओ। अपने में स्वसर्वदत्त बनना स्वानुभूति ही निजान है। निजान में तीन हाना ही स्व स्वस्वानुभूति है। इसी का अनुभव करो।

हे आत्मन् दण दण की पहिचान कर। प्रतिक्षण तुम्हारा जीवन नवीन नवान हो रहा है। बन्धनो बहार को समझा। क्यों बदल रहा है। बन्धने ता बन्धन तुम कहाँ हा? तुम में भी कुछ परिवर्तन हा रहा है या नहीं? यदि हा रहा है तो क्या वह सकारण है अथवा पर निमित्तक मात्र भ्रम जाल। यदि भ्रम है तो क्यों तुम उत्तम हय विचार करने हैं? रागी इ प्यो होने का क्या मतलब? आज रोगियों करना? सुखी सुखी क्यों होना? अपना-पराया क्या है? मेरा-तारा क्या है? मेह ममता क्यों है? क्यों बामता है? क्यों अकारण है? क्या विवर्ण है? मकल्य विवर्ण क्या? तरा स्वकर इन सबमें ग्यारा है। तु जागरूक है दगक है। यस झन्डा हट्टा रह। जा डाला है हून दे। उमय तरण ही। आपा स्वय मित आवेगा।

हे सन्ने! धनोदय अन्त साधना का उत्तम उपाय है। मन बेज है। इन्द्रिय बनी विवर्णियों का तार मन में बॉल है। सबका सचानन यहाँ स होता है। यह सत्य हुआ कि सब पुन रह जायेंगे। पावर हाऊस में करें चानू हुआ ता सबन प्रकाश है और पावर हाऊस पन हुआ तो सबन अंधकार। कितना ही शिव स्व सत्ता रहो चानू नहीं हा सत्ता यही दजा है मन राजा और सत्य प्रकाश का। गवा दजा। धन पवित्र है निमल है जग है ता सभी इन्द्रिय व्यापार भी गे होने और यदि मन अपव्य है विषय-व्यामनाओं में ध्यात है इन्द्रिय सन्तुहार सम्पन्ने विवर्णमत्त धुनिन

रहेगा। अतः हे भाई तू सतक हो सावधान हो, सचेत हो जाग्रत हो, प्रमाण तब मोह त्याग मिथ्यात्व की शान्ति कर। ऊपरी आवरण का त्याग होने पर भीतरी स्वरूप स्वयं ही आपके समक्ष आ जायेगा। मस्कर बनसना है। घरेलू मस्कारों का परिहार करो तो आध्यात्मिक मस्कार जमते जायेंगे। नतिक भावों का प्रादुर्भाव करा। आत्मिक भावों का उत्थप करो। अन्तरङ्ग को छोड़ा बाह्य में उलझा, बाह्य को तज दो अन्तरङ्ग में स्वयं आ जाओगे। हे आत्मन् प्रमाद तज कर सावधान होने का प्रयत्न कर। भोगों में ज्वा-ज्यो जमा दुख ही पन पाया तब मुनिश्चित है कि भोगों को त्यागो तो त्यो त्याग सुख की प्राप्ति होनी जायगी। वत त्याग नियम समय धारण कर। त्याग ही आत्मा का दशक है। अब उस आत्मा का दशन करा। उसी को पाओ। उसी का पोषण करा। उसी का पूण विकास होने पर अन्तिम सुख मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। यही है अ नन्द विट का फल।

शुद्धि क्या है? पवित्रता। निमलता। निर्दोषता। जिसकी शुद्धि होना? जो अशुद्ध हो। अर्थात् जो अपने स्वभाव से च्युत हो गया हो। कपड़ा मैला हो गया यानी अपने असली रूप से बिगड़ गया। उस शुद्ध करो, साफ करो। साफ करने का साबुन पानी और धोबी चाहिए। आत्मा शुद्ध बुद्ध नित्य निरञ्जन है गन्ना हो गया विषय विकार परभावों में निमग्न हो। इसे भी भेज जान साबुन समरस नीर और अन्तरात्मा रजक की आवश्यकता है। अनादिकालीन सचिन कर्म मन प्रणालिन करने के लिए इन मन्त्री साधनों का प्रचुर पर्याप्त और गहरा होना परमावश्यक है। सबप्रथम भेज जान साबुन तयार करता है। आत्मा कम और अय पर सयोग रूप भावा का मिश्रण रूप साबुन बनाता है। या यो कहो इन द्रव्यों का मिश्रण है यह जान करना चाहिए। आत्मा शरीर कम एक में एक अनुप्रविश्य हैं इन समस्याओं जानो हृन्म में उनारा दृढ़ता में श्रद्धा से और महान् पुरुषाय स। यह स्वरूप का विज्ञान ही पर परिणति रूप मन विकार का स्वच्छ करने वाला है। इसके साथ ही साम्य जन होना भी अनिवार्य है। अकेला साबुन रगड़ने जायें और पानी न डाला जाय तो बरत न तो धुनेगा न गन्गी निकलेगी अपितु वह गाँठ का साबुन भी खच हा जायेगा। इसी प्रकार भेज जान हो गया और कपड़ा धोवड़ का ही धोते गय तो मिथ्यात्व की सदा होती ही जायगी। अस्तु साबुन पानी दोनों का होना जरूरी है। अब यदि ये दोनों वस्तुएँ हा और धोने वाला न रहे तो बरत किस प्रकार गढ़ होगा? नहीं हा सकता। अतः निमल अन्तरात्मा की धोबी परमावश्यक है। अन्तरात्मा के मिश्रण बहिरात्मा तीनकाल में भा परमात्मा की उपनिधि करने में सक्षम नहीं हो सकती। अन्तरात्मा जो चाट का उपाय कर अपने में स्थिर रह कर प्रमाण कथाम योग और मिथ्यात्व एवं आभय की कर्म कालिमा को अनायास ही दूर कर सकता है। हे महाशय अन्तरात्मा बन। शम दम की छाया में तप की शिखा बिछा कर संयम सरावर में जन सभ्य जन म ले कर कम कानिया का विकास कर। अन्तिम मत है यह जन कर बड़ा हुआ है पूरी रगड़ धगड़ पछा सगान पर ही

निकल सकता है। धर्म से काम लो। उपसर्ग परीपहो से विचलित नही होना। अपने निश्चय को अटल बनाये रहो विघ्न बाधाएँ आपसे सकल्प को मिटाने के प्रयत्न में स्वयं ही मिट जायेंगी। तुम्हारा स्वरूप दण्ड वत् स्वच्छ हो जायेगा।

हे आत्मन् विचार करो। अनि सक्त्त वर्जयेत्। तुम पर मे जितनी आशक्ति करोगे उतने ही माया जाल में पसकर कष्ट उठाओगे। आज तक जो भी आयत्तियाँ सहीं हैं उनका मूल अज्ञान है अज्ञान माह और प्रमाद का जहाँ त्रियोग मिश्रण हुआ कि बस ससार बढ़ा। मित्र तल खटाई तीनों का योग मिला कि रोग बढ़ा। ये तीनों शरीर के रागो की बढ़ती का कारण है और तीनों ही ससार का कारण है। इसी प्रकार ससार के नाश करने के भी तीन ही उपाय हैं—१ सम्यग्गान २ सम्यग्मान और ३ सम्यक् चारित्र। इन तीनों का योग ही मुक्ति का कारण है। सक्त्त तीन का योग ही काय की सिद्धि करने वाला है। तीन ही बध्न का कारण हैं और तीन ही मुक्ति के कारण हैं। तू तीना से बंधा है और तीनों ही में खुला है। हे भाई तीना का प्रयत्न कर। प्रथम सम्यक्त्व को धारण कर सम्यग्मान और सम्यक् चारित्र का प्राप्त कर बध्न का छान करो। अनादिकालीन परतंत्रता का नाश करो। स्वातन्त्र्य स्वतंत्रता अपने आधीन होना। आत्मा स्वभाव में आना। निज भाव में रमण करो। अपने में रत रहना ही स्वतंत्र है। निज स्वभाव में लीन हो जाओ। अपने में स्वसंवेदन करना स्वानुभूति ही निजानंद है। निजानन्द में लीन होना ही स्व स्वरूपानुभूति है। इसी का अनुभव करो।

हे आत्मन् क्षण क्षण की पहिचान कर। प्रतिक्षण तुम्हारा जीवन नवीन नवीन हो रहा है। बल्लती बहार का समझो। क्यों बदल रहा है। बदले ला बल्ल तुम वहाँ हो ? तुम में भी कुछ परिवर्तन हो रहा है या नहीं ? यदि हो रहा है तो क्या वह यथाय है अथवा पर निमित्तक मात्र भ्रम जाल। यदि भ्रम है तो क्यों तुम उसमें हृष विषाद करते हैं ? रागी द्वयो हान का क्या मतलब ? आन रोग्यो करुणा ? सुखी दुखी क्यों होना ? अपना-पराया क्या है ? मेरा तरा क्या है ? माह ममता क्यों है ? क्यों वासना है ? क्यों आकर्षण है ? क्या विक्षयण है ? सकल्प विक्ल्प क्यों ? तरा स्वरूप इन सबसे पारा है। तू आपक है दशक है। बस जन्ता इष्टा रह। जो डाना है हान दे। उसमें तटस्थ हो। आपा स्वयं मिल जावगा।

हे साधो ! मनोरोध आत्म साधना का उत्तम उपाय है। मन कन्द है। चिन्त्य रूपी विक्षलियों का तार मन में कन्दित है। सक्त्त सञ्चालन यही से होता है। यह शान्त हुआ कि सब चुप रह जायेंगी। पावर हाऊस में बर्रेट चालू हुआ तो सब प्रकाश है और पावर हाऊस फल हुआ तो सब अंधकार। किन्तु ही स्विक्रम स्वच्छाते रहो चालू नहीं हो सकता यही दशा है मन राजा और इन्द्रिय प्रजा की। यथा राजा तथा प्रजा। मन पवित्र है निर्भय है शुभ है तो सभी इन्द्रिय व्यापार भी तदनुकूल उत्तम ही होंगे और यदि मन असयत्त है विषय । स व्यापक । विकारों से अनुरजित है तो समस्त इन्द्रियाँ तदनुसार । सक्त अधिन

सोच अनुचित कर्मों में ही लगी रहेंगी । जन्म मर के सुभाग्य हो तो मरणोत्तर इच्छा अनुसार उसी के अनुसार हो चढ़ेंगे । जिस समय सुभाग्य विकल्पों में रहित मन मन्त्रावस्था को धारण करता है । उस समय मर के साथ साथ मरणोत्तर इच्छा निर्दिष्ट हो जाती है । योग का अन्तार वह जन्म है । सारी आकाशार्थ स्थिति हो जाती है । कारण के अभाव में कार्य स्वयं बन्द हो जाता है । यह है सती विद्या और इच्छा-मन की स्थिति जो मरणोत्तर आकाश के अभाव के साथ मुक्ति का साधन है ।

क्या विरोध धर्म का भंग है ? धर्म विरोध का साधन है । विरोध राग-द्वेष मूलक है । धर्म राग-द्वेष में मूलक है । जहाँ राग-द्वेष हाथा धरी धर्म ही नहीं है । क्या वस्तु का स्वभाव धर्म है ? उल्लेखार्थि दण्ड प्रकार का धर्म पाया जाता धर्म है नीचे स्तर रक्षण धारण करता धर्म है । क्या पाया धर्म है । ये चार परिभाषाओं आत्म में वर्णित की हैं मन्त्रावस्था परीक्षण विवेक्षण करो पर राग-द्वेष का अभाव स्पष्ट प्रतिपादित होता है । जहाँ राग-द्वेष हाथा अवश्य परिणामों में कुत्सिता रहेंगी । वह परिणाम में मन्त्रावस्था नहीं रह सकता । अवश्य में धर्म क्या ? जहाँ अगम्य और वक्रता है वहाँ गिरा है दिना अधम है अन्ध है अथ वृद्ध धर्म नहीं हो सकता । अथ धर्म राग-द्वेष विवर्जित है । अथ विचारणीय है राग-द्वेष अधम क्यों है ? स्पष्ट है राग-द्वेष वस्तु स्वभाव नहीं । आत्मा वस्तु है जीव वस्तु है । उनका स्वभाव जान-अज्ञान धनता है न कि राग-द्वेष । इसी प्रकार अथ परिभाषाओं है । अब आप सावित्र समार में प्रवर्तित नरा पथ सीमा पथ साडे सोलह पथ बाजरी पथ आदि अनन्त पथ हैं उनमें भी कट्टर सरल मध्यम भेद हैं । ये सभी एक-दूसरे को हेय दृष्टि से दृश्य हैं एक दूसरे का हृद्य चाहते हैं पराभव करते हैं परस्पर कहते करते हैं मन-वचन वाप से निरस्कार करने की चेष्टा करते हैं । इन परिस्थितियों में धर्म किमको कहा जाय ? यह प्रश्न अत्यन्त शावनीय विचारणीय और अनुभवनीय है । प्रथमतः आगम का आनादन विलोडन करना चाहिए तन्नुसार जो सही है उस धर्मावस्था के अर्थ के प्रति मध्यस्थ रहे क्योंकि माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्ति जो विरोधी जन है उनके प्रति राग-द्वेष का त्याग करना परमात्म उपाय है । यही होगा धर्म का स्वरूप धर्म का पालन धर्म का रक्षण और इसी से धर्म की अभिवृद्धि हो सकता है । ह माधो ! तुम राग-द्वेष छोड़ो सही उपदेश करो सभी आपका उपदेश धर्मावस्था करें ऐसा दुराग्रह मत करो । सभी माने इसमें हठ क्या ? हम सबके कर्ता नहीं हो सकते । अस्तु अपने परिणाम समालोचन । भावों में सरलता होना ही धर्म है ।

धर्म अति सरल है यदि हमारे अन्दर उस पान की आकांक्षा हो । हम धर्म स्वरूप ही हैं । आत्मा धर्म से भिन्न नहीं । धर्म आत्मा से पृथक् नहीं । आत्मा और धर्म प्रयोगात्मक है । जिस समय हम किसी को धर्मात्मा कहते हैं वह आत्म भाव में निवृत्त होता है । वही अधर्मी पापी की सजा युक्त होता है तो धर्म आत्म भाव से दूर रहता है । धर्म आत्मा की अभिव्यक्ति है । आत्मा अनादि से कर्माच्छन्न है । कर्माच्छन्न होने से धर्मभाव घुटा है । धर्म की ज्योति कर्म पटल के हटने पर ही प्रका-

मिष्ट होती है। हमारे सोटे भाव विचार दुर्धर्मा अर्थात् ही अधर्म हैं शुभ भाव
सन्निवार विवेकपूर्ण क्रिया सरलभावोप्य ध्यान दयाधर्म चिंतन तत्त्व स्वरूप विवेक
आत्म यद्वात वस्तु स्वरूप निष्ठा ही धर्म हैं। इन क्रियाओं में रति प्रीति ही धर्म
हैं। आचार्य श्री कृष्ण स्वामी न भी यही धर्म का स्वरूप निर्धारित किया है
हे साधु ! कृपाय मद करो। सहनशील बना। सहिष्णुता धर्म की जननी है। कुछ
करो धर्म भाव दया भाव वक्तव्य भाव से कर दो। पर क प्रति आशा न करो कि
मैं जसा चाहू वना ही यह करे। वह कुछ भी करे अथवा उठाकर मत देना यदि
पलक उठ भी जाय तो पुन साप ता तो भी न माने ता देखकर उस अर्थ स मन
कहो। कोई कुछ भी कहे सुनो मन सुनन में आ जाये तो उस पर विचार मत करो
दहराओ मत अर्थ के समर्थ व्यक्त मत करो। अर्थ सभी इच्छियों के विषया के प्रति
उदामीन उपैति हो जाओ मध्यस्थ बनो अधम दूर रहेगा धर्म जगगा आत्मवत्त
बढगा विवेक जाग्रत होगा ज्ञान की किरणें चमकेंगी पूण धर्म प्रकट हा जायगा।
आत्मा परमात्मा बन जायेगा। यही मुक्ति है यही सत्य है शिव है मुक्ति है अतिम
मोक्ष पद सिद्धि है।

ह आत्मन् ! 'अ' का ध्यान कर। यह अक्षर अक्षर है। ज्ञान गुण का उद्बोधक
है। नामि कमल में इसका ध्यान करने से कम कालिमा नष्ट होती है। नत्रो भौहा
मुल कमल आत्मा में ध्यान करने से नाता प्रकार के सकल विकल्प निवृत्त है। दुर्धर्मा
नष्ट होता है। एवाप्रचित्तवृत्ति हो जाती है। किसी भी धर्म के पूव लगा दिया ता
विपरीत अर्थ कर देता है। लय शून्य है। पूव में अ लगा दो अर्थ बन
जायेगा। अर्थात् वह पलायन जिसका कभी नाश न हो। वह क्या वस्तु है ? वह है
धर्म और आत्मा। वस्तुन ससार क्षणिक है। हर एक वस्तु नश्वर है। हर एक चीज
परिवर्तित होती रहती है। रह। अर्थ इष्टि से कभी सत का अभाव नहीं होता।
आत्मा और धर्म अयो-याधर्म हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पतल हैं। आत्मा
सुद्ध रूप में पारणत होने के बाद पुन अशुद्ध नहीं होता। आज है अर्थ तृतीया।
तृतीया तो सत आती जाती रहती ही है। क्षय लगा लिया जाय ता कोई आश्चर्य
नहीं क्योंकि आने के बाद जाना ही है। किंतु इनके पीछ तो अ और नया है।
अर्थ कभी क्षय न हो। भगवान् आदीश्वर का प्रथम पारणा इम निन हुआ
महा राज श्री श्याम राजा के घर। इस रस का आनंद। धर्म हो गया वह जाता
पाकर अपूर्व पात्र का। उमे वह निधि मिली जो अर्थ रूप में ही परिणत होकर
रही। घर में अलिल भण्डार भर गये। रत्ना स नगर जड गया। अर्थात् महानस
श्रेष्ठि प्रकट हुई। ऐसा था चमत्कारी जिन शामन का महात्म्य। जिन प्रभु का महत्व
असाध्य ही होता है। अस्तु दान की प्रवृत्ति इसी निन से प्रारम्भ हुई जो प्रथम काल
के अन्त तक बराबर अर्पण रूप में चलती जायगी। इसी सब कारणों से यह अर्थ
तृतीया प्रसिद्ध है। इस दिन जा भी काय प्रारम्भ किया जायगा यह बराबर भजन
होगा। उसमें विशेष अतिशय आयेगा एक विशिष्ट चमत्कार जाग्रत होगा। यह

शित होती है। हमारे लोटे भाव विचार दुर्ध्यान अरध्यान ही अधर्म हैं शुभ भाव सन्धार विवेकपूर्ण क्रिया सरलभावोत्पन्न ध्यान दयाधर्म चित्तन तत्त्व स्वरूप विचार आत्म यज्ञान वस्तु स्वरूप निष्ठा ही धर्म हैं। इन क्रियाओं में रति प्रीति ही धर्म हैं। आचार्य श्री कृष्ण स्वामी ने भी यही धर्म का स्वरूप निर्धारित किया है। हे साधु ! कपाय मद करो। सहनशील बना। सहिष्णुता धर्म की जनना है। कुछ करो धर्म भाव दया भाव कृतज्ञ भाव सत्कर दो। पर क प्रति आशा न करो कि मैं जसा चाहूँ वसा ही यह करे। वह कुछ भी करे अथ उठाकर मन देगा यदि पक्का उठ भी जाये तो पुन आप ला तो भी न माने तो देखकर उन अथ म मन कहो। कोई कुछ भावहे मना मन मुनने में आ जाये तो उस पर विचार मत करो। दुहराओ मन अथ के समान व्यक्त मन करो। अथ सभी इन्द्रिया के विषया क प्रति उदासीन उर्ध्वान हो जाओ मन्यस्य बनो अधर्म दूर रत्ना धर्म जगता आत्मबल बढेगा विवेक जाग्रत हागा ज्ञान की किरणें चमकेंगी पूरा धर्म प्रकट हो जायगा। आत्मा परमात्मा बन जायेगा। यही मुक्ति है यही सत्य है शिव है सुख है अनिम मोन पर सिद्धि है।

हे आत्मन् ! 'अ' का ध्यान करो। यह अलण्ड वग है। जान सुग का उद्बोधक है। नामि कमल में इसका ध्यान करने से कम कालिमा नष्ट होती है। नवा भोहा मुक्त कमल आत्मा में ध्यान करने से नाना प्रकार के सत्त्व विकार मिटते हैं। अध्यान नष्ट होता है। एकाग्रचित्तवृत्ति हो जाती है। विनी भी धर्म के पूव लगा लिया तो विपरीत अथ कर देगा है। शय धर्म है। पूव में अ लपा दो अथ बन जायेगा। अर्थात् वह पन्था जिसका कभी मान न हो। वह क्या वस्तु है ? वह है धर्म और आत्मा। वस्तुतः सगार क्षणिक है। हर एक वस्तु नश्वर है। हर एक चीज परिवर्तित होती रहती है। रह। स्वयं दृष्टि से कभी सत् का अभाव नहीं जाना। आत्मा और धर्म अयो-याधर्म है। दोनों एक ही सिक्के के दो पल्लव हैं। आत्मा सुद्ध रूप में पारशत होने के बाद पुन अशुद्ध नहीं होता। आज है अथ नृनीया। तृतीया तो सतत् आती जाती रत्नी ही है। शय लगा रिया जाय तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि आने के बाद जाना ही है। किन्तु हमने पाछे तो अ और लगा है।

अथ कभी क्षय न हो। भगवान् आनीश्वर का प्रथम पारणा इग निन हुआ महाराज श्री नयाम राजा के घर। इस रस का आहार। धय हो गया व नला पाकर अपूव पात्र को। उमे वह निधि मिता जा अथ रूप में ही परिणत हाकर रही। घर में अखिल भण्डार भर गये। रत्नों से नगर जड गया। अन्धान महानम षड्वि प्रकट हुई। एसा था चमत्कारी जिन शासन का महारथ्य। जिन प्रभु का महत्व अथ ही होता है। अस्तु दान की प्रवतता नसी निन से प्रारम्भ हुई जो प्रथम काल क अन्त तक बराबर अथ रूप से चलती जायगी। इहां सब कारणा से यह अथ ततीया प्रसिद्ध है। इन निन जो भी काय प्रारम्भ किया जायेगा वह बराबर सत्त होगा। उसमे विवेक अतिशय आयेगा एक विशिष्ट चमत्कार जाग्रत हागा। यह

अग्नि महापवित्र है अतन्वीय का प्रवक्तृ है। दानवीय क बिना धमनीय नहीं बन सकती इसलिए यह धमनीय का भी पायव बद्धक और प्रवक्तृ है।

आत्मा है क्या ? आत्मा शरीर में है। कते जाना जाय ? अनुमान से और प्रत्यक्ष भी। यथा बाष्प में अग्नि दुग्ध में घृत चक्रमक पत्थर में आग पाषाण में गुवण मौष में मोती पुष्प में द्रव तथा द्रव्य में रस मिष्ठान आग्नि रूपा है। उसी प्रकार शरीर में आत्मा निवसमान रहता है। मरण काल में निष्कृष्ट शरीर पला रह जाता है इसमें विस्मय होता है कि शरीर अवयव इन्द्रिया का संचालित करने वाली वार्द्ध शक्ति विनाश है जो आत्मा है। अग्नि की वादी लगान से बाष्प का धनप्रत्यय प्रकट हो प्रवर्तित हो उठती है बिलाने से दूध में घी प्रयत्न प्राप्त होता है परस्पर में परस्पर रगड़ने से अग्नि प्रकट हो जाती है तपाने से किहि बाधिमा पाषाण से गुवण निवृत्त आता है सीप से मुक्ता पुष्प से पराग द्रव वेला पर रस में रस माध्य है उसी प्रकार तपस्वरण से शरीर में छुटा आत्मा प्रवृत्त प्राप्त हो जाता है। आत्मा की उपलब्धि प्रयत्न माध्य है यह सुनिर्णीत है। चार्त्तरणा का सम्पन्न होने में चार्त्तका तमणि से स्वयमेव शीतल जन प्रवाह प्रकट हो जाता है उसी प्रकार बीतराग मरण क्षीयतेषा द्रव का अन्त में सन्निवृत्त पर आरम्भ स्वयम् प्रत्यय हो जाता है। आत्मा साध्य है निर्मल शुद्धात्म परमात्मा साध्य है। परमात्मा का गुणानुराग आत्मा के दुगुणा का प्रभावित काल में पूरा समर्थ है। त्रिभिः भक्ति एकमात्र दुग्धि का सहार करने में समर्थ है। प्रभु का साक्षात् दशन मात्र निवृत्तचित्त चमकथन शिथिल करने में पूरा समर्थ है। यहाँ नहीं मर्य अज्ञा एव भक्ति से किया हुआ त्रिभिः विवद नान और पूजन वही पला होता है जो साक्षात् त्रिभिः दशन पूजन पला लेते हैं। तब बराह्य से माध्य है बराह्य तत्त्व ज्ञान से तत्त्वज्ञान शास्त्राध्ययन से शास्त्राध्ययन निर्विकल्प ज्ञान भाव से आवभाष्यमान करने में माध्य है। यह है स्व स्वयम् गिद्धि की साधना त्रिभिः माध्यम में हम अपने निवृत्त स्वयम् का अन्ति निवृत्त पदार्थों को जाने हैं और अन्त स्वय स्वयम् समर्थ हो परमात्म पत्नी कल्पान है। भी साक्षा यद्ग मयमन्त्र इसी मन्त्र पदार्थ में साध्य है नू साक्ष्यान हो एक निमित्त मात्र भी व्यर्थ मन मवा। हर क्षण अविश्वदशन मन्त्रबलायी है। बराह्य घर मयमी बन तपो हृदय लव अग्नि तपस्वरण कर तब की जगता में कर्म का बन का धर्म मान कर।

हे मध्यम ! आत्म बन् सर्वोत्तम बन्तु है। आत्मवर्णन व समान अन्त मयम् अन्ति अन्त्याम निराश्रित हो जाती है। मयम् भयहर नून्तर दुष्ट शिथिल भाव अन्त पराधम त्याग निवृत्त हो जाते हैं। नू आत्म बन् प्रकट कर। निवृत्त बन। यद्ग आत्म पालन का कारण है। भयानुर मानव पापनीति जीवन की बराह्य अन्ति अन्त में भी स्वयम् न। जगदन्त विवृत्तमायुष्य मरी हो बन्त। कारण बन्त है उसकी निवृत्त अन्ति पला नहीं मरती। भयानुर अन्ति

की पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। वह दण सा अपने को अनुभव करता है। उसका विचार स्वातन्त्र्य घुटा घुटा सा रहता है। यदा-कदा वह अच्छापूर्वक दुःखसना में भी फस सकता है। त्याग व्रत नियम आदि का भी परित्याग करने का तत्पर हो जाना है। बोलना चाह कर भी बोल नहीं सकता। करना चाहत हुए भी शरीर से कुछ कर नहीं पाता। यह हाना है भयानुर व्यक्ति की दशा। साधु अवस्था में भी यदि भय का भूत रहा तो कई काम विपरीत हो जाते हैं। दाप हा जान पर लोक लाज का भय यदि हागा तो शुद्ध आलोचना नहीं कर पायगा। प्रायश्चित्त बटार न मिल इस भय से न तो सत्य शुद्ध आलोचना कर पाता है और न प्रायश्चित्त ही यथोचित मिल पाता है। शुद्धि का अभाव हान से द्रव निर्माण नहीं हो सकता और शुद्ध व्रत नियम नहीं पलन में आत्म शुद्धि किस प्रकार हो सकती? उभय लाभ की क्षति होती है। यथानिका में कुत्त विन्धी बन्ध आदि पर प्रयोग कर यह सिद्ध किया है कि भय में पाचन शक्ति कमजोर होकर धीरे धीरे भुम्भना शान्त होने लगती है। भयानुर प्राणी का आमाशय पक्वाशय निष्क्रिय हो जाता है। सम्पूर्ण आत्मा की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। शास्त्रों में दृष्टाष्ट मितना है श्रेणिक महाराज न प्रामोणी (गति) के) के लोगों के पास एक बकरा भेजकर कहा कि छ माह तक इस रखा पुन बापित लाना किन्तु ध्यान रहे यह न माटा हो न पतना। पतन सब व्याकुल होकर अभयकुमार के पास पहुँचे। उनकी युक्ति के अनुसार उसे भरपुर मुन्त्र पक्वाश्र यथेष्ट मिलाने जाने किन्तु उसे दो शरीरों के बीच बाध लिया जाता। बेकार भयानुर जहाँ का तहाँ रहा। अर्थात् उसकी पाचन शक्ति नष्ट हो जाने से रुचिरादि धातुएँ नहीं बन पाती। यह है भय का प्रभाव। ह ज्ञानिन! कभी भयभीत मत हुआओ। निरन्तर आत्म तत्त्व का विचार करा। विवेक से क्रिया करा। काय करने के पूर्व साध समग लो उसका विपाक परिणाम। यदि कलत्र कोई क्रिया प्रमाद अज्ञान या कषायाधिन आगम में प्रविष्ट न धर्म विरुद्ध व्रत नियमादि के प्रतिकूल हो जाये तो सरल मागो में ममभावों से मायाचार रहित उसे स्वीकार करो। उस पर पुन-पुन पश्चात्ताप करा शुद्धजनों के समक्ष निवेदन कर उसका दण्ड प्रायश्चित्त धारण करो। भविष्य में उस प्रकार की गलती या भूल न हो इसके लिए सावधान रहो। जीवन निश्चरता जायेगा। द्रव शुद्धि के साथ-साथ आत्मशुद्धि होती जायेगी। यह आत्म विकास की कुञ्जी है। आत्मोन्नति का सोपान है। सक्षार से पार जाना है अपने कर्तव्य पर दृष्टि धरो। पग-पग पर अपने कृत-कर्मों पर ध्यान रखो। हर क्षण अपनी त्रुटियाँ को ज्ञान कर उन्हें निकालने का प्रयत्न करते जाओ। सद्गुण बढ़ने जायेंगे। त्गुण निरुल्लस रहेंगे। आत्म विकास होते-होते परम शुद्ध आत्मा की उपलब्धि हो जायेगी। यही परम ध्य है। मोग स्थान है।

ह साधो! स्वतन्त्र इन्द्रिय का विषय कितना घुणास्प है इसका नू विचार कर। सबप्रथम यह स्थान रक्त मूत्र का प्रवाह है। हर समय मन बहने के नव द्वारों

मे मे एक है। यह घास कूम झाड़ो में आच्छादित रूप सत्त्व है। इससे स्वभाव स्वल्प का जान करने वाला कौन सज्जन पुष्प हागा जो अध्वन इम पड़कर रुगति का पात्र बनगा। इस लोक में निम्नीय और परलोक में नरनाति गतियों के दुःखा का कारण है। अनन्त भूयस्य मम्मूच्छने मनुष्य रूप कीटा स व्याकीर्ण है। निम्न मषट्कन मात्र में ६ लाख कीटि निरपराध जंतु क्षणभर में मरण का प्राप्त होते हैं। जिना की स्तान इसे भागकर कौन सुधी मुक्तानुभव करेगा परपीडा महा कष्टनायी है उभय लाव घातक है। इसका भयङ्कर रूप बीभत्स आकृति, घणाम्य रूप मात्रना क वराय का कारण है न कि भाग का। यह भङ्गकर ऊच नीचे पवना के मध्य की गहने कट्टरा है। इसमें घृष्टता रूप शिकारी छुस बठा रहता है। इसका एषणा का वागुरा भोजे जावा को अति चतुर है। निम्ना की विष मिश्रित मिठास में पमकर विषयी जीव उभयस्व प्राणा का घात कर डालने हैं। यह विषकुम्भ पयामुन है। विष ना एक भव का ही नाश करता है। यह अनन्तभवा का विगा देता है। मर सिद्धमानार भी बसे ही तीक्ष्ण घातक है। यह मृगनयनिया के कटान वागा से भागियो क हृत्वि विनीत करा देता है स्वच्छ हास रूप पना में उनझाकर उनके विवेक स्त्री घन का अपहृत कर लेता है। चम्पन चित्रन, टेडी चाल स उनका पान घन का हरणकर लेता है। ह भव तू किसी किसी प्रकार न सव जावा से निवृत्तकर घम क द्वार पर आया है। अब उनके फले में नहीं आना। तू सावधान हो। हर क्षण चौकड़ा रह। कभी भी भूलकर पुरुष क साथ एकाउ वाम मतकर। तरा ही रागण तुम दम लेगा। इस शरीर रूपो पित्रे में देव और मानव दावा ही विद्यमान हैं। दावा ही प्रभुता और प्रतिभा सम्पन्न हैं किन्तु ता भी इन प्रभुत्व और प्रतिभा का प्रशंसा तरे हाथ में है। तरे पुरुषाद का स्याम का पाकर ही य पन सक्न हैं। तू निगका चाह उस आगे कर विजयी कर सकता है। अन्तु ह आत्मन् विषय भागा में वराय बढ़ाकर अन आत्मन् का सिद्धि उपार्ज कर। यही मानव पर्याय का मायका है। चान् अगुन प्रशान नला। जो शहर क घटर नात स भी महा रुग्निन घणित बीस स कट्टाण। उन पान की मायमा कर तुने शम नहीं आती। गनी नानी में वन्ता मुड् रुग्ण भा शम्भुता का ह्व है फिर कद् भूवागय में भरा उसी द्वार स वन्ता व य क्या रोग करन भी योग्य है? गनी मावि क्या के पवित्र शरीर में क्या एमा अगावन वन्तु का प्रवेश हुना योग्य है? तम्हार उत्तम मुड् रक्त में पराया रुग्निन वाय कट्टर उस अम्ड वनाय क्या मुम्ड इस स्वीकार करना चाहिए? कानि नही। यह उत्तम मायिया क आचार योग्य नही। अगाव ग्रहवय क तत्र की धर्मिक करन वन्ता नव काय का कमा भी आन में राग मत हान दा। यह शरीर का न नान किन्तु लुप्तता आत्मा का भा मयित करन वाला है। जिन्ना क अगाव बद्धवय का पवित्रता का मर्याद या हि उनका शरीर क स्तन वय में अगाव राव भी जान्य ह्व अन य। किन्तु बह सम्मन का दीय रूप कीचड़ उनक

[illegible]

छुगाने में ही शक्ति प्रयोग कर मगार बज्जैन में दल निग रहता है । हाँ उसकी सगार बज्जनी अरुण निग नूनी राग चौगुनी नैवनी गगनी गगनी रहती है । मायो ! अपने बारा और तेरा हृदि अपने में ते जाकर स्थिर करो । पर का मोह छोड़ो । अपने में पर का गतिक भी मिथ्या हुआ कि बाते के गान में बिगड़ जायेगा । अपने रूप में अपने का देगो समझो और उगी प्रकार जीव में व्यवहार करो । जीव एक अद्भुत कला है । अनादि है । जीवत्व शक्ति इगरी आतुण्य मत्तामक है धी और रद्वी । यह शक्ति भाव प्राण में बधिया है । बाह्य में हमने मायक रूप मद्रयोमी विमित है इन्द्रियाँ मन बचन काय आयु और स्वागाच्छास । ये ही मय्य प्राण बने जाते हैं । ये द्रव्य प्राण अपने अस्मिन्त्व के अन्त-बन्त में एक पर्याय में अय पर्याय में जीव का परावर्तित करते रहते हैं । किन्तु भाव प्राण इगरे अभिभूत होकर भी अपने अस्मिन्त्व को कभी नहीं छोड़ता । यथा मेघाच्छन्न गिरि स आवृत होने पर भी रवि अपने प्रकाश रूप स्वभाव का परित्याग नहीं करता है धूमिल या मन्द मन्दर मन्दम प्रकाशी अवश्य हो जाता है । उगी प्रकार भाव प्राण है । इनका जीव ने माय तात्काल्य सम्बध है । अपनी वस्तु की मार सगार करना ही तत्पज्जना है । यह हमारी निधि हममें ही विद्यमान है । अस्तु हम स्वय अवैगद और हम ही अवैगद हैं । ह आत्मन् त अपने द्वारा आन में अपनी स्वाज कर उसे पान का प्रयत्न कर ।

कल्याण है क्या ? निज स्वभावानुभूति ही कल्याण है । अपने में अपनी वस्तु पड़ी है । अपनी निधि का भूषणकर हम स्वय अविच्छेद-अरिद्र बने हुए हैं । क्या ? अनादि मिथ्यात्व अनाम और मोह के कारण हैं । ये प्रच्छन्न शत्रु हैं । पीछ से वार करते हैं । मति भ्रम तो करते ही हैं उसे विपरीत भी बना देने हैं । बस उल्टा कि सारा ससार ही उलट गया । धनुरा खाने पर शुक्ल पन्था भी पीला निखलाई पडता है । पीलिया रोगी को विपरीत ही सके आदि चौखे पीली ही लिखती है । बस यही हाल मिथ्यात्व का है । यदि आप भूलकर इमली को आम कह दिय तो दूसरी वार समझने पर तत्काल भान लेंगे कि हाँ यह मेरी गलती है किन्तु यदि मिथ्या बुद्धि ने इमली आम ही है यह आपके मस्तिष्क में जम गई तो फिर सही बतलाने वाले की भी आप भद्रा उतारेंगे और अपनी हठ से उस विपरीत मायता को भी नहा छोड़ सकते । कोई भी मनुष्य अपराध होने पर अनुभव करे कि मुझ से अपराध हो गया है तो वह अवश्य निरपराध हो जायेगा यदि अपराधी समझाये जाने पर भी अपने हृदय को निरपराध ही सिद्ध कर रहा है मान रहा है तो उसका वह विभाव परिणमन जल्मी नहीं छूट सकता । आप यदि किसी दोषी को निर्दोष बनाना चाहते हैं तो उसे भूषणकर भी दावी अपराधी मत कहो । यह मनोविज्ञान है उस दोषी के दोष को सामन उरस्थित करो । अपराधी के मन में जबा दो वास्तव में वह दोष है जो कुछ बहकर गुजरा है । दण्डिये, वह दोषमुक्त भी हो जायेगा और आपका हितपी भक्त सेवक भी । ह आत्मन् तुम अपने अपराधी को आत्मा समझ पेश करो उसी के

हृदय में साक्षात् और फलदा छड़ दो स्वयं अनिशीघ्र सही मांग पर आ जायेगा-उत्तरात्तर विकासोन्मुख होता जायेगा। ह आग्नि योगी गुणभक्त स्वामी ने भी अपने आत्मानुशासन में लिखा है जो जो मैंने पूरा चष्टा है-की हैं वे सब अज्ञान ज्ञान क्रियाएँ थी एसा योगियों का उत्तरोत्तर प्रतिभाभिज्ञ होता है। उनकी साधना की कसौटी पर वे सभी अनात्मज्ञ काय कमे जाते हैं और मूढ़ भ्रम की भाँति यथाय वस्तु सामने आती जाती है। हे भ्रातृ अज्ञानी नाही स्थिति समझो। दान पत कफ की पड़िचानकर अज्ञान निष्पादक मोक्ष रूप विनोद न बड़ें उस रूप क्रिया करा-आचरण करो तप करो ध्यान-अभ्यास आहार विहार में प्रवृत्ति करो। क्याति काम पूजा का त्याग छोड़ दो। प नीतों ही तीनों दोषों के उत्पादक हैं। काटा लगाते ही खात्रकर निकालो रोग हाते ही निगन कर दशा में त्रुटि होते ही उगे समझा सावधानी में अपने बचा हा जान पर परिहार करो। आरम स्वभाव से विपरीत जिन भी भाव विचार क्रिया और वस्तु हैं वे सभी ही हेय स्थान्य और अप्रहीन हैं अर्थात् ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। तथा गरम हा पया क्या यह उसका स्वभाव है? नहीं? क्या? क्या कि गरमपाय से हुआ है। अग्नि क-निमित्त-से हुआ है। जीव जितने कष्ट उठाता है दुखों का सामना करता है अपाधिया का झनना है वे सब पर मयाग से उत्पन्न हैं। पर निमित्तिक हान से नाशवान भी है वे स्थिर नहीं रह पाती हैं। आ एक रूप नहीं स्थिर नहीं वे अविनश्वर सुख की कारण किस प्रकार हो सकती हैं? अर्थात् कारण सत्ता ही काय होता है। मिष्ठ-मीठा मिलाने में मिठाई बननी नमक डालने से नमकीन मिरच से चटपटा पदार्थ तयार होगा इसी प्रकार नामदान विषयों से अतिथि नश्वर सुख होगा जो निमित्त न रहते ही समाप्त हो जायेगा। परानपेन सुख अपना निज सुख है। आत्मा अजर अमर है साश्वत है। उस आत्मा से उत्पन्न सुख ही अपना निज सुख है। स्व स्वभाव है निजानुभव है। सभी को पाने का प्रयत्न करो।

अत्यंत यत्न। श्रम से घूर। छाया की चाह में। आया पथिक जून के पास। एक दिन था बुलाया पर नहीं आया। क्यों? श्रम न था अथित न-या घाम न था पसीना भी नहीं था। आज वह सब है इसलिए तो आया है मृग की शाखाओं को निहारता। पतियों को पुचकारता शीश्यों को सवारता भूमि को निरुपना। हे भगवन! हमारी यही दशा है। शून्य स्वार्थी हैं स्वार्थ में लिपटे। माया में फँसे पर को पाकर आया मानकर उनमें दृढ़ता-कर, अपने को भूल कर वस्तु में झूम कर एक न्तिन आपने पान से निकल गये सटक गये धीरे से होठों से क्या निनका न हिल जाय तरी दृष्टि हम पर न पड़ जाय हमें आना न पड़ जाय तरी नरण में। चले गये न लहर या न गतव्य स्थायी। द्विविधा सवार थी आप में बवं भोगों में रवं कद्यों में पमें। आपिर कस ही ता गय। कब कभी कहीं कुछ पता नहीं कुछ हाँ नहीं कुछ गान नहीं किस प्रकार मानन का भी तयार

महों। आया सन्का टगी तन्ना पाया अपने को बीचो बीच अधर लटका। है यह क्या ? ऊपर चूड़ा कासा-गोरा नीचे कुआ गहरा चौड़ा सपों का घर मुह फाड़े जीभ निवाने फूकार लगाते विष फलाते। भाग्य म छत्ता मन्त्रिया का मुड़ा जगा था। डाली हिली वे उड़ों वहाँ जाती क्यों जाती मिन गया कारण वही पयिक चिरट गई आग पीछे आजू बाजू इधर उधर न दिस न नन। भागे तो कने और किधर। ऊपर से टपका रम मधुर कुछ मला पर मोटा स्वा आया पीडा खो गी गई हो गया उमत्त शून्य रिया अग पीढो चाहो फाड़ो जय क्या वही मजा है। उसी म झूमने लगा। सूझ जाता है अज्ञ। छटपटाता है और फिर फिर उमम ही कमना है। अब तडप चुकी हूँ। हे प्रभो अब मुघ आयी अन्न म अपनी ही भून स स्वय भटका अब स्वय टिकाने आया। हे आत्मन् भूली ताहि विहार द आग की मुघ ल। अरने को समान स्वय व्रो है जो भगवान हैं। भगवान से रगड भगवान ही बन जायगा।

हे भयातस सराग भक्ति म बीतराग भाव का जगाना ही अनेकान है। यही पीर प्रभु का स्याद्वाद गिद्दात है। यही भगवन्वाणी है। जिन बाणी का गौरव श्री अवाद्य गिद्दान के आधार पर विजय वजयती पहुरा रहा है। अहिता गिद्दान्त दावा पोषण कर रहा है। भगवान महावीर क इगो सिद्धान्त से बहु आग तक अवाद्य अ दुग और स्थिर रूप से बना आ रहा है। हे आत्मन् वनमान समय मे मराग भक्ति का पापण भी महत्वपूर्ण है हाँ इसका सत्य बीतरागता की निष्ठि हावा चाहिए। बीतराग भाव अपने प आप ही है वह निर्विकल्प है जगम क्या क्या को अवकाश नहा। हम अब अपने को देखें क्या हम क्या क्या क बिना खुप चाप मोन से रह मजन है ? यदि हम म यह क्षमता हो तो वास्तव म हम बीतराग दशा म पहुँच गये। यदि एक रक कर इधर हमारा सत्य आ जाता है और पुन आपन को रावन का प्रपन्न करत है सा समझना चाहिए कि हमारा कर्म उस दशा म बड रहा है हमारा सत्य है किन्तु है हम शुभावसाग-मराग परिणति म ही। अगर आगे दाना है तो सत्ता आपन को टटगा रहा। बाहर भीतर से अपने प्रत्यक्ष काम का पछा पग करा। हर प्रकार स्वय का पहिचानने की चट्टा करो। अष्टा करो या बुरो। जिन गो की लकीकरण दशा करा। अष्टा है तो बड़ाओ और बुरा है तो स्वय जन्म बुरे का निपट कर आप स्वय ही अपने आप उनके पड़न और त्याग म प्रयत्नशील हो जगो। जहाँ सराग भाव का चरमोत्कर्ष हुआ नहीं कि वग आपन आप आनराग भाव अपने हा म स आप ही पूर निडरवा। यही हागा आपका अपना स्वय जगता सत्य आपन धर्म आपन पुण आपन स्वभाव और आपन ही भा।। यह निरवग दशा हय। पर निर्मल का यही अभाव होता। इपीविमद अविचल आरिणि दका हुनी।

हे आत्मन् ! परोपकार करना उत्तम कार्य है। पर हित दया है दया धर्म का मूल है। धर्म आत्मा है। आत्मा ही तू है तू ही आत्मा है। अभिप्राय यह है कि परोपकार परम्परा से तेरे ही स्वरूप का साधन है। निश्चय से परोपकार ही स्वापकार है। आत्मोपकार ही आत्महित है। हम कहते हैं हमन आपका उपकार किया या अमुक व्यक्ति का दुःख दूर किया उसकी भलाई की अमुक का रक्षण किया उम बचाया इत्यादि। अब विचार कीजिए हमने ऐसा क्यों किया ? आपका उपकार करने में हमारा लक्ष्य क्या है ? यही न कि हम अपना दुःखत्याग दक्षिण में अतमय से और इतने आगुर कि अपने को रोक न सके उसी आकुलता को मिटाने के लिए हमन आपका हित किया तो मूल उद्देश्य क्या हुआ अपनी अशान्ति दूर करना। अमुक व्यक्ति का दुःख दूर क्यों किया ? इसलिए कि हम अपने का उस दुःख से दुखी बनाना नहीं चाहते थे अन अपना ही दुःख तो मिटाया। उमकी भलाई की क्या क्योंकि उसकी बुराई से मैं अपने को भी बुरा अनुभव कर रही थी और चूँकि स्वयं बुरी हालत में रहना नहीं चाहती थी। उमका रक्षण किया क्यों क्योंकि उस अशान्ति छोड़कर मुझे अन्तरङ्ग शांति नहीं मिल सकती थी। मैंने उमका रक्षण कर अपनी अशान्ति दूर की अमुक का बचाया क्यों ? क्योंकि उसे बचाये बिना मेरा मन तिल मिला उठा था। इसलिए अपने मन की अशान्ति को दूर करने के लिए उसे बचाया। बाई डूब रहा है दूसरा उसे देखकर हस रहा है तीसरा तत्काल कूद कर उसे पकड़ सता है क्यों ? स्पष्ट है एक को आनन्द होता है यह सुनो है स्वयं उसे कोई व्यथा नहीं फिर मिटाये क्या ? दूसरे के हृदय में उसे डूबना देखकर दुःख हुआ इतनी पीड़ा हुई कि सहन न कर सका और उस पीड़ा का प्रतीकार करने की स्वयं जल में कूद ही ता पड़ा। सबका मार है आत्मा धर्म है दया आत्मा की पोषक है इसलिए यह भी धर्म है। यही अत्यस्वभावा धर्मो की परिभाषा है। देने ही अपनाओ। अपना हित मन हो इस पर लक्ष्य रहेगा तो पर हित अवश्य होगा ही। पर का अहित कभी नहीं हो सकता।

ह सुजानी जिया ! अपन जीवन का आधोपात साता देल। हानि लाभ का ध्योरा समन। कहाँ नफा हुआ और कहाँ घाटा इसकी परख कर ल। यह परख जब तक नहीं होगी कर्मों का त्वस बसे मरोग। कम त्वस चुकनी किये बिना ससार मञ्च नहीं छोड़ सकते और ससार मञ्च त्यागे बिना मुक्ति कहाँ मिल सकती है ? मुक्ति बिना धर्म का फल मुक्त कहाँ प्राप्त हो सकता है। मुक्त वास्तव में अनीन्द्रिय हाना चाहिए। ऐहिक मुक्त सच्चा मृच्छ नहीं है। यथाय मुक्त बड़ी है जहाँ अमुक्त का नामो निशान नहीं है परिणमन यही हाता है। यहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव सभी परिणमन स्वरूप हैं उनमें परिणति होने से विकार होता ही रहना है। चतन पदार्थों की अपेक्षा विभाव परिणमन में भावों के अन्दर विकार रूप परिणति हाती रहती है। यह पर सयोग निमित्तक क्रिया न केवल जीव में ही होती है अपितु जड़ रूप अय

समस्त पदार्थों में निरन्तर होती रहती है। संयोग में मयोग मूलक त्रिगुणी भी धाराएँ हैं। उन सबमें विभाव रूपा है। वैभाविक शक्ति जड़-गुणन और जीव शक्तों में विद्यमान है तभी तो कर्म मय जीव को अपने अनुगुण परिणाम सेना है और जीव में परिणमित हो जाता है। इन दोनों का संयोग स मिथुन से ऐसा स्वभाव ही बन गया है ता भी एक दूसरा कोई भी अपने अपने निज स्वभाव जड़ता और चेतना का तनिक भी परित्याग नहीं करते। जरा भी छोड़ने नहीं है। दोनों अलग प्रपन में ही रहते हैं। सत्य है यह और अकाट्य विज्ञान अटल सत्य है। तो भी मयोगी अवस्था में एक दूसरे से प्रभावित अवश्य होते हैं। एक दूसरे पर अपना अगर अवश्य डालते हैं। इस ही अगम भाषा में परिणम दशा कहा है। जहाँ तब जीव परिणम रूपा में है। अर्थात् छत्वे गुण स्थान और मातृ के निरनिशय भाग पर्याप्त एक दूसरे का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता ही रहता है। यह अवश्य है कि प्रत्येक जीव अपनी अपनी ज्ञान गरिमा विवेक बुद्धि उपाय शक्ति और निमित्त शक्ति के अनुगार कर्म या अधिक प्रभावित होना और करता है। किन्तु गवया अप्रभावित अछूता नहीं रह सकता और पूजन प्रभावित हो यह भी नहीं है। साहे का गाथा अग्नि को धावना ह अग्नि लिखती है और धारी ओर से। वह (गोला) सर्वांग में अग्नि को आत्म मान कर लेता है इतना अधिक उसमें तल्लीन हो जाता है कि आगे अपने अस्तित्व को भी भूलने में लगता है। फल उसकी आहूति प्रहृति रङ्ग रूप स्वभाव सभी परि वर्तित होने लगता है तब होना क्या है? नाना रूपों में बनने लगता है तब विमल बनाई से लेकर बीम गाटर नैन मशीन आदि अंतर्ध्यात रूप ध्य घटनता रहता है यही हास सस री विकारी परिणत दशा प्राप्त जीव की है। वह भी वेद-गीधे वनस्पति से लेकर मनुष्य सब देव नारकी आदि सब विविध पर्यायों में विविध रूप धारी धारण कर छला बना घूमता रहता है। पर संयोग हटे तो यह जादूगरी मिने। जहाँ जालियापन गया कि असली तत्व सामने आया। वास्तविकता हर पदार्थ के अन्दर विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने शुद्ध स्वभाव में लीन है परन्तु पर का तनिक भी सम्बन्ध लगा है तो वह विकारी हुए बिना नहीं रह सकता। आत्मा पर संयोग से विकृत है विकारी है इसी से ही दुखी भी है। दुख इसका साथी बन गया जो यथा समय इसे अपने लक्ष्य सही के मुख की ओर आकृष्ट करना रहता है घुमाता रहता है। यह सब हमारी कमजोरी है। हम स्वयं अपने ही दबाव में दबकर कुचले चले जा रहे हैं। उठने का अवकाश ही नहीं पा रहे। किन्तु हे ज्ञानिन्! जागो, ममज्ञो तो तुम्हें सचत होन और उठने में दर नहीं लगेगी।

अतिशय शोक क्यों हो जाते हैं? बीनराग प्रभु के असाध्य सिद्धान्तों के प्रचारक शांतिन रत्न सम्प्रदाय यन्त्रणी प्रभावना अङ्ग के पोषक चमत्कारों द्वारा अतिशय शोक की स्थापना कर लेने हैं। भग्य जन पुण्डात्मा सरन मानव नाना प्रकार की संसार

आकृति हो पीडा सहने में असमर्थ हुए श्री

जीतनाभी प्रभु की शरण में आते हैं। ब्रह्मा भक्ति विमोह लौकिक मत्तन उपचारों से ब्रह्म प्रभु चरणा में समस्त अरमानों को अर्पित कर उन्हें ही अनन्यशरण मान विश्वस्त हो जाते हैं। धर्मवत्सल शासन देवी-देवता उनकी भक्ति अवाटय ब्रह्मा से प्रसन्न हो उनकी मनाकामना पूर्ण करने सबट निवारण में योग्य निमित्त बन जाते हैं। नक्त जानता है प्रभु वातरागी हैं रागद्वेष सहित हैं पूजा और निन्दन में सम भाव हैं या उन्हें तो कोई भाव है ही नहीं, वो तो अपस ही में आप ही मीन हैं। तो भी अपने साधर्म्य भाइयों के समान उन शासन रणको से प्रार्थना कर अपने कार्य की सिद्धि कराने में सफल हो जाते हैं। ये शासक देवी देवता स्वयं सम्मानजन से युक्त होन हैं और धर्मात्माओं की रक्षा कर हृषित होते हैं। धर्म धर्मात्माओं के आश्रित होता है अतः धर्मात्मा का संरक्षण करना धर्म का रक्षण करना है। धर्म की स्थिति वृद्धि-अभावना सम्पन्नजन की पापक है। प्रभावना सम्पन्नजन के आठ अङ्गों में एक प्रमुख अङ्ग है। अङ्गों के पालन करने में सम्पन्न निमित्त और पुष्ट हो जाता है। यही सम्पन्नजन ससार का धातक है। ससार की निवृत्ति बिना सम्पन्न के नहीं हो। सकृत् सम्पन्नपूर्वक ज्ञान और चारित्र्य साधक होत है। रत पथ का मूल बाज यही है। बीज बिना वृक्ष नहीं हो, सकृत्। उसी प्रकार सम्पन्न बिना आरम स्वरूपा पतन्य बन्ना ही नहीं हो सकती। अस्तु सम्पन्नजन धारण कर उसके अङ्गों का सम्पन्न पालन करना अनिवार्य है।

हे आत्मन शरीरमाद्यम मनु धम साधनम् यह युक्ति जीवन में मज्जाक सा प्रतीत होती है। किन्तु जीवन चलने पर अनुभव में इसका मूल स्पष्ट समझ में आता है। तब आचार्यों का कथन कि 'हे साधु' मार्जाररस्तिनोपय मा कार्यं तप । मार्जार विज्ञान जिस प्रकार बोलना प्रारम्भ करती है तो बड़ी तेज आवाज में बोलती है पुन धीरे-धीरे मन्द मन्द और मन्दम होती हुयी एकदम शान्त हो जाती है। इसी प्रकार जो साधु या साध्वी दीक्षा लेते हैं तो भक्ति मद् या यशसिप्ता अपवा भावावेश में आकर महान बठार तीव्र तपश्चरण करने में लग जाते हैं। उप्राप्त तप उपवास रस परित्याग आदि बाह्य तपों में विशेष अनुरक्त हो जाते हैं। फलतः शरीर क्षीण हो जाता है कर्पायें उग्र होने लगती हैं अती लाकाति है कमजोर ज्यादा गस्सा भारी बाली बहावत थालू हो जाती है। हाँ यदि बाह्य तपश्चरण अन्तरङ्ग तपश्चरण भी बढ़ रहा है काय व भाव कर्पायें जो वृथ हो रही हैं तब जो तपश्चरण बराबर अतः तब चलता रहता बढ़ता रहेगा और उत्तरा तर बिकासोमुख होकर अन्त में निदि की प्राप्ति हो ही जाती है। हमारा काय ऐसा हो जिसने हमारे पुण्य की उत्तरोत्तर वृद्धि और सन्तोष शान्ति की वृद्धि हो उसी प्रकार का तप होना चाहिए। व्यवहार और निश्चय दोनों का योग ही काय सिद्धि का अष्टम तप उपाय है। दोनों के एकीकरण से ही ससार का नाश होता है। ससार नाश करना ही है तो दोनों बाह्याभ्यन्तर तपों में सामञ्जस्य करो। दोनों को

समस्त पदार्थों में निरन्तर होती रहती है। संक्षेप में सयोग भूतक जिज्ञा भी धारणा है। उन सबमें विभाव रूपता है। वैभाविक शक्ति जड़-गुण-गल और जीव दोनों में विद्यमान है तभी तो ब्रह्म मैत्र जीव को अपने अनुभूत परिणाम सेना है और जीव में परिणमित हुआ जाता है। इन दोनों का संयोग स निवर्ण से ऐसा स्वभाव ही बन गया है ता भा ग्न दूसरा कोई भी अपने अपने निज स्वभाव जड़ता और जननता का तनिक भी परिवर्ण नहीं करते। जरा भी छोड़ने नहीं है। दोनों अपने भ्रम में ही रहते हैं। सरय है यह और अकाट्य विभाग अटल भ्रम गत्य है। तो भी संयोगी अवस्था में एक दूसरे से प्रभावित अवश्य होते हैं। एक दूसरे पर अपना अगर अवश्य दासत है। इसे ही आगम भाषा में परिणत दशा कहा है। जहाँ तक जीव परिणत गता में है। अर्थात् छठे गुण स्थान और मातृ के निरनिशय भाग पर्यंत एक दूसरे का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता ही रहता है हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक जीव अपनी अपनी ज्ञान गरिमा विवेक बुद्धि उपादेय शक्ति और निमित्त शक्ति के अनुसार ब्रह्म या अधिक प्रभावित होता और करता है। किन्तु मय्या अप्रमाणित अछूता नहीं रह सकता और पूजन प्रभावित हो यह भी नहीं है। सोते का माया अग्नि का छावना है अग्नि विधनी है और चारों ओर से। वह (माया) सशरीर से अग्नि को आरम मान कर लेता है इतना अधिक उसमें तल्लीन हो जाता है कि आगे अपने अस्तित्व को भी भूलने लगता है। फलन उसकी आहूति प्रकृति रङ्ग रूप स्वभाव सती परिवर्तित होने लगता है तब होना क्या है ? नाना रूपों में डूबने लगता है तब विमल कान्ति से लेकर बीम गाटर जैन मशीन आदि अनेकधा रूप रूप बदलता रहता है यही हाल सब री विकारी परिणत दशा प्राप्त जीव की है। यह भी पेड़-पौधे वनस्पति से लेकर मनुष्य तक देव नारकी आदि सब विविध पर्यायों में विविध रूप धारी धारण कर छना बना घूमता रहता है। पर संयोग हटे तो यह जादूगरी मिटे। जहाँ जालियापन गया कि असली तत्त्व सामने आया। वास्तविकता हर पदार्थ के अन्दर विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने शुद्ध स्वभाव में लीन है परन्तु पर का तनिक भी सम्बन्ध लगा है तो वह विकारी हुए बिना नहीं रह सकता। आरमा पर सयोग से विकृत है विकारी है इसी से ही दुखी भी है। दुख इसका साथी बन गया जो यथा समय इस अपने लक्ष्य सही के मुक्त की ओर आकृष्ट करना रहता है घुमाता रहता है। यह सब हमारी ब्रह्मजोरी है। हम स्वयं अपने ही दबाव में दबकर कबले पले जा रहे हैं। उठने का अवकाश ही नहीं पा रहे। किन्तु हे ज्ञानिन् ! जागो, समझो तो तुम्हें सचत होन और उठने में देर नहीं लगेगी।

अनिशय धन क्यों हो जाते हैं? बीतराग प्रभु के अकाट्य सिद्धांतों के प्रचारक शास्त्रों के सम्यक् विचार यही प्रभावना अज्ञ के पोषक चमत्कारों द्वारा अनिशय धन की स्थापना कर लेते हैं। भगवत् जन पुष्पावली सरस मानव नाना प्रचार की सचार आधिपत्याधियों से आकृति हो पीडा सहने में असमर्थ हुए श्री

विहीन साधक नहीं आत्मा का धातक है। सरलता कथाय विहीनता अपरिग्रही निराश्रयी उपमम शरीरक विजयी सहित्य और जितेन्द्रिय होता चाहिए। य गुण जिनकी मात्रा में ज्ञेय साधक की साधना उपन हो अन्त में उसे प्राप्त होगी। भीनी ध्याना और दमि साधक ही सत्त्व काय हान में समर्थ हो सकता है। निष्ठात ध्यान, तब धम आत्म आध्यात्म शास्त्रों के रहस्य का ज्ञान होना चाहिए। साध हा पुत्रा ज्ञानि और साधकान्ता से पराङ्मुख होता चाहिए। भावा मिथ्यात्व और निम्न ज्ञान नीला ज्ञानों में रहित हो। साध काय है वेना काय है। अन्तरज्ञ की सङ्काश साधना को भी गन्तावर कामत्वं कर दिया। अस्तु साधक तीन शम्भा में रहित ही होता चाहिए। मुक्त परिवर्तनी हा। निम्न जयी हो। प्रमाण रहित हा। ज्ञानकर मरल हिताहित परीक्षा होना चाहिए। साधक बीज है। उभय नपों से उभ बढ़ना है। चारो दिग्गेषा से तत्त्व समीक्षा करन में योग्य और निष्ठात होना अनिवार्य है। अवाह्य सत्य पर अधिन साधक ही सत्त्व हो सकता है। साधक की सत्त्वता उस ही का सत्त्व प्रभाव है।

आइये आइ 'साध' के सम्बन्ध में विचार करें। साध का अर्थ है जिसे प्राप्त किया जाय। प्रप्य प्राप्त सत्त्व वस्तु। वह साध क्या हो सकता है? आ अत्मा का साधक का अन्तर कर सब वही सत्त्वा साध है। साधक प्रमम साध्य की निर्दिष्ट करता है। अनिम साध्य ही निश्चय साध्य है। वह है मोक्ष निष्ठान्। उस अवस्था में पदचर के ज्ञान हम अय सत्त्वक साधना का भी आत्मधन बना हुआ। प्रारम्भ में हम साधक से मुक्त हैं। विषय-वस्तुओं में अधिष्ठान हैं। इनमें बचने का साध परमेश्वर। प्रमम साध्य है। साधना का आराधना ही साध बना सकते हैं। उनका मुक्तानुक्त ज्ञान कर ही हम सब साध बना सकते हैं। साधक वान ही वह साध्य से साधन हो गया और उदाध्याय परमेश्वरी बन गया साध्य। ज्ञान ध्यान-धन तीन से साध्याती निष्ठ से उदाध्याय परमेश्वरी बनन के लिए अन्तर्गत अध्यात्म ज्ञान पदार्थ प्राप्त होना में सब सत्त्वा ही उस साध्य की उपरिष्ठ है। जिन समय साधक इन साध्य कर सब परिणामित हुआ कि अन्तर्गत साधक परमेश्वरी साध्य हो जाता है और वह सब साधन बन जाता है। य तीनो वान साधु वान में ही स्थित है। किन्तु साधक भाव में सब दूसरे के पुरक होने में उपरोक्त साधन से साध्य बन जाते हैं या वा कहो कि साधक ही साध्य बनता धारण बना जाता है। अब निम्न से नी के साध्य पर जाता है। य भी दो कर है। अन्तर्गत और विष्ट। अन्तर्गत अवस्था साध है। अन्तर्गत साधन। अन्तर्गत वान वान ही सटी साध्य साधन और इनके निर्मित में प्रप्य निष्ठातका साधन हो जाती है। यह अन्तर्गत साध्य है। इसमें परिणाम नहीं हुआ। यह सब अन्तर्गत वान सब ऐसी ही रहेगी। अन्तर्गत साधकान्ता में अन्तर्गत परमेश्वरी साधक कर से साध्य है। जिन निर्मित में साधक सब साध्य कर हो जाता है। सटी साधकान्ता समस्त साधन में सब अधिष्ठान मुक्ति प्रकृत है। वस्तु परमेश्वरी ही हमारी साध है। यह ही हमारे साध्य की निर्दिष्ट करान बन है।

नकर करने से ही बाग गिद्धि होता सम्भव है। अमुक्त प्रज्ञा को समझकर आगे बढ़ने से निष्कण्टक भाग हा जाता है। ज्ञान की जगति गन्धिवा मुक्त गन्ती है। सभी जीवन विकास हो सकता है। विज्ञानाभ्युप प्राणी एक ही नियमित रूप से अवश्य ही मुक्ति गिद्धि करने में समर्थ हो जाता है।

हमारी आत्मा 'सुम साधन' साधन का वस्तु है साधना। साधना एक कला है। यह जितनी सुगम है उतनी ही कठिन और दुःख भी। साधना में चार बातों पर विचार करना अनिवार्य है। साधन साधक साधना और फल। बीज बोध करने समय भूमि समय बीज और उगता पत्र समझकर बोध किया गया बीज ही योग्य पत्र प्रदान कर वृक्ष का सुगम प्रदान करता है। यह सुगम लोचन परनिमित्तक ताशवान इच्छित है। निम्न साधन को गिनते वाता मग अनीत्य अविवक्षित मगन रहने वाला आरम्भ प्रदान होता है। विचारणीय है इस लोक सम्बन्धी क्षणिक सुखाभास को पाने के लिए बिना अमृत्य शुभाशुभ विचार धार परिश्रम विविध कठिनाई और अनेक उपस्थ सह्य करने पड़ने हैं निम पर भी यह प्राप्त सुवच्छाया आदिक गई। फिर भला वह क्षणिक सुख क्या आनन्द दे सकता है कुछ भी नहीं। यथा-यथा भवत पया ता भव भव म दन्ता फिरता है सग की स्वप्न तनि को गजाना ही रहता है कि मृदुराज अचानक धावा कर क्षणमात्र में जीवन नीला की इतिथी कर डावता है। पुनः-पुनः भव भव म इसी प्रकार भटक भटक मृग वृष्णा में उल्लास जीवन संसार हिंडोल में झूलता रहता है। अब साधना के पथ पर आजा। साधना रणमय है शीत द्रव समय ध्यान स्वाध्याय मनन अनुचिन्तन वीतरागता वराग्य त्यागादि हमारे साधक परिकर हैं। साधना एक स्वयं अपने में परिपूर्ण भावना है। आरम्भबलवीर्य की उत्साह ३ अनन्त चतुष्टय दायक मुक्ति साधक और कल्याण कारक है। अतः हमारे अग प्रत्यक्ष का सम्पन्न पूर्णतः शक विवक्षेपण की भाँति जानना परस्वना अनिवार्य है। बिना परीक्षा किये अपनाया कोई भी अज्ञ उसका साधक न हो सकता है। निमित्त बलवान होना चाहिए साथ ही सरल हृदि सवन और सफ़्त होना ही चाहिए।

सप्रथम साधक बनिये। साधना के पथ पर बढ़ना है। पथिक का सर्वोत्तम गुण निभयता सम्पन्न होना चाहिए। कायर भीरु साधक कहीं प व्युत्त हो सकता है। मृगचारी बनकर भटक सकता है। निर्भय के साथ भीरु भी होना अनिवार्य है। समार शरीर भोगों में भयातुर हो सवेग मुक्त। वराग्य भरा हुआ। तत्त्वज्ञ होना साधक का परमावश्यक है। तत्त्वविचार निपुण साधक विषयासक्त नहीं होता। ३३ सागर पयत् आपा मस्तक सुभाभिभूत रहने पर भी सर्वोप सिद्धि स्थित वह मित्र तत्त्व चिन्तना के बल पर उसमें तनिक भी लीन नहीं होते अपितु जल विषय मनन वन सनन अछे रहकर अनुप्रेक्षा और तत्त्वचर्चा में ही तल्लीन रहते हैं। यह है सम्पन्न का माहात्म्य अब साधक सम्पन्न ह्य ही हो सकता है। सम्पन्नान

विद्वान् साधक नहीं आत्मा का धातक है। सरलता कथाय विहीनता अपरिग्रही निरारम्भी उपमग्न भरीपक विजयी-महिम्न और जित्ति-य होना चाहिए। य गुण त्रिगुणा भावा म रहेंगे साधक को साधना करने ही अगो म उस प्राप्त होगी। मोती ध्यानी और क्षीर साधक ही मकर बाय हान म समर्थ हो सकता है। मित्रात दणन तक धम आगम आध्यात्म शास्त्रा न रहस्य का साक्षा होना चाहिए। गाय ही पूजा दशानि और साभावाया से पराङ्मुख होना चाहिए। साया मिथ्यात्व और निगन रूप तीना गत्या से रहित हो। गाय बाया है पना बाच है। अररु को सजाकर साधना को भी गलाकर बीजत्व कर देगा। अस्तु साधक तीन गत्या स रहित हो होना चाहिए। मुख्य परित्यागी हा। निग्न प्रती हो। प्रमाद रहित हो। जागरूक मरन हिताहित परीक्षा हाना चाहिए। साधक बीज है। उभय व्यो से उभय मन्त्रा है। चारो दिगो स तत्त्व समीक्षा करने म योग्य और निग्रात होना अनिवार्य है। अकाद्वय लक्ष्य पर अद्विग साधक ही मकर हो सकता है। साधक की सफलता उम ही को मकर प्रयास है।

आइये आज साध्य के सम्बन्ध मे विचार करें। साध्य का अर्थ है जिसे प्राप्त किया जाय। प्राप्त प्राप्त स-उ वस्तु। वह साध्य क्या हो सकता है? या आत्मा को मनुष्य बना धनर कर सके वही स-चा साध्य है। साधक प्रथम साध्य की मिद्धि करता है। अनिम साध्य ही निश्चय साध्य है। वह है मोक्ष मिद्धा। उम अवस्था म पहुचने के लिए हमें अय सहायक साध्यों का भी आसम्भन करना होगा। प्रारम्भ म हम राग द्वेष मुक्त हैं विषय-व्यायो मे अभिभूत हैं। इनसे बचने काय साधु परमेष्ठी प्रथम साध्य है। साध्यों की आराधना हा गाय बना मक्नी है। उनका गुणानुराग किया कर ही हम स्वय साधु बना सकते हैं। साध व पावे ही यह साध्य म साधन हो गया और उपाध्याय परमेष्ठी बन गया साध्य। ज्ञान ध्यान-निर तीन य साध्यानी निद्र म उपाध्याय परमेष्ठी बनने के लिए अगल अमीगण ज्ञाना पयाग भावना म रन मना ही उम साध्य की उपलब्धि है। त्रिगुणय साधक इन साध्य कर स्वयं परिणमित हुआ कि अगला आचार्य परमेष्ठी साध्य हो जाना है और यह सब साधन बन जाना है। य तीना व साधु व म ही मर्दित है। किन्तु सारनम्य भाव मे एव दूसरे के दूर होन म उत्तरातर साधन से साध्य हान जाने है या यों बहो कि साधक ही साध्य रूपता धारण करता जाना है। अब निजीय ध्येनी के साध्य पर आना है। य भी दो का है। अरहन् और विद्ध। अरहन् अवस्था साध्य है। आचार्य साधक। अरहन् व पावे ही मनी साध्य साधन और एतद निमित्त मे प्राप्त सिद्धावस्था साध्य हो जाती है। यह अर्ध साध्य है। इसमें परिणतन नहीं होगा। यह दण बनन बाय मक ऐसी ही रहेगी। अस्तु मग्न-उपमग्न म अरहन् परमेष्ठी साधन्य कर के साध्य है। त्रिने निमित्त मे साधक स्वय साध्य कर हा बना है। यही साधन्य मकार बायन म परे अविचन मुनि स्वका है। पञ्च परमानी हो हमारी करप है। ये ही हमारे साध्य की मिद्धि करन बाय है।

अनेकान्वयान के प्राज्ञान में साधना का स्वरूप निर्धारण करना बड़ी टेढ़ी सीर है। किन्तु यदि शास्त्र वित्त से इस पर विचार करें तो यह परमोत्तम प्रणाली है जिससे हम सरलता से अपने सत्य को पा सकते हैं। साधना है साधक की क्रिया साधक दो प्रकार की है (१) गृहस्थ और (२) व्रति। गृहस्थ साधना विविध धाराओं में विभाजित है किन्तु अंत सबका एक है वराह्य-यति रूपता प्राप्त करना। गृहस्थ साधना अन्नती और व्रती के भेद से दो प्रकार है। अन्नती अष्टमूल गुण धारण कर ससार शरीर भोगों से विरक्त होता है ससार भीड़ रहता है। पञ्च परमेष्ठी हा का शरणभूत मानता है। यह साधना जीव की भोगामक्त या विषयामक्त नहीं मानती। समास से उत्पत्ती रखती है। द्वितीय श्रेणी की साधना में क्रिया विषय हो जाती है। वह ११ भागों में धाराओं में विभक्त हो जाती है। उनमें भी उत्तम मध्यम और अधो रूप से तीन भागों में बँट जाती है। नाना प्रकार के कष्ट व्यो में बध जाता है। उत्तरात्तर शरीर कृश कृशतर कृशतम होता जाता है और साध ही बपायो भी मरण मन्दनर और मन्दनर होती जाती है। इसमें ऊपर प्रति मास भी साधना, प्रयत्न भोगमात्र की साधक बनकर आती है। इसकी भी साम्ना प्रशान्ता है। २५ मूल गुण रूप १० धर्म रूप १२ अनुपेक्षा रूप २२ परीकृत जय रूप आदि। इन साधनाओं के बल पर किसी भी प्रकार अपने साध्य की सिद्धि कर सकता है। केवल यि उपायन फल हि साध्य के सिद्धांत से अन्तिम साध्य एक ही है। साधना-उपाय है। उपाय निमित्त है। सहायक साधन है। कारणानुविधायी कारण है। जगा कारण होता है वेगा ही काय होता है। साधना में साधक का प्रतिगण साधधान जगत्क रहना चाहिए। साधना का शत्रु विषम है पय पय पर विगलन है प्रलामन है नाना प्रकार के कष्टों से व्यापन भाग्य है। बोहड़ माग्य है। साधक साधधान रहे तो साधना योग्य होगी और उचित साध्य सिद्ध हो जायगा।

साधना का फल क्या है ? साधना से अभिप्राय आत्मसाधन से है। आत्मा एक सद्-असद्-उत्पत्ति स्वरूप है। उसकी प्राप्ति होना ही सम्पूर्ण साधन का उत्तम फल है। अरथा ही अरना एक अविचल और अविनाशक है। चारों आरा धना ही साधना है। सम्प्राप्त आराधना सर्वोपरि है। २५ मूल दोषों से रक्षित अष्ट अष्टा सहित सम्पूर्ण की धारणा पारणा-पालना-वृद्धिगत करना सम्पूर्ण है। सम्प्राप्त नाना है। जीव मज्जुत दान पर जग भवन बनाना परमोत्तम है। आठ म। का ज्ञान पर आत्मा का मानक गुण प्रकट होता है त्रिगुण दया धन सब अत्र परित्याग होता है। आत्मा मज्जुत दोषों की परिहार की साधना आत्मा की पालना को प्रत्याहृत दाता है। पर अनापयना के त्याग में सम्पूर्ण नियत होता है। तीन मुद्राओं के परिहार में तीन रत्नों की सम्पूर्ण प्रकार में उत्पत्ति होती है। य साधना के प्रकार है इनमें साध्य रूप सम्पूर्ण है। इन प्रकार ज्ञान-साधक के सद् अज्ञ है। अर्थ शत्रु उमर्शानि साधना से उत्तम निमित्त

पान की प्राप्ति होती है। विवेक हेयोपादेय बुद्धि जाग्रत होती है। तेरह प्रकार की साधना के फल से उत्तम सम्यक चारित्र्य की सिद्धि होती है। चारित्र्य मानव जीवन का सार है। मानवन्ता का पराग है। मुक्ति का साधक है। प्रत्यक्ष आत्मानुभूति का अङ्ग है। तपोसाधना का यही एक उत्तम साधन है। तप से बलों की निजरा होती है। बर्माभाव में ससार भार हलका हो जाता है। नम्रता सामान्य फल मोक्ष की सिद्धि हो जाती है। मोक्ष आत्मा का निज निवास है। अपना परम धाम है। आत्मा का पूर्ण विकास है। सम्पूर्णतः आत्म स्वरूप की उपलब्धि है। इसे पाना ही साधना का फल है। समाधि साधन का फलित भरित सुन्दर वृक्ष है। उसके शिखर पर पहुँच जाना ही साधना का फल है। मोक्ष पाना।

हे भगवन् आपका आदेश ही मेरा साधन है। आपका अवलम्बन ही ससार सागर से पार करने में समर्थ है। आत्मा का विकास करने के लिए आत्म स्वरूप को प्राप्त भगवान् ही समर्थ हैं। अहन्त और सिद्ध परमेष्ठि का आलम्बन लेकर ही हम अरुन्धत और सिद्ध पद प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। साध्य साधन की कल्पना ही व्यवहार है। व्यवहार ही निश्चय का साधक है। व्यवहार कहो या निमित्त। यह व्यवहार दो प्रकार का है। (१) सत-सत्य रूप या असत्य रूप अर्थात् सम्यक व्यवहार और मिथ्या व्यवहार। दूसरे शब्दों में समर्थ कारण और असमर्थ कारण। जिसमें बाध की सिद्धि नियमपूर्वक हो वह समर्थ साधन है और जिसके निमित्त से बाध सिद्धि न हो ता वह सब असमर्थ असत्य रूप साधन हैं। साधन जुटाना ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ की सिद्धि तभी हो सकती है जब कि हमारा मन्त्र निर्धारित हो और सत्य के अनुसार ही पुरुषार्थ भी होना रहे। सम्यक विवेक पूर्वक काम करने से ही सत्य-साध्य की सिद्धि होना सम्भव है। हे आत्मन्, तेरा साध्य स्वरूपोपलब्धि करना है स्वयंसेन गम्य आत्म स्वरूप की अनुभूति ही आत्म तत्त्व का प्रकटीकरण है। आत्म तत्त्व एक अनाया निराया तत्त्व है। यह सर्वोपरि है। अन्य समस्त तत्त्वों से सर्वथा विपरीत है। चेतनता मात्र एक इसका स्वभाव है। ज्ञान दान रूप चेतना स्वभाव अन्य किसी भी तत्त्व में न हुआ न होगा न हो ही सकता है। अब यह आत्म स्वभाव विचार्य लय है। एक बार प्राप्त होने पर पुनः उसमें किसी भी प्रकार किसी भी काल में परिवर्तन नहीं हो सकता। टकोत्कीर्ण शायक स्वभाव आपका आह्लास्यो आनन्द गुण में सम्पन्न है। यह स्वभाव प्राप्त हो तभी निज स्वभाव की प्राप्ति सम्पन्ना चाहिए।

हे आत्मन् तू दया धर्म का सेवन कर। यह धर्म सर्वोपरि है। कुतूहल-धर्म में भी जीवन रहस्य धर्मो रहस्य है। दया ही धर्म है। दया का अभाव बन्ना भाव से है। पर जीव पर दया करना नहीं रहस्य करने आत्म तत्त्व पर दया करना

धम है। पर जीव पर दया करना पुण्य है शुभ किया है शुभोपयोग है शुभाश्रय का कारण है किन्तु आत्म तत्त्व अपने स्वयं जीव तत्त्व पर दया करना धम है। आत्म दया क्या है? स्व स्वभाव के अनुकूल प्रवृत्ति करना आत्म स्वभाव का समझना आत्म तत्त्व पर दृढ़ विश्वास करना सन्तुलित आचरण करना अर्थात् आत्म तत्त्व में रमण करना आत्म दया है। आत्म धम है या दया धम है। वास्तव में धम शब्द स्व स्वभाव वाची है। जिस जिस द्रव्य का जो जो स्वभाव है उसे उसी उसी रूप में जानना श्रद्धा न करना और मानना वही धम है। दया धम है क्योंकि अनादि काल से आत्मा पर रूप हो रहा है स्व स्वभाव से च्युत होकर नाना दुःख कारक विभिन्न भेष-धारण करना हुआ फिर रहा है। अपने स्वभाव से भ्रष्ट होने के कारण दुःखी है दुनिया पर दया होना स्वाभाविक है इसीलिए अपने पर दया कर शुद्ध स्वभाव को करने का प्रयत्न करना धर्म है। धम व ध का कारण नहीं उपयोग वध का कारण है। उपयोग और धम पृथक् पृथक् हैं। दया रूप होना धम है और दया रूप भाव या परिणमन होना उपयोग है। यह उपयोग शुभाशुभा भेद से दो प्रकार होकर पुण्यपाप रूप कर्मों का कारण होता है। इन्हें ही शुभाश्रय और अशुभाश्रय कहा जाता है। यह प्रविष्टा जहाँ तक है दया धम प्रत्यक्ष मिट्ट नहीं होता। प्रथम अंश में शब्द शुभ रूप परिणमन करता हुआ जब शुभ की परिपक्वता हो जाती है तब धम रूप दया का प्रयत्न काय आत्मस्वरूपोपनिधि प्राप्त होती है यही जीवाण रक्षण धम का फल है।

तत्त्व चिन्तन ज्ञान का फल है। तत्त्व पन्था का स्वभाव है। स्वभाव का निराकरण करना ज्ञानाराधना का फल है। सादर परमेष्ठी शुद्ध निज परमात्मा का फल है। उनका स्वरूप अप्रकृत रहित साक्षात्कार का ज्ञान और सत्त्वपन्थों का हानि पुण्याकार अमूर्तिव कहा है। निराकार भी कहा है। प्रश्न यह उठता है कि पुण्याकार और निराकार विरोधी विषय किन प्रकार घटित हो सकते हैं? अवस्थान है अथवा रूप नय को। जिस पर्याय से सिद्धावस्था प्रकट होती है वह नियम में पुण्याकार ही होती है। पन्था के बन्धने का कारण विग्रहण नाम कम है। वह कम या ज्यादा अवशरीर नष्ट हुआ उस शरीराकार से तत्त्वाकार निकले आत्म पन्था को बन्धन कौन? कारण के अभाव से काय नहीं हो सकता बिना निमित्त के नामित कैसे मिट्ट हो? अब आत्म प्रवेश अंतिम पुण्य शरीर की अवस्था होना से कुछ कम तत्त्वाकार ही रह जान है। इस अवेगा में पुण्याकार कहा है। आवग भाग में भूतभूत प्रणयन नय की अवेगा पुण्याकार स्वरूप है। रूप रम मय वगैरे रहित होने का कारण अमूर्त कहा है। जना कि द्रव्य सद्रूप में कहा है। पञ्च रम वगैरे मया का फल अमूर्तिवया जीव है। इत्यादि सति अमूर्त दो इत्यादि। अमूर्त का फल है किमती मूर्ति आकार नहीं है इसी अवेगा से निराकार कहा है। अब भिन्न भिन्न अवेगा से भिन्न भिन्न गुणों का प्रतिपादन है। फिर अनन्तवादी ही

ज्ञान की पूर्णता रतत्रय है और रतत्रय की उपलब्धि ज्ञान की पूर्णता है । तीनों का एकीकरण ही आत्मा है ।

हे आत्मन् आशा पिशाच है । भयङ्कर है । नाशक भी है । आशा प्रधानतः दो प्रकार की है जीविताशा और घनाशा । अन्य भी अनेकों आशाएँ हैं वे सब ही जीवन और घन से सम्बन्धित हैं । आशापूर्ण हुई कि मानव पुण्य का बर्धाई देना है । आशा अनुकूल फलित नहीं हुयी तो बस पाप को कोसना है । दुर्भाग्य की निन्दा में जट जाता है किन्तु जो आशा ही नहीं करते वे न उसकी पूर्ति में फूलते हैं न अपूर्ति पर परचानाप ही करते हैं । अपितु हृष विषाद शून्य आशा निराशा दोनों से ऊपर उठ जाते हैं । हृष विषाद का कारण भूत पुण्य-पाप ही कम है विधि है । भाग्य है । जहाँ तक आशा का भङ्ग रहना है भाग्य बनेगा बिगड़ेगा ही । आशा नहीं तो शुभाशुभ क्रिया नहीं । शुभाशुभ कर्माभाव होने पर सुख-दुःख रूप पुण्य-पाप भी नहीं होने और तब आत्मा इन्द्रिय जय सुख दुःख से ऊपर उठकर स्व स्वभाव में आ जायेगा । शुभाशुभ विकल्पाभाव में आत्मा शान्ति होता है सम्यग्दर्श बनना है सम्यक् चारित्र्य कहलाता है । वहाँ बंध नहीं आसक्त नहीं होता । वह जानना है । सुख-दुःख एक हैं । शुभाशुभ दोनों ही शुद्धात्मा के घातक हैं । तब पुण्य-पाप रूप विधि भाग्य उसका क्या बिगाड़कर सकत है । जिसने निधनता की घन मान लिया मृत्यु को ही जीवन समझा जान मात्र चण्ण युक्त मानव का भाग्य विधि का कम क्या बिगाड़ सकता है ? क्या बना सकता है ? कर ही क्या करना है ? कुछ भी नहीं । हम दुःख होता है । कब ? जब हम किसी वस्तु को सुख की साधन समझते हैं और उस वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं । इसी प्रकार हम इष्ट बुद्धि भाग्य पण्य के वियोग होने पर दुःखानुभव होता है । जब किसी भी मौकिक पण्य में इष्टानिष्ट कल्पना ही न रहे तो उस पण्यत्रय आशा निराशा भी हम नहीं हो सकती । आशा ही नहीं तो फिर उसकी पूर्ति में सुख और अपूर्ति में दुःख कैसे संभव हो सकता है ? अर्थात् न सुख होगा न दुःख क्योंकि दोनों के कारण आशा निराशा ही नहीं है । कारण के अभाव में क्या नहीं हो सकता । हे साधो ? यही वास्तविक आधुत्व है । साधु धर्म राम-रव दाना से परे है । जहाँ राग होगा द्वेष आ ही जायेगा । मित्रता होगी तो शत्रुता भी आवे बिना नहीं रह सकती । पानी रहेगा कीचड़ होगी ही । मेरापन आया तो तेरापन कहाँ जायेगा ? जहाँ मेरा या मेरी जिस वस्तु के प्रति कल्पना हुई कि वन वहीं राग और द्वेष आ फूलते हैं । किसी न किसी वस्तु को हम अपनी कहते अवश्य हैं किसी न किसी को हम पराधी भी अवश्य ही कहते हैं । यह मेरा-तेरा का भाव ही रागद्वेष का मूलभूत कारण है । अन्तु मुनिस्मिन् देखा जाता है जहाँ अपनत्व बुद्धि है वहाँ राग है और जहाँ परस्पर बुद्धि है वहाँ द्वेष है । जहाँ अपनत्व-परस्पर का विचार नहीं है वही स्वात्मापन्नत्व है । स्व-पर विज्ञान है । आत्मा की प्राप्ति है ।

ना फिर पहराहूँ मजुरा। उड्डाणा बड़ने लगी है तब होता क्या है ? वह आते उन दबी भावना के उभार के प्रवाह में योगायोग बिचार विहीन होकर आत्म की भाव बड़ जाता है और पुन असाध्य रोग का बिचार बा जाता है। उन अर्द्ध स्वस्थ दशा में यदि वह स्वयं मात्प्रधान रह गया अपना अहं द्वारा सम्बोधित किया तो अस्वस्थ पुन स्वस्थ न भव पान में समर्थ हो सकता है। यदि तो बाह्य स्वास्थ है अन्तरात्म स्वास्थ तो आत्म आन्तरिक विकारों को दूर करता पाश्र्वि। विकार भाव पर भाव है परमाका का मिश्रण उद्वेग का कारण है उद्वेग विचर्यों की जड़ है बिचर्य दुःख का कारण है। अस्तु आत्म स्वास्थ ही सर्वोपरि है। हे भाई आत्म शान्ति त्रिम माधन में रह गये उन्हीं साधना को एकत्रित करना चाहिए। जो कृपा मात्प्रान्तक निमित्त है उदात्त मान परिहार करता पाश्र्वि मही मही पुण्याय है। अग्न प्रयत्न मात्र श्रमोत्साह है। धर्म मात्र में मुख्य शान्ति नहीं मिल सकती। बिरी मयह करने में सर्वोपरि जीव है मनुष्यको का भावों उन्हाकरण सब करने में लिया जाता है ये अहंनिष्ठ परिश्रम करनी है किन्तु दाग मात्र भी इहं मुण शान्ति नहीं मिलती। अस्तु आत्म शक्ति ही मुख्य है और उगे गने का प्रवास ही सही पुन पायें या उद्योग है।

अपनेति श्रुत अवात् जा मुन। जाय वह श्रुत है। किन्तु धातूनीमनसाय व अनुसार धम क्षेत्र में या आगम में श्रुत का अव्यवस्था है। वह शास्त्र जो पूर्वोक्त विरोध से रहित हो। सवज्ञ कीतराग द्विधापेक्षी द्वारा प्रतिपादित किया गया हो। क्योंकि इन विशेषणो युक्त ही वस्तु निर्णय सच्चा मवाय तत्व प्रतिपादक हो सकता है। अन्य नहीं। सर्वोत्तम कारक आगम ही सच्चा आगम है। जिसमें प्राणी मात्र का सम्पुदय हो जीवमान के कल्याण का विकास माग बढाया गया है वही सच्चा अकाट्य उत्तमोत्तम शास्त्र है। शास्त्र शब्द शास्त्र धातु के निष्पन्न है। शास्त्र का अर्थ है शासन करना। अनएव शास्त्र बड़ी है जो हम पर अधिकारपूर्वक अपना प्रभाव डाल सके हम अपने अधिकार में रख सके। हमारा माग निर्देश कर सके। स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं जिसके द्वारा हमारा ज्ञान प्राग्जल हो निमल हो शुद्ध हो और माय ही विकासो-मुख हो वही सच्चा शास्त्र है। निर्णय ज्ञान का अभिप्राय है सशय विषय और अनव्यवमाय रहित और विकासो-मुख से अभिप्राय है केवल ज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ। वास्तव में ज्ञान वही है जिससे तत्व का अवरोध हो चित्र का निरोध हो और आत्मा की शुद्धि हो। आगम तत्व का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करता है और उसी के आधार पर हम तत्व का अवयम करते हैं। आत्मा भी तत्व है म भी आत्मा है। आत्मा एक तत्व है। आत्मा का प्रतिपादन आगम है। आगम व अनुसार आत्म तत्व का ज्ञानता और समझना वा ज्ञान है ही किन्तु उम पर अटन रुचि होना परमावश्यक है। श्रद्धेय ज्ञान तत्व में रमण करना उत्तम आनन्द लेना भी ज्ञान की ही विशेष किया है। इसके बिना वह पून विकास नहीं पाना। अन

ज्ञान की पूर्णता रतत्रय है और रतत्रय की उपलब्धि ज्ञान की पूर्णता है। तीनों का एकीकरण ही आत्मा है।

हे आत्मन् आशा पिशाच है। भयङ्कर है। नाशक भी है। आशा प्रधानतः दो प्रकार की है जीवित-आशा और घनाशा। अब भी आपको आशाएँ हैं वे सब ही जीवन और धन से सम्बन्धित हैं। आशापूर्ण हुई कि मानव पुण्य का बड़ाई देता है। आशा अनुकूल फलित नहीं हुयी तो बस पाप को कोमलता है। दुर्भाग्य की निन्दा में जट जाता है किन्तु जो आशा ही नहीं करते वे न उसकी पूर्ति में फूलते हैं न अपूर्ति पर परचाताप ही करने हैं। अपितु हृष विषाद भूय आशा निराशा दोनों से ऊपर उठ जाते हैं। हृष विषाद का कारण भूत पुण्य पाप ही कम है विधि है। भाग्य है। जहाँ तक आशा का भङ्ग रहता है भाग्य बनेगा विगडेगा ही। आशा नहीं तो शुभाशुभ किया नहीं। शुभाशुभ कर्माभाव होने पर सुख दुःख रूप पुण्य-पाप भी नहीं हाने और तब आत्मा ईदिय जय सुख दुःख से ऊपर उठकर स्व स्वभाव में आ जायेगा। शुभाशुभ विक्लभाव में आत्मा ज्ञानी होता है सम्पूर्ण बनता है सम्पूर्ण चारित्र्य कहलाता है। वहाँ बंध नहीं आसक्त नहीं होता। यह जानता है। सुख-दुःख एक हैं। शुभाशुभ दाना ही शुद्धात्मा के घातक है। तब पुण्य-पाप रूप विधि भाग्य उसका क्या विषादकर सकते हैं। जिसने नियन्त्रण को धन मान लिया मृत्यु को ही जीवन समझा जान मान बन्धु मुक्त मानव का भाग्य विधि या कम क्या विगाद सकता है? क्या बना सकता है? कर ही क्या सकता है? कुछ भी नहीं। हृष दुःख होता है। कब? जब हम किसी वस्तु का सुख की साधन समझते हैं और उस वस्तु की उपलब्धि नहीं हाती अथवा उपलब्ध होकर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हम इष्ट बुद्धि मान्य पदार्थ के विषय होने पर दुःखानुभव हाता है। जब किसी भी लौकिक पदार्थ में इष्टानिष्ट करना ही न रहे तो उस पदार्थत्रय आशा निराशा भी हम नहीं हो सकती। आशा ही नहीं तो फिर उसकी पूर्ति में सुख और अपूर्ति में दुःख कबे सम्भव हो सकता है? अर्थात् न सुख होगा न दुःख क्योंकि कि दोनों के कारण आशा निराशा ही नहीं हैं। कारण के अभाव में कार्य नहीं हो सकता। हे साधो? यही वास्तविक आधुनिक है। साधु धर्म राम-रथ दोनों से परे हैं। जहाँ राग होगा द्वेष आ ही जायेगा। मित्रता होगी तो शत्रुता भी आवे बिना नहीं रह सक्ती। पानी रहेगा कीचड़ होगी ही। मेरापन आया तो तेरापन कही जायेगा? जहाँ मेरा या मेरी जिस वस्तु के प्रति कल्पना हुई कि कम वहीं राग और द्वेष आ कूटने हैं। किसी न किसी वस्तु को हम अपनी कहने अवश्य हैं किसी न किसी को हम पराधी भी अवश्य ही कहते हैं। यह मेरा-तेरा का भाव ही रागद्वेष का मूलभूत कारण है। अस्तु मुनिस्मिन् देना जाना है जहाँ अनन्त बुद्धि है वही राग है और जहाँ परस्पर बुद्धि है वही द्वेष है। जहाँ अनन्त परस्पर का विचार नहीं है वही स्वरमात्रावधि है। स्व-पर विज्ञान है। आत्मा की प्राप्ति है।

राम द्वेष इष्टादिष्ट बुद्धि ही दुःख की कारण है। कोई भी पदार्थ किन्तु मात्र भी अपना न था न हूँ और न हूँगा। मात्र हमारी कल्पना से हमारे और परायण हैं। यह मेरा तेरा का व्यवहार ही सुख दुःख का कारण बनता है अथवा न कोई सुख है न दुःख। हे साधो तुम कल्पनिक सुख की ओर दृष्टि मत लगाओ। तुम्हें तो चिरमुक्त चाहिए। वह चिरसुख है आत्मोत्थ आत्म के द्वारा आत्मा में रहने वाला। आत्मा का सुख सच्चा और अकारण है। वही चिरानन्द है। इसी का पाने का प्रयत्न करा। इसी की खोज में लगो। इसी को पाओ इसी की बड़ाओ। न बहो अथ स्थान से लाना है न ले जाना। अपने हाँ आत्मा में विद्यमान हैं स्वयं अपने ही में रहा है। अपने अन्दर है यत्न क्या यथायोग्य प्रकट होना है हम भ्रम के लगाता है पर विपत्त्या से बचाता है आता है चला जाता है ? क्या क्या कि हम उसमें उतरना नहीं चाहते। उसमें तो घाट पाम हैं वहाँ जान में पड़ने में अधिक बाल न लगेगा ज्यादा से ज्यादा जन्ममृत्यु मात्र बम। हे पानि उम क्षण की खाज कर उस समझ उस ही पकड़ फिर उममें रमन कर अनुभव ल डबरा लगा। आनन्द आयोग आल्हाद रूप। चिर रूप। पानावधक स्वभाव युक्त आत्मानन्द।

जीव और जीवन दो पृथक् पृथक् हैं क्या ? हैं भी और नहीं भी हैं। जाव का अर्थ प्राणी है जो पाने दशन चेतना सम्पन्न है। यह व्यापक अर्थ है। इसमें मान का अवरोध होता है। जीवन का अर्थ है कुछ अवधि प्रमाण जीव की पयाय विशेष। यथा मनुष्य जीवन देव जीवन नियन्त्र जीवनात्ति। जीव त्रिहाना यच्छत्र है शास्त्रत निरय है और जीवन क्षणिक है परिवर्तनशील है और वन मान कालमात्र में रहने वाला है द्रव्याधिक नय से जीव है और पर्यायनवाप ता जीवन। जावन क निमित्त से जीव को भी नाना पयायों में भट्ठना पडता है। विविध कष्ट उठाने पडने हैं नाना प्रकार के वेप नाम और कायों का धारण करता पडता है जीवन सीमित है तार असीम है। जीवन आत्ति है जीव अनात्ति है। जीवन शान्त है और जीव अनन्त है। जीव में कोई विकार परिवर्तन या बन्नाय नहीं हाता पर तु जीवन निरन्तर परिवर्तन निवृत्त हाता रहता है। जावन की उत्पत्ति ही पर निमित्त से हाती है। पर सयागा हा जीवन है। जब तक पर सयोग रहेगा जीवन रहेगा पर सयोग समाप्त हुआ कि जीवन भी समाप्त हो जाना है किन्तु जीव जा था बढी है और यही रहेगा उममें काइ सत्तह नहा है। सयाग हा पयायों में हाता है। जीवन सयागी है। किन किन का सयाग है जाव और कम का। कम का सयाग हुआ कि मात्र शुद्ध जाव रह जायगा पुन फिर सयोग कम नहीं हाता। अन एक बार सयाग मिटा कि जीवन सया का समाप्त हा जायगा। पुन कभी जीवन नहा हागा। सयन शब्द एक मात्र रह जायगा। यथा मे हूँ।

स्तुति क्या है ? स्तुत्य के गणोरूपण करने को स्तुति कहते हैं । स्तुत्य क्या है ? जिसका स्तवन किया जाय जिसके गुणा का गान किया जाय वह हमारी श्रद्धेय वस्तु स्तुत्य है । गुणानुवाद वर्त्ता स्तोता है स्तुत कारक है । स्तुति करने से हाने वाला मन प्रसन्न आत्म शान्ति या मनोपोशासि स्तुति का फल है । स्वप्न हो जाता है जसा हमारा श्रद्धय पश्य होगा जसी भक्ति और श्रद्धा रहेगी वसा ही हम उसका फल प्राप्त होगा क्योंकि स्तुति गुणानुवादा गुण बोधन भक्ति श्रद्धानुसार ही होता है । भक्त श्रद्धा का फल है श्रद्धा जानकारी का पराग है । जानकारी क्रिया का प्रतिफल है अथवा प्रबल अवबोध भावना का फल है । श्रुति या श्रद्धा बड़ी होनी है जहाँ हमारा मन टकराना है मन बहा जाकर टिकना है जहाँ हमारी बुद्धि स्थिर होती है । बुद्धि मस्तिष्क की उत्पत्ति है । मस्तिष्क की दन से बुद्धि का विकास होता है । अतः मन मस्तिष्क और बुद्धि के सहयोग से स्तुति उत्पन्न होती है । अतः स्तुत्य मस्तिष्क मन और बुद्धि तीनों का प्रिय हाना चाहिए । हे साधो ! विचारणीय यह है कि वह स्तुत्य शुभ रूप है या अशुभ रूप व शुद्ध रूप । अशुद्ध रूप स्तुत्य तो बार्द भी कुछ भी बर्मा भी बही भी सुमधता से प्राप्य है । वह स्तुति भी उत्तमी ही उत्पन्न है । शुभ स्तुत्य अनेकाम एक ही हो सक्ता है अतः उत्तमी परीक्षा करना अनिवार्य है । परीक्षा की योग्यता उम से भी अधिक आवश्यक है । हे साधक योग्य परीक्षक बनो । मन्त्र मूत्रे की पहिचान करो । सत्यासत्य का भान हुए बिना यथाय स्तुत्य प्राप्त न होगा । आगम के मध्यम से पञ्चवरमेष्टी शुभ स्तुत्य है और शुद्ध रूप स्तुत्य अपना ही शुद्ध स्वरूप अर्त्ता है । स्व स्वरूप की पहिचान और प्राप्ति जब तक नहीं होती है तब तक शुभ रूप स्तुत्य की स्तुति में सन्न रहना चाहिए । शुभ से ही शुद्ध की प्राप्ति हानी है । शुद्ध रूप अपना ही आत्मा है । त्रिकालत्र टकात्मीय भावक स्वरूप आत्मा की पहिचान करो ।

हे आत्मन् दध और बघन एव बघी और हमका फल इन चारों का सम्बन्ध स्वरूप समझो । बिना पृथक् पृथक् अवगत किये तुम छः नहीं सकते और बिना छः कारे स्वतन्त्रता नहीं स्वतन्त्रता बिना शुभ नहीं शान्ति नहीं । बघ मन्त्र ध्वनित करता है कि कोई हो पश्य है । एक कसे बघ कहा जा सक्ता है । गाय बघ को प्राप्त हुयी हमका मनलब गाय के साथ कोई भी अय वस्तु मिनी चाहे वह रस्ती हो फल हो बही हो जो कुछ भी है । उन दोना व बीच कोई भी क्रिया हुई । गाँव लगी बड़ी जुड़े या आँकड़ा लगा ठाना लगा । इस यही बन्ध है । यह बघ कई प्रकार का हो सकता है सयोग सश्रेय रूप शान्ति । आत्मा और कर्म दा हैं । दोनों का मिलना ही बघ हुआ । यथा दूध और पानी दोनों मिलकर एकमेक हो गये इसी प्रकार आत्मा और कर्म परमाणु अणाय प्रविश्य हो जाते हैं । दोनो मिलकर बन गये बघी । आत्मा बघी है और कर्म परमाणु भी बघी है । दो बराबर की शक्तियाँ

मिनी। दोनों ही अणु अणु प्रमाण में होती हैं। दोनों में निश्चय होता है। यह तनाव ही बंधन है। जो दोनों के बीच परस्पर उर्ध्व संचालन है। यह संचालन वास्तविक कोन है? यही है बंधी। बंधी बंधन की निम्न परिभाषा के परिणाम में प्रभावित होता है यह स्वाभाविक है। इस निष्कर्ष का नाम है पण। अणु बंधन गुण है। बंधन की प्रक्रिया है शुभाशुभ गुण दुष्ट जाता जाता आदि। अणु बंधन संचालन या बंधन का पण गुण दुष्ट जीव अणु भोग्य है यही बंधन का पण /। यह साधारण पण है विशेष पण है इन गुण दुष्टों से पण। जो बंधन में अभाव रूप है। बिना बंधन में बंधनमात्र कमे ही? स्वाभाविक वही से मिले स्वाभाविक वही पाये? अतः यह सुनिश्चित है कि बिना बंधन के मुक्ति नहीं मिल सकती। बिना मुक्ति के आत्म गुण नहीं हो सकता। अतः बंधन की प्रक्रिया को सम्यक् जान कर उगे (बंधन) के बाधने की प्रक्रिया अवगत करना अत्यावश्यक है।

हे भयोत्तम सिद्धान्त पारंगामी बनो। नया का पणपान त्यागो जगत् पण या नय त्यागो रहना वही यस्तु स्वल्प का निजय नहीं हो सक्ता यथाय वस्तु स्वरूप समझ बिना तत्त्व जान नहीं हो सक्ता। तत्त्वज्ञान संपन्नता की कुञ्जी है। यह कलिकावत है। उम पर भी हृदयप्रविणी। विट कुमाग गामी कुतर्क विधर्म घममासी लोक अधिकतर स्वभाव से ही हाने घम के मम को न समझ कर वे केवल घम के नाम पर बस हृदय विमोह करने में ही अपना मोह समझते हैं। यही नहीं स्वार्थी घमो भयघात देव गुण शारत्र का अथ लपाकर भोज भयजोषो का सुमात्र ध्युत करने में प्रवृत्त होंगे। अपनी प्रभुता बढ़ाने या बनाये रखने के अभिप्राय से घामिक क्रिया बाण्डों पूजाभिषेकानि पट कर्मों में स्त्री पुरुष का भेद भाव पण करते हैं। प्रथम ता ऐमे दुरभिप्रायीजन धर्मोद्योतन का घान कर अंतराय कर्माजन करते हैं। दूसरे स्त्रियों को निषेध कर तीव्र जानावरणी दशनावरणी और मोहनीय कम की परिपार्थी को भी बढ़ाने की चेष्टा में भी सलग्न रहते हैं। तीसरी बात साधु धर्म में स्वयं माना नहीं चाहते ना नहीं सकते आने का भाव नहीं है यह तो ठीक ही है पर अत्रोक्ति विषय यह है कि ये मनवाने चापलूस साधुओं का भी साधुत्व पर अडिग देखना नहीं चाहते तभी ता रात दिन बटु आलोचना करते हैं अहंनिष्ठ छिन्नावेपण कर जोक की भाँति उनकी कमजोरियाँ रूप रक्त-पान करके अपने उर को प्रसम्भित करते रहते हैं। जो ही समय सर्वत्र सबके लिए एक ही समान नहीं है। त्रिहे दुर्गति का पात्र होना ही है या जो नरक निरोद्धादि से आये हैं उनका परिणाम इस प्रकार कुटिल होना स्वाभाविक है। हे भवत्समन् तू सावधान हो मत भूल कि तू ज्ञानी है ध्यानी और परम विवेकी है। आत्मा और कर्म के जोड़ पर तुझे प्रज्ञारूपी छेनी चलाना है। पर की आर नहीं देखना। जो पर पर दृष्टि रखता है उसका स्व क्षीण हो जाता है। स्व पर दृष्टि रखने वाले को पर स्पष्ट

समझने में आता है वह कभी भ्रम में नहीं पड़ता। तत्काल उसे भ्रम विज्ञान होता है। यही स्वमवेदन की प्रथम भूमिका है। जिसका एक बार स्वात् लेकर पुन कभी नहीं भूलना। उत्तरोत्तर अपने में समाहित हो जाता है। यह है अनेकान्त का माहात्म्य। हे साधो ! जनधर्म को समझो उसकी तह में घुमो। सिद्धांतों का अधिकाधिक अध्ययन कर कृद्विपल कर भजबुल बनाओ। हे साधो जहाँ जन धर्म है वहाँ कन्हू शगडा या विसवात् नहा हो सकता। मेरा धर्म स्व स्वभाव है। तू साधू ॐ आत्मन् । इस अवस्था में वागवात् करना उचित नहीं। यह विवात् मिथ्यात्व का कारण है। मिथ्यात्व अनन्त ससार का बीज है। ससार दुःख है। आत्म स्वभाव से भिन्न अपना अनन्त ससार बनाने वाला है क्योंकि मिथ्या रूप है। हे आत्मन् निराकुण बना। पथ ध्यामोह में आकुलता रहेगी दुःख होगा परित्याग सदाय और दुर्भाग्य होगा ही तब महात्रन साधु रूप व्यप हो जावेगा। यह है अन सिद्धांत त्रिनागम और जिन १५ का सक्षण स्वभाव और सिद्धि। भले प्रकार समझो। सम्यक् क्या है ? जिस प्रकार उसे पाया जाता जा सकता है किन तरह मगाला जाता है किन उपायों से बनाया जा सकता है और किन किन क्रियाओं से अमिट बना कर सम्यक् ज्ञान पारिव की प्राप्त किया जा सकता है। मानास्मान पर विजय पाना रयाद्वात् है। आत्म प्रभावना में तमय होना ध्यान है। कम कालिमा को अनन करना कतय है। साध का गुण मौन है। मौन से ही आत्म सिद्धि है। मौन सब कार्यों का साधक है। मौन से आत्मशक्ति बढ़ती है। आत्म गौरव चमकना है। निज स्वप्न झलकना ॐ। मौनी बनो।

स्वप्न हमारी जाग्रत अवस्था की भावनाओं का प्रतिबिम्ब है। हम अपने स्वरूप जीवन में जो कुछ करते हैं। उनका अनुभव होता है। अनुभव सहारे प्रभाव हैं। प्रभाव एक प्रकार की तस्वीर है। कमरा में फाँटी जाता है। फाँटी चित्र है चित्र छाया गया प्रतिबिम्ब है। इसी प्रकार हमारे अनुभव हमारी चेतन भूमि में अंकित रहते हैं स्वप्नावस्था में ये ही बिजित चित्र रोज समान आते जाते रहते हैं। जिन में हम जा कुछ सोचने विचारते हैं वे ही पूरे अधूरे होकर स्वप्न में जा जाते हैं। य स्वप्नगत चित्र वनमाय विवाधारा की ही प्रतिविम्ब स्वप्न रूप होते हैं यह बात गरी है अपितु भूत एवं भविष्यकाल सम्बन्धी भावावधि भा जाता है। कभी कभी हम जिन कार्यों का भूत भुके होते हैं अथवा वर्तमान जीवन में कभी नहीं किये वे काय विचार धाराओं भी चतविज की भाँति स्वप्न में आकर हम अनुशानित करते हैं। यह प्रक्रिया हमारे जाग्रत और मुज्ज मन की सधि की छोटक है। दोनों का जोड़ है। कभी-कभी इन स्वप्नों से निभयता जाती है। भविष्य में आन वाता विपदाओं का मकेन मिनता है। उनसे छत्रारा पाने का उपाय सूझना है। हम अप्रत्याशित घटनाओं से सावधान हो जाते हैं। जीवन को नयी मोड़ मिलती है। नवीन जीवन

मे उत्साह उमग और सत्परता की सहर दीड उठती है। कभी दुस्त्रिणो के कारण विपरीत परिणमन भी हो जाता है। हनोरसाह और निराश होकर हम अपना सस्त्र खा बैठते हैं। सबका सारांश है कि मन की पवित्रता होने पर हम पूर्वा पर होने वाली घटनाओं की सूचना मिल जाया करती है। हे भव्योत्तम अपनी विचार भण्डारा परिपक्व करो। तत्त्व वितन म रत रहो। आत्म स्वरूप की अनुभूति करो। जन्मी म प्रवेश करो। स्वानुभव म शुद्धी लगाने पर बड़ी सन्भावना म भी आवेगा। उसी की धारणा बनेगी। यदि किसी प्रकार रिद्धि सम्भावित भी होगा तो पूर्व सूचना ही जान से सावधानी हा जायगी।

हे आत्मन् तू निज स्वरूप को समझने की चष्टा कर। व्यवहार सम्यक्त्व का पोषण कर निश्चय को प्राप्त करने की चष्टा करो। व्यवहार सम्यग्ग्यान निश्चय सम्यक्त्व का साधक है। निमित्त है। बिना निमित्त क मर्मितक की सिद्धि नहीं हो सकती है। सराग चारित्र बिना बीतराग चारित्र नहीं आ सता। उनी प्रसन्न सराग-व्यवहार सम्यक्त्व के बिना निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता। कर्पाणों का मन्दम परिणमन ही सम्यक्त्व का साधक है। अन तानुबन्धी चौकड़ी भूय म चारित्र मोहनीय की है किन्तु दशन माहनीय की अभीष्ट साथी होने से दशन गुण का भी मान करती है। चारित्र मोह का घात ता करती है। हम प्रकार यह अनेको एक ही प्रकृति दो काम करती है। चूँकि दो क्रिया करती है तो इसके अभाव म दा कायों का अभाव और दो ही का प्रादुर्भाव होना चाहिए। अस्तु दशन माह के उपशम क्षय क्षयोपशम स और अनस्तानुबन्धी क भी साथ-साथ मे उपशम क्षय, क्षयोपशम से औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है और उसी का अविनाभावी स्वरूपाचरण चारित्र भी होता है। यथा नीम को पीना जाय तो यद्यपि उसका उपभोग नहीं किया गया तो भी उसकी कड़वाहट गले म आवे बिना नहीं रहती। यह कड़वाहट ही उसकी क्रिया है। इसी प्रकार सम्यक्त्व के साथ चारित्र भी होता है। परिणाम मे निमलता सरसता होना ही तो चारित्र है। भगुभ से निवृत्ति और शुभ म प्रवृत्ति ही चारित्र है। शुभ रूप परिणमन ही चारित्र है। यही अनुभूति ही स्वरूपाचरण चारित्र है। कुछ अभिप्राय है कि १३ वें गुण स्थान म ही स्वरूपाचरण चारित्र है। ठीक है वही चारित्र मोह की अने ११ स्वरूपाचरण है और यही दशन मोह के नाश स आविर्भूत परिणाम विमुक्ति हानी है। यह निमलता ही स्व स्वरूप की अनुभूति है।

येन सिद्धोऽयं भगुभ है अन्वित्य है सर्वोत्तम है। इसने समान तत्त्व व्यवस्था अन्वय उपपन्नता हाती। अन्वय दशन म भी तत्त्व विवेचन है किन्तु यह दशन सूत्र यह है कि त्रिगुणे उमे पुण कदा आ सत। सर्वत्र अनेकांश का मानावाप्य है।

वस्तु अनेकान्तात्मक है सामान्य विशयात्मक है उभय पक्ष के बिना वस्तु स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह विशय वर्णन जन दशन हो करता है अतः जन सिद्धांत अनुपम है। इसका कम मिद्वान्त अनास्था है। कम की व्याख्या उसका सूक्ष्मनम स्वरूप तथा वाय का जो स्पष्ट सरन सुनवा रूप जिन शासन मे मिलता है वह अयत्र नहीं प्राप्न होता। वतमान विज्ञान जन मिद्वान्त के अशा से ही अनुप्राणित है। हमारे जनमत का एक एन श = वस्तु का जण प्रणु नियमों का निश्चेपण शुद्ध वज्ञानित है। सौविक जीवन की प्रत्येक क्रिया प्रविजिया वज्ञानित आधार पर ही आधारित हैं। यह है जीवन का विष्लेपण। अतएव त्रिनशासन अद्वितीय है। इस लोक परलोक जीवन मरण स्वग नरक ससार मक्ष जीवाजाव आनि की व्याख्या जन सिद्धान्त मे त्रिम प्रकार वर्णित है उस प्रकार अयत्र नहीं है। जीव नित्य त्रिमोद से निकनकर अनाति मिध्यात्व का नाश कर उस पर्याय का विविध भेषो को धारण कर किस प्रकार ससार में स्वय स्वतंत्र कम कर शुभाशुभ पत्र भोगता है और स्वय ही अपने सत्पुरुषार्थ से ऊपर उठकर क्रमश पूण विकास को प्राप्त होता है यह प्रक्रिया जैन सिद्धान्त क निवाय अयत्र नहीं मिलती। जैन धम ही एक है जो प्रत्येक जीवात्मा का स्वतंत्र अन्तिरव स्वीकार करता है स्वय जीव ही अपने वक्ष भोग का कारण है स्वय परतत्र हुता है और स्वय ही स्वतंत्र हो परमारमा बन जाता है। प्रत्येक भव्यात्मा अपना पूण विकास कर परमारमा भगवान बन अनन्त कान तक अनन्त सुख का उपभोग करता रहेगा वास्तव म यह सर्वोत्तम है।

पुण्य पाप एकही कम की दो अवस्थाएँ हैं। कमपिना दोनों समान हैं। परन्तु कार्य अपेक्षा दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। एक ही माँ से उत्पन्न दो सहोदर सहोदरा पुत्र या पुत्री अपेक्षा एक समान हैं किन्तु तो भी गुण धम स्वभावानि अपेक्षा दोनों में विपरीतता पायी जाती है। एक धर्मात्मा सरल सुन्दर श्रिय आनि गुण सम्पन्न है तो दूसरा पापी क्रूर क्रूर, अशुभ-अश्रिय दुष्ट दुर्जन होना ह। एक सेठ सेठानी हो जाता है तो दूसरा सेवक या भेटी। दोनों ही कम का पत्र है। कम यदि एक ही रूप है तो यह भेन क्यों ? एक शिविका म सवार है दूसरा बच्चे पर दो रहा है। एक कुत्ता पर पर दुरदुराया जाता है तो दूसरा सुन्दर मछपल के रङ्गे पर बैठकर सुन्दर भोजन पाता है। एक ठाकुर है एक पाकर है इसमे स्पष्ट है जडना की अपेक्षा आत्मरवभाव मे विपरीत हाने से वास्तव म कम एक होते हुए भी क्रिया अपेक्षा बहु शुभ और अशुभ या पुण्य पाप रूप भेन से युक्त है। दोनों का भेन विदग्गन है। पुण्य उपाये है पाप हेय है। पुण्य पाप का पातक है। पाप दुखदानी है पुण्य सुख का साधक। यद्यपि यह दुख और सुम दोनों द्विज्य वनति है नरकर हैं आत्म स्वरूप से भिन्न हैं दोनों ही मुक्ति म बाधक हैं परन्तु पाप मुक्ति का पातक भी है और समार बड्ड भी किन्तु पुण्य मुक्ति म तनिक बाधक होता हुआ भी उस भोग का परारा साधक भी है। यथा मरसनी माय है सात केंकरी है चोट सदती है किन्तु सरीर

प्रेमक गुणधाम बन बुद्धि बलक रूप भी उसी में मिलता है। मार मार भी पाप का कोई क्षाम नहीं करता अन्तु उमगा पापों योग्य प्रारण पूर्ण करने है क्यों? क्योंकि हम जानते हैं कि मरणात्ता दुःख न होने हुए भी यह जगती योग्य है उसी प्रकार पुण्य विधि का आत्मसम्पन्न में बाधक है कि पुण्यपरा में यह योग का साधक है आ बलमीर है पोषणीय है उपादेय है। पुण्य देने दे यह उचित नहीं। क्या स्थापना जाना है पुण्य मान के लिए पुण्य का पुण्य करने के लिए कि पुण्य पूरा जाना है धर्म प्रवृत्त होने पर स्वसंवेग जगती पर स्थापना आगे पर। पुण्य भी दो प्रकार है। साधित और निरनिश्चय के भेद से। साधित पुण्य सा सात्त्विक का मया है निमित्त है। तीर्थंकर प्रभृति साधित पुण्य का फल है इगहा पश्चिम भी उसी उपाय जाति का होता है। देखिये तीर्थंकर प्रभु जन्म से अग्रिम जानी होते हैं। अग्रिम जान दवा को भी होता है इन सभी मुनिराज आदि को भी होता है। जानने का सबका समान है किन्तु तीर्थंकर के ज्ञान में विशिष्टता जानी है यह जन्म ही में उपलब्ध रहता है। अन्य जोड़ते हैं तब उपयोग में आता है परन्तु बलमान स्थायी की तत्प्राप्त इन्द्र की शक्ति अथवा हो गई और तत्प्राप्त भूगर्भ दबाकर उनका सहे हुए किया और महाभिषेक किया। अमयी पृथ्वी जीवन में ही तीर्थंकर के पास पुण्य का शरीर का दशन मुनिराज की शक्ति निवारण में समर्थ हुआ। यह क्या है? पुण्य का साहाय्य ही ता। ऐसे उत्तम पुण्य को विना बहने वाला क्या जड़बुद्धि पावे मिथ्यात्व की नहीं होगा? अथवा होगा। यह पुण्य है नहीं। उपादेय है। इस छात्र नहीं जाना यह स्वयं मुक्ति रूप फल देकर स्वयं पुण्यगत सब जाना है। जान पर पुण्य आया यह है ८ व्याख्य है यह मानकर यदि उसे तोड़कर फेंक दिया जाय तो फल की प्राप्ति क्या पड़े नहीं हो सकती। हाँ साधना में पुण्य का पोषण किया जायेगा तो फल देकर वह स्वयं ही सब जायेगा। इसी प्रकार पुण्य मुक्ति का साधक है कारण है। कार्य सत्पन्न हान पर मुक्ति प्राप्त होने पर सहायक साधन स्वयंभर जहाँ का तहाँ रह जायेगा। ह आत्मन् तू सिद्धान्त के हृदय को समझ। तब की परीक्षा कर। यथार्थ स्वरूप समझ कर धृष्टा कर और तदनुकूल आचरण कर।

एक प्रश्न उठता है मनुष्य गति में स्त्री-पुरुष की आयु में कोई फरक नहीं है दोनों ही की अधिक से अधिक इष्ट हो सकती है इसी प्रकार नियन्त्रण में भी है। किन्तु देवप्राप्य में देव देवा की आयु अल्पान्त होती है। क्यों इसका उत्तर सीधा सच्चा यही हो सकता है कि स्त्रीवैद्य भावी देव उनका ही बाध कर सकता है। देवागता आयु की स्थिति उनकी ही बाधता है उससे अधिक निमित्त विवर नहीं कर पाता है अधिक नहीं। अल्प शक्ति होना ही कारण है।

पूजा के तीन भेद हैं—१ सचित्त अचित्त और मित्र। सचित्त पूजा क्या है? साक्षात् जिन भगवान् जीवन निर्वर्ण परम वीतरागी दिगम्बर साधुओं की पूजा सचित्त पूजा है। अचित्त क्या है? तीर्थंकर अवतार भगवान् की वाणी अक्षरारमण लिपि

ब्रह्म जिन वाणी काधारमत् होने से अवित्त है पर पर अधर भावि अवित्त है अत्र जिन वाणी पूजा अवित्त है । मिथ क्या है ? दोनों की समय रूप पूजा करना अपना जिन वीर्य की पूजा मिथ या अवित्तवित्त है । धानू पापाणां अवित्त है और उनमें मुख्यतः देश मन्त्राणि मन्त्राणां कर उत्तम जीवन मगवान का आरोप किया जाता है । अत्र यह भी जानी चरत पूजा समय मित्र पूजा है । यह वसुन्दी आचार्य व धारका चार म वर्णित है । प्रत्येक श्रावण अपनी च्छानुगार कोई भी या तीनों ही प्रकार की पूजा कर सकत है ।

निम्न बचकर साधु अपने भावों का निरासा है भावों के साथ स्वयं निरता है । शुभ स्थान चरत गया । किसी भी कारण व द्वारा काय म भी पत्र हो जाता है । काय अपने सहयोगी कारणों व अनुसार होता है । अतु निम्नबच किया उस समय उगका व्यवहार सम्भवतः छ गया वहीं अत्र उगका हात-बेहात हा जाता है । उससे पूर यह ब्रह्माय नहीं रहता । किन्तु मन्त्रवापी होता है । उसी से नियमन भावि का वध कर मत्ता है । जैसे निगो का वध भावि । इसकी व पत्ते जिनसे मवों की काटने के लिए । निम्न करने पर परिणामों का सन्नेम होता है । इससे सम्भव की विगधना हा जानी है । पत्रत अशुभ भावों के कारण शुभ पुण्य पत्र शुनि हा जाती है । हे आत्मन् तू निरमा हाकर पूण सावधानी म तपस्वरण कर । निराका र साधना उत्तम पत्र दायक है । निरवाच्छिन्न तप साधना आम शोधन की सहायक होती है । वांछा यनि मोक्ष की भी दूरी मो भी यह मोक्ष की पत्रत है । विन्तु अयमावस्था म सावनम्भ ध्यान की मिद्धि व विण मोक्ष की अभिजाया होता भी यमावश्यक है । अहन्तां पवपरम प्यरा का ध्यान करना भी अत्यावश्यक है । परिपुष्ट आत्मपरिणाधन हुए बिना भाव शुद्धि नहीं हो सकती । परमात्म स्वरूप की मिद्धि का यही मार्ग है । जमश सावनम्भ म निरापम्भ ध्यान कर पूण आत्मा की मिद्धि होती है ।

हे भन्यामन् स्वत व बना स्वस्थ बना निर्भर बना और निर्विकार बना । स्वावम्भन विकास की कुञ्जरी है । स्वयं अपने ही आश्रित रहता निज का सहारा मानना शक्तम्भ है । आत्मा स्वतम्भ दम्भ है । अपने म पूण है । अनेक वत्र सम्भ्र है । उनका दशन और जान है । वही भा वमी नहीं विर दृच्छा ही अय क्या होषी ? कछ नहीं । आपे म आना ही स्वतम्भता है । उस स्व वतम्भो अवस्था मे स्थिर हा जाना हा ता स्व स्थ है । स्व म निज स्वरूप म स्थ ठहरना स्थिर हो जाना स्वाम्भ है । जय तव स्वतम्भ नहा स्वस्थ नहीं रह सकता । पराधीन तपनेहु मुख नाहा । स्वम्यावस्था म निर्विदना है—निर्भरता है । जा अपने म विवस्त है जम भय वही और विगका । व्यवहार म भी वमभार-मुक्त वक्ति कीध्र मयातुर होता है । योगी की क्षण क्षण म भय लगता है । वमजोर होन मे उत्तका

मनोबल भी क्षीण हो जाता है मनोबल शिथिल होने से नाना प्रकार के सबल विकल्प पदा हो होकर उसके आन्तरिक विकास को आध्यात्मिक शक्तियों को नतिक विकास को रोक देते हैं। पतन वह अपने में मान बैठता है कि मैं आगे बढ़ नहीं सकता। मेरा विकास नहीं हो सकता। मैं तो ऐसा हो रहा हूँ। इत्यादि। अतः स्वस्थ होना अत्यावश्यक है। स्वस्थ आत्मा निमग्न बनेगी। उसे किसी प्रकार का भय हो नहीं सकता। स्वास्थ्यलाभ ही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व का भय कहाँ ? निर्भय जीवन अनगल प्रवृत्ति नहीं कर सकता। जो स्वयं भयहीन है सबल है अपने में विरक्तस्व है स्वाधीन है वह पर को सत्ता का भाव नहीं कर सकता। पर रक्षा ही करेगा। अपनी रक्षा करने वाला पर को ऊपर आधान नहीं कर सकता। अतः विकार भाव नहीं हो सके। हे आत्मन् पूर्वापर सम्बन्धित गुणों पर विश्वास कर उन्हें जीवन में उतारने का सफल प्रयास करो।

प्रेम और वात्सल्य पर्यायवाची जैसे लगते हैं किन्तु अन्तर है। प्रेम में निष्ठा है वात्सल्य में त्याग। प्रेम में आकांक्षा है वात्सल्य में निरपेक्षा। प्रेम अनुकरण की अपेक्षा करता है किन्तु वात्सल्य में बदले की भावना नहीं होती। अनुराग का परिपाक वात्सल्य है भोगाकांक्षा का परिपाक प्रेम। प्रेम अशा हाता है वाग्मन् प्रकाश पुञ्ज। प्रेम में स्वाय है किन्तु वात्सल्य निस्स्वाय। गोवत्स प्रीति वात्सल्य का उद्धारण है। कामाद्य रावण प्रेम का। प्रेम में वचना है वात्सल्य में विकास। प्रेमी स्व पर दोना का ठगने की चप्टा में रहता है जब कि वात्सल्यमयी व्यक्ति निज पर के कल्याण में रत होता है। प्रेम इन्द्रियज य सुख की आर उन्मुख होता है वात्सल्य आत्मोत्पन्न सुख का उद्भेक करने वाला। वात्सल्य आत्मा का गुण है। इगम प्रवचना नहीं प्रवचना भी नहीं। प्रेमी पक्ष भ्रष्ट है किन्तु वात्सल्य भूति निवृत्तपाराधी। प्रेम में बाह है वात्सल्य में शीतलता प्रेम में अशांति अवृत्ति आशा का लाना है परन्तु वात्सल्य में शांति शृष्टि निराकुलता और सुख है। प्रेम मारुत धाया है संसार की परम्परा का रत्न है। वात्सल्य समे भिन्न निद्रा आराम गुण का प्रकाशक है। हे आत्मन् सम्यक्त्व स्वयं आराम रूप है उमो सम्यक्त्वमन् मन का अकार्य अङ्ग है वाग्मन् आत्मा का निज गुण है अर्थात् सम्यक्त्वमन् मन को पर्याय ही वाग्मन् है। प्रेम समे मयया भिन्न है। प्रेम आशा के प्राप में पमा कर जन्मा को पतन के मन में कामने वाला है। वात्सल्य अनुराग की शो में बाधकर समार मानस के कोष पार करने वाला है। हे साधो प्रेम हेर है समार का कारण है वात्सल्य उपाय मुक्ति का हेतु है। इस ही अपनाओ।

प्रेम का मन्त्र रूप धृष्टा में परिणत हो जाता है अज्ञान व रम्य का वेग दम कर धर्म में समाहित हो जाता है। इस प्रेम करने हैं उमम स्व। शिथिल होना है। इस वात्सल्य को नीचे पर निश्चय का बचना बतान है जिससे हमारे जीवन की कोय

रूप जब सा, मान रूप आधी माया रूप वर्ण और लोभ रूप कीचड़ से रक्षा होती है। वात्सल्य के फुहारों में भला बोधानि विम प्रकार प्रकटित हो सकती है। आधी के प्रकारे उनका विस्तार ही करते हैं। माया रूप कीचड़ भना विम प्रकार कसा सकती है। धम की कम-बल ध्वनि में इनका उद्भय मिटा सा प्रतीत होता है। विषय वासनाओं का आहम्बर टिक नहीं पाता। समार शरीर भोगों में रुचि नहीं आती। जीवन के एक नये मोड़ पर सदा रहता है और समस्त की भांति सदा जागरूक रह कर सतत कार्यान्वित होता रहता है। वात्सल्य की छाया है बरणा ममता और स्नेह। अस्तु ये सभी आंगोपांग हैं। इनके बिना वात्सल्य भाव टिक नहीं पाता। बरणा और ममता देखने में दो बहिनें हैं इसमें कोई शका नहीं किन्तु ये दोनों हैं वात्सल्य की साधार। वात्सल्य बोन नहीं चाहता ममता विम प्यारी रही ? सभी की मूल भावना है कि हम प्राणी मात्र की अपनारें। जीव मात्र व प्रति हमारा सम्भाव उद्भूत रहे। किसी का हित न कर सकें की मज बरो या करिये किन्तु पर पीड़ा कारण बचन अपने मुख में मन निरातो। इसी में साधुना और सयना है। आप कछ कर सकने हैं तो स्पष्ट उसे स्थित से साथ सध का परिचय अवश्य देना अनिवार्य है। उसके मर्म स्थान पर अस्मि घटनाओं का तून मड बनाइये। ये कू वचनी आपा रम्य है। इन्हें क्यामाम बहुर निरस्कार करना चाहिए। क्योंकि इन्द्रायण की भांति विषाक म कस्मि फल देकर इसे (मेवन करते काने की उत्पन्न भस्मपात कर देना है। हे आरमन्तू चौकला) हो सतत सावधान रह। धर्म के मम की समझ कर तदनुकूल आचरण करा। धम के मर्म की जानने और समझने के लिए आप्तोप मनोव्यभिचर को प्राप्ति करो अर्थात् आर्षागम का अध्ययन अनिवार्य है। इससे विपरीत है प्रेम। प्रेम न स्वयं आने सजीव और नाम से टग-मधुर वञ्चक है। भोले प्राणी प्रेम में विषयाद्य हो जाने हैं। उन्हें जानि बस परम्परा कुन की मर्यादा आदि किसी भी वृत्ति को अपनाने नरक्षण करने या वृद्धि करण करने में उनका मन मीन होता नही। यह है प्रेम का उदाहरण और भी अनेक कारण है। जिनसे जोर स्व तन्त्र को पहिचान नेम अति असम्भव हो जाता है। वात्सल्य का क्षत्र अति विज्ञान अति दीर्घ और चिन्तन है। इसमें स सा का साक्षा नहों अविशुद्ध सा पवि तोड़कर बैठा है। हम एक से दो दो से तीन तीन से बार प असकाम्य अतः की भाँति नहों अविशुनीयता का रसाय है। स्वास्थ स्वास्त्य है। वात्सल्यमयी प्रीति एक के बा एक दो तीन बार पाँच छ आदि कुसुमानों में प्रवेश करना हुआ बड़े भाव स भाव से अति श्रद्धा से अनेक सध की ओर अग्रमत रहकर बढ़ना जाता है। उस न प्रमोदना क बाटे पुष्पन का मय है न शिरगिरी के राश की टाकर साने का डर। उने आ बढ़ना है बढ़ना जाता है न अने से भय है न पीछे से भय न्यमान के साथ अद्विपत साथ न स्थित हा। वात्सल्य स्थान पर बढ़त हो चके

स्पष्टता का अङ्ग है। अथवा मान अङ्ग और है प्रत्येक अज्ञान अपना स्वयं अङ्गित
 रखते हैं तभी तो एक भी यज्ञ नहीं है तो मध्यस्थान नहीं जिस सत्ता इसके अभाव
 में न जाना है न चाङ्गित। दोनों ही मिथ्याकार हैं फिर किस प्रकार मोक्ष माग गिद्ध हो
 सकता है। अस्तु मात्र में यज्ञ एक अंतर भी भूत है तो यज्ञ विषय वेदना का समन
 नहीं कर सकता उगी प्रमाण एक भी अङ्ग विहोत सम्पत्ति जन्म मरण रूप समार
 परम्परा को नहीं बाट सकता। ह आरम्भ सत्कार पर धार ज्ञान ह तो वह शास्त्र
 है अथवा सोह का टकड़ा है। कुटार में बँगा है तो सत्तही वात्ने रूढ़ वाय की निद्रि
 कर सकता है अथवा नहीं। अस्त वास्तव्य की मौन अथ अङ्गों का समाहार कर
 अपने साम्यत्व गुण की वृद्धि क ना चाङ्गित।

मन की एकाग्रता सफलता का तोपान है। लक्ष्य पर मन स्थिर होता है।
 लक्ष्य सुनिश्चित करना बुद्धि का काम है। सद्बुद्धि से सुस्पष्ट बनता है। मोटी बुद्धि
 सोटा ही सत्य बन येगी। विवेक से प्रथम भेद विज्ञान पत्त बनता अतः तत्त्व को
 लक्ष्य बनाना। उगरे लक्षण का विशाल वजन करना। स्वरूप का विनयन करना
 उस में तल्लीन होना, मन को उसी में लय कर देना एकाग्रता है। एकाग्र मनोवृत्ति
 आत्म स्वरूप की साधक है। उपयोग की निश्चलता मनो निग्रह है। मन की स्थिरता
 से समस्त इन्द्रियाँ स्वयमेव ही स्थिर हो जायेंगी। यहाँ स्थिर होने का अनिश्चय
 निश्चय होना प्रमादी आलसी हो जाना नहीं है। सक्रिय तो रहें तब आत्म वाय
 व अनिश्चित अन्य कार्यों से व्यावर्त हो जायें। स्पष्टता आत्मा में रमण करे रमना
 आश्वासन " का आश्वासन करे घ्राण आत्मा की सुगन्ध में मस्त हो जाय चक्षु
 आश्वासनलोचन में निमग्न रह और श्राव सच्चिदानन्द रूप मागरी की त्रिपुण्ड्री
 सहस्रों का अनन्त नाद अनन्त संगीत सुनें। मन स्वसवित्ति से समुत्पन्न चतुर्थ मयी
 परमानन्द की निस्तरण शोचियों में वेमि करना रहे। ये रगरेतियाँ सक्रिय रहकर
 स्वयमत्र निश्चित हो जायेंगी। इ यों के कारण रूप वम कालिमा नष्ट होने पर
 बुद्ध आत्मा ही एक मात्र रह जायेगा। कारण के अभाव में वाय ही नहीं रहेगा। हे
 भव्यात्मन् साधो ! मनो निग्रह का उपक्रम मत्ता करते रहो।

हे आरम्भ मन को स्थिर करने के निम्न उपाय करो—

- (१) आत्मा और शरीर का संबंध पृथक् निश्चित करो। कम और आत्मा
 संबंध अलग अलग है इस सिद्धांत पर दृष्टि जमाओ।
- (२) शरीर को स्थिर करो। हाथ पाद आदि अवयवों को सुस्थिर कर
 पादागवन् निश्चय बठने का प्रयत्न करो।
- (३) अपनी दृष्टि क अनुसार यथाशक्ति यथाकाल योग्य जीवन का अभ्यास
 करना।

- (४) शरीर को क्षुब्ध कर नाशिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखने का सञ्ज्ञ
अभ्यास करना ।
- (५) नाभि कमल की कणिका में अ का ध्यान करना ।
- (६) मस्तक कमल में सि का ध्यान करने का अभ्यास करना ।
- (७) कण्ठ में आ वण का चितवन करने से मनोनिग्रह होता है ।
- (८) हृत्पत्र कमल में उ वण का पीन या शुक्ल वण का ध्यान करने से
मन एकाग्र होता है ।

(९) मुल में या मुसाम्बुज में सा वण का अनवरत ध्यान करने से
निश्चल होता है । विद्या बुद्धि की प्रवर्धना होती है ।

(१०) अग्रज दीवाल पर या किसी पटल पर बद्ध आकर
मे किसी वण को तिवक्कर अनिमेष दृष्टि में
समय की वृद्धि के साथ बिन्दु के आकार का
से भी मन की चञ्चलता स्थिर हो जाती है ।
जारी रहना चाहिए । बीच-बीच में रुक
हो जाता है । निरन्तर उसी में उपरोक्त
बनी रहेगी और मन की दौड़ रुक जाय ।

(११) मन का स्थिर करने के लिए शरीर
मन मनोबल का साधक है । नाग

(१२) मन का अविचारी होना अत्यावश्यक
है । राग-द्वेष काम क्रोध
आवश्यक है । मन्त्र से मन

(१३) मनीषे अथवा उत्तेजक
जाग्रत होता है । ध्यान
करने में परम सहृदय
पण्यों का त्याग

(१४) सतत प्रयत्न
समुचित मन

(१५) अनावश्यक
आवश्यक एवं

- (१६) जन सम्पत्त का अधिक से अधिक त्याग करने से भी मन स्थिर रहता है । कतह विमयात्मा की क्या वार्ताओं से सबथा दूर रहना ।
- (१७) विषय कषाया की चर्चा में प्रीति नहीं रखने से मन अपने अधीन होता है । अनासक्त विषय मेवम से लोभुपता नष्ट हो जाती है । इससे मन स्थिर होता है ।
- (१८) निर्वाण क्षया अनिशय क्षेप का सेवन भी मन की एकाग्रता का प्रमुख हेतु है ।
- (१९) मनन स्वयं रहता उसी की चर्चा अर्थात् वार्ता कर । अपने में ही जाना जाना रमण करना से भी मन स्थिर होता है ।
- (२०) पर वस्तुओं का सरंथा त्याग करना चाहिए । परिग्रह वित्त विघ्न का प्रमुख कारण है । विषय परिग्रह त्यागने पर ही विराम बुद्धि नष्ट होती है । सर्वत्र विरामो में उल्लास जीवन ज्ञान नहीं हो सकता । मन तो स्वभावन चञ्चल है ही फिर उसे आनन्दन भी मिल जायें तो कहना ही क्या है ? बिना नचाये नाच करेगा ही । अस्तु मन की स्थिरता के लिए उसके क्षाम करने वाले कारणों को अवश्य हटाना चाहिए ।

हे आत्मन् ईशलाहू क्या है ? क्या क्या कारण है ? ईशलाहू मनोविकार है । मन विषय होने पर इसका आम होता है । मन स्वभावता चाहता है । पर स्वस्थ रहा तो वह इस कायम रख सकता है । सबन मन उत्साही होता है । उद्योगी रहता है चिन्त मग्न होता है मस्तिष्क की सहायता लेकर । शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है । शरीर मृत है मन उसका एक अङ्ग मूल स्वस्थ है इह है योग है ना मन भी स्वस्थ इह और टोस रहेगा और यदि शरीर कभी जब म मृत है—राग है व्याधि क्या बीड़ा है तो मन का दुःख अशक्त होना स्वाभाविक है । ब्रह्मचर मन का चाल ही ईशलाहू है । ब्रह्मचर सेना है आप मिताते हैं कभी कभी काँ बन्धु मन समस्त मन मनोरथन के लिए उगे—ब्रह्मचर का वस्तु देने का बहाता कर छिड़ा मन है वचन से कान्ते है नहीं है वह प्रयत्नशील होता है सोच मग्नता है क्योंकि वह उस समय निश्चय है, सत्य है पुन सोचता है जब आगरी उन विषय उस प्रविष्टा मन का ज्ञानी है तो उसका प्रयत्न उन्माह भरा मन विह्वलित मन बन जाता है । मानसिक शक्ति शीघ्र हो जाती है विह्वलित हो जाती है । शरीर दहन हो जाता है उन्माह स्वभाव में बिड़ बिड़हू हो जाती है । यह दुर्लभता मन का कल मग्न कर देती है । ब्रह्मचर में ईशलाहू आन मगनी है विनी

बनावायक प्रयोग सुलझाहट के कारण है। बुद्ध को महाइश्वर को बार बार मान
ने का मतभेद बाहर हो जायेगा किन्तु ईश्वरमान्य माने ही म मानको दमोत्तम म मानो
को। दोनों ही को माने दोहना है उग समय हम उसे और अधिक परेमान्य कर
विशुद्धिवाहक करवाते हैं। यह हमारे मनोरंजन का प्रमाण विषय बन जाना है।
परन्तु इसी प्रकार का कोई हम पर प्रयोग करे तो हम भी इसमें बाध नहीं आते हैं।
यह मन की बगलारी का विचार है। हे भव्य मन को गवय बनाओ। ऐसे बड़ाया।
अनीर नीलेव रहे। इच्छा तो मौमित्र बना।

तब मन बचन—मन तब और बचन का चर्चित सम्बन्ध है। तब व
साथ तीनों ही सक्रिय होते हैं। मन तीनों में प्रमुख है। मूर्तिमान है। मन एक कति
विशेष है। यह बुद्धि का मन्त्री है। बुद्धि मन्त्रिण बन्ति है। मन विचार का आधार
है। मन में इच्छाओं का प्रादुर्भाव होता है। मन्त्रिण में आकर इच्छाओं की उत्पत्ति
होकर भावना का रूप धारण करती है। भावना विचारों को ज्ञान दती
है। भावना भव नागिनी है। भावना से विचार बनते हैं। ईश्वर भावना होती है
गुण या अगुण। उसी प्रकार के शुभाशुभ विचार बनते हैं और तन्मय
अच्छे बुरे भावना या चर्चित होता है। चर्चित जीवन का उद्गम प्रभाव
है। मन बना तो बनेत्री में बना हमारा मन यदि तप्य है। तो भोग और बचन
भी स्वच्छ और स्वस्थ रहता है। हृषिकेश्वर मन गरीर बचन को भी परित्र बन ना
है। जहाँ तीनों का निमन स्वभाव है वही आत्मा की पारवना है। आत्मा इन तीनों
से सन्निवृत्त है। अन्तर्नि से इन्हीं का गच्छ स्थित है। मन बचन का सम्बन्ध तो गति
है किन्तु गरीर सम्बन्ध अन्तर्नि है। हम इच्छा निवृत्त बुद्धि करने हैं मा व आशर पर
किर होता है आर्तप्राप्त और दमते हाता है आत्मा मन्त्रिण। पण्यों में शुभाशुभ
भाव रहित जब साम्य भाव जाग्रत होता है तब जिन मन्त्रिण भाव और गुरुमति
जाग्रत होता है यह है समता रस का प्रवाह। समता मन्त्रबचन का य में भी होता
चाहिए। इन तीनों की समता ही तो आत्मा की समता है और इसी का नाम आत्म
स्वास्थ्य। आत्मा में आत्मा की स्थिरस्थिति। हमारे मन में अच्छी बुरी भावना जगती
है। जगती नहीं बल्कि हम जगते हैं। वस्तु में अच्छाई या बुराई नहीं होती है। यह
अच्छा बुरावत मन की बलना है। मन यदि चाहें तो किसी को भी अच्छा बुरा बनना
है और नहीं चाहें तो बुरा। यही नहीं एक ही वस्तु को यह पर समय में शुभ और
दुःखरे समय में अशुभ बना बना है। मन वेधन है। नगी उत्तम है परोपकारी है
किन्तु यन्त्रि बून नहीं तो वह पातक है संहास्य है। मन की बाढ़ विवेक है बुद्धि है।
बुद्धि विवेक विहीन निरबुद्ध मन उत्तम हाथी है। उत्तम हाथी अशुभ और महावन
को भी परवा नहीं करता उसी प्रकार निबुद्धि और अविवेकी मन भी यही नहीं रह
सकता। मन यणी होना अन्विष्य है। मन व साथ बचन है। वचनमन्त्रि हि मानसम्

मुग मन का स्थान है। तब न मन का सागर है। शरीर मन का प्रकाश। हमारे मन में तेजसा की भाँति विचारणाएँ उठती हैं। सहस्रों भ्रम हुआ होता है कपल और शान्ति भी उठती है उगी प्रकार विचार म नाश प्रसार के विचार होते हैं। मुक्ति का बुद्धिमान भी रहा है। ये सब मन के सहारे हैं। भाग्यिनी गति विविधों के आधार पर अथ गरी विचारणाओं का जन्म होता है। मन का पतित होना जानना है। बीज बोने व पूर्व भूमि का उत्तर और शरीर का रत्न होना भी मान्य है। उपजाऊ भूमि में आगति बीज गीत अंगुरित होता है। पापता है बुराई है। पतित और पुण्या शान्त पतित होता है। यही दशा तिस भूमि की है। शुभ ध्यान व पतित ही शुद्ध ध्यान का प्रारम्भ होता है। परत प्रथम आनन्द ध्यान की वस्तु पतितों का निराकरण परमात्मन है। आध्यात्म रूप कठन धर्म ध्यान और शुभ ध्यान व पतित है। राग द्वेषादि ध्यान का गुण भी जहरी है। बजर भूमि में बीज जमता नहीं। उगर में त्रिधा नष्ट और तप्त तप्त रूप ध्यान पतित नष्ट। वग यही ध्यान मन तिस की भूमि का है। समचार अहंकार के कारणों में ध्यान जमता नहीं पूजा ध्यान लाभ की चाहणी ध्यान व वदध्याता नहीं। और राग द्वेष को आग में जलता नहीं। आत्मनू ध्यान आत्म शोधन की प्रणाली है त्रिधा नहीं से भी विद्वत् ज्ञाना ज्ञान साधना में साधन नष्ट हो सकता है। ध्यान व लिए मन गवन चाहिए। प्रबन्ध मन निम्न होता है। भव हीन मन विना से मुक्त होता है। चित्त रहित मन उत्पन्न हृषण होता है। गुरुमी मन विपत्तियों का हृषण वर पार पार जाता है। निमयता सपनता की वृत्ति है। ह साधना निमय बनो। अगम चणु बना। आध्यात्म का अनुसरण करो। आगम पद्धति निर्मय बनाने वाली है। मन को सत्य बनाने का प्रयत्न करो। जीवन सन्नाह है। मन के हारे हार है और मन के जीते जीत। जीवन चहते हैं मन विजयी बनाओ।

मन एक रम्य विजडा है। यह मोक्ष है। ऐसा मनोहर कि आत्मा स्वयं की बन गया। कब ? स्वयं स्वे ही पता नहीं कब ? यह भी यह जानना नहीं। अब पत्नी है दम बंधन की। अनोखा रागरी ह इस स्थान का। अद्भुत चमत्कार है इस प्रभाव का व ऐसा जन स्थान है जिसमें वही स्वयं की आज्ञा मानता है। कपडे पर धूल पड़ी साह सा। वग वगने वाला भूत गया धूल का भूल। यही हाल आत्मा का है। शरीर भ्रम धुना और भुना सा। अपने आप को। आज सब इसकी धाम को पान गया। पाप तो पतित न गया। पतित तो रोड धाम न कर पाया। वन छाया पाया और हारा। इनमें लगा रहा। रहने रहने ही गया आनी इसी का प्रभो इसी का पुत्रो उपासक। आत्मा विस्तर गया। मन अपना हो गया। यह तो वही हुआ सोने के डंडे में भरे हीरे। अंदर ही मये बंद नजर सभी डंडे पर। देखने देखने डंडे का धनी मान बैठा आने को भूल गया हीरे की खबर। बा

जिम्हारी । हो गया विपदाओं का निबारी । तन मेरा हूँ । मान लिया । एक-एक रोग
 में हजारों छिद्र हैं प्रति छिद्र में अनेकों रोग । एक औषध ने बराबर स्थान में ६६
 रोग हैं । सभी धा घमक । आते बने नहीं । अरु बसा या आमा भाव दब गया । रोग उभड़
 प्रभुता पाय काहि मद नहीं । अब बसा या आमा भाव दब गया । रोग उभड़
 गय । इनक समन के उपायों में उलझ गया मन । मन मन के बीच ही तो है । उनसना
 बसा नहीं ! खोर खोर मौसरे भाई । बग दानों में घट पट हो गयी । अब चलने लगी
 अटपट । मन बनना करता और शरीर उन्हें मँथोता ममालता । तभी तो जागे व्यापार
 चलिया । तन व्यापारी है । मन दलाल । दलाल दुभासिया होता है । दोनों ओर का
 पाँव करता है । शरीर की अच्छी बुरी दशा में स्वयं भी बसा हो बनकर घुम बठता ।
 कभी फरीर बना इसा साथ रोना है और कभी खमीर हो अठकोनिया करता है ।
 कभी राजा और रक बन कर मच पर जाता है । कभी शानी और कभी मूसा ।
 कभी गुप्त और कभी दुखी । कभी साधु और कभी साधक । कभी माध्य और कभी
 साधक है । यह है इन दोनों का नाटक । शरीर भी अपने का सक्रिय बनाने व लिए
 इस बगाना है अपने म । पोषण करता है । मन माना नाबजा है । यह है दोनों का
 अपनत्व । यही है दोनों की प्रीति ।

अब देखो वचन की कला । बमाल है इसकी खान में । मन का हृद्य जिघर
 देना जिघर ही बजा दिया नगाड़ा । जिसको मन ने चाहा उसी के यशोवन की तान
 सगा दी । मन ने जिमको बोला उसकी निज म बाज गहीं आया । जिघर मन गया
 उघर वचन का घघक बज उठ । कभी फूटे कभी साबुन । कभी मुरीले कभी बेतूने । कभी
 रसीले कभी रसीले । कभी पोषक कभी शोषक । कभी साधक और कभी बाधक ।
 जिघर बना मन उलर लगा वचन । जो सोचा ओ समझा जो अनुभव वही आया
 वचन में । वचन मन की छाप है । मन का बमरा है । जो कुछ जैसा मन में है वही वचन
 में बगा ही प्रकट होगा है । मन जिसे प्यार करता है । वचन उसी पर मधुर सारने में
 होतम सीकर बनता है । मन ने जिम भग समझा वचन शालियों की लोछर म
 बाज नहीं आता । जो मा म पड़ गया वह वचन में बन गया । जो मन में रव दया
 वह वचन में उठ गया । दोना एक है बाह राह और काप में । तनी ले रहा है
 अन्तर करनी हर्वाह निरसत मुख की बाट । वचन मन का प्रकाशक है । वचन की
 मति अमूर्ति मन पर अकल्पित है । मन म गे भाव है तो वचन में की पगपग
 निज सुगमी गूठ छन माया आदि प्रकट हति । यदि मन परिवर्त है
 राम रूप है राव-केव का-नात बिहीन है तो वचन प्रयोग में भी
 समझा रहेह बाग्य-य त्रेन साम्रज्ञा होइया और सुखदता विप्रम
 शिन होगी । मन के साथ वचन नाबजा है । मन की कवि विधि
 है । उल्लेख मजबूत उत्तम पुरुषों की पहिचान कभी

है। क्यों ? क्योंकि हमारे इनकी आन है। हम दीपावली या हानों नहीं मनाते। कारा हमारे 'आन है। देव की आन गुह की आन और आगम की आन। आनि।

आन हमारे परम्परागत सम्पूर्ण जिया कलाओं का सदन रखने का उपाय है। हम कहते हैं गनगीर दीपावली रक्षाबन्धन होली आनि नहीं मनाते हमारे तो आन है अमृद-अमृद वस्तु खान की भी आन है। पहनने की भी आन है। वास्तु आन परस्व का बोधक है। आन भाव न भी विषे मेरे आत्म भावों के जलावा अय भाव मुझ में नहीं है। यह आन शब्द हमारे पूर्वजों के प्रति आत्मा का चोतक है। हमारी परम्परा का रक्षक है। हमारी अनगन प्रवृत्तियों का ब्रंकर है। स्वात्म भाव का चोतक है। अपन में रहो आन भावों से क्या प्रमाण है। हम पर से हटते हैं निज में आते हैं। अपने से अपना ज्ञान आपन करते हैं। विजाति समस्त तत्वा का स्वभाव आन भाव है। आन को जान आत्मा की हान है। आत्मा से आन भावों का सम्बन्धन नहीं होने देनी। यह है आन शब्द की वास्तवता। आन में आन को रहने दो। आप में आप को लामो पर मनहूस मन बन जाओ। अधानुकरण नहीं होना चाहिए। आन में विचार परिपक्व होते हैं। भाव हड़ और पवित्र बनते हैं। स्थायी परिणति बननी है। स्वत्व आपन होता है।

आन ' स्वाधिमान का चोतक है। आन पर मर मिटना क्षत्रियों की शान है। महाराणा प्रताप ने घास की रोटियाँ खाईं किन्तु आन नहीं गँवाई। जो आन पर मरता है वह शान को बनाता है। आन ही नहीं सो मान किसका ? आन पर मान और शान है। आन का अर्थ स्पष्ट है प्रतिष्ठा। इङ्ग्लैण्ड मानव जीवन मनुष्य, शत्रु को ही नहीं देवों को भी नमस्कार कर देता है। मुगलों के जमाने में अनेकों क्षत्रा लियों ने प्राण ऐश्वर्य किन्तु आन पर आँच नहीं आने दी। 'आन औरव का चोतक है। महाराणा प्रताप ने आन की कि मेरी तलवार और ढाल स्वयं छँवर मेरे हाथ में आँवने तो मैं बुद्ध बकू या। पही हुआ। जो आन पर मरता है उसकी शान भी अमर हो जाती है। 'आन का पक्का बाह्य उपसम परीपह संकट एवं विपत्ति भादि की परवाह नहीं करता।

'आन आत्म बल की चोतक है। अन्तर्बल यदि है तो आन है। आन है तो आत्म बल आपन है। जो आन का पक्का और सच्चा रहना है देवता उसकी सेवा रक्षा और सहायता करते हैं। यम की हड़ आन ही से सकाक्षिपति पराजित हुआ।

ज्ञान का अर्थ है कि ज्ञान है । यह मानव की गति है । जिसका मानव जितना रहने में पुत्र होता, उतना ही ज्ञान ही गति होता । ज्ञान पर अधिष्ठान मानना ही न मानने पर विश्व की ज्ञान ज्ञान में हम सबको ही परमानन्द कर समाधि सिद्धि है । ज्ञान स्वयं ज्ञान का ज्ञान न मानने समझिये । भावन मरम आकार मुख्य म अज्ञान है ज्ञान में ज्ञान-मानव है । भगवत्पुत्र ज्ञान दशा भाई है न माना हुआ ? ज्ञान का पक्ष ब्रह्मत्व क्या ज्ञान ? भाई का परमानन्द भाई दिया और वैराग्य भावा में ज्ञान परमानन्द रा-प-धमन की भा विज्ञान-जन्म दाने । ज्ञान पर मर जितना ज्ञान की गति है । जिसकी ज्ञान न माना उसका मूल नही । ज्ञान की ज्ञान ज्ञान पर ही निभत है । यह वह प्रकाश है जो मानव ज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान का धारित करना न मान मान प्रपन्नता तनिक भी नही । हे आत्मान ज्ञानी ज्ञान पर बड़े गुरुता ही पुराण है ।

मान जीवन मरण की चार है और जीवन उत्थान की चार है। एक बार दिशावा हवा दूसरा बार गुन प्रमाण। एक बार वचना है मन सताय। बचा मान मरना है। मुक्त मान मरना है और बच मान मरना है। यह वचन का कटु फल जीवन का मुक्त मान और वृद्ध मान विनाश है। पर यदि यह एक मम का अनभिन्न ही बना करेगा। नर मान है मान क दल-दल म पस कर प्राणों की बाजी लगा सकता है। यह मान है मान पर फल विपाक या फल रस से अनभिन्न प्राणों की बाजी लगा सकती है। इस पर योद्धा हाथर जीवन का परिष्कार बना कम निष्कार का मम साधन सम्पन्न कर लेता है। मान में मान नहीं आता चाहें। यदि मान मम मम है। गया तो बस जीवन उत्थान जावेगा। मान का गुण मान की वर है। मान रस म पीता मिता ता दूरा हो जायेगा। मान शोर है मान बन का निमज्जन। दोनों का योग शोक का आडम्बर। भेद विनाश मान पर पानी का जीवन का समकाल है। तलवार पर मान मिलमिलानी है। चाकू पर मान खर है। वजन पर मान उठाका मान बढ़ानी है। जावन म मान उत्थान की ताकत है। मान यदि अपने गुण रूप म है तो समग्र मधुरता आती है। उत्साह मान वजन आती है आत्म बल बढ़ता है सत्य अहिंसा की उमोति जगती है। समग्र की छाये पड़ती है। आत्म साधना बढ़ती है। तत्त्वज्ञान समकाल है। गुणधार म प्रकृति होती है। भावों म परिवर्तन होती है। विचारों म बदला मे मन भी गुण होता है। मान का परिष्कार जीवन का प्रमाण है। मान अन्तर्निष्ठ है। मान म मर्त्य मर्त्या म विनाश विनाश मे वृद्धि म म मने। यह है जीवन की कला। जीवन का सर्वाङ्गीण विकास। गुण उत्थान और वजन मे मान का गुण गुण प्रयास कारण है।

बनना और बनाना

बनना और बनाता दोनों ही विकार हैं। दोनों में आत्मा का घात है। बनने में स्वयं को ठगा जाना है बनाने में दूसरे का। एक का प्रयोग प्रयोक्ता अपने ही पर करता है और दूसरे का प्रयोग अन्य व्यक्ति पर। दोनों में अपने को धृष्ट और दूसरे को दुष्ट मिथ्य करने का भाव रहता है। दोनों ही प्रयोगों में मनुष्य अपना हित और अन्य का अहित समझता है। जब हम बनते हैं तो क्रिसे बनते हैं उसे हान समझते हैं, अज्ञानी मानते हैं, उसे घोसा देने हैं उसका अपमान करना हमारा ध्येय रहता है। जिस समय हम किसी को बनाते हैं तो मनोरञ्जन के साथ उस केवकूक मिथ्य करते हैं। कभी कुछ देखा उसकी भूषणा प्रशंसा करते हैं तो कभी उसमें कुछ लेकर उसे नालायक की उपाधि से भूषित करते हैं। कभी कभी मित्रा पर इसका प्रयोग करते हैं कभी घनिष्ठा पर और कभी अपने कुटुम्बियों पर। यह मनुष्य के स्वाध का प्रयत्न है। वास्तव में यह लोभ की भावना है। जिसके तार बिखर दूसरे का सपेते हैं। बनने और बनाने में बिगाड़ छिपा है। कभी बनने के पर में हम अपना बिगाड़ कर बैठते हैं और कभी बनाने के लक्ष्य में टक्कर खाकर हाथ पर तोड़ लेते हैं। मक्की दूसरे का बनाने का निराश में स्वयं जान में फँसती है। हम प्रसन्न होते हैं दूसरों का बनने के पक्ष से किमति कर मिलत हुए देखकर पर यह भूल जाते हैं कि कभी हम भी विरेध। फल अर्थों को प्रायः एक-दूसरे को बनाने का तरीका में उपक्रम चलता है। कोई भूख से बनाता है कोई मार से कोई ताड़ से कोई शाक से कोई गन्नाकर कोई हलाकर कोई सजाकर और कोई लड़ाकर। इसमें निष्ठा और घृणा के साथ अशय का पुत्र रहता है। बिना झूठ के न हम बन सकते हैं न बना ही सकते हैं। चोरी स्पष्ट है। क्याकि बनने और बनाने में वास्तविकता का छायना ही पड़ता है। व्यापारी ग्राहक का बनाता है ग्राहक व्यापारी का। मानिक सेवक को और सेवक एक रुपये के भाष को चार रुपये लेकर स्वामी को बनाता है। मानिक साचना है एक साथ खाना खर हम बनाऊ तो सेवक मोचना है मान उठाए नीचे निवाचने में हमकी अवल दुरस्त कर।

हे आत्मन् तू भी यही करना आया है। कभी अपने का बनाता है कभी शरीर को। कभी शरीर तथा बनाता है। तो कभी कम। तू भी तो कर्म का बनाव बिना नहा रहता। चाहे स्वयं को बनाया या पर को बना म विधात अपना ही है। मायावारी आत्म स्वभाव की घातक है। अहंकार आत्म मवित्त का नाशक। धर्म आत्मा का पतन करना है। रचना नित्य जीवन का विधान है। निष्ठा आत्म पतन का साधक है। बनने बनाने की दोड़ में जीवन कचन बिना नहीं रह सकता। नकली बनावट सबक घातक है। अमली बनाव की धात

बने। वह स्वयं मिट्टी है। स्वभाव का ही दुआ है। तुम्हारे ही पास है। बना
 बनाया सजा सजाया। मान प्रकाश करना है उगता। बने का त्रय ही बिगने
 से होता है। जिस समय हम किसी का। के करने की अविच्छा होती है किसी को
 जान नहीं मानना होता है। बनी के प्रति दिव्य होना है बग बने की प्रकृति
 शुरू हो जाती है। नगरे प्रारम्भ होत है। बहो गज घज कर आते हैं। मुग्ध
 घटने लगता है। सच्चाई बन कर जाती है। नकली बनाव बनाव उतार पतार
 अपना अपना प्रशान करने लगते हैं। बने के समय त स्वयं स्वयं बनता ही है
 अपित दूगरे को बनाता भी है। मन वचन और काय तीनों ही अपना प्रवृत्ति
 करते हैं। कम भी वैसा ही आन है। आत्मा यज्ञ होने लगता है कम घनि के
 लिपट कर। न सूझ रहती है न भूत। आद कर बनने बनाने की खासी धूम मची
 हुई है। व्यापारी सरकार का बनाते हैं नकली बही माना जमा खच कर। तो
 सरकार व्यापारियों को बनाती है अक्षमात छापा डाल कर। पति परनी को बनाता
 है कोट मेरिज कर और परनी पति को बताती है तलाक देकर। घर ब्या को बनाता
 है ना पास कर और ब्या घर को बनानी है अपनी आवश्यकताओं में अनुशील कर।
 धनी गरीब को गरीब बनाद्वय को बनाता है। यह है समाज की दुर्गति। यही नहीं
 धर्म के खेल में भी यही नाटक खेला जाता है। साधु त्याग का बाना पहन भक्त को
 सुभाना है और भक्त कोरा जय जयकार कर साधु का। एवं तपस्या का तेज भर
 के सहारे प्रदर्शित करना है तो दूसरा सुशामन का त्रामा पून कर अपनी मक्ति का
 दिखावा करता है। भगवान का बनाने में पीछे नहीं छोड़ते सम्बा ऊषा केशर का
 तिलक लगाकर सम्बा सी माला लटकाकर। मुँदर सा पूजा माल सजाकर। बिजली
 लगाकर, पल्ला सलाकर पर्श बनाकर। वेदी फूटी है। पूजा का क्रम नहीं है। हृदय
 में विकार है। आमदनी महीने में १०००० है खर्च १००० का। भगवान सुन रही
 तुम बोलते ही नहीं फिर हिसाब कौन पूछें? स्वयं बनाना है पेट फुलाकर तोद दिखा
 कर विलिङ्ग सजाकर माल उड़ाकर और न जाने क्या क्या करके। त्यागी है क्यों
 दुनिया को बनाने के लिए मन्दिर बनवाना है कि क्यों? चूने मिट्टी के साथ मन
 मन्दिर और शरीर मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने के लिए शरीर भी तो मन्दिर
 ही है स्त्री, पुत्र भाई बच्चे सभी का तो मन्दिर है। इसमें मन्दिर का द्रव्य लगा
 तो क्या दुआ? बनना है कुछ भी बने। यह है बनान की कला। हे आत्मन तू
 इस बनन बनाने की प्रणाली का त्याग कर। इसमें आत्म वचना है। कर्म का
 अंश है विचारों का संचार है संचार का प्रसार है जीवन का भार है दुखों का
 अम्बार है दुर्गति का डार है रुद्धगति का रुकाव है। न शुभ है न शुद्ध मार्ग मान
 है पतन का भयंकर पथ। आत्म वचना का भय आत्म विकास का मूल
 मन्त्र है।

साधु और स्वाधु

हे आरम्भ जीवन उद्देश्यो की ध्यान है। उद्देश्य भोजन है। अतः प्राणी है उनसे अक्षय्यात गुण उद्देश्य है। तभी तो एक एक प्राणी के अपने वर्तमान जीवन में न जाने कितने उद्देश्य बनते हैं और मिटते हैं। यह बगो मिटते जा नम भोगों की रीत सा धनता रहता है। परिणाम यह होता है कि इनकी तैली में भोग और उद्देश्य में होड़ सी लगी रहती है। कभी भोग पिछड़ जाता है तो कभी उद्देश्य। कभी विपरीत भी हो जाता है। इस प्रसिद्ध इस विषय में सावधान रहना है वह अपने उद्देश्य को भी अचल रखने का प्रयास करता है। उद्देश्य में कर्म न हो कभी न हो कदा न जाय गदला न हो जाय आदि विषयों में यह सावधान रहना है। जाग्रत रहना है। उपाहरणार्थ साधु को लीजिये। मैं साधु हूँ। एक स्वाधु है। साधु वह है जो सर्वथा आरम्भ परिग्रह विषय कषाय भोगावां आदि का त्याग कर शाग त्याग तप में लीन रहता है। ज्ञान ध्यान तप की वृद्धि के लिए त्रिविध मध्यम में पूर्ण सावधान रहता है। उसका उद्देश्य एकमात्र निर्विकल्प साक्षात् तिष्ठि का होता है। यद्यपि वह अनेक क्रियाएँ करता है किन्तु लक्ष्य वही है उस ही की साधक क्रियाओं को ही करता है अन्य को नहीं। निश्चित है वह अपने उद्देश्य में सफल होगा ही। वही लक्ष्य साधु है। उसके जीवन में निराशा नहीं होता न मत्वाक्य होती है न क्वाक्य न प्रदर्शन है होता न प्रलोभन। सरल सत्त्वा यथावत्। उसके व्यवहार में साधुत्व होता है परन्तु प्रसारणा नहीं। चेहरे पर निष्क्य तेज होता है किन्तु आतंक नहीं। कानी में शोक होता है परन्तु पर-पीड़ा की गंध नहीं। ताड़ना में व्याज होता है। काय में क्षमा रहती है। मान में ज्ञान की किरणें। माया में पर शृङ्खला की सङ्कट भावना और सोप में निमग्न पवित्रता।

चित्तना अनीतिक जीवन है मायु का। लाजातर धियाँ हैं चयनी।
सामान्य बुद्धि में परे। जीवन का प्रत्यक्ष सग्न मनीनता में भाव प्रीति है किन्तु
उत्सव एक ही है। कभी जान नता में भाव मनाया है कभी ध्यान की अलग
में प्रविष्ट हो अलग का उदात्त है। कभी चरित्र निर्दिष्ट में अकल्प विचार करना है
और कभी सम्मेलन का जीवन कर अनीति पूर्ण में अलग जाना है। इन्हीं की विधि के
लिए सिद्ध सग्न का उदात्त करना है। कहीं निर्णय करना है। विद्वत् का सुख न
कला है। उन का ज्ञान का प्रकाश अभाव करना है। प्रमाणित ज्ञान होनी है ज्ञान
विचार-परिणामों में कुछ अर्थ-व्यवस्था जानी है किन्तु सब अर्थ-व्यवस्था कहीं की कहीं
जली की मृदा रहनी है।

यदि मनुष्य अपने गुरु से कुछ न सीखे तो वह नरक में जायेगा।
यदि मनुष्य अपने गुरु से कुछ न सीखे तो वह नरक में जायेगा।

साग-संक्रियों की कामना से । तब जाता है बाह की दाह की प्रशंसा कर । जाना जैन भी करता है साधना का प्रशंसा करने के साथ में । बारिष पापना है तब तबबार की दबनि गुआने के साथ में । जोर तया पापना है दूगरी को निम्नाने के लिए । मयूर विभक्त । रगता है साध कर सोभा के लिए । बिम्ब है मय । समस्कार बराने का मनेत है । त्याग म राग होना है उगम । ज्ञान म स्वादु के अहंकार भरा होता है सम्मत्त्व ह्य सा जाता है । विषय बर्णाने न ज्ञान रहनी है विष्णु अना कोना बन कर । वस्त्राणि का सोना नहीं होता विष्णु समारवण क जाता भी नहीं छूता ।

मयम अपने दम का होता है । विषय भी पुण्य हों इन्धिया भी मृत्यु रहे हैं और मूढ़ भी मुड़ा हो मिलवट जैसा । बन् बगुना भगत हा जाता है । उसी जैसा इमान सम्मान है । भगवद् भजन करता है सोने के समान । पश्या हो गया पुन विशेष गुणर बोध पसिया आने के लिए इससे क्या वन् उबड़ गया बन्ना गया नहीं तो और रमणोद हा गया आवयक हो गया गुणर हो गया । बन् पदो हाथ है स्वादु ओ का । समसी बने त्यागी बहलाय महारमा की उपाधि से भी क्यो बचिन होते ? पूजा हुनी सारार मिला सम्मान मे बमी न आयी पर सारार जहाँ का त । रता । उष नगी मिग पोडा नही गई तो पट्टी बाधना किस काम का ? हे साधो आरमन् सावधान हो । प्रज्ञा को सम्मान । बुद्धि का उपयोग कर । प्रमाण त्याग । बर्णायो का भजन इन्धियों का दमन प्राणियों का रक्षण कर । अपने उद्देश्य से मृत भूचना । निरोद्धेय हुआ कि बस तेरा भ्रम मिट्टी मे मिल जायेगा । हाथ आया हीरा सागर की तन म ज पड़ेगा ।

चेत-चेत आरमन् ! इस निर्वाण भूमि का वण-वण तुम सावधान कर रहा है । जीवन अमाद्य तरंगों से व्यापीण है प्रत्येक लहर तुम रिमनना चाह रही है तनिक भी खरा हो गया इसके मुख म । फिर ठिगाना कहाँ उठा है अब पड़ना नहीं यही सार है । जीवन की शीली घाराए बरबट बगुनी है । उनकी बर्णायो मतिभ्रम करने म नगी भूकनी । ज्ञानी की दृष्टि म इनकी निम्नारना उसी प्रकार क्षान्ति है जत आनि प्रभु क ज्ञान म भीषाजना के मयु । वह दन प्रलोभनों से उगार रहता है । उसके ज्ञान बन् सावधान रहने है । इमययो । आगम नेत्र से काम मे । साधु हो साधु ही बने रहता है । इसी म जीत हो कीरार पर विजय करता है इन्धिय विजय क समाव मे यह सम्भव नहीं हो सकता । उष जय मनोराध बिना कहाँ ? मनोरोध मयम बिना बराध बिना भेन विजान बिना स्वप्न मे भी नहीं हो सकता । तुम अनन्त बलधारी हो अनन्त ज्ञान के धनी हो अनन्त मुण्य क बरणा हो और अनन्त दशन के विधायक हो । क्या साधु बनना कठिन है ? अने स्वा ही स्वभाव से अनानि काम से बने ही हा । उस क्या पाप करता । इसी भ्रम बुद्धि से

जाना ससारी बने। अभय भाग दिये अदृश्य को गुरुरूप समझा। अब सावधान रहो। सर्वोत्तम समय मिला है। कुल जानि घर्म सर्वोत्तम ही उत्तमष्ट हुन है। ही काल इष्ट (शरीर) अवश्य हीन है किन्तु तो भी परम्परा से मुक्ति के साधन होने में बाई बाधा नहीं आ सकती। तब ध्याना रजाम्याय भक्ति का यथाशक्ति प्रयोग कर साधनय पुण्याजन कर मुक्तिपथ का प्रकट कर सकते हैं। निष्कटक भाव रहेगा तो बात में प्रवाह आ ही जायेगा। फिर कर्म बरगा नहीं। बड़ा ही जायेगा वहाँ तक जहाँ तक तुम जाना है। दवेगा वही जाकर जहाँ से पुन तुम नहीं जाना है। यह तरा पुण्याय हो कर सजता है। स्वयं तू अपने बल पर अपने ही द्वारा अपनी ही आत्मा में आप ही पायेगा। वही हागा सज्जा अविनाशो चिरन्तन शुभ। यही है अद्वितीय ज्ञानि। मुक्ति या मोक्ष। बिनामन् आये में आ आये में बैठ आये में रह आये में ही आन है इसे मन भूय। यही तेरा धर्म है। यही कर्म है और यही है उद्देश्य। इनी का ज्ञान कर। इनी में रन रह बग साधु ही साधु है। साधुय भी यही है।

ह आत्मन् ज्ञान चेतना तेरा स्वरूप है। तू ज्ञानमय है। ज्ञान से परे तू अन्य कुछ भी नहीं है। आत्म स्वरूप ही ज्ञानमयी है। आत्मा से भिन्न परमाणु मात्र भी ज्ञान रूप नहीं हो सकता। आत्मा भी हिमी भी पर्याय अवस्था में ज्ञान से रहित नहीं हो सकता। अस्तु मुनिविषय है आत्मा ज्ञान और ज्ञान आत्मा है। ज्ञान रूप आत्मा ज्ञान प्रमाण है। ज्ञान आत्मा प्रमाण है। यदि आत्मा का कुछ अज्ञ ज्ञान रूप और कुछ ज्ञान रहित रूप माना जाय तो ज्ञान रहित अज्ञ जड़ हो जाने से आत्मा को भी जड़त्व भाव आ जायेगा। फिर आत्मा का ज्ञान इष्टा स्वभाव ही नहीं बन सकता। फलत आत्मस्वरूप भाव ही नहीं रह सकेगा। यदि आत्मा से अग्रिम ज्ञान को मान लिया जाय तो निराश्रित बने रह सकता है। अन्य के आश्रय रहे तो वह भा चेतन हो जायेगा। फिर जड़ भी चेतन हो जायेगा। यह अशक्य है। कोई भी वस्तु अन्यथा भाव को प्राप्त नहीं हो सकती। अत आत्मा ज्ञान प्रमाण और ज्ञान आत्मा प्रमाण है। "त रूप श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है। सम्यक् ज्ञान आत्मा का परिणाम ही है। "त भव प्रकार समझना सम्यग्ज्ञान है और तन्नुसार ही आचरण करना सम्यक् चारित्र्य है। अत रतत्रय आत्मा ही हुआ। ज्ञान चेतना और रतत्रय में मात्र शब्द भेद है अर्थात् कोई भेद नहीं है।

हे साधो। वस्तु स्वरूप का परिज्ञान कर। यथाथ वस्तु स्वरूप को जाने बिना आत्मा का परिज्ञान नहीं हो सकता। भेद विज्ञान हुए बिना आत्मा की सिद्धि नहीं हो सकती। समुक्त पन्थों को कुछ अपने अपने रूप में लाने के लिए सधामी दोनों ही पन्थों का स्वरूप ज्ञात करना अनिवार्य है। गेहै करक मिसे है दोनों को

मो मो एक प्रकार की ताजगी दिमाग की दृग्गति और उरगाह वृद्धि हो जाती है । हमारे विरतीत लम्बा मे मरिचक के बानू हो जाता है । मैं अभी निच रही हूँ । ताजा मुँह पर सवार है । कभी कनक पलक जाती है ठा कभी मरीर और कभी मन में भय उत्पन्न हो जाता है । मैं अभी भाव हो गय । ठीक है अब अग्रहाय निद्रा का स्वाप किया अब क्या हुआ ? बस लग्ना आ पड़े । अब लग्ना सवार होगी और अपना तन्त्र प्रयोग कर दगी । बारम्बार में तनिक भा अवसावमान हुआ कि गया । निद्रा तजमवि मन से भजन भजने जिन कर नाम ।

इत्यादि

जीवन यह है । इतम प्रकाश है ताप नहीं । शीतलता है अशक्ति नहीं । शीघ्रता है त्रयीकन नहीं । आम्हा है विषयन नहीं । मध है दुःख नहीं । गन्धोय है प्रलोभन नहीं । ह साधो ! ज वन म अमिच पुनो है । उने ज्ञानकर । पानी म नमक चर्म चण मे भले ही नजर न आवे कि तु विज्ञान की प्रक्रिया से वह टिपा नहीं रह सकता । तेरे म टिपा तेरा आनन्द घन रस भले ही ऊपर से दृष्टिगत न हो किन्तु साधना पथ के रोगी की अन्न साधना से ओसल नहीं रह सकता । तू मुझ कर है । जानामुन सिधु है । पारित्रावचन मग्नि उषवन है । क्यों मटकना ? विर यत्र तत्र । अपने में ही क्या नहीं विचरण करता । आत्मा किन कर म नी । चाह मे तो दाह है । आत्मा मे वे चाह मुख गति स तीव्र की विषणो बचो न माता से व्याप्त आनंद रस वषण कर रही है । विज्ञान द घन स्वरूप है वही तो तुम भी हो । पर म आहूत हो क्यों शक्ति व्यय हो रह हो । कहाँ है तुम्हारा विवेक ? क्या भे- विज्ञान है यह ? साधु बन क्या स्वा- नाम धरान को । मगर तजा कश चमत्कारों से जग अवनाने को ? अराग्य धारा क्या संघ समूह की सचों मे आने को भूज जाने को ? माना कर मे पकड़ो मात्र क्या मजियां घुमाने को ? मात्र साधना करो ! क्या दुनिया की चकाचौंध मे डाल अपना मगर बढ़ाने को ? ध्यान का बाँधलो से सिद्धि नहीं होगी, अपितु स्वयं ध्यानमय हो जाने से । ध्यान जीवन का प्राण है । ध्यानी जीवन साधना का स्वाग का पयाव पल प्राप्त करने मे मग्न हो सकता है । यह है ध्यान का महात्म्य । ह आत्मन् ध्यान करो । ध्याना बनो । मौनी बनो । ध्यान और मौन आत्मा के साधक हैं । आत्मस्वरूपावतधि ही साधु जीवन का उद्देश्य है । अपने उद्देश्य का साफल्य जीवन का सार है । मानव जीवन स्वाग का भाग समय का साधन मदान् पुण्यान्व का प्रतिफल है जिसका सन्तुषाग उसी पुण्यफल का नाश कर घम उत्पन्न कर मान का साधक बनता है ।

राग मोह का मक्खन है । बिहनाई है आगति की । इसम सौ-दर्य है प्रलोभन का । हम इन्द्रियाधीन होत हैं । ये अपने-अपने विषया की ओर उन्मुख होती हैं । मन राजा बैठा हुआ साकता रहता है । इसे जान नो है अथ्य दुर का हानि-नाम

तो दूसरे की दुर्दशा बन गयी। क्या गया ? तब तो के प्रतीपाद ? तो हिमो के प्रती
का आगम। एक स्थिति है दुर्गा मेवक एक मात्र है तो दुर्गा रं। क्या क्या
आप ? बड़े कह आ ? मगल म मग र मग ? और प्रमग ही उनकी विवि
हता है। आगिर हका कारण क्या है ? मग एक ही उगार कसे की विवि
हताओं का उदय। ये कसे कौन ? कदा मे मग। और क्या भा ? ये कसे आ है
और के दुर्गागुद मग। मोती मे क्याभा के विविग मे मग ही का मग वलिनम
कर जाने हैं। और के मोद कपावों के द्वाग कसे भा ? मगोहि उनका मगम
आने का और आकर मगम के मग मग की मग र हो आते ?।

विश्राम नाम बड़ा व्यापक है। विश्र का 'वि' भाग पड़ है विश्राम। विश्र किमर्थे? विश्र ज्ञान में। ज्ञान हो विश्र है। जो विश्राम करता है वह ज्ञानी है। विश्राम्यापी है। संसार छोड़ा है बेगा ज नगा विश्राम है। जो विश्राम है वही ज्ञान है वही पदार्थ का स्वरूप है। पदार्थ जिन रूपों में उभरा उभी रूप जानना और मानना वही तो विश्राम है। जड़ है या जल गुण या अगुण गुण्य या वायु जो छोटा है वो बड़ा है। उसमें कोई पक्की नहीं। जिस प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। यह है विश्राम। जीवन है आत्मा है परमात्मा है सोच है परलोक है जीवन है मरण है अमृत है मृत है मरण परे मिट्ट है मिट्ट लोह है। यह मानना जानना विश्राम है। यही सम्पूर्ण है ज्ञान है चरित है। पर सब है सभी जब हम इस मिट्टात पर अ न रहें। निदिच न रहें। इपर उधर न मक्के। यह रत्न है। यही अपना स्वरूप है। यही परमात्मा रूप है। स्वयं आत्मा भा तो यही है।

निद्रा और तन्द्रा—नींद धम दूर करने का साधन और तन्मा प्रगाढ़ की सहचरी है। चलने पिरने, बोझों चर्यापि की य दना दर्शन आनि करने से यकान हो जाती है। पूजा पाठ आदि के लिए यकान होना स्वाभाविक है। किंतु नींद सेने से यह यकान दूर हो ही जाती है। धम दूर करने के लिए हम नींद सेत हैं। इसे ही सोना कहा जाता है। सो यान पर शरीर में साधयता आनी है। शरीर का भारीपन दूर हो जाता है। मन और हृदयों स्वतन्त्र हो जाती है। नींद हमें स्फूर्ति प्रदान करती है। तन्द्रा निज के अनन्तर हल्का सा प्रमाण आता है। तन्द्रा में शरीर में आलस्य भर आता है। स्वातन्त्र्य दब जना है। शरीर में भारीपन महसूस होने लगता है। किसी भी कार्य में मन नहीं लगता। स्फूर्ति फूट हो जाती है। तत्परता नहीं रहती। यम तत्र पड़े रहने का भाव करता है कुचित्वाप यह अहाँ तहाँ पडकर सो भी जाता है। आत्मधीन नहीं रह पाता। परतन्त्र बन गया। फिर स्वतन्त्र कहाँ रहा ? नींद सी जाती है तन्द्रा जा जाती है। नींद एक प्रकार की ओषधि है जिसके अभाव में आदमी पागल आचारा या मूख बन आता है। तन्द्रा रोग है। जिसके प्रास बनने पर आदमी अपना अस्तित्व उसी पर योछावर कर देता है। नींद भर

सो सो एक प्रकार की ताजगी दिमाग की स्वच्छता और उत्साह वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत तन्ना में मस्तिष्क के बाजू हा जाता है। मैं अभी लिख रहा हूँ। तन्ना मुझ पर सवार है। कभी कभी घसक जाती है तो कभी शरीर और कभी मन में भय उत्पन्न हो जाता है। मानलो आप सो गये। ठीक है थम अग्राह्य निद्रा का त्याग किया अब क्या होगा ? बस ठीक आ धरे। अब तो मैं सवार हूँ और अपना तन्त्र प्रयोग कर देगी। वास्तव में तनिक भी असावधान हुआ कि गया। निद्रा तन्त्रमय मन से मजने मजने जिन वर नाम।

इत्यादि

जीवन चट्टिका है। इसमें प्रकाश है ताप नहीं। शीतलता है अशक्ति नहीं। सीम्यता है उन्मीलन नहीं। आ-हा है विक्रम नहीं। सुख है दुःख नहीं। सतोप है प्रलोभन नहीं। हे साधो ! जीवन में अमिष्ट पुला है। उसे पाकर। पानी में तमक थम धनु से मले ही नजर न आवे कि तु विज्ञान की प्रक्रिया से वह टिपा नहीं रह सकता। तेरे में टिपा तेरा आनन्द धन रस मले ही ऊपर से दृष्टिगत न हो किन्तु साधना पथ के रोही की अतः साधना में ओझल नहीं रह सकता। तू मुझ कर है। आनामून सिद्ध है। चारित्र्यापवन मग्नित उपवन है। बयो भटकता है फिर यत्र तत्र। अपने में ही क्या नहीं विवरण करता। आत्मा किम कर म नहीं। चाह में तो दाह है। आत्मा में वे चाह सुख-गान्धि, सतोप की विवर्णों का-भोल माला से व्यात आनन्द रस वषण कर रही है। विज्ञान द धन स्वरूप है वही तो तुम भी हो। पर मे आकृष्ट हो क्या शक्ति व्यय हो रह हो। वहाँ है तुम्हारा विवेक ? क्या भेद विज्ञान है यह ? साधु बने क्या स्वा-नाम धरान की। सत्कार तन्ना क्या चमत्कारों से जग अपनाने की ? वराग्य धारा क्या सध समूह की लवों में अरने की भूज जाने की ? माला कर में पण्डो मात्र क्या मणियाँ धुमाने की ? मात्र साधना करो। क्या दुर्निर्वा की चकाचौंध में डाल अरना समार बढ़ाने की ? ध्यान का काबली से निद्रि नहीं होगी अपितु स्वयं ध्यानमय हो जाने से। ध्यान जीवन का प्राण है। ध्यानी जीवन साधना का त्याग का यथाप पत्र प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। यह है ध्यान का महारथ। हे आत्मन् ध्यान करो। ध्याना बनो। मोना बनो। ध्यान और मोन आत्मा के साधक हैं। आत्मस्वरूपावस्थि ही साधु जीवन का उद्देश्य है। अपने उद्देश्य का साफल्य जीवन का सार है। मानव जीवन त्याग का माग समय का साधन महान् पुण्योप का प्रतिफल है चिमका सन्तुष्टाग उयो पुण्यरूप का नाश कर धम उत्पन्न कर मान का साधक बनता है।

राग मोह का मवधन है। विवर्ण है आभक्ति की। इसमें सी न्व है प्रलोभन का। हम इन्ध्याधीन होते हैं। ये अपने-अपने विषया की आर उभुन होती हैं। धन राधा बैठा हुआ ताजता रहता है। इस नाम नहीं है अथ वर का हानि-नाश

का। उमत्त है। पित्त ज्वरवशी की तरह। उत्तम वस्तु को हीन कहता है। मिष्टान्न को कड़वा कहने के समान हीन वस्तु उत्तम बतलाता है जैसे रोगी अप्यय सेवन में ही आनन्द मानता है। अनुकूल विषय मिला रजायमान हो जाता है। उसकी ओर सपक्ता है। लिपट जाता है उसमें। यही तो है राग। राग का जन्म स्वार्थ से होता है। स्वार्थ में आकर्षण है। विवेक नहीं रहता। कहा जाता है 'अर्थो दोषान्न पश्यति।' अर्थात् स्वार्थी दोषों को नहीं देखता। क्यों राग का परदा पड़ा है। कहा जाता है अमुक वस्तु में राग है पर वास्तव में राग वस्तु में नहीं होता। राग होता है हम हमारे स्वाध में, अपने में। मानलो कोई कहे अमुक व्यक्ति में मेरा विशेष राग है वह व्यक्ति उसकी सेवा करता है। सुन्दर मोय पदाय बना बनाकर खिलाता है। नाना प्रकार के व्यञ्जन सुस्वादु पक्वान्न तयार करने की कला में निष्णात है। अब विचार करिये उस कहने वाले का राग किसमें है? क्या रसोदय में है? पदार्थों में है? नहीं। राग है अपनी जिज्ञा के स्वाद में। यदि वही व्यक्ति सरवादु व्यञ्जन बनाता बंद कर दे तो क्या राग उसमें रहेगा? वह प्रिय होगा? नहीं। कहाँ गया फिर राग? गया कहाँ? वह था ही नहीं। राग तो जहाँ था नहीं है। भोजन में। उसके स्थान पर दूसरा पाचक मिल गया अब वह प्रिय हो जायेगा। पूर का प्रिय अनिष्ट बन जायेगा। यह दशा है राग की। य अपनी चिक्नाई में चाहे जिघर स चाहे जिह्वो लपेटना रहता है। परिपक्व होने पर यही मोह सजा पाता है। मोही जाय हिताहित विवक्षय हो जाता है। फसता है विषयो के फंदे में। रसना के समान हाँ अप्र इन्द्रिय विषयो की चाह है। यह चाह ही राग है। राग ही दाह है। आग में धी डालो भस्मकेगी बढ़ेगी चाह में राग आया कि आग प्रज्वलित हुई भुलसा कि दाह में लडपा। यह है विषयो जाव की अदृष्टा। है आत्मन् राग की मूल समझ। यह प्रिय शत्रु है। दशनीय विष है सुंदर जास है। आकर्षक बाल है। चिक्नी दीवान है। रमणीय पक्ष है। मधुर गान है। मनोरम दृश्य है। कोमल शिरीष फुलम है। चारो ओर रम्य है अदर हाहाल है। कदम बढ़ाना पर समल कर। विवक की चाल सफल। घोष से बच। कदम जमा कर रख। सामने दध। इधर उधर दृष्टि विक्षेप न कर। सार तो यह है राग अपने में कर। पर प्रथम अपने का परिचान, निज का समझ। स्वयं को जाने बिना पर प्रीति से स्वात्म मिथि नहीं होगी। हे भाई तू जा है वही है। उसमें परिवर्तन नहीं हुआ न हो सकता है। पर में राग द्वय का आह्वान है। इन्द्रियो व आधीन आत्मा हाँ पर में राग करता है उसकी अनुरलना सिद्ध न होने पर वही वस्तु द्वय रूप परणमन करता है या या कहा वस्तु नहीं हमारी भावना ही उस पर पार्थ को निमित्त साधक या असाधक मानकर उसमें राग या द्वय रूप परणमन करती है। य परित्त कर्मसिद्ध की कारण होता है। आगन्त कर्म का स्वागत करना ही पड़ता है। वह बैठ गया। यों ही नहीं। हमारा आसन बनाकर। हम सब दबने। घोड़ा

दबाव पड़ा, उठने की चट्टा लिए तब तक और बचन था पड़ा। वन अब पूरी तरह परत हो गए दबकर पड़ा रहना ही सार भ्रमभ्रम लिया। जाने दो की सोच ही का शिवाभा न रहा। यह है रागी की दशा। तबलुन आबल के सोच से फने कबूतर की भाँति बघ गए जाल में और तोते की भाँति अपनी आल भूलकर मनिनी में उल्टे सटक गए विपरीत में। हे पतन हम दाब पेच का समय। प्रज्ञा की जगा। सावधान हा। यही समय है उठने का। अवसर गए पछतावगा।

घटना क्या है? एक विशेष स्थिति है। समय आता है। जाता भी है। किसी दर्ज हम क्या चाहते हैं तो दूसरे क्षण कुछ और ही। बस अब देखिए जिस राग हम जो चाहते हैं उस समय उससे विरहीत कुछ और ही हो जाना घटना है। घटना गद्दी नहीं जाता तथा घनायी भी नहीं जानी किन्तु अचानक हो जाया करती है। आन तेजी से चले जा रहे हैं अपने किसी सक्षय की ओर मार्ग में बल का दिन का पड़ा था आशा पाव पछा और गिरे ऐसे कि दोन दूटे वन यही घटना है। कोई साक्षिक पर घना जा रहा है भावों में सगा अना सहारा निहारते बस टकरा हो तो गया बल से इतक से या किसी व्यक्ति से। कोई दोड़ रहा है गुस्से रमणी के गुस्से की आवाज सुन एकाएक पीछे देखा क्या जानना था कि यह यालची के पुष्प है मरा। पदम उठा रहा था बल्ला काग्या शोर सुना ऊपर देखा बिना सहारे जा रहो है। पनव खोरी लपका छत्र से गिरा चकनाचूर। घर से निरस्तृत जाने हुए मिला गये निग्रय गुप्त बस उर १ गुना। वैराग्य हो गया बाह लणभर में काया पलट हो गया। मुनिराजा परी भाषल निजला आशा थी फन का हो गया फर्स्ट बस क्या था बन गया विनिम्बर। य घटनाएँ आय विन हुआ करती हैं। कभी उत्थान की ओर तो कभी पतन की ओर। जीवन मुट जाया करता है मानव का। कुछ व है जो जीवन का न मोड़कर घटनाओं का हो सफा लेते हैं अपने पुरपाय से। ऐसे मनीषी हूँ होत हैं अपने कर्त्तव्य में। उनका समय की नाइयाँ झक जाया करनी है, आपत्तियाँ दूर भगनी हैं विपत्तियाँ सम्पत्ति बगुरनी हैं गुन फून बरपाते हैं सबट आन व आते हैं शोक में बहार मजली है विधाग में उरसाह बढ़ता है सप्राप्त में पीरुष चमकता है खराग्य में लपस्या बढ़ती है ध्यान में कर्म करते हैं ससार से पार मिलता है। आत्मा परमात्मा हो जानी है। घटना हुना स्वभाविक है। जीवन घटनाओं से ही गुजरता है। ये शुभाशुभ दोनों ही रूप हुन हैं। कभी जीवन को आकावा की ओर कभी निराशावाणी घना गती है। जा इनकी चान को समझे वही जानी है। वह अपने ज्ञान बल से इनकी प्रभुता को डा दता है। इह निष्क्रिय कर आना माग निकाल लेता है। वह आग बढ़ता है उरसाह और घय घारण करता है। उपमग परीपह आन पर ध्यातुल नहीं हाता। ह माओ! तुम सावधान रहो। घटना मघ सी का तो व नागें हैं कि तु उशन पवन से क्षणगर में विनीत हा जायगी इने मत भूल। सर्वोपरि स्वानुभव आत्म विनन है। व भेन विज्ञान से उपलब्ध है अन भेन विज्ञान जाग्रत करा।

मनुष्य भव स्वयं सलोना है। फिर उसका प्रत्येक क्षण क्यों नहीं रम्य हो ? अवश्य ही उसमें साक्षित है। फिर सदय एक सी बहार क्यों नहीं रहती ? यह निमित्तों की करामात है। स्वातिनक्षत्र का वर्षा जल एक है एक ही गुण है किन्तु यथा निमित्त तथा रूप बन जाता है। सोप में मोती बदली में बपूर, अहि में विष पपीहे में सतोष आदि। इसी प्रकार हमारे जीवन के क्षण पर निमित्त स विविध रूप धारण करते हैं। सज्जन से मिल सज्जन दुर्जन के सहयोग से दुर्जन, शराब के सयोग से शराबी जुआ के प्रभाव से जुआड़ी साधु सगति के साधु देव के सान्निध्य में सश्रयवती आगम की प्रीति से जानी और गुरु के प्रसाद से सयमी कहलाता है। यह दशा अनादि स चली आ रही है और तब तक चलती रहगी जब तक कि स्वयं आत्मा अपादान अपना अशेष विकास नहीं कर लेगा। पूण रगिषवता होने पर निमित्तक स्थिति समाप्त हो जायगी। हे आत्मन् तू स्वतन्त्र होने की चष्टा कर। उपासन को परिपक्व करने का प्रयास कर। आत्मा का पूण विकास हुए बिना पर निमित्त दशा नहीं बदल सकती और इसके बिना अविवक्षित रूप प्राप्त नहीं हो सकता।

हे आत्मन् शुद्ध वस्तु तत्त्व को समझने का सतत प्रयत्न कर। हर पदार्थ का परिज्ञान होने से निज स्वरूप की पहिचान सरलता से हो जाती है। गुण दोष दोनों का स्वरूप ज्ञात होने पर गुण ग्रहण में बटिनाई नहीं हो सकती। आत्म भाव पाने का प्रयत्न सत्पुरुषार्थ है। असत्पुरुषार्थ में शक्ति गवावर व्यर्थ खोना विवेकहीनता है। अपने को अपने में पाने के लिए सतत प्रयत्न करो। प्रायश्चित्त स्थिति में व्यवहार कुशल होना चाहिए। व्यवहार भी सायासत्य रूप दो प्रकार के हैं। सत्य सम्भवहार प्राक्त है। उपासन रूप आत्म स्वरूप का साधन है। सराग वीतराग रूप भी मार्ग दो प्रकार के हैं। सराग मार्ग व्यवहार है। सराग साधन है वीतराग साध्य है। अर्थात् व्यवहार साधन है और वीतराग साध्य है। साध्य की सिद्धि साधन के बिना नहीं हो सकती। अस्तु व्यवहार रूप साधन सही रहना परमावश्यक है। यत्न निमित्त गुति घम अनुग्रहा आदि सराग चरित्र के भेद हैं। इनका धारण पान आवरण अनुधि उन करना परमावश्यक है। इन प्रवृत्तियों में दक्ष रहना परमावश्यक है। जिनका व्यवहार परिपक्व होता है उगी का उपासन भी मुहूर्त हास है। हे साधो ! पान की वृद्धि के लिए चरित्र की वृद्धि करना परमावश्यक है। चरित्र की निगता से ज्ञान की उज्ज्वलता होती है। जैसे जैसे चरित्र बढ़ता है वैसे वैसे ज्ञान भी बढ़ता जाता है। अवधि ज्ञान मन पर्याप्त पान और अन्त में केवल पान भी चरित्र का ही फल है—निबोध है। हे आत्मन् चरित्र की मज्जून बना । मज्जून रहो। चरित्र जीका है। भवभाव पर सार होने का एकमात्र यही साधन है। व्यवहार का पक्का में निश्चय की प्राप्ति है। निश्चय की पूर्ति में व्यवहार का समाहार।

सरायता से ही बीतरागता आती है। बीबड़ ही मैं बमन बिसता है। बमन के हस्तुकी की पक की अपेक्षा बरनी पड़ती है। बमन बिसने पर पुन उधर उपयोग मगाना नहीं पड़ता है। इसी प्रकार निम्न व्यवहार की कथनी है।

उपयोग तीन से प्रकार है—गुम अगुम और गुड। गुमोपयोग पुण्यासव से गुमासव का अगुम पापासव का और गुडोपयोग मुक्ति का कारण है। यह निश्चय सिद्धान्त है। समस्त त्रिनायक का निषेध है। अब विचार यह करना है कि सांसारिक जीवन में इनका प्रयोग किस प्रकार किया जाय? क्योंकि विमोक्षी एक प्रणाली है और प्रेक्टीकल—व्यवहृत करना दूसरी प्रणाली है। जीव आत्मा शब्द विगुड ज्ञाता दृष्टा है यह त्रिनायक अष्टाष्ट सिद्ध सिद्धान्त है किन्तु हमारे प्रतिदिन के जीवन में हम इसका प्रयोग किस प्रकार करें यह जतिन समस्या उपस्थित हो जाती है क्योंकि अभी आत्मा की दशा विचारी है अनाति से विभाव रूप परिणामन करता आ रहा है। अब उस गुड स्वरूप की पाप विना किस प्रकार विवरण मिल सकन है। नहीं मिल सकते। तो फिर उस अविकल दशा के लिए हम क्या करना होंगे? गुमोपयोग या अशमोपयोग? आप या हम क्या करेंगे कि दोनों का छोड़कर गुडोपयोग करना चाहिए। तब विचार की भूमिका में शब्दोपयोग किया नहीं जाता वह आ जाता है हो जाता है। हाँ यह विचारणीय है कि कहीं जब कसे और कितन हो जाता है। किससे होता है अर्थात् किस निमित्त से किस महायक कारण से होता है यह सब प्रथम महत्त्वपूर्ण विचार है। कारण सरल कार्य होता है। इस नियम से विचार करने पर अशमोपयोग तो किसी प्रकार भी गुडोपयोग का साधक हो नहीं सकता। अब रहा शमोपयोग यह भा पुण्यासव का हेतु है। आसव मदा मसार बद्धक है। सबर नित्रा का साधक है और सबरपूवक नित्रा गुडोपयोग साक्षात् मोक्ष को साधक है। अब देखिए सबर के कारण क्या है? सबर के हेतु भगवान ने कहा है। 'अन समिति भुमि मनिप्रसावरीपह जय चारिभ। अर्थात् प्रती के कारण समितिमा का पालन मुक्तियों का पूर्ण दर्शक धर्म का सेवन द्वाशानुप्रसाचितन और २२ परीपदा का जय य सबर के हेतु है। ये सभी व्यवहार रूप हैं प्रवृत्ति निवृत्ति रूप हैं। अन पुण्य के भी कारण हैं। जहाँ क्रिया है वहाँ योग व्यापार है योग आसव के हेतु है। यदि शम हैं तो पुण्य और अशम हैं तो पाप के कारण है। यह स्पष्ट होता है कि य पुण्य शम क्रियाएँ व्यवहार शम बीतराग भाव की सिद्धि का सक्षय रखकर किए जान पर परम्परा से गुडोपयोग सिद्धि में साधक होता है। सज्जानि से ही सज्जाति शम सिद्ध होता है। उपयोग से ही उपयोग मितवगा अस्तु शमोपयोग-सानिधाय पुण्य का साक्षात् साधक है और परम्परा से वह साक्षात्पयोग सिद्ध करा मोक्ष का साधक हो जाता है। इतना ही नहीं साध्य सिद्धि कराकर स्वयं सोट जाता है, छूट जाता है जैसे कोई भाई अपनी बहिन को पट्टेबा कर सोट जाता है। क्योंकि उसका सहाय मान उनना हो जाता है।

विचार कर। सुनिश्चित सम्पत्ति के उपर्युक्त करने पर लेनीने या न निगम समान में आ
 सके हैं अन्तर्गत नहीं। मान्य रूप में विष्णु विना योग प्रक्रिया के बाह्य निमित्तों
 के सहयोग के उभे कोई या नहीं मरना उनी प्रकार विविध गुण दशा आत्मा की
 आत्मा में ही विद्यमान है विष्णु विना उपाय प्रक्रिया किये व्यवहार के आधार लिए
 बिना वह कभी प्राप्त हो नहीं सकता। व्यवहार गुण है। गुण सभ सम्पत्ति उभकी
 प्रकृति है उभका प्रयोग किये बिना सम्पत्ति योग सिद्ध नहीं हो सकता। सिद्ध होने
 पर उभके विचार कर रहता नहीं। कार्य रूपा जाता है। इमीनिग आत्माओं ने कही
 पर भी सम्पत्ति योग—गुण के त्याग पर उभके नहीं दिया है। गुण वह है जो
 आत्मा को पवित्र करे। भला आत्मा जिनके पवित्र हो वह त्यागवा—हम सिद्ध
 कैसे हो सकता है जिन अग्नि से सुवर्ण गुण होता है भला वह अग्नि त्याग्य
 समझकर छोड़ दी जाय तो क्या होता सिद्ध हो सकता है? कभी नहीं। ही गड
 सोना होने के पर्याप्त अवसर अग्नि सत्कार रूपा जाता है। इमी प्रकार सभ व्यवहार
 समुचित व्यवहार द्वारा सभ प्रियाण की जाती है जिनसे गुण्याज न होकर आत्मा की
 पवित्रता होती है। सुसाधन विष्णु आत्मोपनिषद् होने पर वह सत्कार रूप गुण
 स्वयमेव छूट जाता है। फिर भला त्याग का चर्चा ही कैसे हो सकती है? गुण्य
 आत्म स्वरूप का प्रकाशक है। मन्त्र आगम पुराणा में गुण्याज न करने का विधान
 कहा गया है। पाप त्याग के समान गुण्य का निगम कही भी नहीं किया है। हे
 साधो! गुण्याज न करा सम्पत्ति योग में उभ रहो। ही भावना अवश्य सम्पत्ति योग की
 बनाये रहना। गुण्य कमाकर भी उभके पत्र की वाञ्छना करना। फल मिलने पर
 उत्तम आसक्ति नहीं रहना चाहिए। अनासक्त भाव से ही भावना चाहिए। पाप
 पत्र से बचकर सभ भावा में तत्पन्न रहना ही वर्तमान काल में उत्तम है। निरभर
 विचार भावों का परिणाम करो। कर्मावभावा आत्म स्वरूप के घातक हैं। कर्मावा
 बध्न आत्मा चारित्र्य गुण रूप परिणाम नहीं करता। चारित्र्य के बिना ज्ञान प्राप्ति
 नहीं होता और चारित्र्य ज्ञान की उज्ज्वलता बिना सम्पत्ति निम्न नहीं हो सकता।
 अतः तप की वृद्धि करो। देश काल की अपेक्षा रखते हुए द्रव्यभाव का शोधन पूर्वक
 तप करने से चारित्र्य सही निर्माण पतागा और तदनुसार क्रम निज रा होकर आत्म
 स्वभाव प्रकट होता जायगा। आत्मानुभूति सुख शांति की साधक है। निज स्वभाव
 पाने पर उभके जितना ही स्थिरता आती जायगी उतनी ही सुख सम्भूति बढ़ती
 जाती है। पर भावों से निवृत्ति होती जाती है। स्व स्वभाव में प्रवृत्ति होती जायगी।
 यही समपत्ति है। यही आत्मा धर्म है। इमी में रमण करो।

ह आत्मन् । आज तब सू नट का काम करता रहा। भला सोचा कि इस
 माय्य कला में कुछ मिला क्या? साथ क्या हुआ? हानि किती रही? अनात्मा
 से सू उसका इतना प्रश्न करता क्या था रहा है और इतना अभ्यस्त भी हो गया
 है कि अब क्या होने पर उभ छोड़ता नहीं पाता है। मनु विदु के स्वाम में पड़ा

अज्ञानी भयकर विषघरो की फकार, मित्र की भीतकार और नाना प्रकार के विपत्तियों के डंका की चोटों की परवा नहीं करता । उमी को अपना कर्तव्य मान लिया है । मार खाना चोट सहना बस यही तो जीवन बन गया है । भोगों की मार रोग विषयों की मार शोक ससार की मार दुःख । इन्हें अहर्निश भोग रहा है देख रहा है । घबड़ा भी रहा है बचना भी चाहता है किन्तु उपाय कुछ नहीं करता न करना ही चाहता है । ऐसा आखिर है क्यों ? मिथ्यात्व के भयकर प्रकोप के कारण अज्ञान की मस्ती के कारण विषयभोगों व अनावश्यक अश्वार के कारण । यह है ससार का चित्र । यह है ससार का प्लान । जो हो तू तो अब जाग । सचेत हो । सुबद्ध आत्मन् विवेक से काम ले । अपनी चीज अपने में है । पर म कहाँ मिले ? कैसे मिल ? स्व पर का परिणामकर दोनों की पहिचान कर । जो अपना उस ग्रहण करो । पर है उसे छोड़ो । तू चैनन स्वरूप है । पान दान तेरा लक्षण है । तुम से भिन्न अनेक चेतन हैं पर वे तुम से सवसा भिन्न हैं बाकी अचेतन पदार्थ हैं भला व तेरे किस प्रकार हो सकते हैं ? एक परमाणु मात्र भी तेरा नहीं शुद्ध रूप भी नहीं है तेरा अमर्याद प्रणेशी आत्मा ही बस तुम्हारा अपना है उसका भी एक प्रणेश अनात्मा रूप न है न होगा और न हा ही सकता है । यह घीव्य सिद्धांत है अतः अपने में अपने को पाने के लिए हो साधुपना है । ष्टता ही अग्नी भीत्र को प्रकट करने में समर्थ है यदि वह सही रूप में है तो । स्वोपलब्धि होने ही वह भी ग्राह्य नहीं है स्वयं छूट जायगी । तू निर्विकल्प समाधि सिद्ध करने का प्रयास कर ।

रूप और अनूप—रूप है रंग । य है मी दय । इसका अर्थ है सावण्य । रूप मोक्ष का चोतक है । अनूप क्या है ? य० है विशेषतः सौ दय का प्रतीक है । रूप सामान्य है अनूप है विशेष । वस्त्र रंग कहा जाता है अध्ठा रूप है । बाहरे तरकारी में रूप आ गया । देवी जी 'हा को ली वा कला रूप आया है । अरे जब नी का रूप तो इस क्या है । यह स्थो यन् अनूप है । एक है विशय दूसरा है विशेषण । शरीर रूप है आत्मा अनूप है । गुह्यो अथ वान नाक मुख आदि अङ्ग हैं रूप के साधन निमित्त सहायक और विवेक बुद्धि ज्ञान दशन मति प्रज्ञा विचार आदि हैं । अनूप के साधक निमित्त सहायक । दोनों का समाहार है आत्मा । समस्त रूपवती गुह्यो स्वरूप इति यो रूप के महार अनूप की सिद्धि कर आत्मा को परमात्मा बना लेनी हैं । अनूप अस्तुत अनूपम हो जाता है और रूप ? रूप बिसर कर पत्र तत्र समा जाता है । कितनी अनीतिक वृत्ति है । देखने में अद्भुत गुणन में आश्चर्याम्वित करने वाली किन्तु है यथाय । देखो जो जिसमें उपजा वह उसका घातक हो ही जाना है । पुष्प से फल होना है फल आते ही पुष्प का भी दा ग्यारह कर देता है । दही दूध से भी दही से पदा होना है । दही दूध को मिटा देता है । भी दही को । भला इसमें आश्चर्य क्या है ? तत्त्वविद को आश्चर्य है ही नहीं ।

तत्त्वज्ञ जानना है शरीर में आत्मा है आत्मा को जगमें ही पाता है पाकर उसे घुड़ का घंटा पहनाकर देना है। बिना ही शरीर का निष्कारण है। बिना आत्मा कहीं मिल सकता है। गीत लेना ही है शरीर का निष्कारण है वह निमित्त है। एक दूसरे के पास है। गुण का ही शरीर है और शरीर का निष्कारण देना है। यम गुण से प्रभु है किन्तु वह यम गुण का पाप नहीं करता अतः आत्मतत्त्व का साक्षात्कार है। गुण स्वयं अनुभवी होकर स्थिर हो गुण बँटा है। और गुण का पाप करना है यदि गुण पराजय पाता है तो फिर तत्त्वज्ञान उस पर बार बार करता गुण का पाप न करता। उसे छोड़ देना है। वह आत्मा नाम करता है। हे आत्मा तत्त्वज्ञान करो। नये विभाग के ज्ञाता करो। नये प्रमाण द्वारा ज्ञान का प्रमाण स्वरूप अज्ञान होता है। यही सही प्रक्रिया है। इसी का नाम अज्ञान है। आत्मा लोकोत्तर है। वह अज्ञान है। अज्ञान अज्ञान उमा रति होती है। आत्मा उमा रति है। वह अज्ञान समाप्त हो स्वयं आत्मा है। जिन गुण शिव रूप होता है वंसा ही है उसी प्रकार आत्मा उमा है वंसा है और परमात्मा हुआ तो जो हुआ वही हुआ। उसका जो गुण है वही है। उमा है वंसा ही है जितना है उतना ही है। यही ता मने तत्त्व है। इस पर अज्ञान स्वरूप अज्ञान सम्मानन है। इसका प्रमाण ज्ञान सम्मान है और इसी रूप में निज रमण करना चाहिए। तीनों का एकीकरण आत्मा है। आत्मा में अज्ञान करना है। जिसका आत्मा ही का। आत्मा को जानना है कौन? आत्मा में आत्मरूप से अज्ञान करना है। आत्मा में ही रमण करना है उसी में स्थिर हो जाना है। कहीं अपने आपने में आप स्थिर होकर चिरस्थायी रूप जाना है। यही हुआ आत्मा का गुण स्वरूप। अज्ञान रूप निजता ही गुण है शान्त है आनन्द है यही ता शिव है शिव गुण है, शिव रूप है मुक्ति है। हे साधो! जो कुछ चाहिए वह। अपने में ही छोड़ो अपने में ही पाओ, अपने से ही मिलो। पर में जाना नहीं पर में रहना नहीं। पर में ठहरना नहीं। पर की ओर नजर न उठाना। दृष्टि पर के ऊपर गया कि अज्ञान ही हुआ। आराध्य किया कि बना बंदी। यही बना तो मार पड़ी मार लगी तो तुल्य जाया। बस दुष्ट ही सत्कार है। इससे बचना है ता अपने में रहो यही नीति है।

सिद्धांत के रक्षक को समझे बिना आत्म तत्त्व का परिज्ञान न हो सकता। आत्मा के ज्ञान के अज्ञान रहने पर उसकी उपनिषिक्त हो सकती है? नहीं हो सकती है। वस्तु स्वरूप जानना समझना अत्यावश्यक है। यही सिद्धांत है। वस्तु का परिणामन किस प्रकार होता है। किन कारणों से क्यों होता है यह अज्ञान कर ही आत्मा की सम्पूर्ण विभान स्वभावानि प्राप्तपाथों को जानना और जानकर समझ कर तत्त्वज्ञान स्वरूप कर उग या निज रूप में जाना यही सार प्रकरण आत्मोपनिषद् है। आत्मा स्थायी है। निज है। निर्विकार है। सतत निज स्वभाव से एक

है एक रूप है । किन्तु कर्म सम्बन्ध से वह विकारी हो रहा है । कर्म मल है । सोहे पर जंग के समान आत्मा में बिाट कर उसे विकृत बना दिया है । जंग हटे तो अपने अपने रास्ते रूप में स्वयं हो जायेगा । इसी प्रकार वायुतक कम पत्तल यदि हट जाय तो आत्मा अपने रास्ते स्वरूप में स्वयं प्राप्त हो जायेगा । जंग ब हटाने के समान ही कर्म मल को आत्मा से पृथक् करने के लिए भी उद्योग की परमावश्यकता है, सत्पुरुषाय जिय बिना आत्म अपने असमी रूप में नहीं हो सकता । आत्मा का शोधन स्वभाव से हो सकता है । रत्नत्रय का प्राप्ति ज्ञान ध्यान, तप और सयम से हो सकती है । तप अग्नि है आत्मा कुन्दन कर्मविहिमालिप्त आत्मा सवर्ण है । तपान्नि बिना कर्माग्नि आत्म शोधन न हुआ और न हो ही सकता है । तप निर्वाञ्छित होना चाहिए । बाञ्छायुक्त तप मुक्ति के लिए हो सकता है मुक्ति के लिए नहीं । इच्छा निरोध ही ता तप है । तप के होने पर ही आत्मा परिष्कृत होती है । निर्मल आत्मा एक बार प्रकट होने पर पुन विकारी नहीं होता । विकार युक्त अनाग्नि से है तो भी एक बार सुद्धावस्था में प्राप्त हो पुन कभी भी विकारी नहीं हो सकता । हे साधो तप करो । गडू ता । निर्विकपूर्वक । तप ही कम नाशक है ।

स्वतन्त्रता का अर्थ है स्वाधीनता स्वावलम्बन । स्वावलम्बन ही सत्य है । पराधीनता ही दुःख है । प्रत्येक जीव आत्मावलम्बन चाहता है । किन्तु स्वाधीनता का यथार्थ स्वरूप प्रत्येक नहीं समझ सकता । वर्तमान युग में स्वतन्त्रता प्राप्त है । प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है देश राज् राष्ट्र सभी स्वतन्त्र हैं किन्तु देखा जा रहा है कि स्वतन्त्रता का रूप स्वच्छता में परिणत हो रहा है । फल तथा हुआ यह प्रत्यक्ष है । सदाचार व स्थान पर अनाचार कर्माचार और दुराचार बढ़ता जा रहा है । शिष्टाचार का पता नहीं है । आध्यात्मिक भावनाएं प्रकुल होने के स्थान पर मुरम्मा रहो हैं । नतिक स्तर पुष्ट न होकर मरणामग्न हो रहा है । आपाद मस्तक मानव जीवन भोग विनाश में आकण्ठ निमग्न है । एको आराम ही का राज्य है । भागावभोग की क्षणिक रम्य वस्तुओं का प्राचुर्य है । इस स्थिति में धार्मिक बालावरण पवित्र भावनाएँ उत्तम विचारों का स्वप्न दृष्टता अनुभव सा प्रतीत हो रहा है । हे साधो ! सम्यक् धारित का विकास किस प्रकार हो यह कठिन समस्या है । जीवन द्रव्य, सत्र बाल और भाव चारों से प्रभावित होना है । चारा ही आत्मस्वरूप के घातक हैं । हे आत्मन् इस स्थिति में स्व-पर का विचार करो । स्व चतुष्टय और पर चतुष्टय दोनों ही जीवन उत्थान आत्म विकास में कारण हैं परन्तु पर की अपेक्षा स्व का विशेष महत्व है । स्व चतुष्टय के दृढ़ मजबूत होने पर परचतुष्टय भी अपने अनुकूल बन सकता है । अतः अपने द्रव्य शरीरस्थ आत्मा, क्षेत्र शरीर भाव राग-द्वेष बिहीन साम्यभाव और कान अपने स्वभाव में स्थिति का बलवान बनाओ अपना पात्र स्वच्छ करो । अपना घर साफ करो । अपनी दूबान सजाओ । अपना माल जमाओ व्यापार स्वयमेव बढ़ जायेगा । स्वात्म निरीक्षण करो । अन्तर्दृष्टि बने । बाह्य दृष्टि का त्याग करो । बहिर्बुद्धि में पराधीनता है वही दुःख है । हे साधो ! सुख का साधन आत्म निन्दा कर स्वभावों का चुन-चुन कर निवासना है । वही सुन्दरा व्यापार है । इसी में सगे ।

जीना तथा है जीव रत्नाधर । शरीर आधार है त्रिगुण प्रवाणशान्त की
सचातक । जीव तो यही प्रणि नरक है । जीव गचातक है जीव मन इन्द्रियाँ
सचातक एक भागक है जीव जन्म भागित । बात स्पष्ट है । किन्तु नामक राजा यदि
अयोग्य हो जाय अपना वक्तव्य न पान अपनी मिश्रणाग्रियों का दूसर पर छोड़
तो क्या होगा ? वही जा काष्ठागार को राज भर तब पर मय धर महाराज का
हुंशा हुआ थी । हमारे कलाधर महाराज की भा यत्ना की है । उन उत्तर चना न
भी अपनी सत्ता मन व हाथा म गौष रहा है । वह मनुष्य त्रिगुण पर आधिपत्य
जमाकर है वह कठपुतली की भाति मचा रहा है । वह तमाम विषयो म बोझाता है ।
करे क्या य भी तब मूर्ति व त्रितक त्रिगुण नचान वा न मन्त्रा व मन्त्रा व अनुमत्त
मन मन्त्री द्वारा नचायी जा रहा है । हयाग्राव्य रिश्रान स शूय हा दीड रहा है ।
मन भी वक्तव्य वक्तव्य का विचार कर क्या माया छोड़ा । इनका ता दाना हाथ में
मोल्क है । फल बुर सब म मन्त्र है । जहाँ चान वही रम । साज शम है नहीं । मुख
दुःख का चिन्ता नहीं । यण अपवश तो परवाना नहीं । तब भी क्या ? शिष्यापराध
गुणोत्तम जातो पाति है । यत्ना नचा हुआ न पना पन भागना है जीव राजा का ।
दुःखति म जाय चाह समति म । अच्छा बुरा पन भागना । राजा जीवराज । यह है
इन नम । हराम की चाल है साधा साधना हो । मन का च न समझ । इनके
चार म न न । इनकी चापनमा म फगा तो समन न वि नी वी दध वी रखाली
बनान । न की जमा ही तरा नशा हायी । दूध मलाई पायगी वह (बिला) और
हुडिया रगलना तुम जान धन की जाय रहा करा । धर्म बुद्धि छोड़ा अनान त्याग
करो मित्राहव का बमन करा । नशायों म बचा । मोह रिदा सजा । सावधान
सचन जाग्रत हाथर अपना गहरा जाप तो तभी रत्नत्रय रूपा धन सुरक्षित रह सकता
है और गच्छा शिवपुर राज्य भागन म आप समर्थ हा सारत हा अयथा नहीं ।

इ आ मन नपुण्य प्रपन्न कर । चतुरता कहा है जा अपन स्वभाव का सिद्धि
करावे । तरा ज्ञान दशमय लक्षण है । पर परिणति म लिप्य कर अपन इस स्वभाव
को क्या भूता है ? चतुर् ज्ञान सावधान हा । अर भोजनन म अनाति से बाल
गवाना आया है जब ता हाशियार हो । बिनी बार मुझ जगाया । नी नसी पर
तदा नहीं गई । असमाप्त बनी है । उन अनाति वागता का त्याग । आनन्दमू
पान कर । माह म विष स्वय उत्तर जायगा । ज्ञान घाना म आ । सम्यक्त्व भाव
जाग्रत कर । इसक प्रभान म परभाव करी विचार विजीन हो जायेंगे । स्वभाव पूपा
का उत्प हा गया कि पातावला प्रगार ज्ञान सगना । धर्म फिर भय कही रहे
सच्चना है ? निर्भयता हा तरा निज रूप है । पाति स अपन घर म प्रवेश कर ।
निर्भय विचार कर । निज मन्दिर की पक्षिवात है कि दुग्गी म रवि स्थ हो जायगी
यग घडा है नानी ज्ञानदारा ज्ञान है और अपन म विचरण हा मन्दिर धरित है ।

यही है रक्षणम् । अन्तः एकत्र संप्रदान है योग । मुख अन्तः अमित अक्षर अनन्त
 मुख भान्ति अन्तः । अन्तः अभाव में आज तक दुःख होता रहा । अब तो मुख का
 अन्वेषण कर । अज्ञा का उपयोग कर । जानानुभूति प्रकट कर । हे साधो ! विषय
 विकार नखर हैं । परब्रह्म है परनिमित्तिक हैं अतः मन्त्र है प्रसन्न रूप हैं नष्ट
 होन वाले हैं । इनके तन्त्र भी सार नहीं है । यः क्षणिक मात्र आपान रम्य हैं ।
 इनमें ममकार अहंकार करना सत्कार बढ़ाना है । दुःख उत्पन्न करना है । पीडाओं
 का पीपण करना है । दुःख खाकर स्वयं कष्टी बनना क्या यह विवेक है । बुद्धिमत्ता
 है । यह घोर अज्ञान है । हे मुन्नागी आर्य रहस्य को समझकर निजानुभव प्राप्त
 कर आत्म स्वरूप में रमण कर इसी में साधना है । साधु वही है जहाँ साधना का
 राज्य है । साधना यथाय हाना चाहिए । सम्भव है ।

हे आत्मन् रक्षाबन्धन पत्र आत्म विजृम्भ का स्थोहार है । आत्म साधना की
 इसमें तान है । अन्तरात्मा की लय है । परमात्मा का गगान है । निजानुभव का
 प्रकाश है । क्षमा का गरिमा है । त्याग की महिमा है । सत्य की विरण है । जीवन
 का आलाप है । वास्तव में यह अन्तः मानव की पून मानवता की दानवता पर पून
 विजय है । एक ओर मिथ्यात्व का पार अज्ञान-घनार छाया है तो दूसरी ओर उस
 सपन तम का उच्छ्रान्त सम्यक्त्व वालरवि सुनहला प्रमान लिए मुस्कुरा रहा है ।
 एक ओर कौशिक शिशुआ का कणभेरी करण गान सुनाइ रहा है तो दूसरी ओर
 मानव विमोह छगणों का मधुर कणप्रिय बन्धन एक आत्म कठोर निन्दना भयकर
 अट्टहास कर रही है तो दूसर किनारे पर बन्धन्य मानव की उन्नात तरंगें मनोरम
 सपीत । भाग और योग का अन्तिम विकास है इस पर्व में । क्षमा और मोक्ष की है
 पराकाष्ठा । किन्ता निराना है सुख दुःख का विनय । दाना की मधि पर बना है
 स्वाधीन आत्मा का मुरम्भ भवन । हे साधो अपन की गता । लोल कर दखी हृदय
 भवन का किन्त कोन में छुपा है आपका प्रमुख तत्र अनन्त मुख और भान्ति । आत्म
 हित यद्यपि सर्वोत्तम है किन्तु धर्म रक्षणार्थ परहिन की मर्तिमा भा उस आत्महित
 की साधक है यह मन भूतो । अनेकों की रक्षाय जाना समग्र विशेष महत्त्वपूर्ण हो
 जाता है जब कभी । यह स्पष्ट है कि मन्त्र-मन्त्र का साधक होता है वधक और
 रक्षक भी होता है । वास्तव में आज जाना चाहिए बोर प्रम नहीं । निस्वाय सेवा धर्म
 हो स्वाय वासना से दूर । यह पत्र ही नहीं पत्रों का राजा है । इसमें उभय साक्ष हिन
 समाहित है । इस लोक में कानि और परमात्म से स्वर्गात्मिक वस्य प्रदान करने वाला
 यह दिन परम पवित्र है । पवित्रता-शुद्धि है लोभ का परित्याग । लोभी व्यक्ति
 अन्त की रक्षा नहीं कर सकता न वह स्वयं का ही पापन करने में समर्थ होता है ।
 संतोष परम सुख है । सामन्त आनन्द परिणामा का कारण । अन्त धर्म ध्यान की
 सिद्धि कर शुक्ल ध्यान की ओर हृदय नभ बनाओ ।

भगवात्मान ज्ञान को निमित्त बनाया । अनादि स ज्ञान में समग्र विषय और अनध्ययमाय रूप बना नूढ़ा कनरा भरा चला आ रहा है । यह साधारण विकार नहीं है । ज्ञान घाटा में जल प्रविष्टि हानि से तत्कारण सा प्रतीत होता है जमे दूध में पानी । क्षात्र-जीर का विभाग समझना दुर्लभ है उमा प्रकार जानानान का विभाजन समझना करता अति दुस्तार्थ है । जानिन् यदि तुम अपने स्वरूप का एक बार पहि चान लो तो फिर हम मेल का मयाग को सिमुक्त करने में समय न लगता । यही भे विधान है । जाना निरीक्षण निराना ही होता है । हमर कार्या का प्रम उनकी प्रविष्टा उनका प्रतिफल मर हाता विनाश हाता है । तभी ता उम कुत्त कुत्त स्वामी भा गरिता वि जसवात बहुत है—निमित्त है । अर्थात् विषय भोगों को भोगता हुआ भी जाना उनसे पर है उनसे फल का भागी नहीं है क्योंकि अनामक रहने में समग्र नहीं करना । उनका कर्ता नहीं बनना फिर भाता हा क्यों बने । जानी गीतारि विनाश का उपासीत भाव में करना रूप ही फल दनी है । अपना मुक्ति में विषय का मया फल भा उपासी हा पाता है । जानी लोकि विद्या करता है सिन्नु उगाता । यह विद्या अन्तरमा में निहित रहता है । स य वरी समार म है वि तु ह ज्ञान त प पर है तभा अजुन न राधावेध का समय अनेका पत्नी के रहने पर भा व कान एक नपन वि तु या नागिका मुना का ही दम्प रहे जिनो विला । जान है । अरव्य जाना है मर कर । सिन्नु जानी को हाट म हा विषय हाता है जाना का नदी । न भी ता उधर हा एकाग्र है जहाँ उमका अपना कुछ है । जाना मात्र जा मा है । ज्ञानमा एकाग्र स्वरूप है । एकाग्र सम्पत्तिगत सम्पत्ति ज्ञान और सम्पत्ति विशिष्ट स्वरूप है । य जान रूप भा मात्र व्यवहार में समझात क वि है वस्तुतः जाना एक रूप है । जान का एकाग्रण हा आत्मा है । इन जान मात्र पर हा गुणाना का ही रहता है । जान प्रयत्न विषय भोग इन्दिन्द्रिय अथ गुण गुण रूप कभी न उपासीत म समय भा व जान मुक्त आत्म स्वच्छ की ओर ही उमुक्त रहता है । जाना विवर में व है । गुण गुण शान्त अनादि ध्यान तीन भी उमका मन बन विवर में मन रहता है । मोटा पान ही उड़ा ता वग मया फिर उमम नहीं जाना । वग मया जान है भ विनाश का । प्रज्ञा ज्ञान का ज्ञान है आ मा और कम का मरि पर । एकाग्र हान ही उच्छत जाना है । एकाग्र हान क व्यवहार हा उधर उच्छत कर ज्ञान का समान । फिर क्या जान उम कोष का मत म । जानी कम व्यवहार क प्रयत्न में व्यवहार नहीं लगता । वह गुण ज्ञान के का व्यवहार करता है । जाना में व्यवहार मर कुछ है सिन्नु उम क ई प्रयत्न विरत का मर । वह निर निरता हा रहता है । जाना मात्र म रहकर भी उमम पर है व्यवहार म व्यवहार भा वग मया प्रयत्न हाता है ? नहीं । फिर ज्ञान का कम वग मया म रहकर उम उमम जान स्वच्छ का वरी विरत कर ?

[illegible]

'आत्मा और आत्मदान'

जगत्मा और आत्मघान
 व्यवहारी जा कहा करत हैं मेरा आत्मा अति दुखी है बहुत सुखी है
 निराशा है भानी है इत्यादि । य नाना विकल्प परिपाटी का कर्ता आखिर
 * कौन ? क्या वास्तव में मेरा आत्मा यह कथन जमे दो पक्षों का अनुभव

मन और मानव जिम्मे द्वाारा हटाया गे तब विचार जाय वह मन है जिम्मे आश्रित वह (मन) रहता है न मानव। मानव के अभाव में न, रहता है। न तब प्रगती में मन और मानव न तब निर्धारित हान है। किन्तु मूल्य हानि में विचार जाय तो मन और मानव अद्वय एक ही वस्तु है। मोक्ष अन्योपाय है। मन का प्रयोग मानव का हाथ में है। वह चाहे जिधर लगा सकता है मन को। मानव का उद्देश्य विषयों में और चाहे तो लिपटा दे दशमार्ग गुणभक्ति में। मन पण्य है। पण्य और अण्यधिर मूल्य है। इमतिमान मानव को विचार प्रतिक्रिया गुण मानव मानव रहता आवश्यक है। बगुना तोर पर एक पाँच उदाहरण प्रतिक्रिया में मानव रहता है। विचार विचार और और कब मरानि निशाता सही वक्त। उगी प्रसार मत्पुण्य मानव रहता है कि बतमान प्रतीक पञ्चविषयों के विषय भोग महाभयकर है। पण्य मर हाथ में आये कि मैं हूँ अपने अनुकूल बना पुन उगी के माध्यम में जाय आत्म तत्व को पहिचान समझ और उसे ग्रहण करूँ। मैं मवशक्तिमान है। यन् विचार भी मानव प्रतीक है। जो जिससे पण्य होता है उगी का घातक बन जाता है। यथा पुण्य स जन्मोपपन्न होता है और जानने हो वहां पण्य क विनाश का मूल हेतु बन जाता है। पाप में होता है पुण्य और पुण्य करना है पाप का घात। घम का साधन है पुण्य और पुण्य ही उसका पोषक है। आत्मा स्वयं घम स्वरूप है और घम है आत्मा रूप। यह अनादि सिद्धान्त है। दम सत्ता विषयपण्य मवशक्ति विचार जाता है। मानव जावन और मन हर क्षण प्रगतिशील रहता है। पीछ हटता जाना नहीं अद्वय बन्ध पीछ हटता है। अपने में अपनी खाज करते हैं। एक बार राजा का मन में आया कि मैं इस घम को किसी प्रकार अपनाकर अपनी स्वोन्नति करूँ।

साधना और साधन—जा मानव जाय वह साध्य है और उसके लिए किया गया प्रयत्न है साधना। न तब मानव के हेतु निमित्त कारणों का वर्गीकरण है साधन। स्पष्ट है साध्य और साधना एक एक हैं और साधन प्रतीक हान है। आपको जाना है शिवपुर वही है साध्य या नश्य। जाना है यह क्रिया है यह धारित करता है शिव की कुछ करना है यह क्रिया है साधना अर्थात् तपस्वरण। तब तप रूप साधना के लिए चाहिए हमें साधन। साधन निमित्त दो प्रकार हैं—समय और असमय। समय साधन वे हैं जिनके होने पर उत्तर क्षण में साधनापुण्य पण्य प्राप्त करने में सफल हो। असमय साधन जान जान है सभी साधना को बल प्रदान करते हैं कभी यों ही आकर बन जान है। साधक की माध्यमानुसार ही साधन सबल और निबन होने हैं। उपसर्ग परीपह-बाधाएं आनी है य साधना को सफल भी बना सकती है और विफल भी। साधक का तब जान शरीर सहन हो अपेक्षित है। भव विज्ञानी विषयों को शका बना है जब कि अज्ञानी स्वयं उनका समझ मनमरत हो जाता है। वे आश्रित विरोधा विचारें तब को साधन और अतयण को साधन हो

जाती हैं। हे साधक साधना की निधि करना है ता भेद धिक्कारी बनो तत्त्वदर्शी और तत्त्वज्ञानी बनो। ऐसे तब स्वभावानुसार प्रक्रिया करो। इहाँ का नाम है सम्मन्धान सम्मन्धान और सम्मन्ध चरित्र। इन सीमा का उल्लंघन है स्वात्मोपनिषत्। आत्मा स्वरूप की प्राप्ति। निजानन्द की अनुभूति। चिदानन्द चतुर्थ का आस्वादन ही परमानन्द है। यही गिव है—माया है। बस यही है तुम्हारा साध्य। हे आत्मन साध्य दूर नहीं यदि तुम साधन सही योग्य बना लो। साधना की उल्लंघन बठिन है यहन है क्योंकि इनका समुदाय है। शगडा एक में कभी भी कही भा नहीं हाता विसर्वा अनक म होता है। उप विषय। बुद्धि का नाश ही सम्भव दृष्टि है। जहाँ अनेको साधना का सम्यक् निरीक्षण कर भन प्रकार परीक्षण कर अनुकूल साधन को पा लिया कि बन आपका साध्य भिन्न हो जायेगा। साधना का विविधिकरण आत्म साधना में कठिन समस्या उपन्न कर देता है। फलन साधक यत्न-श्रद्धा लक्ष्य चूक जाता है साध्य से हटाकर उसकी साधना दूर ही रह जाती है। अनादि का भ्रम विषयय आध्यवसाय रूप संस्कार उभ उभक्त कर देता है। तीव्र कम विषय म कि कस व्य विमूर्त हो जाता है। यदि तीव्र पुण्योप्य वेग क साथ आया ता विषय हीन हो अहंकर भग्नकार म फल जाता है और पापाप्य हुआ तो माह मिथ्यात्व क जाल में उलझकर घड़ाम गिर जाता है। दुष्यसनों म फल जाता है। शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता बन-बनकर उनका भोक्ता बनता है। फलानुभव म राग द्वेष करता है पुन पुन कर्मजान कर बोझिल होकर समार सागर में डूबता है। इस प्रकार साधनों की विविधता में याग्यायोग्य साधन प्राप्तक का विचार शून्य होकर लक्ष्य चूक जाता है। साधना पथ से भटका कि कम दुःख का भागी बन जाता है। यह है पुण्याप्य भिन्न साधक की दशा। हे साधो साधना यथारूप ही बनना है बढना है प्रतिक्षण, बढ़ भी रहे हो किन्तु सावधान रहना लक्ष्य न चूक जाय। एकाग्र होकर लक्ष्य का ध्यान रखना। लक्ष्यानुसार साधन सचित करो। कारणानुसूय काम होता है। नय विभाग का परिणाम कर विचार करो परमात्मन के पान के समस्त साधन मुक्त में ही विद्यमान है। साध्य साधन और साधना तीनों एक ही हैं इनका एकाग्रभाव ही स्वानुभव है यही है अपना स्वात्मोपनिषत्। यह साधनापथ विलक्षण ही है हा किन्तु अमौखिक भी है। साध्य मुनिविषय है माग। इनमें किनी का विचार नहीं है किन्तु साधन अनेक हैं। सावधाना इहाँ के चलन में रखना है। साधन सही रहने पर साध्य भी सही मिल जायेगा यह मुनिविषय है।

आत्मा और आत्मज्ञान

कबहानी आ रहा करने हैं मेरा आत्मा यदि दृष्टी है क्या मुझे है निराशा है मनी है इमानि। य माना विरक्त्य परिपाटी का कर्त्ता आधिर है कीन ? क्या वास्तव में मेरा आत्मा यह कथन जैसे दो पन्नों का अनुभव

कराता है कि एक मैं जिसमे तू मेरा कहन जाना अवबुद्ध होता है और दूसरा वह जिसे मैं मेरा कहता है। निश्चय नय से विचार करन पर मैं मेरा आत्मा पृथक् नहीं है आत्मा एक अखण्ड अविनाशा निरञ्ज द्रव्य है वह ज्ञान ज्ञान मुख्य स्वरूप ही है। उससे भिन्न न कोई ज्ञान है न ज्ञान है न चरित्र है। इसी प्रकार ज्ञानी दक्षी और चारित्री भी कोई भिन्न भिन्न द्रव्य या द्रव्यी नही है। एकमात्र आत्मा ही स्यात्माक है। मैं भिन्न भिन्न स्वरूप हूँ यह मानना भ्रम है अज्ञान है मिथ्या है। मिथ्या बुद्धि से वह समारा आत्मा पर्याय बुद्धि धारण कर पर निमित्तिक प्रतिष्ठनों में मेरा तेरा भाव करता है। उनमें इष्टानिष्ट बुद्धि करता है। इष्टानिष्ट बुद्धि राग द्वेष करता है। राग द्वेष न समझार अहंकार कर कर्मा भाता बनता है। पना मुख्य दुष्टानुभूति कर अपन का मुख्य दुष्टी मानता है। मिथ्या के माध्यम से इस प्रकार माना भावा में उनसे उत्पन्न कर पुनः पुनः कर्माग्निन करता है फिर फिर वही संगार वही जन्म मरण-बुझापा मुख्य दुष्ट आत्मा। इस प्रकार विक्षेपण कर विचार करने पर मध्यम रूप ज्ञान जाना है कि दुष्ट का कारण अज्ञान और मिथ्या भ्रम है। अपन स्वरूप का समझ अपने में जा जाय ता मुख्य दुष्ट की समस्त कल्पना ही समाप्त हो जाय। ता क्या आत्मा माध्यम रूप है? नहीं। आत्मा स्वयं सद्य स्वरूप ही है। उसका प्रत्युमान दोष पर पुनः पुनः दुष्ट आत्मा नही कहना है। एक बार प्रज्ञा होने पर पुनः आच्छादित नहीं जाना।

आत्मा और आत्मवान में कोई भा भेद नहीं है। निश्चयन होना एक ही है। शरीर में अपनत्व बुद्धि ही ज्ञान भेद इष्टि का कारण है। यही पर्याय बुद्धि है। पर्याय में विचार हो सकता है स्वयं में नहीं। द्रव्य सत्तन एक स्वभाव हो रहता है जबकि पर्याय परिवर्तित होती रहती है। आत्मा एक होकर भी पृथक् पृथक् अनेक है। हिन्दु एक दूसरे का विधीनयन नहीं जाना। मभा अपन-अपने में सत्तन एक अखण्ड एक रूप एक स्वभाव हा है। प्रपक्व ज्ञाना इष्टा है। ज्ञान व स्वभाव से वह स्व और पर जाना को जानना समझता है। ज्ञान्य गुण से स्व पर का इष्टा है। ज्ञान्य गुण से इन गुणों का समझार है। ज्ञाना चरित्रता का मुख्यानुभव नहीं हो सकता। मुख्यानुभव यदि नहीं तो आत्मन व का हो माना जा जायता। मुख्यानुभव ही तो परमात्म स्वरूप है। मुझा मा न ज्ञान ज्ञान दक्ष है और अतः ही मुख्य एव कार्य है। यहाँ एक कीनूह्य साधन जाना है कि आत्मा ज्ञान द्वारा ज्ञानी है इष्ट द्वारा दृष्टा है मध्य द्वारा मुद्रा है और वीर्य द्वारा शक्तिमान है ता स्वयं स्वयं पृथक्-पृथक् है इन सब का योग रूप निश्च ही आत्मा है क्या? एसा नहीं है क्योंकि गुण आत्मा के ही निश्च स्वभाव है और सभी स्वभावों का एक भाव ही प्रत्येक होता है। सभी समवर्द्धता नहीं है भेद नहीं है। एकमात्र आत्म्य स्वभाव से सब वर्तित है। ज्ञाना ही ज्ञाना का ही परिवर्तन कर ज्ञानी दर्शन रूप से दृष्टा

मुद्राणि रूप से मुद्राणि गम्यन्तु बही जाती है। वह आत्मा एक प्रगल्भ चान्य विषय रूप में ही है। साधारण आत्मा अनादि में अगुडि है। पर संयोग से युक्त है। उमक चेतन्य सम्भाव का विपरिणमन हो रहा है। इमान्द चेतना के शुद्ध ज्ञान चेतना अगुड के कम चेतना और कमचन चेतना इस प्रकार तीन रूप परिणमन करता है तभी वह अनन्त विस्तर रूप की ओर उन्मुख हुआ जान होता है। विकासो मुख होता है।

सन्ध की तुला पर जावन झूलना रहता है। न तो वही स्थिर है न शान्ति। पुन मन्त्र कही? सन्ध कई प्रकार का होता है। इस लोक सम्बन्धी पर सोच सम्बन्धी। लौकिक जावन में नाना भराए हो जाती है। पर वस्तु सम्बन्धी कृष्णस्वी भाई वध आदि के प्रति सन्ध हा जाता है। पति पत्नी का पुरम्पर एक दूसरे के प्रति गेह डोहा है यही तब कि स्वयं अपने विषय में भा जाव प्रतीति सन्ध स्व होकर कि बर्तार विमूढ हो जाता है। कभी कभी आत्मघात तब भी कर बैठता है। दूसरे की हत्या भी कर बैठता है। अथ भी नाना प्रकार के अपाचार अनाचार भी हो जाया करत है। कभी कभी अनावश्यक अमत्य रूप सन्ध की श्रमि इतनी जम्जिल हो जाती है कि उमका चलना ता दूर रहा उमकी उलझन में फमकर अनन्त निरपराधी अपराधी बनकर अपना जीवन पीना समाप्त कर देत है। घम में भ्रष्ट हो जात है। नारियाँ शाल सयम से च्युत हो जाती हैं। नम्रता के स्थान में उद्वेगता स्वच्छन्दता आ जाती है। लग्नाविहीन हो दीठना बढ़ जाती है। घस हीनता समाज हीनता देश और राष्ट्र तब का पतन इस सन्ध में ही हा जाता है। उमय नाव घातक इस सन्ध को प्रयत्न नहीं देना चाहिए। वस्तुव में मदेह ठगो का मन्त्र है जार और दुराचारिया का समाधान है। दखा जाना है किसी भा नावव्यवनी सनी सौभाग्यशास्त्रिनी नारी का दखा कि उम पर आक्षेप लगाकर उसका पतिक मन में सन्ध पना करा त्त हैं। परिवार के भागों का ललित कर देते हैं। नाना प्रकार से उस लाछित कर पय भ्रष्ट कर त्त हैं। पत्न्युत हो वह भी अपना सबस्व इन स्वार्थी लफों के हाथों में समर्पण कर देती है। यह है दुर्गता सन्ध राजा के प्रभुत्व की। ह आत्मन निशक बनो। शका रहने पर निमन सम्पत्ति नही हो सकता है। जिना सम्पत्ति के आत्म गुडि कही। आत्म-निरिणाम की निमलता हा जीवन है। आत्मा की उन्नति करने के लिय निशक हाता परमावश्यक है। शहर झूल है पाता है जहाँ से खमा वही परुटाम पना हा जाती है। उस कसक में हयोपाय विवक शून्य हा जाता है। अत आत्म र्थी को शका का परिहार अत्यावश्यक है।

हे आत्मन तू जाता हुआ है। बर्ता कम का काम तरा नही है। दुख मुख भी तेरा नहा उमकी अनुभूति भा तरा नही। काम करता है

रूपे गिनता है साक्षात् देता है और माया ही सेवा है। क्या भया हमने उसे शोक
हृय होता है? वह क्या उनका मायिक है? नहीं। इसी प्रकार तुम अपने को
गमगो। अनादि काल में तुम कर्म रात्रा के मूलीम बना हो। दुष्ट गुण रूप आय
व्यय का हिंसाक रूपों ही फिर तुम दुष्टी सुष्टी करो? इसका एक ही उत्तर है
तुमने इस कर्म की क्रियाओं को अपनी मायानी साजसी होकर पर यन्तु में आपन्य
कर लिया सोमवश पर पण्य में अतम बुद्धि लगा ली। दूसरे का क्या अपना
मान लिया। जब कर्ता बने तो तन्मय कर्म का भोक्ता बनता ही पड़ता। कर्मा
भोक्ता की मायता और उगता परिणाम काई सामान्य चीज नहीं है छोटी भी नहीं है।
साधारण भी नहीं है। कर्म और जाय अनादि में एकमय है। यही एतत्त्व की
भावना भी अनादि है। इसके समयोग जाय गहरार भी अनादि है। वामना
का आधिपत्य ही दुष्ट दुष्ट का मूल है। यह सब हुआ क्यों? मिथ्यात्व के कारण
अज्ञान के बल पर और मोक्ष के निमित्त में। ये सब क्रियाएँ स्वभाव भी अनादि ही
हैं। यही कारण है कि ये प्राकृतिक जग स्वभाव बना गया है। आत्मा इन्हीं में
रख पच गया है। विषय बुद्धि होना के कारण यह विषयों में हा रहा है। हे गुण!
आ मन तुम इस रहस्य को समझो। अपने अगली स्वभाव में आओ। निरूप
को समझो। पर परिणति का त्याग करो। स्वभाव का समझो। अनात्म बुद्धि
का त्याग करो। आत्म बुद्धि अपनाओ। स्वभाव को ग्रहण करो। क्या ताप
आदि शरीर के विकार हैं। आत्मा निर्विकार है। स्व स्वभाव ही निरास्तु है
तू ज्ञान दशन को प्रकट कर। ज्ञानी बन दशन बन। तटस्थ होकर रहन स
जात्म स्वभाव जाग्रत होगा। निज म निज को परपो। आत्मा ही आत्मा का स्वभाव
है। इस अपने स्वभाव में ही लीन रहा।

क्यों जी पच गया रहत है? अर इतना भी नहीं जानत? यह प्रहरी (बीरी
दार) है। बीरीदार रात्रि जय अधकार को बीरता हुआ मुखा जगत को जगाता
है। उह सावधान करता है। ये पच जगात वश महारम्भ नि सावध क्रियाओं
में फम माह अधकार में पच प्राणिया को जाग्रत करत है। सावधान करत है।
पहरार इसनिए जागता है नि सात हूण प्रमादिया के घर में चारी उबती ठगो
आदि न हा जाय और पच इसलिय मगल प्रभात की शह्याई यजात है कि काम
प्राप्त कपाय प्रमाद आदि लुटर तपम पिधि को न ठग ल जाय। प्रहरी कहता है
जागत रही उठ रते इत्यादि। पच भी मानव का बार बार रुचन करत है मोह
मदिरा में मस्त मन रहता अज्ञान का नीद तजा प्रमाद का तटा त्यागो भोगो की
जग त्याग में आपना आत्मा उलझ रही है। कपाया के जाल में तिसक रहा है।
॥ गम्पति को समझा। तुम्हारे मन अमूय रहत है। आत्मा में सगति है।
अर नी भी आपन पृथक् नहीं हुए हैं न है और न हान। नि तुम्हारा व्यवहार न

उह आवत कर लिया है छा रक्ता है । यह रहस्य बड़ा गंभीर है वेधीदा है टहा है । आपको भावधानी स प्रज्ञा छनी का अनुसर्ग स उपवास करना होगा । अनादि स प्राप्त सत्ता कि दुष्ट का आपका याग रही है ? अनुभूति परिणति स उत्तमा कर गुन नाना प्रकार स दाक्षिण बण्ट सहे है ? उनका स्मरण करो । सवार स कितना निरस्कार तराभव तुम मिता ? कुछ मात्र है ? अर आत्मन तू दहा मन (दहन) स भा विकाया । इसम बड़कर क्या अपमान होगा ? अब यह मानव जन्म उत्तम उत्तम कुन उत्तम जाति वश सर्वोत्तम धर्म प्राप्त हुआ है । हम समय यति तू अहंकार और ममकार का दहन स कर गया ता बस फिर पुन उसी दशा को प्राप्त हो जाओगे । स्व स्वरूप को समझो । स्वमवेदन की प्राप्ति स प्रयत्न स लया । तभी जीवन की साधकता है ।

ह आत्मन तरा गण क्या है ? बोध तरा स्वभाव नहीं है । यह तो विभाव है । विभाव पर निमित्तक होना है । यथा दूध का उबाल । दूध उबलता है क्या अग्नि स सवाग स मनुष्य उछटना सुनता है क्यों ? बिछ ब डक स भ्रमर नाचता है फना की गंध स द्रव्याणि य सब पर भाव है । विभाव पणि तिया है । मयोमी भाव है । य सब नश्वर है । क्षण भंगुर है । स्व निमित्त के अभाव स निमित्तक का भी अभाव हा जाता है । अत सिद्ध है कि प्राप्ति भी पर निमित्तक है इगनि तरा स्व भाव नहीं । पर कारण से होना है । आविर य तो निव स्वभाव हुआ नहीं । वस्त स्वभाव अमिट होता है । स्थिर और अपृथक् होता है । बाध का अभाव है क्षमा । क्षमा हा जा मा का निव स्वभाव हुआ । हे न ननु तया धम अपासो क्षमा रूप हा तो तुम हा । क्षमा हा मुहारा धम है । क्षमा से ही जाव "मानिस हा । जहाँ क्षमा भाव है वहाँ सुख और शानि विद्यमान रहनी है । क्षमा क रहन स मन प्रफुल्ल रहता है । शरीर स तययता आती है । क्षमायुक्त परिणामा स दिय हवा जर तप अत नियम अनुष्ठानाणि सफ स होते हैं यथाथ पत्र प्रदान करन स समय हात है । क्षमा पूर्वक पूजा नान साधक है । क्षमा युक्त हा ि सा आह रान विषय कन प्रत्ती हाता है । क्षमा भाव सहित सावय क्रियाएँ भी कठोर कमबध नहीं कर सकती । जाव दया रहन स सावधानी रहेगी सावधान विवक ही हावा विवकपूर्वक की हुई क्रियाएँ जटिल कमबध स कारण न हा होत । भावो स सरनता होन स पायायाय का विवक रक्षता । स न बार और शिष बार रूत आवरण करण । परमाडा का भाव नहीं रहगा । शानि और सुख नी चाह हागी । अपने जीर पर क विकास का भाव रहता । बड़ा भी तू तू में में क पचड स नहीं पडता । क्षमा भाव कहा लाना नहीं है वह तो स्वय आत्मा का स्वभाव हा है । स्वभाव स्वभावा अभिन्न होन है । यथा अग्नि और ाह । अग्नि स ाह पथक हो हा न हा मक्नी उमी प्रकार शमा आत्मा से भिन्न हो ही नहीं सकती ।

हे आत्मन् तू उत्तम धामा स्वरूप है। निज स्वभाव में विचरण कर। प्रत्येक विषय रूप रस गंध शब्दादि पर रूप अपने-अपने स्वभाव में स्थित है। क्या व कभी तुझ रूप हुए या होते हैं या होंगे ? कभी नहीं। वे आपसो यह कहने भी नहीं कि आप हमारे पास आइये हमको देखिए मूँषिए चखिए या सुनिये अथवा मोहिए स्पर्श करिय। फिर आप भला क्या बलात् उन्हें ग्रहण करते हो। क्यों उनमें अपना बुद्धि जाड़ते हैं ? क्या उनमें इष्टानिष्ट कल्पना करते हो और क्यों रंग द्वेष मोह का पायण्ड पत्ता कर स्वयं कर्ता भाक्ता का झूठा अभिमान कर कर्मजन कर दुख उठाते हो ? महा लज्जा की बात है। बड़ा घ" का विषय है। अर साधारण व्यक्ति की अज्ञानी भी बिना सम्मान के पर-पर नहीं जाता और तम शुभोन्मत्त से शुभसति प्राप्त कर भी शुभाशुभ शब्द वगणाओं में अटके हो। विचार करो यदि कोई गाली देता है तो उसका हेतु क्या है ? यदि आपकी भूल है तो ठीक हो है उसका गाली देना वह आपको प्रायश्चित्त दहर दीप से निवृत्त हो कर रहा है। यदि आपका अपराध नहीं है तो वह कम घ घ कर रहा है और आप यह विचार कर साम्य भाव से मुन रहे हैं कि वह विचारा अपना यत्न अपना मुख जीव शरीर शक्ति घब कर मुझ गाली दे रहा है अपना पुण्य क्षीण कर रहा है मेरा पूज इत कर्मोन्मत्त ऐसा वा अष्ट दूआ इसके निमित्त स उन्मत्त आकर निजिरित हो जायगा। फिर गाली देने विषयता तो है नही। मुन मारा नही मारा भी तो बाँधा नही बाँधा तो प्राण नही हर ओर यदि प्राण विभाग भी किया तो धम ता नही हरा। य सब चार्जे तो कर्न जय है। हममें आत्मा का क्या सम्बन्ध ? आत्मा पर इनका वाद प्रभाव नहीं हो सगा। आत्मा मुक्त है न दखता यह जाना हुआ है परन्तु रागा द्वेषी नही अतः मैं आज मातृत्व दृष्टित्व स्वभावानुसार क्षमाशील हूँ। हे साधा ! इस प्रश्न पर तू निज स्वभाव का अनुमनन बितन कर ता काध का शत्रु का गिराव देता हुआ। शत्रु तब तक हा वनवान हाकर हाही होता है जब तक विरोधी नमकार हा। हे। तुन मरन हाकर भी निवृत्त कर्ता हा रू हा। धमा शक्ति अत्रम ह। धम की वय को कुत्ता ह। का शक्ति ता गान्त जय ह। का र करी परित ता वय है। इनका स्मरण कर अपना शक्ति का उद्घाटन करा। गम हा मन्त्र निरा। करन का प्रयत्न करा।

उत्तम मानेर ! यह भा आत्म भाव है। जहाँ कायगा जाता है किन ह न है परिणाम में मर्त्यता होता है वही मानव गुण का विधा होता है। इन विषय मर्त्यता का विषय क्या किमा कह कर अभाव पत्थी में दया मुना या प करता है ? अन्तर्गत है पत्ता। नव निरिवा ? य अन्तर्गत निरि तो हा पत्त है। ५ हा है। फिर नव क्या नहीं है ? हमका पत्तन है मन्त्र कथाय अन्तर बुद्धि पर मन्त्र पर निरि का मन्त्र। मन्त्र कथाय आत्म भाव की धरहर कथा

यमही के दया भाव नहीं आ सकता निम्नी नशस के विन्द क
 इन गुणों के अभाव में मा व घम कैसे प्रकट हो सकता है। उ
 स्वभाव है। वस्तु हमारा आत्मा है। आत्मा में ही मानव
 नि आत्मा ही मानव स्वरूप है। मदाभीविमानव। मावों क
 हा मार्दव गुण है। मिट्टी में मन्ना है किन्तु अभिव्यक्त बड़ ह
 पानी डाला जाता है सम्पूर्ण प्रवार उगता मन्त किन क
 उमरी कोमलता बिबना प्रकट होता है। हे साधा। न
 त्याग का मन्त करो सपन की धोखे लगाओ मन्त प्रकट
 तब वही मन्त गुण बदन के अनुसार आत्मा का मन्त
 भूति जपत हापी। कोर परिणामों में पान ध्यान क र
 भाव किम प्रहार उरज नभत है परप मरत है या बड़
 क्या कभी कबरा पयराता ऊपर भमि म मन्त जो क
 मुन्त उत्तम पन्नाय उत्पन्न हो मरत है नहीं हो मन्त
 भोग समार स विरल हो गय अत्र मान क्या है ?
 कारण है। मन्त का निशाम करा यह दुर्मात्र
 स्वामी कहत है—

अपमानादयस्तस्य विज्ञप्ता इत्येक
 आपमानादयस्तस्य न स्यात्

जिसका मन अन्वस्य अज्ञात स्व
 सम्मान अपमान की कल्पना जाया हुआ है
 नहीं होते। कारण कि राग द्वेष स
 खरल रूप व्यापार में गतान्ता है
 को प्रयाजन नहीं रहता। यदि कृदि
 यजन काय का ज्ञान मन्त मन कर
 हुतावर तन्क्षण अने मन्त मन्त
 सावधानी प्रहरी की भाँति मन की र
 यन परिज्ञान करता रहता है।
 तू भी मन्त और अरना
 बाव आतामि म कय बरी क
 और वह शत्रु निर्बन्धक बरह
 म मन्त

।
 १
 ५
 के
 १।
 उग
 १०।
 वित्र

जाना
 य के
 २ म
 १ ह
 छा
 त
 हा
 जि
 १ जीव
 २ सता

। १ किम
 २ रहा
 ३ म माला है
 ४ का और दुष्ट नहीं
 ५ बाबा से दध प
 ६ दय स पवित्रता
 ७ म ही
 ८ इमान
 ९ हा ११
 १० य लापी
 ११ न

कपाय भाव नष्ट होकर दया रूप का मल भावा का प्रादुर्भाव होकर मानव गुण आविर्भूत होगा। मानव भाव माणस्वी शस्य का बीज है। मुक्ति की मिडि करना है तो अष्ट प्रकार मन्त्रों मन्त्रों त्याग कर निम्न सम्पत्ति प्राप्त करना होगा। सम्पत्ति का मोन रूप प्रमाण की प्रथम मानी है। अतः मानव गुण की प्राप्ति के लिए इनके महायज्ञ अथ ममस्त क्षमाणि गुणा का धारण पालन आवश्यक है।

उत्तम मानव का अन्तर्मित्र है उत्तम आज्ञा। सीधा सरल अथ ह सरल। सरल मन सरल उचन और सरल वाप रखना। अर्थात् मन वचन वाप का एक रूप प्रयोग करना। जिन सरल हैं जिन धर्म सरल है जिन माग भी सरल है। इस लिए य उगी हृत्प म प्रविष्ट हान है जो सरल है सीधा है। जहाँ छन-कप माया जाल है वहाँ धर्म उहा प्रविष्ट हो सरता। क्या सीधी तलवार टही म्यान म धुन सकती है? नही धुगती। उसी प्रकार रूपों के अन्तर्करण म सरल निधि पावन जिन धर्म प्रविष्ट नही हो सरता। जाने वस्त्र पर दूगरा फन उस चड? विमान म स्वभास तिस प्रकार आड पर वचना यदि ह तो स्व वचना कभी टन नही सकती। आत्म उचन समार पार ही नही सरता। जन हे माधो परमिठन आमा राम आप सरल भाव धारण करो। कपट भर छाडा। जो कुछ विचारा वही बातों और जो बातों वही विचारा एवं वहा करो। कयना करनी एक बताओ। शास्त्र परो पड़ाओ। तन्नुसार चला और चलाओ। द्रव्य क्षय वाप भाव का मर्मणा का विचार कर उसका अनुभूत जाता आचरण बनाओ। कपट का उभय लोक गहित हो जाता है स्वतः जननी जननी स्त्री पुत्र भी उता। निराश्रय नहीं करता उसे सरल भाव का दृष्टि नष्ट जाता है। नीतिरि अर्थहृत्त जन दो आनि सरल हा बिाड जाता है। मा दुष्टा तो भी परमात्मा तो नष्ट होता ही है आत्म बनना से इस सोच म भी निम्न आनि जाता है। यह माया छन-कप गवया व्याप्य है।

क्या पुरान कपड पर मुँह रग चड़ा जान का व्यापार बढ़ सरता है? क्या मूख गन्ध म अणुमूय वस्तु मिश्रित करने वाला व्यापारी अपना प्रतिभा बना सरता है? मता रिश का धाया न जाना पुत्र क्या उसी सम्पत्ति का मता है? मुकुट पहना सरता है? नही नही। जो प्रसार न माया तुम अपने का समझो? शास्त्र गुद का जाना निश्चय क्या क्या तपकर अवगार कर आहार विचारानि प्रवृत्तियों कर करा? जिन भावान और निराशा का म न रिश का अणुमूय सम्पत्ति का अति काता हो सरता है? उन का सरल नही? उगा उभागत कर सरल हा? कपट नही कर सरल। जो रक्षा गुद ठगा रिश तुम हो सरल इन जो रक्षा (२३ म १५५) प्रवा म वचना नही नही। क्या चतुरा भ्रमण दुष्टा हो व चतुरा। जो म सरल शरीर नही भाजित ना निश्चय तपित भा व

तो योगमन्त्र की आज्ञा मया सञ्चयी गति सञ्चया मानन्द गङ्गी मिल गवता । गरल
बनो । मर उबहूँ म । भीतर बाहर दोनों म । बड़ी भी गरिब भी दुखी और दुखी
न हूँ । बटोर ल आकाश नहीं बिन्दु बिन्दु भी हूँ मयागम होना चाहिए ।
वही आत्मा का परिणाम कर गवता है । आत्मा का गता गवता है । अनादिवासीन
बस वासिमा की भूमि कर गवता है । वसति निश्चय ज्ञान-ज्ञान इमान वसागम
उत्तरोत्तर बढ़ा हुआ पवित्र ज्ञान है । वसतुर्वैक रिया मय मयगता व ११ अंश के
पान का भी न हूँ । गति की बटोरी लवाई । बड़ी सत्कार का जरिया पसना रहा ।
हे आत्मन निरन्तर मार्ग प्रद का बिम्बा मनन कर आत्मा म गियर अद्विज
अद्याव बनान का प्रयास कर । बाह्यादम्बर म मुक्ति नहीं मुक्ति सम्पत्ता म हावी
बाह्य व्यापार बिम्बा मय हाता जायगा परिणाम उतन ही गरल मिल और पवित्र
ज्ञान जायेगे ।

[illegible]

का पात्र हो जाता है। उग्रय गरी एवं निश्चित होना चाहिए। साथ अवस्था में बाह्य शुद्धि विशेष रूप से मोक्ष है अन्तरंग शुद्धि प्रधान है। अन्तरंग की विषय वासना का परित्याग ही चारित्र्य है मयम या माधु धम है। मयम विशाल वन है वह भी शुद्ध भूमि पर ही प्रसार को प्राप्त हो जाता है। साथ ही परिश्रम या शौच पूणत होना चाहिए। उत्तम शौच धम आत्मा का गुणांग है। आत्मा स्वरूप ही है। शुचिता को लाने के लिए मायाचार का त्याग करना बठोरता का त्याग करना अर्थात् मान माया मोक्षान्ति का त्याग करना अत्यन्त अनिवार्य है। पर वस्तु का त्याग करने से शौच धम होता है परन्तु महिमा का त्याग करने से शौच धम की वृद्धि होती है। पटकाय जीवो का सम्यक् प्रकार रक्षण करने से शौच धम का पोषण होता है। पंचमहाव्रता का धारण पञ्च समितियों का पालन तीन गुणवियों का धारण तीन दण्डो का निग्रह जानि से उत्तम शौच धम उत्पन्न होता है। हे साध आत्मन् आप अपनी चित्त रूपी भूमिका का शासन करो। पर भावा का प्रवेग नहीं होने दो। ग्या-यया विषय कथाय पथक होते जायग तथा तथा हृदय शुद्धि के साथ साथ शौच धम प्रकट होगा। शौच धम सम्पत्त्व का साधक है सम्पत्त्व के अनन्तर सम्पन्न और सम्पत् चरित्र भी उत्तम शौच धम ही से होते हैं। अतएव रतत्रय से ही शरीर की शुद्धि है। न कि मात्र जल स्नान से। रतत्रय के साधन शौच धम का निरन्तर पालन करना चाहिए। शौच अन्तरंग का प्रकाश है। आत्मा की उज्ज्वल निम्न ज्योति है। कम कालिमा व विपाक के नाश का उत्तम फल है। कम कदम्ब का बघन शिवित होने पर आत्मा निमल होती जाती है। आत्मा की शुद्धि ही उत्तम शौच धम है। हे आत्मन् शौच तुम्हारा निज गुण है। उसे पाने को स्वानुभूति को जाग्रत करो। निजान की अनुभूति से आत्म सुख ज्ञानि प्राप्त हामी। यही चिरस्थायी आत्म स्वरूप में परिणति हो जायेगा। अपना पुरुषार्थ करो। निरन्तर अपने भावा की उज्ज्वलता का प्रयत्न करो। यह तभी सम्भव है जबकि मन वन धाम का व्यापार कम से कम होगा। यह तभी सम्भव है जबकि सात्त्विक विषयों से अधिक से अधिक दूर रहो।

हे साधो ! आत्म शुद्धि से सत्य धम प्रकट होता है और सत्य धम से आत्म तत्व ज्ञानमय। आत्मा का प्रकाश सत्य है। सत्य आत्मा का अन्कार है। चित की शुद्धि का प्रकाशन वचन है वचन का प्रमाणना का कारण है सत्य। जिसकी वाणी में सत्य निवास करता है उसकी मूर्त्ता साक्षात्तर हो जाती है। आत्म शक्ति बढ़ती है। ज्ञान का प्रसार होता है। प्रभुत्व शक्ति वृद्धिमान होता है। ऐश्वर्य बढ़ता है। यथायथा पहचाना है। तब निमल होता है। दुर्ध्यान फटने नहीं पात। दुर्ध्यानों का जभाव हो जाता है। शुभ भावों का उपवन सञ्चल है। शुद्ध भावा व अद्वैत जपन है। अनुभूति शुभायना की सागा में सम्पत्त्वान्ति रत्न जपमयान है।

सत्य जीवन विकास की आधारशिला है। मनोविकार को चुनकर फेंकने का सा कुशल है। विषय काम विकार सत्यवादी का स्वप्न भी नहीं कर सकत। मायावारी रह नहीं सकती। लोभ सात्वत भीरुता राग अयध्यान लिप्सा विषयाशक्ति आदि दुर्गुण उसके पास नहीं आ सकत। समता सताय शील निर्ममता सहाय शिष्टाचार आदि अनन्य गुण अनायास ही उत्पन्न हो जाते हैं। वास्तव में सत्य आत्मानुभव का द्वार है। स्वमन्त्र का साधन है। आत्मान और सत्य का अन्योन्य सम्बन्ध है। सत्यवादी के जीवन में कभी छद्म आता नहीं। उन्नी छाना नहीं निराशा में वह डबता नहीं। उस वक्त ही परायण होता सहाता है। कल ध्वनिष्ठ को आकुलता-ध्याकुलता क्या है। आकुलता वही है जहाँ मनुष्य असत्य प्रतिपान्न करे। गतन काय करे विच्छिन्न आचरण करे दूसरे का या अपन का छगन का प्रयत्न करे। क्योंकि वह अपने अगोचर जिया बनाया का छिपाने का प्रयास करता है। उस प्रयास में मिथ्या प्रयोग स्वामाविक है यही असत्यकरण है। असत्य है। आत्म पतन का कारण है। आत्म पतन को रोकने के लिए सत्य ही वसनागल है। सत्यवादी का मन वचन काय गगनवन् धुने रहत हैं। स्वच्छ रहत हैं। गुमछवन अडिग और उत्तुंग रहते हैं। सागर गमल अथाह गम्भीर होते हैं। वहाँ पर पाडा नहीं? विचार नहीं? कारण क अभाव में काय का अभाव होता है। नियमानुसार आसन्न भी नहीं हो सकता। आसन्न नही तो अघ विमर्श है। तबीन आय नहीं तो निश्चयपूर्वक सचिन द्रव्य व्यय होगा। मन निरन्तर भी होना स्वामाविक है और उस सत्य घम में एकाग्र ध्यानी होने पर सब कम क्षय भी सम्भन है। सिद्धान्त और तत्व स्वरूप का निवेचन करें तो सत्य घम अनादि कर्तुपित तविकारा आत्मा की शुद्धि का शक्तिशाली मशाना है—पाउडर है जिम समता रस में घालकर आत्मा निज गुण और-बन्ध का प्रणालन करने में समर्थ होता है। सत्यवादी वस्तु स्वरूप में मोह नहीं करता। सत्य में स्व पर का यमावगम होता है। सत्यवादी निर्मोही हो जाता है इमनिष् उसके द्वारा—विपरीत कथन माह से होता है। सत्यवादी निर्मोही हो जाता है इमनिष् उसके द्वारा प्रतिपान्न विषय विच्छिन्न या विषय अपन असत्य रूप नहा होता। सत्य वह सपर कलाकार है जो जीवन क अनेक पहलू को अपनी सम्पक दृष्टि में सही धूलिका क बल पर सजाना है। कपल उमरी सज्जव भी मृदम होना जानी है और इतनी पतनी हो जानी है कि स्पून साधन ही समाज प्राप हो जाते हैं। जन जन मूढम भी सूम्पत होकर समस्त पर रूप सामग्री समाप्त होकर वे ही चिन स्व-स्वरूप रूप टकोरीली रह जात हैं। ई माई आरम्भ सत्य घम की कला में निष्णात बना। इसे जीवन में उतारो। तुम स्वयं ही इस रूप हो जाओ स्व-स्वरूपोपनीष्ट प्राप्त हो जायेगी।

॥ ५ ॥

[illegible]

बहु क्या सवार को मन्तव्य स्थान पर पहुँचा सकती है ? नहीं भेज सकती। उसी प्रकार बिना सकल समय धारे बिना जीवन-नौका सगर जलधि पार किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है। हे आत्मन् तेरी तो डोंगी है नौका भी नहीं है। वह भी बिना पनवार की यन्त्र तनिक भी चक गया तो वहीं सगर बह गया। फिर कहाँ ठिकाना लग सकता ? अतः हे मुमुक्षु प्रतिक्षण सावधान रहकर अपने मन समय को सम्हालो इसमें ही दुःसाध्य और असाधारण कार्य भी असाधन सुख और दुःख के सवाहक बन कर जीव और जावन को सम्हाल। अथवा बना और बलाघर दोनों ही का समाप्त प्राय हो जायेगा।

मध्यम शीघ्र पूर्वक शोभा पाना है और तप समय से सार्यक होता है। समय हीन तप कुतर्प है समाप्त का कारण है। १२ प्रकार का तप समय पूर्वक पालन करते पर ही यथाय फल पाना है। क्रिमने आत्मा तपाया जाता है उसे तप कहते हैं। तप से आत्मा का शोधन होना है। मन का हटना ही पण्य की निमसना है। आत्मा में कर्म मन प्रणाली रूप से बिटा है। इस वम वनक की निर्जरा तप से ही होती है। तपस निजरा व तप में सवार पूर्वक निजरा होती है। यों तो प्रतिक्षण कर्म आन और जाने हैं। यही कर्मों का निराना सविपाक निजरा है। किन्तु जाना बंद नहीं तो बिना ही बचरा कड़ा साहते रहा घर स्वच्छ नहीं हो सकता। उसी प्रकार वम जाने रहे और तप भी करते रहे तो वह अनाम निजरा कार्य-कारी नहीं होगा उससे आत्मा वम भार रहित नहीं हो सक्ता। अतः सम्यक् तप अविपाक निजरा का हेतु है। बाञ्छा रहित निर्विकल्प तपश्चरण आत्म शुद्धि का साधक है। तप और आत्मन्तर भेद स तप दो प्रकार के हैं। प्रत्येक छह प्रकार का है। अतः सहस्र प्रकार तप के मूल भेद हैं जिनका मुनिरात्र मायु जन पूजन पालन करते हैं। निर्यान चार क्रिया ही यथाय पत्रती होती है। श्रावक भी यथाशक्ति द्रव्य दोन बाल भावापना अम्मास करता है। करना ही चाहिए। नकल ही स तो शक्त भिन्नती है। बावक-बाविका पित माता के भिया क्तापो का निरीक्षण कर सम्यक परिणाम करने का प्रयत्न करते हैं। पुन तानुसार आचरण भी करते हैं। इसी प्रकार भव्य श्रावक आत्मा सुख बाञ्छा से यथाशक्ति तपश्चरण करने का प्रयास करते हैं। तप ही मोक्ष का साधक है। तप क बिना सामान्य पुरुष की क्या बात शीघ्रकर भी सिद्धि नहीं पा सके और न मुक्ति पा सकेंगे। मोक्ष तप का फल है। बीच जसा होगा वन भी तानुबूल होगा। यदि तप निष्काम माया और निदान रूप तीनों शक्तों में रहित है। विषय वासनाओं आशा-वृत्ताओं से विहीन है तो कर्म निजरा का हेतु होगा। जिस तप में लोकपणा भोगपणा आदि सभी हैं तो तप वह है जो उद्योग वृद्धिजन हांग हुआ अन्त्य करे गुण उपानन को शक्तकर सब प्रमाण स्वरूप आत्मा को प्रकाशित करे। व्यवहार

भी वाय को करता सत्य होता है किन्तु पुमान् मिटाकर १। जगाना यह महा कष्ट होता है। जीवन का स्वच्छ पण्डितमि है उस पर जाना प्रकार के प्रभाव सग से विभिन होते आ रहे हैं — हे मिटाकर उसे अकुर पना करना है। यह कार्य सरल नहीं, परन्तु जानी व लिए दुःख भी नहीं है हे भाई तू स्वभाज से विकची जानी है। नाता दृष्टा ही तो तेरा गिज ह्य है। भ्रम वश आने स्वप्न को भूना है उसे समय उसकी अनुभूति से तेरा बड़ा पार हो जायेगा।

कनाओ का जीवन स घनिष्ट सम्बन्ध है। यों तो जीवन भी स्वय एक कना है। किन्तु इस कना को कनाचित कर सजाने जानी अन्य कनाएँ हैं। गुलाब सय पुष्प है पुष्पा का राजा है। यदि इसे जही चमनी मांगरा मातिया आँके मय सगाया जाय तो और विशेष खतानी शोभा बन जानी है। इसी प्रकार सगचारी सात्विक जीवन मे चित्रकला संगीत कना नृत्यकला वाद्यकला साहित्य-कना लेखन कला आदि का समयोग मिल जाय तो जीवा कना म चार चौद लग जायें। जीवन के सगरे अभिशाप वरदान बन जायें। यदि सर्वोपरि भक्ति बला — जिन भक्ति कना से युक्त जीवन हो तो रहना ही क्या है। भक्ति की अभिप्रक्ति के लिए लेखन कना सग्न प्रगादी है। काठ नाटक संगीत से मानसिक साधन धुन जाने हैं। वनार के भी बड़कर कनम की गति जानी है। कनम का धीरे स्वस्थान पर मोन से बड़कर गमस्त विरय म सहकरा मचा सकता है। आध्यात्मिक विषय पर कनम की तो आस सत्य का स्वरूप घर घर म पन्नेचा सकता है। सगमाहित्य कुछ ही काल में सगस राजपु और परिवार का ढाँचा बदल सकता है। आज जितनी भी कुसय, बन्चलन दुर्गाचार कुराफान पन रहा है यह सय छोटे साहित्य कुनिदा कुकुराओं का ही वरदान है। प नाता आ ना खाना-पीना चटना फिरना सोना जानना कना जाना बनना बनाना ये सभी तो कलाएँ ही हैं। वतमान साहित्य म न सब कनाओं का जेवर पायचार मस्तकि अमरानीय प्रभावों से रगा हुआ। फिर कना कनं कर्म शीत समय स खार शिगार प्रम सद्भाव सद्मनी हृदयानुसय अति उत्तम गायनों जहाँ स दिन प्रकाश आ सकती है ? नतिरता कसे आने ? आध्यात्मिक ज्ञानि कन जने ? गणु मय गन्व स्यामी कही से आने ? इन सबके लिए इन्हीं का विचारों स आ। प्राप्त गना हुआ साहित्य चाहिए। यह लेखन कना की पावनता पर ही निर्भर है। सलता स गति घामिह आत्मिक भावों से अनुरजित होयी तो समय निमित्त साहित्य भी उगी प्रहार का होगा और साहित्यकार भी साधु प्रजि का हाथ। हे गाथा। गाथा व जीवन का साधक कनम के घनी बना। स्वीकार पूर्वक परापरार सार्व है अथवा नो।

आवत सग्नगुर है। मनु व पना हुआ है। म मु साय ही आता है। अति सग आशानि मरण कना रहता है। यह तो स्वाभाविक नियम है ही। सय ही आध्यात्मिक कनमों का न ना भी गना रहता है। जम घन अति वायु-नानी कनर सई का दून रय सभी ना मृग्यु के। गाम वि अस्थित है। कव वि

पर वहाँ हमना बर चले कुछ पना नहीं है। मरने-मिटने वाले तीरे तारंग गीत मह फाड़े लड़ी है। इस दशा में मान्य बढता आत्महित में नहीं लगता धर्मध्यान तेजन नहीं करना भावों की मुक्ति न करना, बिनामक्ति में नहीं सपना महा मूलना है अनाम है तीव्र मोह है प्रमाण है। मायु बोटी पड़के लड़ी है यह समझकर धर्म ध्यान सना करना चाहिए। धर्म ही सार है। धर्म ध्यान की प्राप्ति बढि रक्षण मनुष्य जन्म में ही हो सकती है। मनुष्य भव पाना अति दुर्लभ है उसमें भी उत्तम शरीर शरीर अवश्य उभय कृत उभय जाति मुक्त परम्परा का मिलना धर्मपुराण मन्त्ररिषय स्याम भाव वराग्य परिणति तत्त्वज्ञान भेद विज्ञान उत्तरोत्तर दुर्लभ है। इन सबको पाकर भी यदि आत्महित प्राप्ति नहीं होती तो मानव शरीर पाना व्यर्थ है। हाथ में आया बिनामक्ति रत्न परधर समझ कर फेंक देन के समान है। हे आत्मन् ! तझे सत्य साधन मिल है रतन्त्रय रूप योगि प्राप्त हुई है द्रव्य क्षेत्र बाग्य भवभाव सभी अनुरूप उपनयन हुए हैं अब प्रमाद छोड़कर आत्म मित्रि में लतार हो। निरन्तर मुक्त स्वल्प का आराधना विज्ञान में निरत रत। आत्मालम्बि ही जीवन का सार है। यही एक मात्र उद्देश्य बनाओ।

एक विचार आता है मानव जीवन क्या है ? एक ब्रह्म का दोहा उत्तर का म समान आता है यही पशु प्रवृत्ति है जो आप आप ही चरे।

मनुष्य है वही जो मनुष्य के नियम मरे ॥'

विचार करने पर सामाजिक जीवन में यह मन्त्र सत्य के रूप में उपस्थित होता है। समाज व्यक्तियों की समष्टि है। हर व्यक्ति स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता में स्वच्छ रचना प्रविष्ट न हो। इसी नियम सामूहिक श्रुतिगणना है जिनका पालन प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। सामूहिक जीवन समूह के उत्पाद से उत्पन्न होगा और समूह का उत्पान उसके प्रत्येक सन्ध्य के विकास से विकसित होगा। शरीर के पून स्वस्थ हान से उसका प्रत्येक अङ्ग स्वस्थ रहना है और प्रत्येक अङ्ग के सुस्थवस्थित रहने से पूर्ण शरीर का विकास और उत्पान होता है। एक अङ्ग के किसी एक भी क्षण में तनिक सी पीका हुयी तो सर्वज्ञ में उसका केन्द्र (अनुभव) होता है। एक व्यक्ति का दुर्गरहित भी समाज के सौन्दर्य का घातक है और एक एक व्यक्ति का सन्ध्याचार मिलकर समस्त समाज का आध्यात्मिक प्रकाश है। अनिष्टाव स्थिति है प्रत्येक मानव को अपने जीवन का शोभन करना चाहिए। जीवन विकास का उद्योग करना चाहिए। साथ ही यह समझे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण है कि अपने विकास के परम दृष्टि की अवन्ति न हो। अम का पराभव विना या अपमान करन का कृष्ण न बनावे। दूसरे का अपमान कर अपना उत्पान या प्रशंसा चाहना अन्य को औपनिषि विना होने की भावना के मनुष्य है। यह क्या अभी समझ है ?

तो मैं को ही करना होगा ही पुत्र उत्पत्ति
सकना

है आत्म काय के अनिरित अथ किया जायों उपायानो म उमे न तो रवि होती है न आसति । मयम उसका जीवन बन जाता है । तप वमय त्याग भवन और वराग्य वरन । ज्ञानामन पान कर आत्मानुभूति म निमग्न रहता है । यह है उसकी कता । ससारातीठ होने का प्रयास है । हे आत्मन् तू इसी कौशल म निष्ठात बन । यही सार है ।

ज्ञाना लोक से आनोक्ति जीवन सप्तमया से मुक्त होता है । सम्पत्तानी सम्पत्तशन सम्पन्न होता है । सम्पत्तष्टि को किसी प्रकार की उभय तक सम्बन्धी आकांक्षा नहीं रहनी । वह आत्म कानन मे स्वच्छन्द विहार करता है । निस्वानन्द गुण म विभोर रहता है । सम्पत्तत्व की महिमा अपार है । जिस प्रकार मोह राज समार म जीव को विमुग्ध कर देता है सम्पत्तत्व इसका विपरीत आत्म रसास्वादन म तल्लीन कर देता है । हाँ वहाँ अज्ञान दशा रहती है यहाँ सावधान ज्ञान रूप स्व पर विज्ञानी रहता है । ज्ञान दशन आत्मा का स्वभाव है । आत्म ज्ञान ज्ञान स्व रूप हो है । आत्मा साकोत्तर स्वरूप है । अज्ञान-वश यह लोक म है । तम्ही पाता म कब तक ? जब तक मिट्टी का लेप चढ़ा है उस पर । तप ह्मन् नही कि पानी की सतह पर आन म ब्रम्ह हा जायगा । हे साधो ! ज्ञान प्रकाशन का प्रयास करो । ज्ञानाभिषेदि के लिए नेरन्तर अभीष्टज्ञानोपयोग म रत रहो । शास्त्राभ्यास ही इसका एक माय साधन है । शास्त्राय से ज्ञान चतना सजती है । वह ता स्वय ही सती है । केवन उसकी ब्राह्मण प्रकट कर देना है । प्रदशनो म मन्त्रित वस्तुएं पड़े म रहती हैं । परन्तु ते ही वे स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती हैं । आत्मा म ज्ञान चतना जागृतत्वमान होती है मोहतम का परदा हटने पर वह प्रत्यक्ष हो जाती है । पानी ही उसका अनुभव कर सकता है आनन्द ले सकता है । जीवन का योग पहेली कन्ने है समझते है बिन्दु जीवन वास्तव म पहली नहीं है वह ना अनरा पहलियों का गुनज्ञा रूप है । समझन की कता हानी चाहिए । ज्ञानानुभूति उस ममग्ने का एक माय उपाय है । हे आत्मन् पानानुभव कर । उस ही जीवन न प बना । पानानन्द में सबकी सगा । यही सार है ।

जन सिद्धांत अकाट्य है । छद्ममय व्यक्ति राग मय परिणति युक्त होता है । स्वार्थ भाव रह सकता है । कभी भी आ सकता है । इसीलिए उसके राग निरूपित तत्त्व यथाप नही रह सकत । कुछ मरयता रही भी तो वह मयत्र समान रूप स अकाट्य नहीं हो सकती मयम तो अपना व्यक्ति स्वय ही वस्तु भाव का । ज्ञान नहीं जानता फिर उसका निरूपण किस प्रकार नहीं कर सकता है । हमने यह रागी दूषी हान से नित्र स्वार्थनिवार पण्य क स्वरूप का कथन करेगा किमये मयाश सष्ट नहीं आ सकता । ज्ञान प्रतिपादक मयम बीनरागी और सर्वोप्यो हितपात्री ही होता चाहिए । इन विशिष्ट मय रक्षित यत्ता प्रतिपादक ज्ञान्य निर्माता नहीं हा सकता । यदि मान भी लिया तो उगरी बाणी मय स्याप न जाने क क आत्म नही हो

अनाम हय विद्या उपाय पत्र आदि म गृहयोगी होगा तो वह अभिन और उत्तुङ्ग
 न होकर समान रह सकेगा । जिसमें समान में समान बन रहेगा । मान्य म मान्यता
 का संचार होगा । सुख शान्ति का प्रादुर्भाव होगा । अशांति बेचनी नहीं आयेगी ।
 पारस्परिक गृहयोग अनिवार्य है । इसमें स्वार्थ का त्याग करना होगा । निस्वार्थ भाव
 जीवन का विकास है । स्वार्थ में अत्याय भी गन्गी भरी होती है । मोम की लालिमा
 छापी रहनी है । दूसरे को टपने का भाव भरा होता है । प्राण की गुस्सियाँ उगी
 रहनी हैं । यही स्वायत्त व अभिप्राय सांसारिक शिष्य भोग से सम्बन्धित है । आत्मो
 त्त्यान आत्म शुद्धि का जहाँ प्रश्न है वहाँ आत्म साधना का स्वयं होना ही चाहिए
 कि तु उसमें पर प्रताडन का भाव तनिक भी न रहे । आत्मोत्थान म आने वाले शिष्यों
 का रहस्य स्वागत और उत्तरता से बरदास्त करना चाहिए । स्व पूर्वोपाजित कर्मों का
 मुसार ही जीव को दुःख मुक्त प्राप्त होते हैं बाह्य वस्तु निमित्त मात्र है । निमित्तों की
 सफलता और दुःखलता उह पुष्ट या जीव अवश्य करती है । अतः निमित्तों का
 परिहार अवश्य करना चाहिए किन्तु उनसे द्वेष या घणा करने की आवश्यकता
 नहीं । निमित्त साधक और बाधक दोनों ही होते हैं । यही नहीं कालांतर में साधक
 निमित्त बाधक और बाधक साधक भी हो जाते हैं । वस्तु स्वभाव एक होने पर भी
 विभिन्न कारणात्तरों के अनुकूल परिणामित हो जाते हैं । स्वानि नक्षत्र में गिरने वाले
 वर्षा कण जल बिन्दु कर्मों वक्ष में वपूर बन जाते हैं, सोप म मोती सप मुख में वि
 हो जाते हैं । अतः एक ही वस्तु शुभ अशुभ अच्छी-बुरी हो जाती है । विचार करने
 पर सद्भातिव तत्त्व यही निरलता है कि निमित्तों के प्राबल्य में ही यह प्रज्ञा
 हानी है । निमित्त हमारे कार्य के साधक हैं उपादान के उत्तेजक हैं । हमें चाहिए
 कि हम अपने साधक सहायक कारणों निमित्तों का यथोचित सावधानी से चयन
 करें सचित करें । प्रतिशूल कारणों का परिहार करें । इतना ही नहीं यदि बाधक
 साधक न हों तो हम स्वयं उनसे दूर रहे । यह हमारे पुरुषार्थ की प्रज्ञा है । हम
 चाहें जगत् कर सक्त है । सविष्य का निर्माण हमारे पुरुषार्थ पर ही निर्भर है । आज
 का पुरुषार्थ ही तत्त्व का दर बनता है । पुरुषार्थ अतीत त्व को नत कर लेता है ।
 वह उसमें भीत नष्ट होता है । धर्म से उसका सामना करता है और परास्त कर
 बिरतन विजय प्राप्त करता है । उपसर्ग विजयी केवली अतद्धृत केवली भगवान् का
 पुरुषार्थ सममात्मक अतीत दव पर पूण विजय का ही तो फल है । हे आत्मन् सत्य
 पुरुषार्थ बना सक्रिय करने नि ले मन बने पशु मत बनो परमुखायेनी नहीं
 रहो स्वयं स्वयं म जागरूक रहो । अपनी अनुभूति म अपार शक्ति होती
 है । स्थानुभय अमूर्त वितामणि है । इसमें जाने सगान धाला निर्भय हो जाना
 है । तराश नहीं म रं या सागर म अघट जाये या तूषान इसका क्या
 प्रयोजन ? वह जानना है नाव जायगी तो जाय मैं डूब नहीं सकता । उसे आत्म
 विश्वास है । वह आन म आश्चर्य है । आत्मानुमयी सम्यग्दृष्टि भी आपत्तियों में
 प्रसन्न रहता है शिवाभा म मुस्कराना है सगर के बभ्रु से उम उगासीनता रहनी

है आत्म काय के अनिरिक्त अथ क्रिया जागृति उपासना में उसे न तो रुचि होती है न आसक्ति। मयम उसका जीवन बन जाता है। तब बभ्रव त्याग भवन और वराग्य बन्ध। ज्ञानात्मन पान कर आनन्दानुभूति में निमग्न रहता है। दह है उसकी कला। ससारोत्तीत होन का प्रयास है। हे आत्मन तू इसी कौशल में निष्ठात बन। यही सार है।

ज्ञाना लोक में आनोचित जीवन सप्तमयों से मुक्त होता है। सम्पत्तानी सम्पत्तान सम्पन्न होता है। सम्पत्तुष्टि को किसी प्रकार की उभय लोक सम्बन्धी आकांक्षा नहीं रहती। वह आत्म बानन में स्वच्छ विहार करता है। नित्यानन्द गुण में विभोर रहता है। सम्पत्तन की महिमा अपार है। जिस प्रकार मोह राज समार में जीव को विमुग्ध कर देता है सम्पत्तत्व इसके विपरीत आत्म रसात्वादन में तत्त्वोन्नत कर देता है। हाँ वहाँ अज्ञान दशा रहती है यहाँ सावधान पान रूप स्व पर विज्ञानी रहता है। पान दशन आत्मा का स्वभाव है। आत्म ज्ञान ज्ञान स्वरूप ही है। आत्मा सोकोत्तर स्वरूप है। अनान-वश वह लोक में है। लम्बी पाना में कब तक ? जब तक मिट्टी का लेप चढ़ा है उस पर। लेप हटा नहीं कि पानी की सतह पर आने में देर नहीं। उसी प्रकार अज्ञान तम हटते ही अनान ज्ञानी आत्मा लोक शिखर पर आलु हो जायगा। हे साधो ! ज्ञान प्रकाशन का प्रयास करो। ज्ञानातिवृद्धि के लिए निरन्तर अमीशजानोपयोग में रत रहो। शास्त्राभ्यास ही इसका एक मात्र साधन है। स्वाध्याय से ज्ञान घटना सजता है। वह तो स्वयं ही सजो है। केवल उसकी सजावट की प्रकट कर देना है। प्रदशनी में सजित्र बस्तु पर न रहती हैं। परन्तु सजते ही वे स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती हैं। आत्मा में पान बनता जा-वत्यमात्र होता है मोहनम का परन्तु हटते पर वह प्रत्यक्ष हो जाती है। पानी ही उसका अनुभव कर सकता है आनन्द से सकता है। जीवन का लोग पढ़े-स कहते हैं समझते हैं किन्तु जीवन वास्तव में पढ़ेनी नहीं है वह ना बनता पढ़े-स का गुणज्ञा रूप है। समझन की कला हानी चाहिए। ज्ञानानुभूति उस समयने का एक मात्र उपाय है। हे आत्मन पानानुभव कर। उग ही जीवन नश्य बना। ज्ञानानन्द में डबकी लगा। यही सार है।

जग सिद्धान्त अकाद्वय है। छद्ममय व्यक्ति राग रज परिणमि युक्त होता है। स्वार्थ भाव रह सकता है। कभी भी आ सकता है। इसोक्ति उभय गगन निरूपित तत्त्व यथार्थ नहीं रह सकता। कष्ट सत्यता रही भी तो वह सबत्र समान रूप से अकाद्वय नहीं हो सकती प्रथम तो अपना व्यक्ति स्वयं ही बस्तु स्वभाव का अज्ञ नहीं जानता फिर उसका निरूपण किस प्रकार नहीं कर सकता है। हमने वह रागी हूँ पो हाने में नित्र स्वार्थान्तर पथार्थ का स्वरूप का कथन करणा त्रिमय सत्यता स्पष्ट नहीं आ सकता। अत्र प्रविशान्तर सबत्र बोधगती और सर्वोपेक्षे ज्ञानात्मनी ही हुना चाहिए। इन विभिन्न गुण रजि बला प्रविशान्तर ज्ञान निर्माता नहीं हो सकता। यदि ज्ञान भी लिया तो उसकी वाणी रूप प्रकाश न हो न वह आत्म नहीं हो

सकती। आप नहीं कहती कि जिनवाणी नहीं कही जा सकती। वर्तमान में सर्वत्र नहीं न हो हो सकता है। इसका सद्यः यथामानवार्थी अति विना भी विना क्यों न हो यह सत्य नहीं हो सकता उसकी वाणी आगम नहीं बन सकती। अम्मु न कोई २५वां तीयतर हुआ है न है और न हा ही सपना है। यह पूजन अगमव है। इस प्रकार उसकी वाणी भी सत्य नहीं हो सकता। जो सत्य आगम विन्द है वह आगम वाणी का प्रतिपादक कस हो सकता है ? सत्य प्रभु न विषय धीतरागी विषय कथन जिन साधु का मुख कहा है। इसके विपरीत जा वस्तु धारी है अग्रणी है भव्यामन्द के विवेक स शाय है विषय कथन राग द्वयानि न युक्त है और फिर भी अपने का सद्गुरु कह पूजा कराये त्रय त्रयकार मनवाय यद् कथा मिथ्या दृष्टि नहीं है ? अवश्य ही मिथ्यात्वोपाखणनी है। क्या पत्थर की नाय कभी बटन बाने को पार कर सकती है ? जो मय डूबगो यह दूसर का क्या पार कर सकती है ? कभी नहीं अगमव है ? मिथ्यादृष्टि को दब गुरु को मानन वाला किम प्रकार सम्यक्त्वो हो सकता है ? इ नियम से मिथ्यादृष्टि ही होगी। यह बाल विनाहियो का अस्ताडा है। रिभिप्र मान्यनए यहाँ प्रसारित है। इनके मध्य म सदा माग पर त्रिकना परम विवेकी का ही पराजय है। हे मुमुक्षु ! भव्यात्मन् तू सावधान रह कर जिनागम के रहस्य का समझो। जिने प्रभु सवन हैं धीतरागी हैं उनकी वाणी अस्तम्य है, पूजापर विरोध स रहित है। तत्त्व व्यस्तथा यथा तथा है। कही भी विपर्यास नहीं आ सकता है। मूर्ख ठानें में शका नहीं करना चाहिए। पदार्थ के रहस्य को समझना की चला करना चाहिए। बुद्धिगम्य न हो तो आनामिद अदा न करना चाहिए। धीरे धीरे प्रया की प्रवृत्ति हान पर धूमिल तत्त्व स्वय स्पष्ट हो जायगा। कालेन पचने बुद्धि समय दकर बुद्धि परिपक्व होती है। अगम्य विषय बुद्धिगम्य हो जाते हैं।

अन मिद्वान्त म आश्चर्य विस्मय कही नहीं है। सबदर्शी और सवनाता हाउ दखे ज्ञान समने विषया का निरूपण है। सब सम्भव है। कोई कहे कि ज्ञान म बन्धु सा अट पटी बातें हैं जा असम्भव भी प्रतीत होती हैं। कुछ लोगो का कहना है भगवान का रक्त साधु होता है यह कस सम्भव हो सकता है फिर सब सवका लान ही रक्त दगा गुना समझा जाता है फिर भला दूध के समान सक्त कस हो सकता है ? प्रश्न स्वाभाविक है परन्तु तक की कसोटी पर ब्रह्मनिष्ठ इव म विचार करन पर बराबर सही उत्तर प्राप्त होता है। मारी के स्तन म प्राप्त म रक्त रहता है विवाह हान पर भी रक्त ही रहता है किन्तु जब बच्चा होता है। सा उगा क्षण क र र धारा दूध रूप परिणमन कर आपा आप प्रवाहित होने लगती है। यह क्या ? समरा उत्तर स्पष्ट है बच्च के प्रति ममता वात्सल्य प्रेम भाव। आप साधु एक ममान का ममता यानि स्तन का सात्वा का सपना म बन्धु सक्ती है। ता लाना साधु के प्राणा मात्र जाय माय के कल्याण भाव स आपादनस्तक निमग्न तार्यकर प्रेम का आपा ममक रक्त भा दूध वन शुभ रूप परिणत हो जाय ता इसम का आश्चर्य है ? प्रभु के प्रतिक्षण भाव सधकल्याण के रहते हैं। आनु,

जगत् से ही रक्त का सञ्च होना कोई दुर्लभ या अगम्य नहीं है अस्तु महत् श्रमा
 विह्वल है। इसी प्रकार तीव्र प्रथम उनके भाग्य विना कभी बनने का सम्भव
 प्रतिनारायण भोगभूमि का के आहार होता है। किन्तु मोक्ष नहीं होता है।
 इस विषय पर भी आधुनिक अन्धविश्वास छिटा कभी करता है। यह अटोटा का
 है। मना ऐसा कभी हो सकता है। भाजन कर पानी दिये और मोक्ष का मूल न
 हो? आप विचार करिये जरा तर्क की कसौटी पर जगत् आत्मविज्ञान आत्मक समझ
 का जायेगी। मान लीजिये आपका इच्छा चाहिए। एक बार १ मन कपड़े है दूसरे
 दर में १ मन लकड़ी है और तीसरे में १ मन कोयले है चौथे में १ मां कपूर है।
 चारों का अलग-अलग जलाया ता क्या राख सबकी बराबर होगी? कपूर की राख
 अधिक राख होगी उसमें कम लकड़ियों की उसमें कम कोयलों की और कपूर की
 ता बिल्कुल रहेगी ही नहीं। कौन ऐसा हुआ कहीं गया वह मां लो? कहीं गया
 वह पदार्थ? तो ऐसा इनका स्वभाव ही है। स्वभाव में १ नहीं होता। स्वभाव
 अनन्त होता है। इसी प्रकार नीच पुरुष सामान्य पुरुष सर्वत्र पुरुष त्याग पुरुष
 और महारथ महान पुरुष इनके भी मन्त्रमूल की मात्रा उत्तरोत्तर अन्त होती जाती
 है और तीव्रता के कपूर की भाँति उनका भाजन पान राख का विनिर्माण होता जाता
 है। उनका मन्त्रमूल नहीं होता इसमें क्या आश्चर्य है? कुछ भी नहीं। हे भाई साधो
 आत्मन् प्रत्येक रहस्य विशेष तथ्य लेकर ही ठहरा है। राख का अन्तर्गत कुछ नहीं है।
 असम्भव प्रतिपाद्य ही नहीं। फिर यह शब्द व्यवहार में आ ही कैसे सकता है। तुम
 दृष्टि सूक्ष्म बना। हृन्मय कपाट खोलो। बुद्धि ध्वस्तता का वृद्धन करो गान प्रकाश
 विवेक विकास के साथ ही साथ सारी शक्तियों का समन्वय स्वरूप हो जायेगा।
 बुद्धि और मति सहो होगी चाहिए। प्राक्स्थित अवस्था की भूमिका जमी होगी उस
 पर बसा ही भवन तयार हाता जायेगा। वहना घट सीधा रखना ही ठहर जाने
 सब सीध-सीध ही रखने पड़ेंगे और यदि प्रथम घट उल्टा रखता तो घट की ऊपर
 तब ऊपर सब औज़र ही रखने पड़ेंगे। इसी प्रकार शिष्य गुरुगान में मति घम यदि
 रहता तो वह बन्ना हुआ मिथ्यात्व का दगा और मति विषय नहीं रहे ता सम्यक्त्व
 स्वरूप उसका पीपण करता जायेगा। अस्तु साध आत्मन् मति घम मत हान दो।
 सहो गान सच्ची जानकारी करो। जिनवाणी पर विश्वास करो। शिनायम पर
 ध्यान करो। त्रिगुण प्रतिपत्ति तत्त्वा में सम्यक् दीप्त सम्यक् अवगति और सम्यक्
 आचरण करो। तदनुसार आत्म स्वरूप ध्यान ज्ञान और रमण करो। इन मात्रा का
 एकाकरण ही आत्मा है स्वात्मगतति है स्वगति है मति गान चतुर्मास
 मूनि है। यह धिरस्तेन भावित है यही मुक्ति है। बाह्य प्रयत्न इसी के साधक होने
 पर भरा अमीष्ट मिष्ट होगा। निमित्त प्रवक्तृ चाहिए। बिना महायक साधनों के
 निस्सहाय स्वतन्त्रस्वतन्त्र स्वावलम्बन नहीं आ सकता। पूरा स्वात्मन्वी होने
 पर परनिमित्त न तो अपेक्षित ही रहने हैं न व टहर हो पाते हैं। स्वयं हूँ जाते
 हैं। अतः साधक निमित्त जुटाओ बाधक स्वयं हूँ जायेगा और साध्य स्वयं सिद्ध

भय मुक्त करने में सफल हो सकता है। त्रिगुण पर मैं तीन कर्माक्रिया नो चूल्हे वाली बहावन प्रवर्तित है वह दूसरे का स्थानिकरण, समाधान और स्थिरीकरण वैसे कर सकता है भना ? हे आत्मन् मन तेरा साथी नहीं पड़ोगी है। यह नेक भी हा सकता है और बन्माज भी। उसका अच्छा बुरा साधक बाधक बनाना तेरे हाथ में है न कि उमर हाथ में तेरा सुधार बिगाड़ है। तुम परम तत्त्व हृष्टो जाता हो। मन की लगाम स्वयं पकड़ा बस कर रखलो। सावधानी से उस पर सवारी करा। बिधर बाधा त आभा। प्रथम गतस्थ स्थान निर्धारित करो पुन गमन। कसी लगाम रहोगी भाग सही होगा तो अवश्य गतस्थ स्थान पर पहुँचा देगा। पहुँचने पर तुम्हें उससे उतर जाना है वह स्वयं तुममें पुनर् हो जायेगा और तुम भी स्वयं स्वयं अपने प्राप्य स्थान में निराश्रय पड़े कर अव्यवस्था सुख में सदा के लिए निमग्न हो जाओगे।

“चट्टान क्यों बनो भगवान ?”

चट्टान पर्वत का अङ्ग है। कृष्णदा सरस्वती ऊँचा-नीचा टेढ़ा-मढ़ा एक स्थान में निश्चल हिंसा। वह बन गया भगवान। किसी ने पूछ दिया क्यों भी तुम बने बनी भगवान। अरे पूछने वालों की क्या कमी है ? कोई ईर्ष्या से कोई डाह से, कोई प्रेम से कोई स्पर्धा से कोई मान बहकार से तो बार् उत्सुकता से प्रश्न पूछा करते हैं। सबका अपना-अपना अभिप्राय होता है। सबके हृदय के भाव अपने अपने व्यक्त होते हैं। बहुत से बेलन हथी मज्जा में ही प्रश्न कर चढ़ते हैं। ओ हा। यही तो प्रश्न है। सामान्य है अपने मन में भी ज्ञान करने की उत्सुकता है। क्या ? इसलिए कि एक जड़ पुद्गल भगवान की गता प्राप्त कर सकता है तो क्या जीवन्त चतन्य स्वरूप हम नहीं बन सकते ? अवश्य बन सकते हैं। प्रश्न जाणना होगा। सम्भव इसी उद्देश्य से किसी का प्रश्न होगा। हो सकता है। ओ हो। चट्टान नहीं भगवान स्वरूप उसका रूप बना। भया मरा जीवन निराशा है। क्यों मैं निराशा हुआ अबस्मान् निराश व्यक्ति के हाथों में पड़ गया। वह था चतुर होशियार साहसी और स्वाधी भी। मैंने (चट्टान से) उसके गुण अवगुण देखे। परन्तु गणों पर ही मैंने दृष्टि डाली। वे मानव दस गुण की पत्ते में बाध। परद्रोषण मन देव। अच्छा ही तो फिर क्या हुआ। मैंने उस पर खड़ा की। रचित सबसे बड़ी वस्तु है। विश्वस्तता त्रिधास और अमृत्यु की अद्भुत साधक है। फलत अपने जीवन का सारा भार उस चतुर बलाकार के हाथों में सौंप दिया। उसने भी पूर्ण आश्वस्त होकर अपना प्रयोग प्रारम्भ किया। जो छेती से भेरा अन्न अन्न का खाता छील डाला। क्या आप सोच सकते हैं इस समय की ममिक पीड़ा को। पर उपाय क्या था ? मात्र सहन करना। उस भल मनुष्य ने “तना ही नहीं दिया। यह लेकर मेरी पिशाई शुरू की। पिसत रगड़त मग बुरा हाल था किन्तु कुछ समय बात मेरा रूप सौन्दर्य निरर उग विरर पन। बिजना चुपड़ा छोला हा क्या मग पान। वास्तव में मैं न गुण बज्जन्। जो इतिशयोक्ति कीच हँसकर गहरता है बड़ी महत्ता

लना, दर्शन करते हैं। तबसे आवश्य-आविकारो नष्ट हो है। यह सब सब
 और पुण्याप का फल। सही निमित्तों का परिणाम।
 हे भाई आत्मान तुम्हें भव प्रकार अवयव हो जाना कि वह सब सब
 बन गया तो अवश्य ही हम भा बन मरन है। वह तो सब सब होना ही है। इन सब सब
 तो क्या हम स्वाध्याय होकर पूज्य नहीं हो सकते ? अवश्य ही मरन है। इन सब सब
 गिनती है स्वयं बना और स्वयं विकृत है हम सब ना सब सब नहीं है। हम सब
 बर्त्ता आवाय है मना फिर स्वयं हो भगवान क्यों नहीं मरते ? मरन बनना ही मरन
 किन्तु १ प्रयत्न करने पर २ मरन मरन पर ३ मरने से ४ मरन पर ५ मरन
 विजयी होन पर ६ परीक्षणीय होन पर ७ परीक्षा मरन पर ८ मरन मरन पर ९ मरन
 न बनने से १० आत्मनि में आत्मिक जीवन मरन मरन ११ मरन मरन पर १२ मरन
 श्रद्धा करने पर १३ मरन मरन छोड़ने पर १४ मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 तो भगवान बनाया गया हम स्वयं बनना है हमारा मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 करना होगा। यह है— १ मरन धारण २ मरन मरन ३ मरन मरन ४ मरन
 ५ स्वसंस्थिति ६ निराकल समाधि। हमारा मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 परमात्म स्वरूप हो जाओगी। हे भाई। स्व स्वकर मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 करा उगी का सम्यक आधरण करा। तीनों मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 होगा। भगवान की मूर्ति हम यहाँ मिला रही है। मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 यह भगवान बनी है। मानव का बनावनी न मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 अवतन ही उत्पन्न है। ज्ञान ज्ञान छोड़ मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 आत्म्यान् से स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा का मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 करना होगा। निम प्रकार करना होगा। मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 चाहिए। मरने स्वरूप गाएक समय निश्चय मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 का विश्राम दा ध्यान अवाटय रवि मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 हाथ में पूर्णतः करना जीवन मार छोड़ मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 विश्राम ध्यान करना चाहिए। अज्ञा मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 चाहिए। ही बनना अवश्य है कि मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 कति विद्यमान है। मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 द्वारा निश्चित मरन का मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 और उस पर मरन करि मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 होना। हे मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 अवाटय ध्यान। निश्चय मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन
 मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन मरन

उपनयन परीक्षा आने पर इसे मर । मर भयभूर जाता है । नये जीवन का पत्र
 तरु हो जाता है । मनुष्य मर जाता है । पत्ता प्रसार के राग हो जाते हैं । सा
 धी-धीरे, पग-पगिरी बने । मरने पड़ा उठता है । ६ भिन्न शक्तियों के
 राग-रस का अभाव । राग-रस दुःख-सुख के साक्षर है । इसका परिचायक अति
 अनिवाय है । पाँचवीं बात है माँ के रिवाज में शिरधार मण्डपान रहना । पड़े
 जाइयार है । नये हाथ में लाम की छड़ी है । भिन्न पर धमाई कि वही इस
 गुलामगार बन जाता है । यह जानूँगा है । यहा सच्चा चोडा इसका व्यापार है ।
 व्यापार भी विविध उपयोगों का है जो भिन्नम सुभा जाय उभी में उपनयन दान
 है । बट की जटाय फनाय रहता है । नमम मार-पान रहता होगा । इसका उपाय है
 मात्र ज्ञान जो धीरे धीरे । पात्र भ-भिन्न करो । स्व पर का भद विज्ञान हो जो
 धराय क-भिन्न ससार गरीर और भोगों में मज्जा विरक्त हाना अनिवाय है ।
 आत्मन मयमी बने अब मयम बने यन्त्रा मजाओ सम्हालो । इसकी राग के कि
 परनिष्ठा आत्म प्रज्ञा और अमत्य का सवचा त्याग करो । पर भिन्न जनों से
 मूल है दुःखों की कारण है अरुनी ही पातक है । - ती प्रसार आत्म प्रज्ञा आने से
 हाथों से अपने परो में कुण्डली (बमना या तनसार) मारने के समान है । स्व प्रज्ञा
 स्वयं का वचन है ठग है । भाई अपना विज्ञान चाहिए तो इन दुःखों में बने ।
 अपना सत्य मुनिजिवन बना लो । उसी पर पंचन का प्रवेश करो । इस प्रज्ञा के
 आने वाले वृष्टा में आकुल व्याकुल भक्त बना प्रतीभनो में उपनयन मन्त्र
 समझा मजिन पार हो जावगी । स्वयं अपने स्वरूप की पालने ।

यद्यो गाते हैं गाना ?

गाना क्या है ? स्वर गुञ्जित । वण्ड का माध्यम से नाच के सहयोग से पुनः हाथ
 जो ध्वनि गुञ्जती है उसे गाना कहते हैं । यह गाना शुभाशुभ रूप होता है । भवार्ति
 जानाराधन गुरुभक्ति में जो स्वर सुपरित हुआ है उसे भजन स्तुति स्तोत्र कहा
 जाता है । विवाह आदि मन्त्रोत्सवों में नारियल आदि जो मणोत्सव में गाते हैं उसे
 गान या गाना कहा जाता है । ये गाने मन्त्र भाषा में योग्य होने हैं और अत्यन्त प्राण
 में अशनीय अधोग्य कह जाते हैं । इनका प्रादुर्भाव दुःख सुख की अनुभूति से होता है ।
 दुःख में आमन मानव अनह्व हृदय भार हो ह-का करने के लिए गुनगुनाने लगता
 है । इसी प्रकार सुखानुभूति में आकण्ठ निमग्न प्राणी भी जप आन दानुमव को प्रक
 करने के लिए मधुर स्वरालसी में गान गन करता है । हाँ एव व स्वर में कराह के ग
 दोस और पीडा की वदनात्मक आवाज निरजनी है ता दूसर के स्वर प्रगा-य होने
 आन-के सुन्दर सखा या क प्रिय मधुर तार स्रुत होते हैं । जो होय स्वरालसी
 हृदय तन्त्री के तारों पर किसी न किसी अनुभव की रोमच अनुभूति के आपात होने
 पर हा-बाह्य प्र-ग में प्रकट होती है । इसका विना बाह्य भीड भरण या समु-य की
 आवश्यकता नहीं । एका-एक गान में स्थित मन्त्र स्वर अपने में अपने में गान
 करता है अपनी कथा अपना ही स-बहुत लगता है स्वयं अपने में प्रकटोत्तर करता है ।

आप धारा ही हमना है रोना है गाना है : न हूँ न हूँ अवाध बानवा व जीवन म भी यह प्रवृत्ति अवाध रूप है दृष्टिगत हानी है । गराव हो या अमीर राजा हो या एक पण्डित हो या मूर्ख । सभी अपने म गोप रह सकते हैं और उस गहरी अनुभूति म दूसर गुन गुनाने लगते हैं ।

देना जाना है एक किसान भी हूँ बलाना हुआ घब जाना है तो कुछ न कुछ बटवर गुन-गुनाने लगता है । अति जाकाहुन ध्वनि भी एकाही बटवर गुनगुनाना है टहलन जाने गनारजाय बधीच व साँव पर बच पर बट या टहलने हुए गुन गनाने हैं । आनन्द म हर्षोत्थाय लाली कृष्ण गान लगता है । यही नहीं स्वयं की योग्यता नहीं तो दूसरों म रचित गीत जाने भजन स्तुति स्तोत्र आदि बोलते हैं पढ़ते हैं धीरे भी ओर से भी धीरे समुदाय में भी । यदि संगीत का गान और मधुर स्वर का उदय दिन गया तो रहता ही क्या है । गगीत बना मकर आनन्द है । जो मकर बन सञ्चल मन को मकर मन्दिर पर अचल बना देती है । संगीत म निम्न मानव सम्पूर्ण दुःख क्लेश साधों को भून जाता है यदि उसके उल्लस स्वर लहरी आकाशम रंगों म निमग्न है तो । सामान्य मोजिब भजन की विरा तापों की तपन बुनाने में पूर्ण सामर्थ्य रखता है । साधक ध्यान मे निवृत्ति पाता है तो रामधारादि की विविध पतियों का गनगनाने बिना नहीं रह सकता । वल्लभ के शब्द गाने लगता है छन्दाना की पतियों वराम्य भावना धारह भावना समाधिपरण समाधिगतक आदि के उन्मत्ताना है । वनायाग घाटी घडान श्रम दूर हो जाता है । दुःख मजिबब जगिर हटा लगता है । पुन साधक गुन प्राप्त हो जाता है । अचरित आध्यात्म ध्यान विचन म मन लग जाता है । शिखरता जाती है । गन्त है वि हूँ मन चलन बाय गन्तधा मार का हटा करने के लिए गते हैं । गान विद्या नैगमिक गुण है । इनका अग्रिम विषय पर्याय के लिए भन की हो सामान्य व निरा रही । मनुष्य अपने आन्तरिक मायावादी की अभिव्यक्ति के लिए जाता है । गाने व स्वरों म मिश्रित हमधी सुभानुभूति विरल कर आवाज मे बाधुमयन के सहारे विरल जाती है । इस प्रकार गुनानुभूति विरल कर म मन्दन मे लगे जाती है । महीन अनुभवानुभूति का का स्वन स्वच्छ निर्धन लक्ष मग्न रह जाता है उसके पास । यह है गाने का उद्देश्य । वान का पन । महीन का बसावत । यह हृदय का स्वाभाविक प्रवृत्ति है । इनके सिद्धे विद्वता भोक्तृ नहीं है । वान विद्या-महीन वता पदवि अग्रिम पर निरल अवश्य है विद्या ही व अग्र भोक्तृवरी का नैगमिक प्रवृत्ति है । इनमे पन-आनन्द की अवस्था नहीं । लक्ष गुन भी अपने गुन गुन के लक्षो म गुन गुनाना है । विविध स्वर मन्दरी मे बोलने विरल कर म मन्दन कराना है । यही लक्ष अग्र लक्ष विद्यामय लक्ष महान उदयन का वरि हो जाता है । गुनानुभूति काय वल्लभ वान अन्तःपुरुष का मोह बहाता है । निरल अग्र वरि है का महीन काय वल्लभ लक्ष अग्र वरि है । का म मन्दन विरल कर म मन्दन वल्लभ वरि है । का म मन्दन विरल कर म मन्दन वल्लभ वरि है ।

आत्मा या हृदय या अन्तर्यामी या गुण शक्ति ये मित मन्त्री। सत्ता सम्पत्ती जीव का। ॥ १२ ॥ अन्तर्यामी से मूर्ति का बीज है। शिव पद ही निरन्तर का आम्बन है। गती आत्म परमात्मन है। स्वविभाग है। परमानन्द है।

आनन्द या आनन्द क्या दुनिया हुआ रहा है? अपनी ही भन के कारण। नये विहारी गुण स्वयं न विचार करना है। आनन्द से सम्पत्ता है। जिस समय एतन्त पय भ्रष्ट होता है ना नति ही पर बठ जाता है बग उगन बन्ने ही नतिनो क जाती है और शुक्ल राम ओज नाथ गिर और उपर पाँव कर सटक जाता है। गौ दशा है जीव राज की। स्वयं स्वभावन से यह स्वभावन है कि तु माट म पठ कर क से निपरीत बुद्धि हुआ गंगा म सत्क रहा है। स्वयं मोती होना है स्वयं बनता है। अपने आप ही जानी और अपने ही अज्ञानी बनता है। स्वयं, स्वयं जाग्रत होता है स्वयं ही साता है। जिना की मोमे मस्त हाकर भोगी म तल्लवत स्वयं ही होता है और समय जागरण म बरिन्त सूत्र म स्वयं ही ज्ञानमणिपि विरम सम्पत्कव हपी हार समार कर धारण करता है। मोतियों की मासा ही तो है भावि माता है जिसके घन पर सरागा और बोटरागी की सम्पत्क पराशा हती है। भावो की धारा पर जावन की धारा टिगी हुयी है। परिणाम शुद्धि होना बरिन्त है। भाव शुद्धि या मयौतम साधन है अपघ्नान का समाग करता। अपघ्नान ही प्रकार है। अय की विभक्ति देखकर उसके नाश का उपाय चितवन करना किसी जय और किसी की पराजय विचारना निसात्मक उद्योग सेनी आनि का उन्नेकन निसा के कारण भूत छुरी बटारी जसि भासा आनि पान करना अमत्ता हती है दत्ता यशोपिप्सा म फा कर जा जा मनमल प्रवृत्ति हानी है य सब पापोत्तर है हाका उपाय करना उपदेश करना आत्मा का बघन बद्ध करना है। आत्मा सत् बुद्धि है स्वयं सिद्ध है स्वयं स्व का कर्ता और भास्ता है। अपानवश पर का बना हुआ भोक्ता बनता है और नज्जय कथो वा सहन कर दुखी होता है। है अपन पर हृत भावा का त्याग कर सुधी हाना है तो।

आनन्द दीप ज्ञान और मोक्ष चदाये। दीपक प्रकाश है और मोक्ष आनन्द मसार भी तो सत्ता है और मुक्त म भी दो ना साम्राज्य है। ज्ञान विवेक है तो ससार म सार और ज्ञाना का ज्ञानान् प्राप्त होना है। मुक्तावस्था मे भी पूण ज्ञान घने स्वभाव है और मय पानुत्व भाव की अनुभूति। प्रत्येक प्राणी अपने सहर दुख को अति शीघ्र पाना चाहता है। तत्काल उसे सेना चाहता है। आज का जीव ज्ञान का घातर है और १० उस ज्ञानघन स्वाभाविक आनन्दान् का प्रतीक है अन्त नापन तो म मोट रण पतन की भरम कर दे आपताधकार मिटते ही सहज प्रमाण विहस उरगा प्रान्त हो जायेगा। स्वात्मानुभव ही नि साक्षी है यही सहर दुखा की परमोपि है। स्वसक्ति ही जीवन का सार है। हर प्राणी अपना निरुप चाहता है। प्रत्येक क अन्त विकासोमुख होन की शक्ति विद्यमान है। विवर्तित जीवन ही मुक्त है। मुक्त और शान्ति आत्म स्वभाव से पूवन अय कोई वस्तु नहीं। आज का

नियं नया दिन कहा जाता है। क्यों ? क्यों कि श्री १००८ वीर प्रभु ने वह पाया जो उन्होंने अनार्त्तिकाल से कभी भी स्वप्न में भी नहीं पाया था। अबून पूर्व वस्तु मिली निज स्वभाव निजानन्द आत्मानन्द। बस अब न कुछ करना है न पाना है न खाना है न साजना है। जप में अपने ही रहता है सत्ता काल सत्ता रूप। यही है सत्य आज का। हे भक्त्यो बाह्य दीपक व माध्यम में अंतरङ्ग दीप जलाओ अन्तर्-योति ही साश्वत है। उस अंतरङ्ग प्रकाश का अनुभव रूप मोक्ष घर। ज्ञाना यह मोक्ष पूजन है। यही वीर का सन्देश है उपदेश है प्रत्यक्ष निर्देश है। इसी को पाया इसी में आओ। तभी यह साकार होगा। घर घर दीप जलाओ निजरम आनन्द पाओ।

भगवान् वीर प्रभुमुक्त हुए और उनके प्रथम शिष्य गौतम स्वामी हुए जीवमुक्त। कितना प्रभुत्व है प्रभु की वीररागता का। वातरागभाव शुद्ध स्वभाव है। शुद्ध वस्तु का प्रतिबिम्ब भी शुद्ध ही होता है और उसकी प्रविच्छाया भी जिस पर पड़ती है वह भी परम शुद्ध हो जाता है। भगवान् का आत्मा परम शुद्ध है। उसकी शलक से श्री गौतम परम वीतराग हो केवलो बन गये। भक्तों को तार स्वयं भी मुक्त हो गये। यह है प्रत्यक्ष की बात प्रत्यक्ष प्रभाव किन्तु परोक्ष प्रभाव भी होता ही है और रहगा। भगवान् को मुक्त हुए २५ ५ वर्ष ध्यनीत हो गये। आज भी उनका प्रतिबिम्ब उनकी शांत वीतराग छवि उनकी प्रतिभा में जो की ल्यो विद्यमान है। हम चाहें तो उसका दर्शन कर भक्ति कर अद्वैत उही के समान अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। जिन गुणानुराग ही स्वानुराग है। जिन बिम्ब दर्शन ही आत्म दर्शन है। जिन स्वरूप का परिणाम ही स्वात्म ज्ञान है उनका सम्बन्ध चारित्र्य ही आत्माचरण है। या यो कहो जो भगवान् हैं वही प्रत्येक भक्त का आत्मा है। अंतर मात्र इतना ही है कि उन्होंने उस पाकर शुद्ध बना लिया है समस्त भव्यात्माएँ शुद्ध हैं विभाव परिणमन कर रही हैं। करना क्या है ? तो हम भी शुद्ध रूप में जान के लिए बनें करना है जो कुछ भगवान् कर गये हैं। जिस माग से वे गुजर गये वही माग हम छोड़ना है और उसी पर चलना है। उसमें कोई सन्देह नहीं। फिर हम भी वस ही बन जायेंगे।

प्रत्येक मानव नवीन्ता चाहता है। जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रति क्षण उसे कुछ न कुछ परिवर्तित रूप मिलता रहना आवश्यक है। वस्तुन वस्तु अवस्था भी इसी प्रकार है। पर्याय हर क्षण बदलती ही रहता है। वीर प्रभु के लिये पर्याय में मुक्त हो है। होता रहता है नया पन। यह नया रूप का प्रचार में होता है—(१) शून्य और स्थूल के भेद। शून्यता हमारे हृदय में होती और स्थूलता में बाह्य यतिप्रद अधिक होता है इसका वह विस्मृत हो जाता है। जो हा यह सब कुछ है। हा या और हो रहा है। जो या है और हांग वह सब अन्त में बन कर रहता है। स मानव अन्त का बार पा चुका सा चुका और पुन पुन से चुका। क्या ही विस्मयकारक तृष्णा है। पुराने में नया पन साक्षात् जाता है और जो दानव में नया है उधर सब दृष्टि हो नही जाती। आगम कहता है—ब्रह्म स्वयं के लोका में का बाह्य पर्याय शोधमें द

यन पश्य विषयिणं ह्ये किं पश्यति ही प्रकाशः । या वा विच्छिन्नं वायु है यो
ना ही पुराणार्थः । किं किन्हीं पर आवरण आता है जाना है । पश्य आत्मा पर
वरण है ता 'नूनाधिक अवश्य होता है परन्तु यो मभ्युत एव बार पृथक् हा जाय
पुन वन्ति आ नों सक्ता । यह स्थायी उद्घाटन स्वय अग्रमत् हा आत्मा ही
सक्ता है । एवं बार 'ह' हुआ कि पन आ नों मरना । स्पष्ट है न (अ तन है
वह आत्मा वा निज स्वयन नहीं । विघात है स्वभाव न । र है निज नही । पर
वन्तु दानिक है योकि व सयोग मूलक है । सयोग विपत्ति वा पश्य है । मित्रता
अग्रवरापन है जो पग पग पर कष्ट दायी है । अध्यायी गी भी ता लो जाय लो
करव वन्तते रात बटती है फिर प्रमा अद्वयव अवस्था जीवन को पानर को न
होमी ? अर्थात् शायोपमम जय प्राप्ति दानिक है परिवर्तनशील है । दानिक भाव ही
निज स्वभाव है यी प्रकाश है आत्मा वा तेज है वग इमी का पात्रा । वह स्व उपाय
पर ही निभर है । अपने ही वस पर उमे पाना है । पात्र स्वय हा ता उपभाग भी
करता है । स्वावलम्बन सुख है शान्ति है शान्त है । शिव गु 'र यही है इमी का
नाम है मुक्ति ।

चाह है चाह

चाह वह है जिसमे किसी वस्तु का पान वा अभिवाया हो । किसी वस्तु को
पाना यह वाक्यांश स्पष्ट विन्ति कराना है कि प्राप्य वस्तु निज त मित्र है । पर है ।
वह अपनी नहीं है । निज नहीं ता फिर पर क्या हो सकती है ? पञ्चन्द्रिया व विषय
सम्बन्धी ही हो सकती है । इन्द्रिया नश्वर है और उनके विषय भी दानिक है । चाह
है । पाया । पला गया । पुन वस के वस । चाह 'यो की रों । रही मिला । आहु
सता दृषी । चिन्ता बढ़ी । अमनोप जगा । व्याकुल हुआ । यी दुःख का दुःख । यो
टीस । वही वन्ता । बूलता रहता है जीव चाह म । यह दगा है एक विषय की चाह
में । अनेकों इन्द्रियों के अनेकों विषयों की चाह जय एवं गाय दृषी ता फिर दुःख
दावानल भट्टकना स्वभाविक है । घनघोर पीडा मे अभिभूत जीव को सुख कहाँ शान्ति
कहाँ । चाह की पूर्ति होती नहीं । दृषी तो दूसरी तीसरी आदि पात्र सपात्र न जा
है । यह भयङ्कर रोग है ।

दाह क्या है ? अग्नि का ताप । अग्नि का प्रयोग करने में घूब दृषी कि

शरीराङ्ग को भस्म कर देती है । जीव जला कि पाना पडा । पाती भरा । फूटा ।
हुआ । दृषी जलन । अमल हो गयी । राता पडा । चिन्ताह 'र उपाय ।
क्या है ? भयङ्कर पीडा होने लगती है । हाय हाय कर पड़ता है । उसी में रात
आकुल-व्याकुल रहता है । दानों में अंतर ही क्या है ? एक का 'ग चाह जय
होना है और दूसरी का भीतरी मन के आलम्बन म । दाह दृष्टिगत है अग्नि
हनु दृष्टिगत है चाह का विषय और चाह दोनों ही जगु में पदे नो इन्द्रिय म
एक की पीडा बाह्य जगत समग सक्ता है दूसर का जलन स्वय को भी हा
हो पाती । एक का उपचार है पर दूसरी का बाह्य उपचार कुछ नहीं । चाह

का उपाय उमकी वृद्धि का ही कारण हो जाता है। चाह पर मत्नम लगाये तो मित्र
सकता है। चाह प्रचलित अग्नि शिखा ह तिमम त्रितना इधन डाला जायेगा प्रस
होता बना जायेगा। दाह पर उपचार करने में उसका समन हो सकता है। यह है
इस चाह का प्रभाव। चाह का अंत नहीं। फिर क्या उपाय है अग्नी शान्ति का।
यस तक ही उपाय है और यह है समय। त्याग। समय की लगाम और त्याग का
चातुर ही चाह रूपी हस्ती को बंध कर सकता है। समय में शान्ति है त्याग में सुख।
शान्ति और सुख ही आत्मा का स्वभाव है। यही ही भाव है। जहाँ अपनी बीज है
वही भय नहीं। निष्प्रयत्ना विवास है। विवास में सतोष है। पूणता हान पर परम
सुख है। पूणता की अंतिम सीमा ही आत्म स्वभाववापसि का चरम विवास है निर
की प्राप्ति ही अपना स्वरूप है। आत्मा का स्वभाव ही शान्ति है वही परम उपाय
है। जीवन की साधना में ही अपना वक्त्याण है। वक्त्याण ही परम मन्त्र है। आत्मा
ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जिसकी आज तक प्राप्ति नहीं हुयी। प्राप्ति नहीं होने का
अभिप्राय यह नहीं कि अजीव हो गया किन्तु यह है कि उसका शुद्ध स्वरूप प्राप्त नहीं
हुआ। यही कारण है कि आत्मा चाह की दाह में झुलस कर अनाग्नि में यह आत्मा
विकार मुक्त हुआ ब्रह्म सहता रहा। हे आत्मन् तू अब सावधान हो। निरूपण
भजो परभाव को तजो। चाह और दाह दोनों के मित्तन पर ही सच्चा सुख मिल
सकता है। चाह ही करना है उसकी करो जग पाकर पुन चाह करनी हो न पर।
अपनी वस्तु अपने पास है ही फिर पाना किस है। पाना ही नहीं रहा तो चाह होती
हा क्यों? अतः स्वापसि च करने का प्रयास करा।

अर्धमूलमनर्थात् घन-सम्पत्ति सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ है। घन के प्रलोभन
में पड़ा मानव स्वयं को लो बठता है। उमरा स्वाभिमान विनोद हो जाता है।
पराक्रम नष्ट हो जाता है। नमस्कि प्रतीभा क्षीण हो जाती है। धनार्थी पर लोभ
नष्ट हो जाता है। सुख का निजो नस्तिवा मुष्टित हो जाती है। धार्मिक प्रवृत्तियाँ
प्रायः क्षीण हो जाती हैं। आध्यात्मिक उत्थप प्रतिबन्धित हो जाता है। अहिंसा धर्म से
सन्तुलित हो जाता है। घन का लोभुगी पर पीडा में रत हो जाता है। अहिंसा धर्म से
विमुक्त हो जाता है। सामान्य ध्यात्त की का बात धर्मशासन में नेता। स्वाभाविक
भी इसका शत्रु में पस जात है। आरम्भ परियन् विरत प्रवृत्त्या धारण कर भी
परिग्रह चाह का लोभ उत्थप आन पर अनाग्नि सागना भगान् स्वयं प्रयुक्त हो लोभ
क्या उत्थप था जिस अभिप्राय से सत्याम धारण किया क्यों पर परिवार धर्म
त्याग इ यदि उत्थप विमृष्ट हो जात है। पारसीक उत्थप का भूत कर सीकिक
त्रिय का ह में गुा सिद्ध हो जाता है। इतक लिए माध्यम (मीनियम) अथवा बदल
जाता है कि न य होता है मायाधार। ओ मायाधार नियच्छ गति का बंध करता
है। मृत्ति में त्रास तन्त्रि में यत्ति भिन्नाया क फलस्वरूप विलास मण्डन हावी हुए।
धारा यत्ति का धीरा बहिन है। इतक प्रभाव से यह बहुत नती ध्यानी।

भी जानि भी बनायमान हो जाने हैं। तू इस कर्मपुत्र की दयःश में कमकर लोभ
 पद में मत आ। उपसग परिपन् मन्ना तेरा कतल्य ही है। उसक बिना कम
 जरा कही। कम निजरा बिना निडि कही? अर विपत्तियों का मुकाबला ही ता
 माधुसूत है। माधु हा यागी बना। आरता ता न गाधु है न घोषी न रदायो न भाषा
 न रागी न शाका न बागी न गोरी न भूखी न घ्यामा जानि। फिर भना य प्रयाग
 कव कही कस को हुए? आत्मा विभाव रूप भी अ जानि म निगो म योग-नपायो
 ते निष्ठ बना ही विभाव रूप स्वभाव होने म। पर पन्नाप को ग्रहण करना ही उसका
 वसाविक परिणयन यना स हा रहा है। इन परम्परागत विभाव स्वभाव क कारण
 आत्मा स्वाम भाव को भुन बर पुन पुन राग रूप परिणम करने का ताह हो
 जाता है। विषय-नपायो म दोहन को आतुर हुआ यह नरक निगम म जा से ननिव
 भी नहीं निविधाना। यही है मकी अनादिवद्ध स्थिति। एक भव म पहा मत भा
 महामयदूर रूप धारण करती है। भरावो की प्रत्यक्ष दुःखा होता है घम घम भ्रष्ट
 हो जाता है ता भी लहरादाता मन्त्रि पान को दोहता है। जभारा कुट पिट कर भी
 उमका स्वाय करना मी चाहता परस्त्री लक्ष्मी विविध प्रकार तिराहृत निय जाने
 पर भी स्वाभिमान नहीं सम्भालता। एक-एक स्थान को यह दशा है विभिन्न व्यसनो
 का सेवक अनेक पर्यायों म गया ली करना। यह दस्ताव परिस्थिति जीव की अनादि
 म पमी आ रही है। इ भाई अब विवक जागा है तो अभी सही तू सम्भल अपन
 स्वरूप को समझ। समय सार कितन हा पढ़ ला नित्र में नित्र को पहचान बिना सब
 निस्तार है। मुक्ति पथ बहुत दूर है। नित्र राग भाति उसम परे है। चेत रे
 भजन। चेतना का उपयोग कर। बिना इसके बाद का कपाण नहीं हो सक्ता।

सम्पूर्ण पर्वों में समस्त धार्मिक अनुष्ठानों म अष्टाहिका महापर्व परम पूज्य
 परम पावन और महानुभय है। इस पर्व का जीवन-आरता स अनि निवट सम्भव है।
 'सर्व्य दोषों म भावें लप म इसका म सम्भव है। तनीवर दीप में अद्भुत
 दिनविश्व जीव त्रिनामय रचना है। जागे धार प्रदेव नित्र में १३ दिन मन्त्रि
 है। यह मन्त्रि समस्त भूमि पर म होकर अक्षय मन्त्रि दधिमुस और रतिवर नाम
 बिलान विरि निस्तार पर स्थित है। प्र उक्त पर्व का नामानुसार जाना शुभ्र (मह
 और मृगा समान साप बच है। एक दिन --- एव सो आठ रत्नम
 पाँच मी धनुष ऊनी विज्ञान गुि दम
 ओठ वालो श्याम की ओर ४०
 मोक्ष रवि लक्ष्मी मुखर १२
 जानि दमकारी है। १३
 दान साप से १४
 भाव-आरता-व १५
 उप १६
 कर १७

१८
 १९
 २०
 २१
 २२
 २३
 २४
 २५
 २६
 २७
 २८
 २९
 ३०
 ३१
 ३२
 ३३
 ३४
 ३५
 ३६
 ३७
 ३८
 ३९
 ४०
 ४१
 ४२
 ४३
 ४४
 ४५
 ४६
 ४७
 ४८
 ४९
 ५०
 ५१
 ५२
 ५३
 ५४
 ५५
 ५६
 ५७
 ५८
 ५९
 ६०
 ६१
 ६२
 ६३
 ६४
 ६५
 ६६
 ६७
 ६८
 ६९
 ७०
 ७१
 ७२
 ७३
 ७४
 ७५
 ७६
 ७७
 ७८
 ७९
 ८०
 ८१
 ८२
 ८३
 ८४
 ८५
 ८६
 ८७
 ८८
 ८९
 ९०
 ९१
 ९२
 ९३
 ९४
 ९५
 ९६
 ९७
 ९८
 ९९
 १००

भी दुली हो रहा है—यह दुःख जीवाधिक है वही कि कम कम है पर निमित्तिक जो
 क्रिया है नष्ट है। अन्तः वश उम अपना मान पकड़े हुए है। यह है विद्वत्त्वना ।
 ससार के साहचर्य में यह समझी नाम धरा बठा है। इस उपाधि को पृथक् कर देना
 ही मुक्ति है। अतः समझ में न वास्तविक सुख है न सुख का स्थान न सुख के साधन ।
 सुख यथार्थ में आत्मा में है आत्मा सुख स्वरूप ही है। सुखास्पद है। अतः आत्मा में
 ही आत्मा को आत्मा के ही द्वारा आत्मोच्च मूल प्राप्त करना है। आत्मा स्वभावतः
 गुणाकार सुखमय है। अतः सब सुखामय है। ५० कहना कि ससार में ही आत्मानुभव
 पाना है उपचार है। यमोपाधि सम्पन्न आत्मा अज्ञान माह और मिथ्यात्व के कारण
 भटक रहा है। अतः अपने स्वावलम्बन का भूसा परावलम्बन में पमा जीव दुलों
 का शिकार हो रहा है। हे आत्मन् साधो । तुम तब रहस्य को योग-साधना के बल
 पर परसो पहचानो और पृथक् करने का प्रयास करो। सुख अपनी निजी सम्पत्ति है
 अपने ही पाम है अपने में ही निहित है। आत्मोत्पन्न स्वभाव प्रकट करो। अपने ही
 प्रयास में यह बाध सत्य हो सकता है। स्वयं पुरपाय करना है। पुरुषार्थ उपयुक्त
 होता चाहिए। पुरुषार्थ तो मान्य करता ही है कि तु भ्रान्ति वश सब विषय हो रहा
 है। विपरीत ब्रह्म के कारण भटका और भटक रहा है। सीधी सच्ची बात है। बुद्धि
 भ्रम निराकरण का उपाय ही गही पुरुषार्थ है। तब माग पर चलने में ही वह सत्य
 प्राप्त होगा ब्रह्मके अभाव में जाय भटक रहा है। सत्य की खोज करो आत्म स्वभाव
 को समझो। निरानुसूति में नवगन्धन करो। जितने ही मय सय होते जाते हैं भ्रष्टकर
 उनमें ही निरन्तर व मयीय अने आश्रय। जितने ही मय सय होते जाते हैं भ्रष्टकर
 का निर प्रकाश उठता ही प्रकट होता जाता है। यही बात है आत्म स्वभाव की।
 बाह्य इन्द्रिय कम जो कम भाव कम जितने ही आत्मा से भिन्न दूर होते जायेंगे आत्मा
 का स्व स्वरूप उठता ही प्रकट होता जाता है। जा ता एक दिन पूरा स्व स्वभाव में
 आ जायेगा तब फिर अशुद्ध नहीं हो सता। यह आत्मा की निर शक्ति का महारम्भ
 है, समारम्भ है। इसी में वह जगत् अन्तर-अन्तर निमित्त निर्विकार परमानन्द
 योग्य विचारमय सुख है। यथा तथा अन्तर्गत बात तक रहेगा ।
 ते जीवात्मन् भगवत्तु त्वं सगार का गिरार बना । सगार को सब
 सवाया उग आना । जान आजाते जो भी जति हुई उम भूत का परिणाम तो
 सामने आयेगा ही, पत भा देग ही उगका परिणाम भोगना ही होगा। अब यह
 जानी है बाध पत भागने की शक्ति की। कम भोग। ज्ञान भाव स धय पुनक
 नदस्य शोक भोग ता का भी सत्य रूप के ही निर्जोष हो जायेगा। यदि उसमें
 सत्य रूप विराट्मन ब्रह्म ता फिर पुन वम ही पानक धारण होने लानुसार
 बंध होता और वननन जति भी व जायगी। पुन पुन यही प्रक्रिया चलती रहेगी
 संसार बढ़ता जायेगा दुःख प्रसव होता जायगा। विभाव परिणति न मिटेगी न ससार
 छोड़ा और न कम पति मिल सकने। यह ज्ञान अन्तिम परिणाम। बस स्पष्ट है
 इनके विपरीत किता हुई तो सगार का बन हो नदेगा। संसारान्तक अवस्था ही मुक्त

का मूल है। इस लोह सम्बन्धी खार्ता भी दुःख का कारण है यही दुःख का क्षेत्र है। शरीर और भोगों से निष्पन्न मुक्त जीव का आवाम ही सत्तार है। यो तो आकाश ही क्षेत्र है। लोकाराण में ही घट द्रव्यों का निवास है। घट द्रव्यों से व्याप्त स्थान ही लोह है। लोह का सम्बन्ध अणुद्वारमा से है। शुद्धारमा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। तु मात्र आधार है अन्तर। यह भी अतिष्ण आधार है। अतः लोहानीत ही स्थिति है। ठगमें जाया कते जाय ? रहा कैसे जाय ? यद्यपि लोह के यन्त्रभूत जो कुछ है वह तो मात्र आकाश है। आकाश में जहाँ आनोकाकाश है वहाँ आय कोई भी द्रव्य नहीं हो सकता है न जाना है न जा सकता है। समतागमन स्थिति आदि के हेतुओं का सम्बन्ध है इस स्थिति में वहाँ रह कर लोहानीत कते कता सकता है।

[illegible]

आते आते हैं बलत बिगड़न हैं इधर उधर ह । हैं । बल भी होता है आराम भी मिलता है । सुप्त दुःख का अरुण अन्तर ही अन्तर खटता रहता है । तदनुबल बचन और काय भी परिणामित होने लगते हैं । तीरो का एकीकरण हो जाता है । मन बचन कार्य का प्रत्यक्ष शक्तिर उन्मीलनार शुभाशुभ बल वर्णार्णोत्तरण आ बरती है बल निरट जाता है आत्मराम चारों ओर से घिर गया । अब क्या है निज स्वरूप को त्याग पर कर परिणामा बल दिया हो गया निरवस्था । जहाँ संयोग है वहाँ योगता पन है । योगते सं युद्ध स्वभाव नहीं ? अतः सं अगुडावस्था का पन है । यही बल है । कर्मों का पन संसार है । दुःख है संयोग है । संयोग दशा में मुख्य शक्ति नहीं ? मन अपना व्यापार छोड़े तो बचन काय भी विमुक्त ह । और तीनों की निरवस्था हा तो कर्माश्रय रहे । आश्रय निरोध से संबर होना गहर से निजरा और निजरा में मोन आश्रय निरोध से संसार निरोध होना संसार निरोध में दुःख निरोध । आत्मोत्थ सुखावाप्ति । स्वानुभूति । स्वसंवेदन ।

आत्म विचार का साधन कथाय निरह है । कथाय का दमन करने के लिए सम्यक् विवेक होना अनिवार्य है । विवेक विचार विचार अर्थ ही अर्थोत्तरा हीनी है । जीवा अनात्म में विचार विचारों का प्रशासना का दुःख है । विचार भास में उनका जीवन भारी भोग हो जाता है । आत्म भाव कारण उठ कर दब जाते हैं । सुखी स्वभाव से संयुक्त होने हुए भी गोपी मिट्टी के लेन में लपुन होकर गली में दूब जाती है । यही दशा है जीवन की । क्या भार में आकाश गगन गगन में निमग्न हो रहा है । आनन्द सागर का झिल्ली जल गगन में डबा रहे यह बगी विवर्धना है । सुख का आधार दुःखानि में लपटा रहे भरा यह क्या दुःखता नहीं । विचार करो यह हो क्यों रहा है ? एक ही उत्तर आती ही स्वयं माननी के कारण । अपने अज्ञान में फया जीवार्थ मुक्ति विहीन हो ग क रहा पर करे क्या ? मिथ्यात्व का संयोग से सतिष्ठत हुआ दुःख वि त काय विषय हुआ । मिथ्या दशन मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चरित्र अपना कर विषय भोगों में अगल हो गया । यह आत्मिक ही संसार का कारण है । मिथ्यात्व भास में मुक्त होने का कारण यदि किसी प्रकार त्याग का परिणाम हुआ भी तो वह अज्ञान मत होने के कारण ज्ञान तप में ही उत्पन्न कर अज्ञान निर्जरा का संसार का ही पात्र बन जाता है । ह आत्म तू गुणी होना चाहता है तो विवेक जाग्रत कर ।

हे आत्मन् ! तू अयो ज्ञान करण की विमुक्ति कर । आत्म मल प्रशालन करने के लिए विवेक प्रता और गद्विद्धि का सदुपयोग कर । स्वाध्याय कर । स्व अध्याय— अध्याय स्व—निज— आत्मा अपने आत्मा का अध्याय—अध्ययन करो । आत्मा को पढ़ो समझो जानो और मनन करो ।

हे आत्मन विचार मैं क्या ह मैं जीवन में क्या किया क्या कर रहा हूँ और क्या करना चाहिए ? समय धारण किया । वह भी महाव्रत रूप । इतना महान पन् । सर्वोच्च त्याग सर्वोत्तम धर्म । पर तिर्य । अब करना क्या है ? इच्छा निर्वाह ।

किस प्रकार ? निरतिशय निराकुल और गमभास में आतं तरु । जीवन के अन्तिम
 क्षण तक निर्दोष प्रत्यक्ष पालन करना है । उत्तरोत्तर मिलना, परिश्रम, श्रम और
 पूगता आना चाहिए । बनी हो गये तो श्रिया में पुण्याय में गठना नहीं आनी चाहिए ।
 उत्साह भग्न न हो । उत्तरोत्तर भाव शुद्धि बढ़े तब वृद्धिगत होता जाय तब ही
 नया जोश नया प्रकाश तब ही उमंग नया-नया अन्तर्भव आता जाय । यदि यह नहीं है
 तो समझना जीवन आरम्भ विकारा मुक्त है । एक दिन पूर्ण विरामित होकर अन्तर्भव
 स्वरूप में आ ही जायेगा । हर एक क्रिया का फल होता है । फल की पूर्ण उत्पत्ति
 होने तक पुण्याय किया जाता है—प्रश्रिया की जाती है यदा अन्तर्भव करता है ।
 जनार्दन प्रारम्भ की श्रेष्ठ पूरा अन्त गया हूँ द्रुक्तर चनाता रूप किया वर हो रहा ।
 धाम उगी नरार्दन शुभ धाम पका कटार्दन होने लगी क्षनियाम में आया कि कटार्दन
 दाँव हूँ बीज निकला, दाँव होना स्वयं वर हो गया होना प्रारम्भ हुआ । परमेश्वर
 गया अनाज नाना वर । स्थिर हो गया कृषक । निराकुल निरातुर । वरमेश्वर
 समझ तो । शुद्धोपपाय का बीज बाँटा है । शुद्धोपयोग भूमि की जनार्दन करा । शुद्ध
 योग रूप घास कटार पत्थर रूप राग द्वेष विषय वपायो को चुनकर विकार से
 पूर्ण शुभ परिणति में आ गये अशुभ समाप्त । शुभ की भूमिका की पूगता करो प्रत्यक्ष
 समाधि के स्वलियाम में समाहित करो त्याग प्रत्यक्ष समिति मुक्त रूप पोशा के । दाँव
 करो तब वपर्भों से । शुद्धात्मा के अन्तर्भव गुण रूप धाम अन्तर्भव आया धम नाना
 क्रिया समाप्त हो गई शुभन ध्याना रूप शिविका में सम्मिलित अपने घर स्व स्वस्व में
 आओ । आ चका मय कुछ आत स्वस्व रूप अन्तर्भव (चारित्र्य) बीज मुक्त । स्वयं
 प्राप्त हो गया । अब व्यापार की क्या आवश्यकता है । न धर्मध्यान शुभन ध्याना स्व
 क्रिया समाप्त हो जायेगी स्वयमेव । है आत्मन कर्त्तव्य करते आत्मा कार्य समाप्त होने
 पर किया स्वयं समाप्त हो जायेगी । आ पातम तत्त्व प्रकट हुआ जायगा । यही सम्मति
 पक्ष है । निष्ठात्मा का स्वस्व प्रकट होना ही आत्मोत्पत्ति मुक्त है । अब क्या करता
 है ? कुछ नहीं कुछ करना दोष ही नहीं है । यही निष्ठात्मा दत्ता है । अन्तर्भव का
 अभाव ही मुक्त है । यही स्थिर स्थाई अविश्वर अक्षय अन्तर्भव स्वरूप है ।
 इसमें स्थिर आत्मा अन्तर्भव काय तक यथा तथा रहेगा । ह साधो ! आत्मा का स्थिर
 हो रहा है कि नहीं इस पर निश्चय ही दृष्टि रखना । सतत विचार करो । सम्पूर्ण
 क्रिया करत आओ । स्थिर रह मे क्रिया सतत करत ही नहीं जाना है कि तुमने
 जमे स्वानुभव आता जायेगा क्रियाओं का व्यापार भी स्थगित होना जायेगा और एक
 दिन आत्मा वृत्त-वृत्त हुआ जायगा ।

प्रमत्ता पता उलना दुर्लभ नहीं जितना प्रमत्ता पाकर निष्ठा रहना बल्लि है ।
 मन् प्रमत्ता का ध्यान है । अहंकारी का पतन अवश्यभावा है । अहंकार में दोष है
 भारतीय है यही कारण है कि वह यन्त्रे वनावा का डगर नहीं उगा देता बल्लि
 विस्तृत बीज को सङ्कुचित कर जाता है । जीवन का समग्रजन पहनुना को ध्यान
 बना देता है । मानी का विरक्त होता है । प्रमत्ता जाग्रत हो जाता है । कर्त्तव्यविमुक्त

हो अकारण हो जाता है। रावण का यही हाल हुआ। कस की यही दुर्गति हुई। अकस्मीति अहंकाराविष्ट हो अवधुमार से परास्त हुआ। अयश का भागी हो धिक्कार का पात्र बना। अनुत्सुक प्रभता उभयलोक हिनकारी होती है। पूर्व पण्य से प्राप्त हुई। प्राप्त में सरल भाव रहा दया स्नेह ममता और करुणा बढ़ि बनी रही तो निमल उज्ज्वल यश के साथ स्थायी-सातिशय पुण्य की कारण होगी। इसमें कोई शका नहीं कि यह प्रभता परम्परा से मोक्ष का कारण होगी। मुक्ति मार्ग सरल है। निष्कपट है। निःस्पृह है। इसका प्रतिपक्षी-बाधक अहंकार और ममकार हैं। अतः इन्द्रिय जय विषय भोग सामग्री पाकर यदि विनम्र रहे तो धार्मिक आचरण सम्पन्न जीव पण्य नृवाणी पुण्योपादन कर शीघ्र मुक्ति का पात्र बन सकता है। मुक्ति पथारोही आज्ञावशुण मत्त होना चाहिए। सरल परिणामी के मन बचन काम तीनों योग सरल एक रूप ही होने हैं। वह जो करता है वही कहता है और वही सोचता है। वह स्व पर का हिन भी समान रूप से विचारता है। कट वाणी नहीं बोल सकता। मधुर वाणी से मसार नित्र रूप हो जाता है। मरा तेरा भाव मिट जाता है। ससार वश हो जाता है। पुनः शुद्ध परिणति आते ही नित्र र्भ स्थिर हो जाता है। यहीं आत्मानुभूति प्रारम्भ होती है जो नित्र की नर्पत्ति है और सतत अनन्तज्ञान तक रहने वाली है। हे आत्मन् पशस्वी बना पशस्वी नहीं। यश की चाह सज्जन का गुण है अहंभाव सज्जनता का अभिशाप। यश पाकर भी तमम मोह मत करो क्योंकि वह भी निमित्तक है सयागो है सयोग में शुद्धता नहीं होती है नित्र स्वरूप का अवभास नहीं होता। सयोग मिथ्या वस्था है जिसमें शुद्धतावभास होना असंभव है। तु सयोगी सम्बन्ध का श्यामकर ही घिर चुकी हो सकता है।

बचनता बचन का हेतु है निष्कपटता मुक्ति या स्व स्वरूप में आने का उपाय। जहाँ हवन बचन है वहीं विचार है। आप देतिये दही जमाया जाता है। जामन मगाकर उगे स्थिर छोड़ दिया तो जम जायेगा। यदि हिला दिया उबल-मुपन कर दिया तो बस वह नहीं जम सकता अपन वास्तविक स्वरूप को नहीं पा सकता। जीवन दूध है समय जामन रंगमित होकर जो स्थिर हो पना, विषय-विकाराणां कारण के रहने पर भी विकृत नहीं हुआ मन बचन काय को बचन नहीं होने दिया भा मुक्ति की दही बचाव जम जायेगा अन्यथा ममार ही है। योगस्थनों में ऊपर उठे पर आत्म स्वरूप स्थिति प्राप्त होती है। शुभाशुभ भावों का आशय पाकर मन बचन काय भी तदनुसार शुभाशुभ रूप परिणमन करता शुभ बना जब तक चरनी रहनी है तब तक आशय आने है। इस का सहारा पाकर रह जान है। फिर होकर है। इस प्रकार इनका व्यापार ही संसार है। स्थिति करना चाहिए, कदापि का जम प्रवृत्ति का अभाव ही समाराभाव है।

जी ? कुछ नहीं यह तो पुनर्पुनरावृत्ति की बहानी ही हुई । भोगी नहीं बनता है ।
 तो राधा बनी ? नहीं राधा भोगी ही सत्यारूप आया है ? राधा नहीं चाहिये । तब
 क्या बनता है ? सर्व धन धन कर देलें बेके प्रभु बनना बनाना है ही नहीं । तो यौगो
 ही बननी बिसी तो 'बेन' पर यौग नहीं सपना । मात्र यौगी को बना बनाया 'यौग'
 प्रभुता । और जिस में जाना उभार के को । भोगी इसमें फिर मुख नहीं कोम विनया ?
 भोगी 'आनन्द' कृष्ण करना तो होना है । करना है और करने के लिए बनना भी है ।
 नहीं नहीं है जो भोग नहीं कर सता 'बनना' है । सत्वा-मही भोगरागी-योगीराज और
 बनना है विविधिभूत भार तप । 'बंध' दो धातु मध्य मई ता बेहो पारे है । मुक्ति को
 योगी शरण से का 'भगवत्' है भोगी का राजा है निमित्त साधक भोग नहीं स्वोत्तम
 से उत्पन्न प्रकृत भोग । जिस का अनन्त मुख अनन्त ज्ञान अनन्त दयन अनन्त ही
 भगवत् 'भुक्ति' का । ही साधना योगी हो 'योग' की साधना करो । योग के साधक गर्वम
 योगी तपः सती केपा 'दम' शम 'मेताप' जीवन्ति को अपनाओ । साधना क विरोधी
 विविधिभूत भोगी स्वोत्तम विचार भावों का परिहार करो । आत्म भावा को परेको ।
 निमित्त में निमित्त भोगी निमित्त में निमित्त का जोनी निमित्त में ही निमित्त विचारो । यही है
 केसेका । 'जा' मर्क विचारों को सर्वोत्तम परमा' जानो । जो जो जानती है आत्म श्रुती
 केसे है आत्मश्रुति है ही ही प्रहृष्ट करो आत्माजी धारण करो और उनको ही
 आत्म श्रुति पर लक्ष्यगर्ह परहार करो । पर नो स्वयं ही प्रहृष्ट आयेगा । आप में जान ही
 प्रहृष्ट आयेगा ।

[illegible]

आधार से यह अन्तर्मात्र स्वभाव में प्रकट हो ही है। पुण्य प्रत्यक्ष हो जाता है। दे-
 बलान्ति रश्मि को निर्मल निराकरण होने के लिए पवन अनेकित है। वायु
 घटाटोप में छिन्न भिन्न हो जाते हैं। भास्कर अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट हो
 है उसका पुण्य प्रकाश व्याप्त हो जाता है। शुद्ध स्वच्छ निमल स्वरूप प्राप्त
 होता है। अब न वायु की आवश्यकता है न उसे प्रकट ही करने की जरूरत है।
 बस यही आत्म स्वभाव प्रकाशन की स्थिति है। जब तक यह प्रकट नहीं होता तब
 तक व्यवहार निश्चय शुभाशुभ में प्रवृत्ति विवर्ति नय निर्णय प्रमाणां के
 की आवश्यकता है। करने ही पड़ेगे। इनके बिना वह आत्मनुभव मोर हो
 सकता। जिस काल आत्मान अनुभव हो जायेगा आत्मा अपने अमनी रूप में
 जायेगी फिर तब इन माधनो की आवश्यकता अनेका स्वयं समाप्त हो
 फरने तब तक चालू रहती है मान लपार नहीं हुआ। काय मिट होने ही
 निरयक हो जाता है। वही कारण अनावश्यक है। हे आत्मन् तू कर्तव्य
 अपने कर्तव्य में मग्न जाग्रत रहकर कम करते जाओ जब काय मिट हो
 कम क्रिया स्वयमेव स्थगित हो जायेगी। इन के पक्षे अपने आप जान हो
 वस्तु मिदान्त यही है। मिदान्त अथवा अकृत्य एकरूप होता है वही सत्य
 काय निष्पाद होता है। तू सबसे अलग निराता अपने जमा ही आप है। जाने
 ही आप को पाने का प्रयत्न कर। जिस क्षण अपने में अपने को मान लेगा
 ही आप को पा लेगा आप ही आप का हो जायेगा उस क्षण पर सम्बन्ध
 नहीं भवेगा। जब पर संयोग मिट गया तो स्वयं मिट परमात्म रूप निर-
 चेतन्य पुञ्ज मान ही तो रह जायेगा। अब उसे अन्य की क्या आवश्यकता है।
 भर गया स्वयं भोजन से विरक्ति हो जाती है जब विरक्त भाव हो गया तब तब
 नीरस पत्तियों से मना प्रयोजन ही क्या है? वे रहें न रहें अच्छ हो या बुरे
 हों या कम? जन्म-मरण से ही क्यों न रहें जानी का छान ही उधर नहीं
 वह स्वयं, जानना दण्डाना स्वमवेगना चरया चनयाना में ही निमग्न
 है। यह आत्मोत्पन्न आनन्द आत्म स्वभाव रूप ही है। इसमें पर का सेन भी
 है। हे आत्मन् अग्न पर में बगना सीमा अग्न में राने का अभ्यास करो।
 पत्तियों में रहने के लिए जितने प्रयास करने हो उनमें बहुत कम भी यदि
 रमण करने में व्यय करो तो अनाशा ही आत्म स्वरूप को पा सकते हो।

मन क्यों वेगन में गमन की चेष्टा करते हो? क्यों नहीं सगम की सगम
 पकड़ने? अरे भाई थोड़ा पर चढ़ना है तो लगाम कमनी ही होगी रज्ज पर
 रज्ज ही होगा। गूँठ मग्न का मज्जार उग पर आसीन होना ही होगा। इन्हें
 जाना-कानी क्यों करने है? व्यवहार में ही निश्चय सधना अन्यथा निश्चय निश्चय
 रहे न व्यवहार वह तो थोड़ा निश्चयमात्र रह जायेगा। इसी प्रकार निश्चय न

की उपेक्षा कर व्यवहार ही में समन करने लगे तो ममार रगभञ्ज ही सज्जा रहेगा
असह्यमन न रह कर अगदामाग जगदामाग ही पाने म रह जायेगा । बिना निश्चय
बिने व्यवहार रहेगा न व्यवहार धर्म ही । बिना व्यवहार के सब साधारण रूप ससार
मोक्ष माया विभी भी प्रकार समाप्त नहीं हो सकती । कोटू के बन वर पुमन रहने
पर निश्चि बहो मुन शक्ति माया बहो ? अस्तु शुभाशुभ रूप निश्चय व्यवहार धर्म
का महान्-महका मेन मादि जानकर सम्यक् प्रकार उनका परिपालन करो विचार
रा जीवन मे व्यवहार करा लभी यथाथ अवस्था सिद्धावस्था सिद्ध होगी ।

त्रिनि यव बन्तो । बन्त जाता है । टीक भी है । परन्तु प्रथम विचार करो त्रिनि का अर्थ क्या है ? और इन्डिय का अर्थ क्या है ? किसी भी पदार्थ का अर्थ न समझो तो उसकी माधना भी नहीं हो सकती । त्रिनि का अर्थ है जीवना, विजय पाना । इन्डिय का अर्थ है ज्ञान या ज्ञान का माधन । त्रिनि के द्वारा तत्त्व पान हो व है त्रिनि । इन्डिय के समान ये स्वयम् अपने व्यवसाय में समान रहता है इन्डिय ए इन्डिय बहुरानी है । कोई भी इन्डिय अपने अधिकार से परे नहीं जाती दूसरे के बाप में बाँटा नहीं लेती । अर्थ का बाप भी नहीं करता और न अपना नाम दूसरी इन्डिय से ही करवाती है । अब विचार करिये इन्डियों को जीवना से क्या अभिप्राय है ? आत्मा का निम्न इन्डिय है । परिचायक है आत्मा का । मना उसका हमन करना क्या भाव संभन होगा ? नहीं । फिर क्या है ? ये इन्डिया अगुद्धारमा व बिन्दु है न कि मनु के । अगुद्ध आत्मा क्यों है तो वह भी इन्डियों के संयोग से ही अगुद्ध बना है । फिर मना ये अगुद्धमा के परिचायक कैसे हो सकते हैं ? नहीं हो सकते । इनका अगुद्धमा ये कोई सम्बन्ध नहीं है । अगुद्धमा निरन्तर है । शरीर ही नहीं तो इन्डियों का अतिरिक्त ही बड़ी रफ़ संभन है । आत्मा की अगुद्धारमा प्राप्त करने के लिए शरीर संयोग विना ही होगा और जब शरीर संयोग मिलेगा तो इन्डिया का अतिरिक्त रूप समान हो जायेगा । जब तक शरीर संयोग है तब तक इन्डियों को जीवना है । अर्थात् इनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोक कर संयम करना । इनके ज्ञान सत्त्व की सीमा बढाना । यह कार्य जयन करना होगा । तेजी से साथ चलनी शुरू नहीं की अचानक सब मना त्रिनि आय तो वह टूटने के स्थान पर टपक करती बिन्दु छोटे छोटे रकाने का प्रत्यक्ष विद्या तो टूट कर जाती और उत्प्रेषण करने का सबट से रकाने भी हो जायेगी । इसी प्रकार इन्डियों को छोटे-छोटे विषय समान विद्या प्रदाना तो वह लड़क हो जायेगी । अत्यन्त त्रिनि अत्यन्त प्रदाना भी करेगा । पुनः उनका अगुद्धमा की त्रिनि व पद का वह सब व बन्त हुआ अगुद्धमा हो व देगा अगुद्धमा हो जायेगी अगुद्धमा से लगेगा । इसी प्रकार उनको ज्ञान की सीमा हो जायेगी । अत्यन्त प्रवृत्ति उनका अगुद्धमा होकर सब ज्ञान प्रदान कर अगुद्धमा होकर सब देगा । इस प्रकार त्रिनि यव होकर सब ज्ञान हो जायेगा । यह अगुद्धमा अगुद्धमा का अगुद्धमा

है। आत्मा चन्द्रिय रहित और इन्द्रियातीत है, यह स्पष्ट निश्चय होता है। आत्मा में वर्ण रस गंध स्पर्शादि भी नहीं है। निराकार, निर्गुण और निरूप्य है। यह आत्म, सर्वत्र स्वयं सिद्ध है। अनादि अनन्त है। तत्त्व सभी प्रकार अनादि, अनन्त है। इन तत्त्वों से अभिव्याप्त अनादि ससार है। यह परमेश्वर बीज वा वत् सूतान रूप, परोक्ष आ रही है और इसी प्रकार चपती भी रहणी। हमारी जीव गुण ही जायग सिद्ध ससार ज्यों का त्यों बना रहेगा। हा, साधो ससार बदना का व्यर्थ बरत क्यों कात हो ? अपने को बदलने का पुरुषार्थ करो। रतत्रय मयी आत्मा ही तरा निज रूप है उसे ही सभान। यही तरा गांधी निज तत्त्व है जो आतं पान्त के तेर साथ रहेगा।

पुण्य हेय है ? बयो ? बयो कि यह बय है। जो बय है वह ससार का बय है। उसी रूप ससार है। सत्य है। बय समस्त जड़ है चाहे वह पुण्य हो या पाप। आत्मा चत य है चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध। शुद्धावस्था में चत य स्वभाव पूर्णोद्धार प्रकट प्रज्ञाप्रमान है और अशुद्धावस्था में वह स्वभाव आच्छन्न है उसी शुभाशुभ रस पल्लव से। दना है आत्मा का निज रूप पुण्य पाप रूप कम से। परन्तु क्या वह दना दृष्ट नहीं सकता ? दूर हो सकता है। किस प्रकार ? तो प्रयत्न करने से। उपाय बने से। उपाय कौन करे। कम स्वयं कर नहीं सकता क्योंकि वह जड़ है। फिर ? आत्मा को ही पुरुषार्थ करना है। प्रयास करना है। जहाँ प्रयास है वहाँ आत्मा पराश्रय है। पराश्रित पुरुषार्थ भी शुभाशुभ रूप ही हो सकता है। अब जाबिर वह पराश्रय है। कस ? जहाँ क्रिया की वहाँ आश्रय होगा ही। बयो कि शुद्धात्मा ही क्रिया कर नहीं सकती। जो क्रिया करने वाला है वह शुद्ध नहीं हो सकता बाह्य योगावलम्बन है वही। मन, वचन और काय का आलम्बन लेकर ही क्रिया हो सकती है और वह शुभाशुभ रूप ही हो सकती है। अशुभ प्रत्यक्ष दुःख रूप है। शुभ ही पुण्य रूप है वह भी यदि हेय है तो फिर शुद्ध हो वस यह दुःख असाध्य समस्या सामने आती है। इसका स्पष्ट सुमाणा सत्ता समाधान यी है कि पुण्य हेय नहीं है और सवधा उपाय भी नहीं है। पूरा पुण्य का परिपाक हो जाने पर वह अपनी अन्तिम अवस्था को प्राप्त होकर स्थित हो जाता है पुनः स्वयं उसी प्रकार आत्मा से निजा प्रयास के पृथक् हो जाता है जो विनाश अक्षय या सप का सर्वाङ्ग से लिपटी बँचनी अलग हो जाती है और सप का प्रकाश रूप सामने आ जाता है। क्या सप को उस त्यागने में कष्ट होता है या दुःख होता है ? नही ? वस क्या वस बिधर निरुक्त गई इसका भी उस आभास नहीं होता भान। तो रत्ता। वस यही दशा पूरा पुण्य पाप पर प च आत्मा का है। वह जिस समय आत्मा में मत्त्वान होता है वह पुण्य का बचती स्वयमेव पूर्ण होती है और तत्काल शुद्ध रूप निरावरण रह जाता है। हा साधो ! पुण्य सवधा हेय नहीं है। पाप सवधा हेय है। उस से पूर्वक उरवा त्याग करना होगा किन्तु पुण्य का परिहार में दयान करने अविनाश नहीं। पुनः आत्मा आत्मा का सन्निकट से जायगा। सब बय

जिसका जलक लालि कृष्णक का न हूँ और न तो ही मरने है। गुण गुणित
 है कि लोकेन और इन इन सत्त्वगुण र आने पूर्ण लक्ष्य गुणों से सर्वथा निरपेक्ष है।
 ब्रह्म सत्त्वगुण और पित्र और क्षेत्रज्ञ निरपेक्ष अक्षय है। हे भई आने
 हरिश्चन्द्र शास्त्र शास्त्र शास्त्र को पकड़ कर उगरे ही न ही लक्ष्य होकर रहने
 का प्रमाण करो। आने हरिश्चन्द्र को आने में अति होकर आने का देना। अक्षय
 अक्षय शरीर की सत्ता अक्षय है। सः प्रकृत गुणों में अक्षय शक्तियों का परिश्रम
 कर उनको मारना कर रहने। अक्षय अक्षय शक्ति को आने में आक्षेप न कर
 मूल अक्षय क्षीयता नित्य बन रहे हैं। लीन लोह का मांस बनाय बन कर इन
 लोह गुणों होकर ब्रह्मका पित्र बना यह नेने जैसे सत्त्वगुण का मोहावमान हाथ है
 न गुण शक्ति से लक्ष्य बनने। अक्षय गुणों का न हो पड़ना है अक्षय होना है। अक्षय
 जानने हरने की आवश्यकता नहीं माने कीया ब्रह्म है अक्षय क्यों कि गुणों नेने
 ही लोह रहना है न कभी शास्त्र न भ्रष्टा न देना न भाषा न गुण गुण ही की
 पड़ा-पड़ा लेना प्रयत्न कीहुक हो गया है। अक्षय आ आभा इगुण पर ब्रह्म लक्ष्य
 पण्डित की आक्षेप शरीर अक्षय गुणों का भाग की भोति। ब्रह्म लक्ष्य
 परता है ब्रह्म। ब्रह्म आक्षेप पक्ष हूँ गरी घात उग नई आना जाना हो गया ब्रह्म
 माग भी छुड़ गया। न गमी रही न यत्न न पण्डित। ब्रह्म लक्ष्य घात गुण लक्ष्य
 आना आना प्रारम्भ हुआ माग प्रशस्त बन गया। हे साधो ! राग द्वेष का शक्ति
 अक्षयिचित्त काम क्रोधादि ब्रह्म विचार की घाम दुर्वादि उत्पन्न हो गयी है अक्षय
 रूपी पक्ष से निवृत्त आक्षेप हो गया है। जैसे जैसे राग-द्वेष ब्रह्म लक्ष्य होनी ब्रह्म
 विषय भोग विचार मूल जायेगे जान ब्रह्म की सत्ता बन जायेगी नियम समय को
 सवारी पर आक्षेप होकर बढ़ने जाओ आवागमन से माग स्वयमव प्रशस्त होना
 जायेगा। सत्त्व निमित्त हो जायेगे। मन्त्र मन्त्रांतर में यत्न तत्त्व की मन्त्रने का समय
 भी आया ता ध्यानात्मन से दृष्ट आक्षेपों में उलझ नहीं सकोगे। ब्रह्म शक्ति को
 साधक बढ़ते जाओ राहा माग अवश्य मिलेगा तब भी होना जायेगा। एक क्षण ब्रह्म
 जायेगा अब कुछ भा करना न रहेगा। कृतकृत्य दया हो जायेगी। साधन ही लक्ष्य
 रूप परिणामन कर जायेगा। आत्मा परमात्मा बन जायेगा। वहाँ कोई भी विकल्प नहीं
 रहेगा। कर्त्ता काम की श्रुतता समाप्त हो जायेगी। मात्र स्वय एक अक्षय भाव ही रह
 जायेगा। अब न पापेय चाहिए न सामी। गुम ही गुम रह आभोग। कसे ? अविनाशी
 अक्षय अक्षय अक्षय साक्ष्य एक निर्विकार निराकार सत्त्व ज्ञानपुरुष
 स्वयम्भू। अब अब जा है वही रहना होगा सत्त्व अनन्ता कल्प काल पण्डित। श्रिया
 ब्रह्म पर निमित्तक ऐसा अपूर्व हाथा आत्मा का शुद्ध शुद्ध विकास।

हे साधो ! अपना ब्रह्म पाओ। निज विभूति प्राप्त करने पर ही तुम्हारा
 पुरुषाय साधन है। आप आप में निवास करो यही तो स्वातन्त्र्य है। स्वाधीनता ही
 गुण और शक्ति है। प्रथम हम समझें कि हमारा जीवन क्या है ? हम कौन हैं ?
 हमारा कर्त्तव्य क्या है ? हम किस उद्देश्य से उत्पन्न हुए हैं। हमारा स्वरूप क्या है ?

मिलकर नमक पानी वह एक रूप न हुए और न हो ही सकते हैं। सुस्पष्ट मुनिश्वित्त है कि प्रत्येक जीव स्व स्व सत्तानुसार अपने पूरे एक दूसरे से सबका भिन्न ही है। बाह्य सम्बन्ध औपाधिक और औपचारिक क्षणिक असत्याय है। हे भाई अपने टोत्तोस्तीण पायक भाव स्वभाव को प्रकट कर उसमें हा तल्लीन एव भव हाकर रहने का प्रयास करो। अपने स्वभाव को अपने में प्रविष्ट होकर अपने का देखो। आप में अनन्त रत्नों की महा ज्योति है। महा प्रकाश पुञ्ज में अनन्त शक्तियों का परिणाम कर उनको समाल कर रखो। आप अपनी निधि को अपने में आच्छादित कर महा भूख अत्यन्त दीनहीन पतित बन रहे हो। तीन लाख का नाश बनाय बन कर इस प्रकार दुखी होकर भटकता फिरे क्या यह तेरे जैसे सज्जन का शोभायमान हाता है? हे मुन पतित से पावन बनो। स्वयं तुम्हें उठना है बढ़ना है जगत्तर होना है। बढ़त जाओ डरने की आवश्यकता नहीं माग करोना बक है अवश्य यों कि तुमने उसे मा ही छोड़ रक्खा है न कभी झाडा न चुटारा न देखा न भाला न सुध बुध ही सी। पडा पडा ऐसा भयकर बीहड़ हो गया है। अब आ जाओ म पय पर बढ़ते बसो पगडंडी बनती जायगी वर्षा के अनन्तर तृणाच्छादित माग की भांति। क्या करना पड़ता है वहाँ। वर्षा आयी पक हो गई, घास उग गई आना जाना हा गया बर माग भी छुप गया। न गली रही न बाट न पगडंडी। वर्षा रुकी घास सूख गई आना जाना प्रारम्भ हुआ माग प्रशस्त बन गया। हे साधो! राग द्वेष का शास्त्रियों से अभिसिंचित काम क्रोधादि कषाय विकार रूपी घास दूबाई उत्पन्न हो गयी है अज्ञान रूपी पट्ट से शिवमग आवृत हो गया है। जैसे जैसे राग-द्वेष क्या बंद होगे काम विषय भोग विकार सूख जायेंगे ज्ञान वैराग्य की सड़क बन जायेगी नियम सधम की सवारी पर आरुढ़ होकर बढ़ते जाओ आवागमन से माग स्वयमेव प्रशस्त होता जायेगा। सवेत निमित्त हो जायेंगे। यदि मध्यान्तर में यत्र तत्र कहीं भटकने का समय भी आया तो ध्यानासन से दग्ध झाड़ियों में उलझ नहीं सकोगे। बढ़ो जानिन् बढ़ो साधक बढ़त जाओ राही माग अवश्य मिलेगा, तय भी होता जायेगा। एक क्षण वह आयेगा जब कुछ भी करना न रहेगा। वृत्तवृत्त्य दशा हो जायेगी। साधन हो साध्य रूप परिणामन कर जायेगा। आत्मा परमात्मा बन जायेगा। वहाँ कोई भी विकल्प नहीं रहेगा। कर्त्ता कम की श्रुतिया समाप्त हो जायेगी। मात्र स्वयं एक अह भाव ही रह जायेगा। अब न पापय चाहिए न साधनी। तुम ही तुम रह जाओगे। कैम? अविनाश। अविकार अक्षय अजर अमर साश्वत एव निर्विकार निराकार अतम्य ज्ञानपुञ्ज स्वयम्भू। बस अब जा है बही रहना होगा सतत अनन्तों रूप काल पर्यन्त। किया क्या पर निमित्तक ऐसा अश्रुव हाता आत्मा का कुछ शुभ विनाश।

हे साधो! अपना बमव पाओ। नित्र विभूति प्राप्त करने पर ही मुक्तारा पुरपाय मायक है। आप आप में नित्राम करो यही तो स्वतन्त्र है। स्वाधीनता ही मुन और शान्ति है। प्रथम हम समझें कि हमारा जीवन क्या है? हम कोन है? हमारा बसत्य क्या है? हम किस उद्देश्य से उत्पन्न हुए हैं। हमारा स्वयं क्या है?

जिस क्षण स्व पर का भेद विनष्ट हो जायगा । आत्मा की प्राप्ति हो जायेगी । आत्म ज्ञान हो जायेगा आत्मा में निवास हो ही जायेगा । इन्द्रिय और इन्द्रियविषय दोनों ही आत्म स्वभाव से भिन्न पर रूप हैं । परस्व ही इनका सक्षण है । आत्मा चेतन और ये सब अदृष्ट हैं । सबका भिन्न स्वभाव तो भिन्न भिन्न है ही किन्तु जीव-जीव समान धर्म्य गुणधारी होने पर भी एक दूसरे से सबका भिन्न है । सांसारिक जीव तो अशुद्धा वस्था में हैं । अशुद्धता प्रत्येक की प्रथम प्रथम है कर्मानुसार । ॥ १ ॥ पर्याप्त नाना रूप हैं किन्तु शुद्धात्मा भी अपने अभीष्ट सिद्धांतों में विराजमान होकर भी एक दूसरे से सबका भिन्न ही है । यद्यपि सब ही अनन्त मित्र एक क्षात्रावगाही हैं परन्तु सत्ता सबकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र अलग अलग ही है । प्रत्येक सिद्धात्मा अपने अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव का अपने-अपने में अनुभव करता है । प्रिय अपनी-अपनी धर्मता में लीन हो अनन्त गुणयुक्त होकर भी एक अलग अलग अलग अलग स्वस्व है । न आत्म स्वभाव का कोई आवार है न प्रचार । वह अखण्ड है सदा एक स्वभाव रूप ही रहने वाला है । इस प्रकार के प्रवाण पुञ्ज स्वरूप आत्मा को अनुभूति जिस क्षण होगी मेरे तेरे का भाव ही मिट जायगा एकाकार आत्म भाव ही रह जायेगा । आत्मा ही आत्मा का होगा । उसी क्षण मानवता की साधकता होगी । मनुष्य भव पाना सपन होगा । जीवन का सही अर्थ प्राप्त होगा ।

हे कल्याण स्वरूपे । कल्याण माय पर आरुढ़ हो । सब प्रथम मगकार पर विजय करो । मेरा सपन मिटा कि तेरा सपन सहज ही मिट जायेगा । मेरा तेरा है क्या बलाय । मैं है कुछ नहीं मात्र भय है । डरना छोड़ दे यह स्वयं समाप्त हो जायेगा । मन ही तो बध और मोह है । मैं ही बध और मोह का कारण है । मानसिक विकल्प जीव को आस्रवों में डलवा कर आत्मा का परतन किये रहता है । अन्तरङ्ग की कट-कट दकने पर वचन और वाय भी निष्क्रिय होकर शेषचाप बछते हैं । जिनागम इन तीनों के हवन चवन का योग कहता है और योगी को ही आस्रव कहा है । आस्रव निरोध सवर और सवर के अन्तर निजरा और निजरा की समाप्ति मोक्ष है । कर्मों का क्रम से निवृत्ति निकलत जब सचित्त कम राशि पूरा नष्ट हो गई तो शुद्ध आत्मा रह जाती है । घर है बहुत समय से खाली पड़ा था छिटाईयाँ (अगले) घुल ये चारों ओर से पवन प्रेरित छल मिट्टी कचरा आ रहा था । उसे खरीद लिया अब मालिक ने सब ओर से शीशा किवाड बंद कर शाइना प्रारम्भ किया ता शाइते शाइते अंत में समस्त कूड़ा-कचरा निकल गया मात्र स्वच्छ मकान मात्र रह गया । इसी प्रकार समस्त शुभाशम कर्मों के ज्ञान पर शुद्ध आत्मा रह जाता है फिर बदाच पर भी द्रव्य नहीं आता आत्मा से आकर नहीं चिपटता यही अवस्था सदा काल बनी रहेगी । यही मुक्तावस्था है । यहाँ आया जीव सतत मुक्ती रहता है । ह साधो प्रथम शरीर रूपा मकान पर बसा करो अधिष्ठत की स्वच्छता करो स्वच्छ कर समस्त पर द्रव्य रूपी अरूपी का परिष्कार कर अपने निवृत्त स्वरूप में लीन हो जाओ । यही अन्तिम अवस्था मोक्ष है ।

गुण और और गुण कीज बचता बचता आदि बन हो सकते हैं ? तब ही नहीं। यह यह सब एक दूसरे का सहयोग है। सगुण भिन्न गुण भी एक दूसरे के साधन साधन हो सकते हैं तो क्या हमारे चित्त के लक्षणों में भी अनन्त गुण एक दूसरे के सहायक बन आना गुण विभाग नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं। सामञ्जस्य करने का प्रयोग उद्योग आवश्यक है। बिना पुरुषार्थ सिद्धि नहीं मिल सकती है। पुरुषार्थ तो प्रत्येक आत्मा का ही है बचता बचता ही है बचता भी है परन्तु यह सच्चा पुरुषार्थ नहीं है। सही नहीं है। अतुल्य सारगुणार्थ वरा पर अवश्य आत्मा की अनन्त शक्तियों का विभाग हो सकता है। पूजा प्राप्त कर निज स्वभावप्रतिष्ठ हो सकती है।

ह गांधी ' ध्यान करा। ध्यानी बना। पर प्रथम ध्यान ध्यानी ध्येय (प्रमेय) और उगता परिणाम-रूप समान हो जाता है। ध्यान लक्षणा है। लक्षणा मन वचन और काय की करता है। चक्षुःश्रवण स्पर्श अस्पर्शगन्धस्पर्श गति की रोक कर किसी भी एक विषय में निगृहीत मान ग स्थिर कर रचना मनोनिग्रह है। इसी प्रकार वचन और काय की विविध विनियोगों का रोक कर एक ही रूप में काय में समान करना अथवा अगुण वचन अगुण काय चक्षुःश्रवण स्पर्श पर बहता करना वचन निरोध व काय निरोध है। जिस क्षण इन तीनों (योगों) की अनघन प्रवृत्तियाँ एक जायेंगी पुष्पाञ्जन होगा। त्रिगुणियाँ होंगी। भाव गच्छेत् छूट जायगा। समस्त शुभा शुभ अध्यवसाय जब शिथिल हो स्थम्भित हो जायेंगे उस क्षण स्वयमेव ध्यान हो सगुण। ध्येय धुनो उसी पर दृष्टि धरो ध्या। सामान्य प्रतीत नहीं है स्थूल भी नहीं है जिसे पाना है उस ही ध्याना है। बड़ी है आत्मा मुख शान्ति, मुक्ति और आनन्द। परम क्लेश है ताप है पीडा है चिन्ता है अज्ञाति है राग है बट है आपत्तियाँ हैं तो भी अनादि सत्कार वशात् जोक उहाँ में जाता है उधर ही श्रुता है उनमें ही रमता है उन्हें ही पकड़ता है भागता है और छोड़ता है। यह है परागमूत प्रतियोगों का परिणाम। क्यों यह हुआ और हो रहा है / स्वयं की पहिचान न होने के कारण। पहिचान की बात छोड़िय विपरीत प्रतिभास हो रहा है इस। निज का पर और पर को स्व मान कर बुद्धि में अध्यास कर दिया है। तत्त्वित् ज्ञान बन बिना ध्यानी तपस्वी नहीं बन सकता है। विधोग की तत्त्वित् द्वय बिना सयागी को भिन्न भिन्न करना नहीं आ सकता और मिश्रित पदार्थों को सयथा भिन्न विषय बिना उनमें से किसी का भी सही आनन्द नहीं मिल सकता। परम पनी पान छनी पाकर भी उसे प्रयुक्त करने की कला जानना होगा। जानो समझा मानो जीर करो।

हे भव्यात्मन् आत्म तत्त्व की पहिचान कर। विनाप्य उगम श्रद्धान कर अर्थात् जानकर विश्वास कर। विश्वस्त पदार्थ में मन निस्त रमता है। चित्तरमण की चेष्टा ही चरित्र है। राग द्वय का परित्याग कर एकाग्र होना आत्मनुभव है। विषय बर्पाय आदि में उलझा मन आध्यात्मिक क्षण से धुन दूर है। ननिब जीवन में शान्ति लाना मानवता है। मनुष्य जीवन इसी लिए है कि अनादि सत्त्व छन आत्म स्वरूप को प्रकट

कर साक्षात्कार करो। शरीर में ही कम है कम प्रशंसा में ही आत्म प्रशंसा उत्पन्न होती है। एक में एक मिलते हैं। ससार रूपी क्षत्र में आत्मा रूपी बीज बोया है इसके पर्याय रूप चारों गतिधो स्वरूप पौधा में फले दुःख मुक्त मयी धान्य में शोक, तापादि बूझा करवा। रोग पीडादि कष्ट पत्थर मिटना स्वाभाविक है। किसान धर (से) में बीज बो देता है वे उपजते हैं उत्पन्न में फल लगने हैं पकते हैं उन्हें निकाला जाता है उनमें साथ ही कष्ट पत्थर मिट्टी गन्ध ध्वनि भी मिट जाती है। किन्तु विवेकी जन उन्ने शोध बीज कर स्वच्छ कर लेता है। यह है शुद्धाशुद्ध योग्यायोग्य विज्ञान। इसी प्रकार तुम्हें भी भ्रम विज्ञानी बनना चाहिए। पर सचित्त, अचित्त मिश्र रूप द्रव्यों में मिना हुआ अपना आत्म द्रव्य शुद्ध करना चाहिए। आत्म परिशोधन करना ही आत्म स्वच्छोपलब्धि है। हे प्रभो! आत्मन् तू स्व को पहिचान चेतना जाग्रत कर। शुद्ध ज्ञान चेतना ही तेरा स्वरूप है। कम चेतना और उमकल चेतना का परित्याग करो। ये दोनों चेतना तुममें भिन्न हैं। मात्र ज्ञान चेतना तेरा निजस्व है। अपने वस्तु छोड़ क्यों पर वस्तुओं में उलझ रहे हो। स्व पर के झगड़ों में फँसे रहने से आत्म स्वानन्द नहीं मिल सकता। हे माधो! साधना रत होकर यथाय साधुत्व को प्राप्त करो अन्यथा साधु होना व्यर्थ है।

भ्रम क्या है। विषय बुद्धि भ्रम है। विपरीत ज्ञान भ्रम है। ज्ञान का विकार भ्रम है। ज्ञान परिपुष्ट करो भ्रम स्वयं मिट जायेगा। कुछ नम्रों के आकार का लटका है ही तो रहती मात्र लिये सप। ज्ञान में यन् सप का अध्यास ही भ्रम है दूध में मट्ठा सीप में चाँदी कांच में रत्न शरीर में आत्मा का अध्यास हुआ यन् सब भ्रम है। भ्रम कुछ असंगत स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। अज्ञान ही भ्रम है मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व कम के उन्ने पूर्व ज्ञान की विवृत दशा ही है। अज्ञान में विषय या विभ्रम नहीं होता। अज्ञान मात्रा में ये दो भाव हैं अज्ञान में सती होता है। अज्ञान भाव का अभाव होता है। कदाचित्त ज्ञान में आत्मा का चरित्र गुण देख जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व और माहृ के कारण से ज्ञान अज्ञान सम्भव मिथ्यात्व रूप हो जाते हैं। यह है कम अविद्यता। नम परिणति का नाम ही विभाव है। विभाव में निज जीवन ससारवद्धक होता है। स्वभाव परिणति में होता है समाराभाव। समार के बलों से ऊपर उठने का उपाय ज्ञान है। जानी अपने में निरत रह कर निजानन्दानुभव निगमन रहता है। पर का चर्चा नहीं करता जो जिसका मानिक स्वामी नहीं होता वह उसके गुणाशुभ परिणाम फल को भोगता भी नहीं है। गुणाशुभ परिणामों से रहित दशा ही अपनी आत्म दशा है स्व परिणति है। आत्म शक्ति है। आत्मा का ज्ञान दृष्टा बना ही तो स्वभाव है। आप में आपने जाना आप में जाना है। अपने धन का स्वामित्व होने पर ही वह उसका भोग कर सकता है अन्यथा नहीं। आत्मा आत्मधन का पावे सभी उसे भोगे अध्यास नहीं।

विहार किया। करना ही पड़ता है। सबका विहार होता है जल विहार, नौका विहार, द्वे विहार, पर्व विहार गाड़ी विहार मोटर विहार आदि-आदि।

वृक्ष और और धृ त्रीज कच्चा पक्का आग्नि रूप हो सकते हैं ? वनाग्नि नहीं। यह यह सब एक दूसरे का सहयोग है। सबका भिन्न पदार्थ भी एक दूसरे के साधक बाधक हो सकते हैं तो क्या हमारे निज के एकाग्र रहने वाले अनन्त गुण एक दूसरे के सहायक बन अपना पूरा विकास नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं। सामञ्जस्य करने का प्रयास उद्योग आवश्यक है। बिना पुरुषार्थ सिद्धि नहीं मिल सकती है। पुरुषार्थ तो प्रत्येक आत्मा करता ही है करना पड़ता ही है कर रहा भी है परन्तु यह सच्चा पुरुषार्थ नहीं है। सही नहीं है। अनुकूल सत्यपुरुषार्थ करने पर अवश्य आत्मा की अनन्त शक्तियों का विकास हो सकता है। पूर्णता प्राप्त कर निज स्वरूपोत्पत्ति हो सकती है।

हे साधो ! ध्यान करा। ध्यानी बना। पर प्रथम ध्यान ध्यानी ध्येय (प्रथम) और उसका परिणाम फल समझने की चष्टा करो। ध्यान एकाग्रता है। एकाग्रता मन वचन और काय की करना है। चञ्चल मन का अप्रतिहत-अबाध गति को रोक कर किसी भी एक विषय में निस्पृही भाव में स्थिर कर रचना मनोनिग्रह है। इसी प्रकार वचन और काय की विविध विनियमों को रोक कर एक ही रूप में काय में सन्नत करना अथवा अशुभ वचन अशुभ काय चष्टाओं पर कब्जा करना वचन निरोध व काय निरोध है। जिस क्षण इन तीनों (योगों) की अनघक प्रवृत्तियाँ स्व जायेंगी पुण्याजन होगा। त्रिगुणियाँ होंगी। भाव राक्षेश छूट जायगा। समस्त शुभाशुभ अध्यवसाय जब शिथिल हो स्थग्निमत हो जायेंगे उस क्षण स्वयम्भूत ध्यान होने लगता। ध्येय बनो उसी पर दृष्टि धरो ध्यान सामग्रा ग्रहीत नहीं है स्थूल भी नहीं है जिसे पाना है उस ही ध्याना है। वहो है आत्मा गुण शक्ति मुक्ति और आनन्द। परम क्लेश है ताप है पीडा है चिन्ता है अशांति है रोग है कष्ट है आपत्तियाँ हैं तो भी अनानि सत्स्वर वशात् जीव उही में जाता है उधर ही शुकता है उनमें ही रमता है उन्हें ही पकड़ता है भागता है और छोड़ता है। यह है परागिभूत प्रक्रियाओं का परिणाम। क्यों यह हुआ और हो रहा है ? स्व पर की पहिचान न होने का कारण। पहिचान की बात छोड़िय विपरीत प्रतिभास हो रहा है इसमें। निज को पर और पर को स्व मार कर बुद्धि में अध्यास कर लिया है। तात्पर्य जाना बन बिना ध्यानी तपस्वी नहीं बन सकता है। विषय की तात्पर्य हुए बिना सयागी की भिन्न भिन्न करना नहीं हो सकता और मिश्रित पदार्थों को सधवा भिन्न बिय बिना उनमें से किसी का भी सहो आनन्द नहीं मिल सकता। परम पनी पान छोटी पावर भी उसे प्रयुक्त करने की कला जानना हागा। जाना समझा मानो और करो।

हे भग्यात्मन् आत्म तत्त्व की पहिचान कर। विनाय्य उसमें ध्यान कर अर्थात् जानकर विश्वास कर। विश्वास पदार्थ में मन निरत रमता है। विसरमन की चेष्टा ही चरित्र है। राग द्वेष का परिणाम कर एकाग्र जाना जातानुभव है। विषय बयाप आग्नि में उसका मन आत्मस्थित शून्य में वन्दन दूर है। ननिज जीवन में शक्ति माना मानवता है। मनुष्य जीवन इसी लिए है कि अन्तिम में प्रत्यक्ष आत्म स्वरूप को प्रकट

बद साधारण बनो। शरीर में जो कर्म है वही प्रभुओं में ही आत्म प्रपन्न उत्पन्न है। एक में एक मिले है। समान वही शरीर में आत्म वही बीज बोया है। इसके पर्याप्त रूप चारों मन्त्रों स्वरूप पीछों में वन दुःख गुण मयी धाम्य में शोक, तापदि दूख का ब्रह्मा रोग पीडादि बहुरूप परपर मिलना स्वाभाविक है। विज्ञान शक्त (वेग) में बीज को देता है वे उत्पन्न हैं उत्पन्न में वन लगते हैं एकते हैं उन्हें निवास आता है उनसे साथ ही बहुरूप परपर मिली यानु धन 'द' भी मिथ हा ही जाती है किन्तु विवेकी जन उन्हें शोध कीन कर स्वच्छ कर लेता है। यह है शुद्धाशुद्ध धाम्यधाम्य विज्ञान। इसी प्रकार मुहूर्त भी भक्त विज्ञानी बनना चाहिए। पर लक्षित अधित मिथ रूप द्रव्यों में धिया दूख अवस्था आत्म द्रव्य शुद्ध करना चाहिए। आत्म परिकीर्णन करना ही आत्म स्वभावोपस्थित है। हे प्रभो! आत्मरूप नू रन को पहिचान केनना आप्त कर। शुद्ध ज्ञान केनना ही तेरा स्वका है। कम केनना और कमरन केनना का परिहारा करो। ये दोनों धनना लगे भिन्न हैं। मात्र ज्ञान धनना तेरा निराल है। अपनी वस्तु लोह क्यों पर वस्तुओं में उत्पन्न रहे हो। स्व पर व शक्तों में वसे रहने से आत्म स्वभाव नही मिल सकता। हे गाथा 'साधना रत हाकर गद्यार्थ साधुत्व को प्राप्त करो अवस्था साधु होता अन्य है।

भ्रम क्या है। विषय वृद्धि भ्रम है। विपरीत ज्ञान भ्रम है। ज्ञान का विचार भ्रम है। ज्ञान परिकृत कर भ्रम स्वयं मिट जायेगा। कुछ समझे आकार का लक्षण है है तो रहती मान निम्न शय। ज्ञान में यह शय का अध्यात ही भ्रम है दूध में घट्टा छीप में धीनी बाँध में रत शरीर में आमा का अध्यात हाना यह सब भ्रम है। भ्रम कुछ अलग स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। अपना ही भ्रम है निष्कारण है। मिथ्यात्व कर्म के उत्पन्न पूर्वक ज्ञान की विवृत दशा ही है। ज्ञान ज्ञान में विषय या विभ्रम नहीं होता। अल्प मात्रा में र ते हुए भाग्य अल्प मात्रा ही होता है। अज्ञान भाव का समाव होता है। वषायच्छन्न होने से आत्मा का अग्नि गुण दृक् जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व और मोह व कारण में ज्ञान अज्ञान सम्यक्त्व मिथ्यात्व रूप हो जाते हैं। यह है कम वविषयता। इस परिणति का नाम ही विभाव है। विभाव में निम्न जीवन ससागवद्धक होता है। स्वभाव परिणति में होता है संसारभाव। समार के वष्टों से ऊपर उठने का उपाय ज्ञान है। जानी अपर में निरत रह कर निरालानुभव निगमन रहता है। पर का कर्ता नही बनता जा जिसका मानिक स्वामी न। होता वह उसके शुभाशुभ परिणाम जन का भोगता भी नहीं है। शुभाशुभ परिणामों से रहित दशा ही अपनी आत्म दशा है स्व परिणति है। आत्म शक्ति है। आत्मा का जाता दृष्टा पना ही तो स्वभाव है। आप में आपका जाना आवे में जाना है। अपने धन का स्वामित्व होने पर ही वह उसका भोग कर सकता है अवस्था नहीं। आत्मा आत्मधन का पावे सभी उसे भागे जयपा नहीं।

विहार किया। करना ही पड़ता है। सत्य विहार होता है जल विहार तोषा विहार ट्रेन विहार, पैदल विहार पाड़ी विहार, माटर विहार आदि-आदि।

वृत्त और और वृत्त जीज कच्चा पक्का आग्नि रूप हो सकते हैं ? क्या-पि नहीं । यह यह सब एक दूसरे का सहयोग है । सद्यथा मित्र पत्न्या भी एक दूसरे के साधक बाधक हो सकते हैं तो क्या हमारे निज के एकाग्र्य रत्न बाल अनन्त गुण एक दूसरे के सहायक बन अपना पूण विकास भी कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं । सामञ्जस्य करने का प्रयत्न उद्योग आवश्यक है । बिना पुरुषार्थ मिट्टि नहीं मिल सकती है । पुरुषार्थ तो प्रत्येक आत्मा करता ही है करना पटना ही है कर रहा भी है परन्तु यह सच्चा पुरुषार्थ नहीं है । सही नहीं है । अनुकूल सत्यपुरुषार्थ परा पर अवश्य आत्मा की अनन्त शक्तियों का विकास हो सकता है पूणता प्राप्त कर निज स्वरूपोपलब्धि हो सकती है ।

हूँ साधो ! ध्यान करा । ध्यानी बना । पर प्रथम ध्यान ध्यानी ध्येय (प्रथम) और उभका परिणाम फल समझने की चेष्टा करा । ध्यान एकाग्रता है । एकाग्रता मन वचन और काय की करना है । चञ्चल मन का अप्रतिहत-अबाध गति को रोक कर किसी भी एक विषय में निस्पृही भाव में स्थिर कर रचना मनोनिग्रह है । इसी प्रकार वचन और काय भी विविध विप्रियाओं का रोक कर एक ही रूप में काय में सन्तान करना अथवा अशुभ वचन अशुभ काय चेटाओं पर ब्रजा करना वचन निराग्र व काय निरोध है । जिस क्षण इन तीनों (योगों) की अनयक प्रवृत्तियाँ रुक जायेंगी पुण्याजन होगा । त्रिगुणियाँ होंगी । भाव सकल छूट जायगा । समस्त शुभा शुभ अध्यवसाय जब निश्चित हो स्थगित हो जायेंगे उस क्षण स्वयमेव ध्यान होने लगता । ध्येय चुना उसी पर दृष्टि धरो ध्यान सामग्री प्रदत्त नहीं है स्मृत भी नहीं है जिसे पाना है उस ही ध्याना है । वही है आत्मा गुण ज्ञान मुक्ति और आनन्द । परम क्लेश है ताप है पीडा है चिन्ता है अज्ञान है राग है कष्ट है आपत्तियाँ हैं तो भी अनादि सत्कार वशात् जीव उही में जाना है उधर ही शुकता है उनमें ही रमता है उह ही पकड़ता है भागता है और छोड़ता है । यह है पराभिभूत प्रक्रियाओं का परिणाम । क्यों यह हुआ और हो रहा है ? स्वप्न की पहिचान न होना कारण । पहिचान की बात छोड़िय विपरीत प्रतिभा हो रहा है हम । निज को पर और पर को स्व मान कर मुट्ठी में अन्धारा कर लिया है । तपस्वि ज्ञाना बन बिना ध्यानी तपस्वी नहीं बन सकता है । विषय की तात्विद् रूप बिना सदायी को भिन्न भिन्न करना नहीं आ सकता और मिथिन पदार्थों का सद्यथा भिन्न क्रिय बिना उनमें से किसी का भी सही आनन्द नहीं मिल सकता । परम पनी ज्ञान छोटी पाकर भी उस प्रयुक्त करने की कला जानना होगा । जाना समझा मानो और करो ।

हे भग्यात्मन् आत्म तत्त्व की पहिचान कर । विनाश्य उगम ध्यान कर अर्थात् जानकर विश्वास कर । विश्वस्त पत्न्या में तन निम रमता है । विस्तरण की चेष्टा ही शक्ति है । राग द्वेष का परिणाम कर एकाग्रता आतानुभव है । विषय कर्पाय आग्नि में उभसा बन आग्नात्मिक शक्त में दहन दूर है । अन्ध जीवन में ज्ञान ज्ञान मानवता है । मनुष्य जीवन इसी लिए है कि अनाग्नि में दहन आत्म स्वरूप को प्रकाश

कर सागराकार करो। शरीर में जो कम है कम प्रशो म ही आत्म प्रज्ञ उत्पन्न है। तब में एक मिले हैं। ससार रूपी क्षत्र में आत्मा रूपी बीज बोया है इसके पर्वण रूप चारों गतियों स्वरूप पौधों में फल दुःख सुख मयी धार्य में शोक, तापदि दुःख कचरा राग दीहादि ककड पत्थर मित्रता स्वाभाविक है। किसान क्षत्र (क्षेत्र) में बीज बो देता है वे उपजते हैं उत्पन्न में फल लगने हैं पकत हैं उन्हें निकाला जाता है उनके साथ ही ककड पत्थर मिट्टी धान धानादि भी मिश्र हो ही जाती है किन्तु विवेकी जन उन्हें शोध बीन कर स्वच्छ कर लेता है। यह है शुद्धाशुद्ध योग्यायोग्य विज्ञान। इसी प्रकार तुम्हें भी भ्रम विज्ञानी बनना चाहिए। पर सचित्त, अचित्त मिश्र रूप द्रव्यों में मिला हुआ अपना आत्म द्रव्य शुद्ध करना चाहिए। आत्म परिष्कायन करना ही ज्ञान स्वरूपोपलब्धि है। हे प्रभो! आत्मत्वं तू स्व को पहिचान चेतना प्राप्त कर। शुद्ध ज्ञान चेतना ही तेरा स्वरूप है। कम चेतना और कमजोर चेतना का परित्याग करो। ये दोनों चेतना तुममें भिन्न हैं। मात्र ज्ञान चेतना तेरा निजत्व है। अपनी वस्तु छोड़ क्यों पर वस्तुओं में उलझ रहे हो। स्व पर क झगड़ो में फसे रहने से आत्म स्वानुभूति नहीं मिल सकती। हे गाथा! साधना मत हाकर यथायथा साधुत्व की प्राप्ति करो अन्यथा साधु होना व्यर्थ है।

भ्रम क्या है। विषय बुद्धि भ्रम है। विपरीत ज्ञान भ्रम है। ज्ञान का विकार भ्रम है। ज्ञान परिष्कृत करो भ्रम स्वयं मिट जायेगा। कुछ नस्वे आकार का लटका है है तो रस्सी मान लिया सप। ज्ञान में यह सप का अध्यास ही भ्रम है दूध में मट्ठा सीप में चाँनी बाँच में रत शरीर में आत्मा का अध्ययन होना यह सब भ्रम है। भ्रम कुछ असंगत स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। अज्ञान ही भ्रम है मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व कम के उत्पन्न पूर्वक ज्ञान की विकृत दशा ही है। अल्प ज्ञान में विषय या विभ्रम नहीं होता। अल्प मात्रा में रहने हुए भी वह ज्ञान में सही होता है। अज्ञान भाव का अभाव होता है। ब्याधच्छन् होने में आत्मा का चरित्र गुण डक जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व और मोह के कारण में ज्ञान अज्ञान सम्भव मिथ्यात्व रूप हो जाता है। यह है कम बहिष्करण। इस परिणति का नाम ही विभाव है। विभाव में निम्न जीवन ससारबद्ध होता है। स्वभाव परिणति में होता है समाराभाव। ससार के कष्टों से ऊपर उठने का उपाय ज्ञान है। जानो अपने में निरत रह कर निजानन्दानुभव निगमन रहता है। पर था कर्ता नहीं था जो जिसका मानिक स्वाधी नहीं होता वह उसके शुभाशुभ परिणाम फल की भागता भी नहीं है। शुभाशुभ परिणामों से रहित ज्ञान ही अपनी आत्म दशा है स्व परिणति है। आत्म शक्ति है। आत्मा का ज्ञाता दृष्टा पना ही तो स्वभाव है। आप में आपकी पाना आपे में जाना है। अपने धन का स्वामित्व होने पर ही वह उसका भोग कर सकता है अन्यथा नहीं। आत्मा आत्मधन का पावे सभी उसे भोग अन्यथा नहीं।

बिहार किया। करना ही पड़ता है। मक्का बिहार होता है जल बिहार नौका बिहार ट्रेन बिहार, पैदल बिहार गाड़ी बिहार मोटर बिहार आदि-आदि।

वा नाश करेगा और निज को प्रकट करेगा, स्वयं ही करेगा, स्वयं ही स्व स्वभाव में आयेगा। एक बार जाने के अनन्तर पुनः विकृत भी नहीं होगा, अनन्त बात ठक स्व स्वभाव में ही बना रहेगा। उस अवस्था में भी बाह्य कारण सब ज्यों के त्यों बने रहेंगे, उपस्थित होंगे किन्तु उसका तनिक भी कुछ बिगाड़ नष्ट कर सकेंगे क्योंकि वह स्वयं ही इनकी घुतता से सावधान रहेगा, इनके बारे में नहीं लयेगा। कारण कि पर द्रव्यों की कारी करतूतों से वह पूर्ण भिन्न है वम अब उनका पाठा टूटा मान रहेगा। कर्त्ता या भोक्ता नहीं। पर्याय बुद्धि विकार है वह नष्ट हुई विकार समान हो गये। अब स्वयं वह अपने ही में समर्थ है। हे साधो ! इसी दशा में जाने का प्रयास करो। इसी अवस्था का अनुशीलन करो। इसका सबशेष उपाय है आरम तिष्ठता। अपने में अपना सबस्व समझो और भानो, यहीं जाओ और रहो। निश्चय नय से विचार करो पर स्पष्ट प्रतीति होती है कि जीव (गुढारमा) व्यवहार से भी पर द्रव्य का कर्त्ता नहीं है। क्योंकि व्यवहार में भी पर्याय बुद्धि जीव के योग और उपयोग कर्त्ता है। दोन मिश्रित उपयोग जीव का निज स्वभाव ही नहीं है फिर भला किस प्रकार वह कर्त्ता हो सकता है वह तो मान शायक है। जाता टूटा मग्न से मुक्त है क्योंकि वह कर्त्ता नहीं है। स्पष्ट है जानी अपने ज्ञान भाव का ही कर्त्ता है अज्ञानी अज्ञान का। पर भाव परिणति को मिटाने में ज्ञान ही समर्थ है। जहाँ में विज्ञान हुआ कि स्व में त और पर में पर ही प्रतिभासित होने लगता है। परस्व बुद्धि नष्ट होना ही स्व स्वभाव की उपलब्धि है। आरमा जिस क्षण आरम भाव में विचार करेगा, तब पर परिणमन स्वयं छूट जायेगा तदनुसार स्वानुभव में तल्लीन आरमा अपने ही में विरत करने लगता। आरम का स्वभाव ही शान्त एकाग्र अविषम है निर्विकार है। पर सयोग से विपरीत किया हो रही है। सयोगाभावे में विपरीतता नष्ट हो जायेगी। स्वभावानुभूति जाग्रत हो जायेगी। आरमान में निमग्न वह जानी आरमा स्वयं ही सबकी लगानेगा। अपने ही में आ जायेगा।

विषय वृत्ति का सरल उपाय है उस ओर से उपयोग बन्त देना। रात्रि में नींद चाहें भोग करना-नाम सोचन करना आदि उभे स्मरणों का दीर्घये, त्रिभुवन में लू रमणा चाहता है वही तो तेरा जन्म स्थान है। फिर यह कनिष्ठ से ही प्रकृत स्वभाव है क्यों तू कुल की प्रति इत्यम मातापितृ होता है। क्या तेरे जीने मुख को यह सोचनीय होगा ? नीच कामी जनों का कार्य क्या तुझ जैसे विद्वे की समर्थ है। इत्यम वरा ही क्या है ? रात्रि की सोचनीयता शान्त विचारों से भ्रम जन्मना जन्मना बनें न कर बनें बन रहा है। यह अन्त में आराम-धर्म ही तो हो जाता है। विषयान्तर अन्त से भी अत्रिष्ट अन्त है। विषयान्तर के विचार परित्याग बुद्धिमान् स्वभाव का उपाय तू स्वयं देख पाता हो जाय है। हृषीकेश भारी कथा विद्वता का नरम भाव पराधीन है इत्यम बुद्धि करती है। एक ही पराय से एक स्वयं ही और दूसरे स्वयं ही कर उपाय के समान ही दिया कर दो।

विद्य होना है । एक क्षण में होना है तो दूसरे क्षण रोग है । यह सब है क्या ? यह मात्र उपयोग का योगायोग प्रयोग है । उपयोग के अनुरूप योगों की परिणति होती है । ये दोनों ही विद्यारी हैं विचार परिणाम हैं । आरम्भ के तो हैं नहीं फिर इनके बारे क्यों लगना ? इनके साथ-साथ क्यों मटकना । आरम्भ स्वयं से रहित है । जिसकी ओ भोज ही नहीं उसका उमसे प्रयोजन ही क्या है ? फिर उसने उत्पन्न कुछ कुछ ही उसको क्या हो सकते हैं ? कुछ नहीं वह केवल छाति है । यह जिस क्षण निश्चय कर सो उपयोग अवश्यमेव बदल जायेगा । भोजन करना पड़ता है । करना पड़ेगा । कारण बदलीय कर्म का उदय भावा है ये छाती है आहार संज्ञा का उदय है आनुसत्ता हुई भूख की वेदना तीव्रतर होने लगी । बीजांतराज का उदय भी साथ में आ गया । अब क्या दिया जाय । सहन नहीं हो सक्ता वह दुःख का दुःख । बत, दम अस्वस्थ के बग ही भोजन करना ही पड़ता है । साथ है आनुसत्ता का समय करना मात्र यही सदन है तो अर्थात् नहीं होगा । अमर्य भक्षण न कर सकेगा । हे आरम्भ विचार करो । दुःख की तृप्ति करना है तो योग्य शुद्ध निर्वोय स्वभाव से उनमग्न भोजन करो, मीन मेघ मनु मग्नो । उसे पाने का पूर्व संस्कार मत करो उसमें तुम्हारा मत बढ़ने दो । मिलने का बाद पुन पुन उसका स्मरण मत करो । स्पष्ट है साथ जाने का क्यों बनते हो । खाना पड़ा । खा लिया । पुन आवश्यकता पड़गी तो देखा जायेगा । उस समय जो कुछ अना-तता सर्पात् कृपा-गुणा शुद्ध विधिवन् मिलेगा । पा लिया जायेगा । पहले ही से उसका विचार करना उसके लिए जाना उपाय जुटाना परस्पर तनातनी करना किसी से पाचना करना अपना समुद्र समुद्र पार्थ ही समुद्र रीति से मिलना इत्यादि विचलों से उपयुक्त योग और उपयोग नहीं करना चाहिए । भोजन से आहार करो । आहार के पूर्व या पश्चात् किसी प्रकार भी भोजन सम्बन्धी चर्चा वार्ता या सफल न करो । विज्ञा इति य रमना को जीने का यह सरस उपाय है । रस मीरन विरस अन्त्या कदा सदा आदि का मन से भी विरस्य मत जाने दो । देने वाले के प्रति अनिष्ट भी रोद रोय लोप प्रसंगोय हृदय विद्या प्रीति गुणा या रस मेघ रूप भाव मन वचन काय न मन करा । सर्वत्र मध्यस्थ भाव बनाओ । उसे त बुद्धि करो । अनात्म भाव निष्पत्ता । यह भाजन या भाजन करना नेत्र स्वभाव तो है नहीं न तेरा इससे काँ लगाव है । सज्जन्त पत्र भा तेरा नहीं है फिर भला क्या शुभ क्या अशुभ, क्या अच्छा और क्या बुरा । मने तुरे की कल्पना हा आत्म स्वभाव से भिन्न है । गद्य गद्य रूप आनि विषय स्वयं जड़ हैं निष्क्रिय हैं । कोई भी तुल्य भावर घुसने नहीं कोई तुल्य वस्तु बुलाने नहीं । न कोई तेरा आनन्द करना है न निरस्कार । उनका परिणामन उनम होगा है और तेरा तुल्य न तू तुल्य में है और वे उनमें । न तू उनका है न वे तेरे फिर उनका अच्छा बुरा तेरे अच्छ बुरे म नमा प्रयोजनीय हैं । ह माघो । चारों सजाओ से अपने को भिन्न सभगो । ये सभया तुल्यसे भिन्न हैं । तू इन रूप होना नहीं हो सक्ता नहीं और न ही ये तुल्य रूप हो सकते हैं फिर भला इन्हे प्रवृत्ति निवृत्ति कर क्या स्वयं अपना भवा बुरा सोचना

विचारता है क्यों विविध कल्पना जालों में फँस कर दुःख उठाता है। सभी इन्हीं जड़ हैं। यों तिर हैं पुण्ड्र के परिणाम हैं जो त्रिसमय होता है वह उमी स्वभाव रूप रहता है। चतन से निमित्त बनना, जड़ से निमित्त जड़। अस्तु आत्मा इन्हीं, रचना शून्य है। अतः अनीन्द्रिय भी है। भला राग, रस, गंध वगैरे उमके लिए प्रयोजनीय बने हो सकते हैं ? नहीं हो सकते।

सिद्ध का अर्थ है तयार मया तथा। आत्मा अनानि से अशुद्ध है, अनिष्ट है उसका निज स्वभाव में प्राप्त होना सिद्ध है मुक्त है। यह स्वस्वरूप निज में ही निज के द्वारा प्राप्त होता है। वह स्वस्वरूप एक है सब से भिन्न है शांत है अविचल है। उसे प्राप्त करने का साधन भी तन्मूकूल एकांत निरापन्न शांत, और अविद्वत्-पवित्र होना अनिवार्य है। सिद्धावस्था प्राप्त जीवात्मा परमात्म ज्ञान रूप जहाँ परिणामी वह स्थान अथाप्यम नीरव शांत, उज्ज्वल शुद्ध निविघ्न और एकान्त शांत होना ही चाहिए। यह स्थान परम पवित्र है नीरव है आश्चर्यक है मनोहारी है। ध्यान की एकाग्रता का हेतु है। निर्मल भावों का कारण है। परमोपलब्ध शेष का वगैरे पवित्रात्माओं के परम पवित्र कृत्यों से अनुस्यूत है। जीवन्त संशय बाह्य की भाँति हमारे अंत कारण को प्रभावित करता है। हमारी समुत्पन्न अनुभूति को जाग्रत करता है। प्रच्छन्न उपायान को उद्बोधित कर अशुभ भावों का नाश शुभ भावों का प्रादुर्भाव और शुद्ध भावों की प्रेरणा देता है। शांत मन शांत भावों को जग्य देता है। स्वस्थ मन स्वस्थ विचारों का निर्माण करता है। यही वे जिन विभिन्न एकाग्र मन के मन्त्र हैं मोहक प्रयोग हैं। एवं विलक्षण जादू के सहज हैं। अनेक प्रकार सिद्ध स्वरूप का पोषक हैं। शुद्ध बुद्ध स्वभाव का कर्त्ता हैं। हे आत्मन् इन वाक्य कर्त्तों से वाक्यना चुन लो भर लो सज लो।

प्रतिमा जिन का प्रतिबिम्ब है। जिनेश्वर की छाया है। जिन रूप स्थिति की आकृति और उसमें विद्यमान शुद्धात्मा की आत्मा है। पात्र जिन सयोगी हैं—अयोगी हुए और तब परमात्मा भी हो चुके। यह प्रत्यक्ष आकृति सयोगी जिन का स्मरण कराती है निश्चय विषय अयोगी जिनका और वीक्षण मद्रा में निहित शक्ति सिद्ध स्वरूप का प्रज्ञापन विनायक कर रही है। हे भस्मात्मन् हम छवि के समान स्थिर होकर एकाग्रता से सिद्धारी एक विल अवलोकन करो निष्ठापूर्वक उमी में तल्लीन हो जाओ हममें और तुममें कोई अन्तर प्रतिभासित नहीं होगा, कोई भेद सिद्धाई नहीं देगा। आत्मा ही परमात्मा है। वह प्रत्यक्ष जीवात्मा की समान है। भगवान की आत्मा भी शुद्ध दर्शन ज्ञान चेतना सम्पन्न असंख्य प्रेमी है और सुन्दरी भी तन्मूक ज्ञान-दर्शन चेतना मुक्त असंख्य प्रेमी ही है। मात्र भक्त अन्धकार का अन्तर है। हमें मात्र इतना ही करना है कि ये जिन जिन प्रकार काय कर इस अक्षय्य को प्राप्त कर सके उनी बाधों को कर हम भी ऐसे बनें। प्रभु का चिह्न एक स्थान स्थित वह रहा है हे भस्मो जगद्गुरु आपका स्वभाव है। अब तक जो

पहुँच सकते। हम अपना कर्तव्य मुट्ठ बनाना चाहिए। जो करना है उसी में सम्पूर्ण शक्ति लगा देना होगा द्रव्य, क्षत्र, काल भाव मन वचन काय आदि एकाग्र करना होगा। प्रारम्भ काय में सलग्न होना होगा सभी कार्य निष्पन्न हो सकता है। जो बीर आगत कठिनाइयों की परवाह न कर अपने पथ पर बढ़ता ही जाता है, निभय होकर वही लक्ष्य सिद्धि करने में समय होता है। उसके समग्र आपत्तियाँ भ्रक जाती हैं कठिनाइयाँ पार हो जाती हैं सकट नत मस्तक हो जाने हैं। यह है बलिष्ठ पुरुषार्थ का उत्तम फल। हे आत्मन सकल पुरुषार्थो बनो। मन स्वस्थ निद्रा द हो जायेगा।

जन्मोत्सव मृत्यु मृतोत्सव है। परिवार लोग मनाते हैं। मृत्यु का स्वागत करते हैं। एक ओर मृत्यु को गाली दी जाती है उससे भयभीत होते हैं और दूसरी ओर जोर जोर से उत्सव मनाते हैं। क्या विचित्र विडम्बना है जो यह। वास्तव में यह विडम्बना नहीं अज्ञान का प्रसार है। भय बुद्धि का प्रतीक है। बच्चा बड़ा हो रहा है—१ साल २ साल बड़ा हो गया इत्यादि विकल्प किये जाते हैं किंतु ये सब असत्य हैं। परंतु लोक व्यवहार इन्हें सत्य का प्रतीक मानता है। व्यवहार धर्म ही ऐसा है। इसमें नाना विषमताएँ समता की प्रतिमासित होती हैं। इन्हीं प्रतिभासों का पुञ्ज सत्कार बन जाता है। घर मेरा है धन मेरा है घरनी मेरी है सम्पत्ति सम्पत्ति अमरक तमूक सब मेरा है। कहता है और देखने-सूँघने बड़ने वाला न जाने कहाँ नौ को ग्यारह हो जाता है और सब कुछ जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। दूसरा व्यक्ति तीसरा चौथा अनेको इस कौतुक को देखने हैं उनकी निगाहों में बरने हैं उम्र बेदमान साबित करते हैं झूठा सिद्ध करने हैं जोर स्वयं उसी निगाह में बेधड़क निभय निरंकुश बड़ने चले जाते हैं। भला इसमें बड़कर बद्धि विरपय क्या दुःख ? मिथ्यात्व क्या होगा ? कुछ नहीं अज्ञानी का यही स्वरूप है यही लगण है। जो हमें समय से बड़ी आती है। जानी उद्युक्त उपान्तो में निरलस भाव नहीं करना अनसत्य नहीं मानना। वे आप पाये तो हँसित नहीं होगा रह गया या घा घये तो विराक्त नहीं होता दुःखी नहीं होता। वह तो मान आने को उनका पाता और हट्टा मान रहा है। तत्काल गुणानुबन्धियों का कर्ता भोला नहा। इसी में सुख है। यही मेरा विद्यान का फल है।

पर विद्या कभी मनु करो। बनावू मानी बान मनवाने की भट्टा कभी नहीं करना चाहिए। दूसर का निरस्तार कर अपनी प्रतिष्ठा की चाह नहीं करो। अपने आधीन के साथ कृपा करो। कृपा कृपा दुःख का कारण है। पर निगाह स्व विद्या का मूल कारण है। परामर्श बेगोरासादक होता है। हे उ विद्या बनानो। सहयोग बन। सहयोगिता उन्नति का सोपान है। आत्मोन्नति के लिए प्रयत्न का बद्धि परमावश्यक है। पावन मन के लिए साधनभाव आवश्यक है। मन का निर सन्तान और मन के लिए स्वयं स्वयं के बाने समय और संयम के लिए दया

भाव परमावश्यक है । दया परमोत्तम है । दयालु का जीवन आदर्श बन सकता है । नैतिक जीवन बिना तो कुछ होता है । आध्यात्मिक उद्योग सौरमात्र होकर प्रसरित होती है । तनखो की तरफ साधक की साधना भक्त की भक्ति और उपासक की उपासना दया से ही संभव होती है । शत्रु के लिये तब जब निधम मर्यादा पत्र प्रदान करते हैं । आत्म साधना को सकल दया ही से हो गयी है । दया धर्म की जड़ है । धर्म आत्मा का स्वभाव । दयालु कभी किसी का विरोध नहीं कर सकता, परामर्श नहीं कर सकता । मते में एक दया से अन्तःकरण युक्तों की जननी है । आगम भी एक अहिंसा महाग्रन्थ का प्रधानता देता है और उसी के आधार पर हमारे यही सामाजिक प्रवृत्ति दी गई है । प्रथम आत्मीयता और अग्रिम महावीर भगवान का छोड़कर सभी भगवानों ने महाग्रन्थों का ही उपदेश दिया है । अहिंसा परमाग्रम । यही मात्र आत्मा को परमात्मा बनाता है । हे आत्मन् दयायुग प्रकट करो । यही परम धर्म है ।

आत्म आत्मा का गुण है । यह आत्मा में ही है । आत्मा के द्वारा ही उपसर्ग है । आत्मा आत्म का आधार है । आत्म स्वयं ही तो आत्मा है । बाह्य आत्म की धारक है । बाह्य उत्पत्ति है अन्तः भी मूरी भी । योग्य भी अयोग्य भी । यह योग्य अयोग्य शुभ अशुभ की कल्पना हमारे व्यावहारिक जीवन की विविक्षा है । इसमें परमात्मा का कोई मद्भाग नहीं है । वास्तव में बाह्य मात्र आत्म स्वभाव का प्रतिफल है । आत्मा इच्छा रहित है । आत्मा में कोई इच्छा नहीं । इच्छा उत्पत्ति है—बाह्य जमी पूरा हुई या हृदय नहीं हुई तो विषाद होता है । परन्तु हृदय और विषाद आत्मा का स्वभाव नहीं है । दाता ही विचार है । विचार स्वभाव नहीं होता । आत्मा बाह्य से ऊपर है । हे आत्मन् ज्ञान पूर्ण होत वर जो हृदय या आत्म होता है वह भी वास्तविक है क्या ? नहीं मर्यादा नहीं क्योंकि वह शक्ति ही नहीं । माया और मया । वस्तु स्वभाव ऐसा नहीं होता । धर्म कभी भी धर्म से पृथक् नहीं हो सकता । अकारण होता है । अन्तु आत्म मन्त्र आत्मा का अपना वह है जो प्राप्ति होकर मिटता नहीं मिट सकता नहीं । उसी को जाने का प्रयत्न करो उस हो पाओ । यही जीवन का सार है ।

एकत्व में सुख है शान्ति है । परन्तु यह एकत्व है क्या ? इसे समझा । पर वस्तु के साथ मिश्रण जाना एकत्व नहीं है । वह तो स्व स्वभाव व्युत्पत्ति है । हृदय और चूना दो मिल मिश्र है मिश्र दो एक हो गये । यह एकत्व क्या सही एकत्व है ? अरे चूना और हृदय दोनों ही स्वभाव भ्रष्ट हो गये न सकती रही न पीठिया यह तो सामान्य हो गई । आत्मा इच्छा है (राग-द्वेष) ज्ञानावरणान् अन्तः कर्म है । दोनों मिल गये । एक हो गए । क्या यह एकत्व हुआ ? नहीं । यह तो सरासरी आत्मा विलक्षण हो गया । विलक्षण किन्तु विज्ञानावस्था का समस्त कार्य व्यापार भी विचारों ही होने लगा । यह एकत्व कहा है । फिर क्या ? यह जिससे किसी प्रकार का विचार

मन न हो। कोई भी विचार न उत्पन्न हो शुद्ध एक दशा ही बनी रहे। एक रूप ही रहे। किसी भी प्रकार का विपरीत भाव जाग्रत नहीं हो। शुद्ध आत्मा की उपस्थिति ही एकात्म्य है। शुद्धावस्था का पाना ही परमात्म वत् है। परमात्म सदा ही मुक्तावस्था है। यही आत्मा की सिद्धि का स्वभाव है। हे साधो ! आत्मा को पाने का सतत प्रयत्न करो। पर का लेश भी न रहे। यह परवत् भावना मोह का फल है। पर रूपता का बीज मोह है। मोह राग और द्वेषोत्पादक है। यही सत्कार है। सत्कारोच्छ के लिए इन परिणामों का त्याग करो। ये भाव एकात्म्य के घातक हैं। इनसे अपना रक्षण करो।

जिन दशन पाप नाशक है। पुण्य बद्धक है। दशन से मन पावन होता है। वचन पवित्र होते हैं। शरीर स्थिर और साधव गुण मुक्त होता है। बसे और बसो हो जाता है यह एक अमृत और अनोखा ही प्रभाव है। सोचने सोचते बुद्धि चकरा सी जाती है। बिना तुलना के सा प्रज्ञा का प्रयोग करें तो कठिनाई नहीं होगी। बड़ी आसानी से समझ में आ जायेगा यह प्रभाव। देखिये सेरोज जी क्षेत्र का भगवान शक्तिनाथ स्वामी और अनेक अन्य सौम्य बीतराग शांत भक्त भूमियाँ कितनी असीमिक माहात्म्य। ओंठों की मुस्कान निर्विकार भाव का चोतन करती है तो नागाग्र दृष्टि एकाग्र चित्तवृत्ति का उपदेश दे रही है। अलक नेत्र इषट् उमीलित अंतरङ्ग दृष्टि एवमात्र आत्मार्जन का पाठ पढ़ा रही है। सौम्य छवि निमल अनन्त परोपकार दयाभाव का प्रकाशन कर रही है। पर पदाप अपना नहीं यह निश्चल विग्रह बता रहा है। क्या करना है तुमने जग में जब परमाणु मात्र भी अपना नहीं तो फिर बताइये भला कही जाना आना उठना बचना कहना सुनना ही क्या है और क्यों है ? कुछ नहीं। आप भी इसी दशा को पा सकने हैं मेरे जैसे बनो। बस अपने में अपने को देखो। दोनों सम्बन्ध भुक्तार्थे इतकृत्य हो जाओ वह रही हैं। दोनों चरण आवागमन का चक्कर छोड़ दो यह बनसा रही है। जीवन जीने को है वह अमर है। बनना नहीं है। पर मेरे जैसा काम करो यह उत्तम अवस्था आरक्षी भी मिल जायेगी। मुसकं और आर में कोई अन्तर नहीं है। सब रूप एक है अन्तर से। बाहर की काँचनी हटा दो बस।

दैनिक व्यावहारिक जीवन का उन्माद विचारों की पवित्रता है। मन स्वस्थ रहने से विचार भी निमल होते हैं। मन की उग्रवला शरीर का स्वस्थ रहने और साधो का पवित्र होने पर निर्भर रहती है। चरित्र की उग्रवला मन वचन और काय की स्वस्थता पावना पर निर्भर रहती है। जीवन क्या है ? व्यवहारों का पुञ्ज ही तो जीवन है। जम अशुभ बुर शुभाशुभ हारे व्यवहार ही जीवन बीसा ही अच्छा या बुरा कहलाता है। आचार विचार ही वास्तव में जीवन है। आचार विचार का प्रज्ञान ही जीवन है और सम्मत्तावसे भी प्रज्ञा साध्य होने है। सम्मति दुष्ट दृष्टि भी सम्मत् बन जाता है। पुण्यद्वार में लीला घागा बना लेश के

पलक पर नहीं पहुँचता ? अवश्य ही पहुँच जाता है । महापुरुषों के समागम से कार्य मुक्ति होती है । आध्यात्मिक जीवन की उत्पत्ति के लिए प्रयोग मुक्ति ही परम अनेकित है । आत्मा मुक्त ब्रह्म है । अनादि से कर्म कानिमा तिल है । राग द्वेष विचार मनों के निष्ठ है । उनका परिशोधन करने पर ही मुक्त का प्राप्ति हो सकता है । इन विविध कर्म मल कर्मों के पूषण करने के लिए तब स्त्री बलि समपूर्वक जलाकर तपामो । पञ्चभक्ति विषयों की आहुति दो । ज्ञान की परिणाम में ब्रह्मो सवेय की पवन का महारा सो । बिना इससे आत्मशोधन नहीं हो सकता । ह आत्मन् गगन विषयों को भिन्न करो । एकाग्र मन उत्थान की कर्मो है । कर्माश्रय का निरोध योग निरोध से ही सम्भव है । अमुक से बंधो मुक्त से ऊपर उठने का प्रयास करो । ब्रह्म यही उत्तम मार्ग चारित्र्य है ।

धर्म का अर्थ है पथ कदम । कदम-कदम बढ़ाओ मज्जित पार हो जायेगी । एक-एक आत्म गुण प्रकाशित करत जाओ अनन्त गुण प्रकट हो ही जायेगे । अनन्त गुण हैं और अनन्त ही समय । प्रति समय अपने विकास का ध्यान रखो । दृष्टि में जमा ला कि पर भावों का उद्भव नहीं होने देंगे ज्यों-ज्यों पर भावों का अभाव होता जायेगा । स्व स्वभाव प्रकट होते जायेगे । आपे में आने जाओगे । प्रथम पर और स्व से सगोत्री दृष्ट कर मेरा वनमान स्वरूप है यह निश्चय करो पुनः छोड़ने का परिशोधन करो कि ये दो पदार्थ हैं क्या और विचार कैसे मिले हुए हैं ? राशि की पहिचान सही हो जाय तब आत्म से प्रजा स्त्री धनी का प्रयोग चालू कर दो । शून्य गत ऐसी बलाने जाना जैसा ही दाब लग बस एक दम से विभाग कर बातना यही चारित्र्य की क्रिया की पूर्ति हो जायेगी । आगे कुछ नहीं करना शेष होता । स्व और पर के मिश्रण का ही अमेसा है । इसी सयोग का सारा नाटक है ससार है । जो कुछ भी करो सोच लो जिस व्यवहार को हम दूसरे के प्रति करना चाहते हैं उसे हम अर्थ से अपने प्रति करना चाहते हैं कि नहीं । जो कुछ कहना है जो कुछ भी सोचना है सबका विचार करें कि क्या हमारे लिए कोई भी कहे या सोचे । यदि हम क्या नहीं चाहते तो हमें भी उस प्रकार का व्यवहार दूसरे के प्रति नहीं करता चाहिये । यह है हमारे विकास की कुञ्जी । यदि आप प्रयत्न रहता चाहते हैं तो आपका वनम्ब है आप सबको प्रसन्न रखने की चेष्टा करें । यदि ऐसा न कर सकें तो हमसे किसी का कष्ट न हो यह तो अवश्य ही करें ।

प्रति आत्मा का भूषण है । अत्रही जीवन धार है । वृत्त की शोभा पत्नी से यात्रिका का सौ दय पुरुषों से राधा की मनोरमता चन्द्र से तिन की सुपमा तिनकर से कन्दू की शोभा मणि से और गणि की शोभा बलय से दूधी प्रकार मानव जीवन की थी है समय । प्रतावरण से मानवता निश्चरती है । अत्रही मयमविहीन नर निगद्य कुमुदवन आदरणीय नहीं होता । आत्मा एक अलौकिक तत्व है । अनादि से निज तत्व की पहिचान नहीं हुई । विभाव रूप परिणमन करता आया है । पर

आरम्भ गुणों का सेनान करो। इसी में रमने की चेष्टा करो। आरम्भ परिग्रह का आशान प्रदान पर रूप है। पर तो गन्ता पर ही था है और रहेगा। उसने तुम्हारा क्या साध्य है? कुछ नहीं। स्व व्यापार निजाधीन है निज में है निज का है इसलिए सतत रहने वाला है। स्व व्यापार है देखना और जानना। कितना उत्तम मुख्य शान्त निराकुल निर्विकल्प है यह व्यवसाय। सबको देखो उसी रूप में जो जता है। सब कुछ जानो वही ही जो जैसा है। बस इनके आगे कुछ नहीं करना। यदि आगे बढ़े तो गढ़े में पड़े। दुष्ट में घिरे। फिर शांति कहाँ? गुप्त कहाँ? यह विकल्प ही तो दुष्ट है। विषय को देखो जानो पर रहो अपने में। उनमें मत घुसो मिलो यही है विवेक-स्व पर भेद विज्ञान। हे साधो! तुम अपने व्यापारी अपने ही व्यापार के हो। अर्थ को न कुछ देना है न अर्थ से सेना है। फिर क्या करना है? स्वयं ही स्वयं को व्यवहृत करो अपने ही में अपने को निवास प्रदान करो। स्वात्मस्य परिणति ही आत्मोत्थान का सोपान है। आत्मोपलब्धि जीवन का सार है। जीवन दान भगुर है। दानिक जीवन से अधाणिक साश्वत वस्तु पा लेना यह एक अलौकिक व्यवसाय है। अस्थिरता में ही स्थिरता पाना है। यह अलौकिक सिद्धांत ही भेद विज्ञान है। हे आत्मन् इसे ही पाने का प्रयत्न करो।

जीवन का वसात है त्याग। त्याग की कारियों में वराग्य के सुमन और वराग्य सुमनों में समय का सौरभ शोभित होता है। मध्यस्थ आत्म रूपी पराम पाना है तो समय में प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। समयी का जीवन निश्चरता है जैसे फिल्टर से जल तपाने से सुवर्ण और तरासने से हीरा आदि। सबत्र पोष्य का प्राधा य है। प्रजिया का शशिष्ठय है। आत्मशोधन में समयपूर्वक चारित्र ही पुद्गार्य है। बिना प्रयोग के समय का सार उपलब्ध नहीं हो सकता। तभी तो आचार्यों ने चारित्र धनु घन्मो कहा है। चारित्र से आत्मा का प्रदग्ग दशन होता है। आत्मा अवगत हाता है। अर्थात् चारित्र शुद्ध आत्म स्वरूप पोपलब्धि का साक्षात् कारण है। कारण का कार्य में आरोप किया देखा जाता है। यथा अ न र्थे प्राणा' अन्न ही प्राण है। अर्थात् प्राण धारण में प्रधान हेतु होने से अन्न ही को प्राण कह दिया जाता है इसी प्रकार चारित्र को भी घम कहा है। वास्तव में निश्चय चीतराग चारित्र तो आत्मा का स्वभाव ही है। आत्मा का अनन्य गुण है। आत्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं रहता। हे आत्मन् सराग चारित्र के बल से निमित्त से चीतराग चारित्र उत्पन्न करो। उत्पन्न तो है ही जो प्रकट करो बस। क्योंकि असत् का कभी उत्पाद नहीं हुआ करता। सत् का ही आविर्भाव और तिरोभाव होता है। आत्म स्वभाव में स्थिति ही चीतरागता है। शुभाशुभ कल्पना ही विकल्प है सराग पण्णिति है। अस्तु चीतराग भाव जाग्रत करो। उसके लिए बस व की बहार अपेक्षित है।

बोझिका की कुत्र से मन कूट उठता है और मन की चहक से आनन्द। परन्तु यह आनन्द पर निमित्त से हुआ। अब पर कारण के अभाव में नाश होना भी

अनिवार्य है। जो कुछ परापेक्षा से होता है वह नश्वर अवश्य होगा। वस्तु स्वभाव में परापेक्षा नहीं होती है इसलिए वह स्थायी होता है। जल स्वभाव से शीतल है अग्नि उष्ण जीव चेतन आदि। यहाँ शीतलता, उष्णता चेतनता में अग्न विषयी का सहाय्य नहीं है। स्वतः सिद्ध है इसलिए इन गुणों का कभी विनाश भी नहीं होता। पर द्रव्य संयोग से इनमें विकार अवश्य हो जाता है तथा अग्नि संयोग से जल उष्ण हो जाता है। शीत संयोग में अग्नि मन्द हो जाती है मिथ्यात्व अज्ञानान्तरिक कर्म संयोग से आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव से च्युत हो जाता है। किन्तु वह स्वभाव सदा मिट नहीं जाता। देखिये जल कितना ही उष्ण हो अग्नि पर पड़ा तो उसे बुझाता ही है। अग्नि कितनी भी मन्द हो दाह ही पदा करती है। यह विकारावस्था पर द्रव्य संयोग तक रहती है। संयोगी पृथक् हुआ कि स्व स्वभाव प्रकट हो ही जाता है। अस्तु स्वभाव का कभी नाश नहीं होता और न नवीन स्वभाव उत्पन्न ही होता है। स्वभाव का आविर्भाव तिरोभाव होता रहता है पर द्रव्य संयोग से यही है पर्याय नय का विषय। हे साधो ! अपने मूल स्वभाव को समझो। उसकी कुछ उल्टी में ही उसकी चहुँक बही है। पर यह सुनाई नहीं पड़ेगी जब तुम स्व पुष्पाय से समस्त पर विकल्पो का परिहार करोगे सम्पूर्ण संकल्पो का परित्याग करोगे यही स्वभावोपलब्धि है।

शुभाशुभ कर्मानुसार फल प्राप्त होता है। अग्न को उसमें कारण मानना सिद्धान्त के विरुद्ध है। स्वाभाविक चीज है। सरलता से अवगत भी होता है। जो पान खाता है उसका मुख ओठ सास होते हैं। जिसने खोपला खाया उसके काने और जिने खाही खा ली तो नीले होने हैं। खाही खाने या खाने वाले का मुख सास और पान भक्षण करने वाले का काला और खोपला खाने वाले का नीला नहीं हो सकता। स्पष्ट है जिसने जैसा किया उसने वसा ही फल पाया। इसी प्रकार जो जमा कम करता है तदनुसार उसे फल भी प्राप्त होता है। उसमें पर को निमित्त बनाकर उससे राग द्वेष कर आत रौद्रान्तरिक परिणाम करे तो यह अनान है विपरीत प्रक्रिया है जो मिथ्यात्व का पोषण करने वाली होगी। हे साधो ! स्वकृत कर्म के शुभ फल में अनुरक्त और अशुभ फल में अविचल रहो। इससे कर्म को परास्त होता ही पड़ेगा। नवीन कर्माश्रित नहीं होगा। अपने मुख दुःख का स्वयं ही जीव निर्माता है। निजाश्रित शुभाशुभ कर्मों का मात्र भुग्नान कर देता है को नया सेन देन नहीं करना है क्योंकि जिस विषय सुख की वृद्धि तक पाह करना आया है वह सदा स्थायी सुख नहीं है। वह तो नश्वर है। मुद्राभास है। मन्वा सुख तो वह है जिसके वां पुन दुःख नहीं आवे किन्तु ईश्वर विषय सुख के भोगने के कुछ क्षणोपरान्त ही त्रास व्यास पाह पाह देवी जाती है। भना वह सदा सुख बसे ही सकता है। फिर उसमें पर का तो को सम्बन्ध ही नहीं। हे आत्मन् सतत् निज भावों की धान बिन करो। अशुभ से बचो शुभ में प्रवेश करो और पुन

उनसे भी ऊपर उठने का प्रयास करो। यह मानव जन्म इसी परीक्षणार्थ प्राप्त है। इसमें ही आत्म कल्याण है। आत्म विश्वास अनेक बस पर ही होगा। आत्म स्वानन्द गुण का मूल है। आत्मोत्पत्ति गुण ही तो सच्चा गुण है यही विरह्यायी सतन रहने वाला है। विषय गुण अनेकों भोगे कभी स्वर्ग लोक में जाकर तो कभी अहमिन् लोक में पहुँच कर और कभी भोग भूमि के सुरम्प प्राण में उत्पन्न होकर। एक बार नहीं अनेकों बार यह उत्पन्न किया परन्तु देखो आज तक भी चाहें यों की र्यों है। व्यास तृष्णा बुद्धि नहीं मन भरा नहीं। क्यों ? बस यह गुण्यभाम है इमीनिह। व्यास मनी पानी पिया तो व्यास बुद्धिगी किन्तु गहरा भी शक्त पी लिया तो और अधिक बढ़ जायेगी। यही हेतु सत्त्व द्विष्टि जन्म भोगों की व्यापक है। इमीनिह गुण ही सच्चा गुण है क्योंकि यह निर्वाण है परायेना स रहित है अन्त और अन्तर्गत है। पूरा है। सब प्रकार परिपक्व है। हे साधो ! उसका साधन कम मत प्रसादन है। यह समता रस के द्वारा ही सम्भव है। साम्य भाव कम बलक विचार है। यही सामागिक और समाधि है। विश्वों का अभाव ही साम्यभाव है। नाश प्रकार के सत्त्व विरह्य पर निमित्त से ही होते हैं—पर में अहंकार ममकार मानने से ही होते हैं। अतः अहंकार ममकार का त्याग करो। बस यही आत्मगुण का मूल है।

सत्त्व स्वभाव और विभाव परिणति का सार है। ज्ञान दर्शन रूप परिणमन जीव का स्वभाव परिणाम है और राग द्वेष मोह आदि रूप विभाव परिणमन है। ये परिणत होते हैं—आने जाने रहते हैं। जाते जाते भी जो कुछ अदना अन्तर छोड़ जाने है उहें ही सत्त्व कहते हैं। ये सत्त्व रङ्ग गाढ़ और स्वाधी होन हैं। त्रिम प्रकार सात्वत रस रूप रस की सामीप्य पर भी त्रिणी त्रिणी हन्धीगी सात्त्विक रह जानी है वह बार बार प्रवर्तन करने पर भी नहीं निरुद्धनी। इसी प्रकार क्रोध मान माया लाम राग द्वेषादि विभाव प्रवर्तन साध्य होने पर भी उनके कम या दूर हो जाते पर भी आन्तरिक बाधना रह जानी है वह दुस्साध्य और अनि प्रवर्तन साध्य हो जानी है। द्विगी ने क्रोधादिभूत हो परस्पर रागद्वेष किया। द्विगी मध्यस्थ द्वारा सत्य सात्वत कर दिया गया। दानोपयोग का बाध बनाय प्रवर्तन समान हो गया किन्तु अन्तर में प्रविष्टोप भाव बना है तो यही सत्त्व वाचना है। इसका निरुद्धना दुस्साध्य है। प्रवर्तन करने में भी ये शुभाशय अन्तर्गत या दुरे सत्त्व बनने रहते हैं। और राग माना मान अवस्था में सत्त्व निहार बन कर लाना अन्तर्गत की माना है बल उतना है। यदि मानना स्व स्वाध्याय भाव रह जानेवा। यह वाचना मग कष्टनापी है। माना प्रकार प्रवर्तन करने पर भी इनका निरुद्धना दुरासाध्य है। ह सुख आनन्द वाचना का त्याग करो। अनेकानि निरुद्धना रह जानने है त्रिम प्रकार अन्तर्गत मग मग लाने की अन्तर्गत निरुद्धना होकर भी एक साथ निरुद्धना मग मग रहती है। द्विगी

मन्त्रमन्त्रेकात्म्य" कहने का यह सार है। बिना इसके वस्तु स्वरूप हो नहीं सकती। क्योंकि प्रत्येक वस्तु में विरोधी अनेक धर्म विद्यमान हैं जिनका प्रतिपादन स्वाभाव की उपेक्षा कर हो ही नहीं सकता। स्वाभाव ही समझा मरना है निरीत उष्ण पिता-पुत्र मानुष्य भगिनीत्य पत्नीत्य पुत्रात्य जैसे सबका विरोधी तत्त्व धर्म भी किस प्रकार एकाग्रित रहकर अपने अपने स्वभाव से शोभित होते हैं। यहाँ स्वाभाव या अनेकात्म सिद्धांत में द्रव्य दोन काम भाव व्यक्ति सामान्य विशेष आदि किसी की उपेक्षा नहीं की गई है। नय और प्रमाण का यथोचित प्रयोग किया गया है। एक धर्म कहता है यह क्या धुकी है टीक है दूसरा कहता है कि बहिन है तीसरा भान्नी बोधा भतीजी पालकी सभी छान नन तो सातवां मौसी आनि। विधानों पर ये सभी कथन साथ उतरते हैं। यद्यपि सुनने में विरोध सा प्रतीत होता है। किन्तु अनेकान्त की अपेक्षाएँ किसी भी पर सर्वथा खरा उतरती हैं। मित्त मित्त व्यक्तियों की अपेक्षा सभी बात एक ही कथा के साथ सिद्ध हो जाती हैं उनमें कहीं भी बाधा नहीं आती न कोई हानि होती है। अतः वस्तु तत्त्व स्वच्छ स्पष्ट, धना हुआ सामने आता है। हे भाई सद्धान्तिक ज्ञान ही ठोस और यथाय है। इसी में स्व पर भद विज्ञान जाग्रत होकर आत्म तत्त्वोपलब्धि हो सकती है अथवा नहीं।

आनन्द क्या है? बाह्य विज्ञान और अंतरंग संस्पर्शों का अभाव होना आनन्द है। पर पदार्थों का परिमाण आनन्द है। नहीं पर पदार्थ ज्ञान के बाधक या साधक नहीं हैं अतः बाह्य पर इन्द्रियों में इष्टानिष्ट बुद्धि होना आनन्द का कारण है। अनिष्ट बुद्धि तो आनन्द की घातक हो सकती है किन्तु इष्ट बुद्धि आनन्द घातक किस प्रकार है? मध्य है। समस्त सत्ता का समस्त एकाग्र भावनात्मक है, शक्ति है। नश्वर स्थिर रह नहीं सकते। अस्तु इष्ट पदार्थों का नष्ट होना विशेष आनन्द का घातक है। अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग दोनों ही आनन्द के शत्रु हैं। फिर दूसरी बात यह है कि इष्टत्व और अनिष्टत्व भाव भी निरंतर एकसा रह नहीं सकते। एक समय एक पदार्थ इष्ट है दूसरे क्षण वही अनिष्ट हो जाता है। सदा का प्रकोप हुआ अग्नि की तपन सुगन्धी भगनी है भीष्मकास में वही आग भीषण ज्वलन व ताप की कारण बत जानी है। विषयासक्ति का दृष्टांत तो और भी विविध है। भोग सामग्री उपयोग सामग्री भोगोपभोग बाल में सरस और विषाक समय में नीरस प्रतीत होने लगती है। भोगानन्तर दृष्टि शिथिल हो जाती है शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं आपास धन आनि का प्रकोप होता है। अतः बाह्य शुभाशुभ सामग्री ही स्वाधी नहीं जो भी जसी है उनका स्वभाव भी कोई निश्चित नहीं फिर भया के आनन्द साधक कहे हो सकती हैं? फिर आनन्द है क्या? स्वाद्य होना आनन्द है। अपने स्वभाव में स्थिर होना ही आनन्द है। आत्म स्वभाव में स्थिर होना ही आनन्द है। स्वभाव बुद्धि नहीं हो सकती, आनन्द स्वभाव में स्थिति परमाण्व

है। आत्मानन्द तो यहाँ भी मिलता ही रहता है किन्तु परमयोगी विवशनों से वह छिन्न छिन्न होता रहता है। सबका परावलम्बन का त्याग ही परमानन्द है।

आवक स्वभाव प्रती है। अग्रती सम्पत्ति अन्तर्गत प्रवृत्ति नहीं करता। कारण कि वह अष्टभुज गुणधारी होता है। पाँच पाशों का परिहार करता है। प्रती होने पर ही पाप त्याग होगा, यह नहीं है। जिहें यह प्रम है कि प्रतिमाधारी-प्रती नैष्ठिक आचरक का पच-पाप त्याग है पाशिक को नहीं होता यह निमूल है। पाशिक आचरक सतत पाप भीक रहता है। हाँ जिस प्रकार प्रती नैष्ठिक आचरक अन्तर्गतों का त्याग करता है उस प्रकार वह निरतिचार त्रत पालन नहीं कर पाता किन्तु जान बूझकर प्रमादी हुआ छोप नहीं लगाता। सब प्राणियों के प्रति दयालु होता है कष्टना भाव नहीं भाव गुणीजनों में प्रमोद आनन्द भाव रहता है। सच्चे देव सात्वत और गुरु के प्रति अवाटम ध्येय न रहता है। अमृत्य भक्षण नहीं करता। किसी के भी साथ दुर्म्यवहार नहीं करता। बटु बकम निष्ठुर, परप भाषा का प्रयोग नहीं करता। बाय से कुचेष्टा वध बधन आदि छोटी क्रिया नहीं करता। सत्कार शरीर भोगों में आसक्त नहीं होता। पञ्चपरमेष्ठी को अनन्य शरण मानता है। वतमान कुछ भुगन्तु निश्चयवादी अपने को सबका सम्पत्ती भीषित करत है किन्तु खान-पान आचार विचार व्यवहार भुक्ति की पूण उपेक्षा करत है और दूसरा को भी ऐसा ही उपेक्षा देकर आचार विहीनता शिथिलचार सिखात हैं। यह प्रक्रिया स्वयं अपनी आत्मा को प्रगारित करने वाली है और दूसरों को भी छोव में डालकर कुमार्ग का पोषण करने वाली है। हे आत्मन् ऐसे पाछाश्रिया से पूण सावधान रहकर असली तत्व को पहिचानो और शत्रुमार प्रक्रिया करो। सम्पत्ति आचरक अग्रती होकर भी नाम निषाधों में निरत रहना है। गृहस्थायम सम्बन्धी आरम्भ परिग्रहा की विचार्य करता हुआ भी उनमें विलस को सोन नहीं रखना। आत्म स्वयं पान का सहज स्वभाव धारण करता है। भला गरम स्वभावो जीव अन्तर्य गुण गुल्ल कया परम बीनरामी निगम्वर निगम्य गुरुआ की कभी भी निग्न आलोचना या निरस्कार कर सकता है? क्या न रहा करता। गुद निम्ना की बाग तो दूर रहे वह अपने साधनों आइया से भी किसी प्रकार विरोध करने को तैयार नहीं हुना और न विधिमियों विराधियों का हा अकारण निरस्कार या विरोध करना है। हम दूर शन आना प्रती न करे। अपने माक विचार का जोयन करे। अरों किरा-कपारों का ध्यान रखे कि कही इन प्रकार का को अन्तर्य तो किसी के प्रति नहीं हो रहा है जो हमारे सम्पत्ति व गुण का पालन है। सावधान रहकर आचरारिक विचारों को करने से दम न पड़े नही हुना वो होगा उसमें अण निग्न और अन्तर्गत प्रवृत्ति। यह संगार का कारण न दूर मुक्ति का माधक होगा। विषय विरक्ति का हेतु होगा। परप से नारिक पाठनाओं का प्रयोग हमारे उपर न पड़िक न हो सफा। यह है माधक दहन का मद्ध्य। सम्पत्ति की आचारिक धार्मिक विचारों को ही जाना है उपेक्षा नहीं न उठे बढ़े हुना देना है।

शरीर शासन के उपाय अनेकों प्रचलित होते जा रहे हैं किन्तु क्या कभी शरीर शुद्ध हो सकती है। शरीर के सम्बन्ध से तो शब्द पदार्थ भी अशुद्ध हो जाते हैं। ऐसा घुणित अपवित्र शरीर भला किस प्रकार शुद्ध हो सकता है ? कदापि नहीं। जिसकी उत्पत्ति स्थान धोनि-धोख हो अशुद्ध है उसकी शुद्धि भला क्यों कर हो सकती है ? शुद्धि तो आत्मा की करनी है। आत्मा मूल में शुद्ध है। पर सयोग से अशुद्ध हो रहा है। दो वस्तुओं के सयोग से जिसकी क्षमति है वह शुद्धि के योग्य है। समोगी वस्तु को पृथक् पृथक् करने के लिए उपाय करना बुद्धिमत्ता है। बुद्धि व्यवसाय का उपयोग आत्मशोध में ही है। किन्तु बाहरे लोको जिसको शुद्ध करना है जिसमें सफलता मिल सकती है उसमें तो प्रमाद कर रहे हो उधर दृष्टि ही नहीं है उधर उपयोग लगाना ही नहीं चाहते हो और जहाँ निष्फल प्रयत्न है विपरीत परिणाम निकलता है शक्ति समय बरबाद जाता है। हे मुझ जन हो बुद्धि वश्व का सदुपयोग करो। विचार शक्ति अमूल्य निधि है। ज्ञान चिन्तन के माध्यम से जीव अचिरंश दशा को प्राप्त कर लेता है। चिन्तन और मनन भी परावसम्बी है मन के द्वारा होता है। मन योग्य है—पर है। आत्मा से भिन्न है फिर भला वह आत्मा का क्या कर सकता है ? कुछ नहीं करता तो भी मन की शुद्धि आत्म शुद्धि में सहायक अवश्य होती है। यथा आप भी पत्तराज की तुलना को जा रहे हैं। ऊपर दृष्टि जाते ही मन हुताश हो गया इस अत्युच्च चोटी पर कैसे पहुँचा जायेगा ? शरीर पसीना पसीना हो गया और आप लाठी टक जहाँ के तहाँ बैठ रहे। इसी समय दूसरा यात्री आ पहुँचा और आप के मन की प्राप्ति को निकालत हुए बोला अरे जी कुछ दूर नहीं है न कुछ भारी है आप जमोकार मन्त्र पढ़ने जाइये अभी अभी पहुँच जायेंगे। वह मुझ भी ऐसा हुआ पर मैं तो मन की मुन्नी ही नहीं और एकाग्र चित्त कर चलता ही गया दस बड़ा पार। उठा चलो आ जाओ मेरे साथ। विश्वस्त रहो आप अवश्य बँदना कर लेंगे। अब आप देखिये विचारिय क्या उस व्यक्ति ने आप को पकड़ा या उठाया या क्या पर बठाया वह भी तो पर है सबका भिन्न है आप से। आपका कोई भी सन्निभ भी सम्बन्ध नहीं उसमें फिर भला क्या किस प्रकार सहायक हो गया ? आप में उसका कथन से एक प्रकार का आश आया उत्साह बढ़ा। वेग बढ़ा आप अपनी ही शक्ति से बढ़ने लगे स्वयं चल पड़ आनन्द आ रहा है चलने में हय उमड़ रहा है उमग छाई है मन क्या न कहा है शरीर आनन्द नहीं है विशेष शक्ति प्रकट हो रही है। जिन दशन का अमूल्य आनन्द आप ल रहे हैं। किन्तु चमत्कार है पर निमित्त का फिर भला मन की शक्ति हमारी अल्प विभुद्धि को सहायक क्यों नहीं होगी ? मन आत्मा से जुड़ा है अर्थात् घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसका अनि प्राचीन काल से परिचित भी है। यह पक्का भिन्न है। इसका शुभाशुभ करने से हमारा भी भाग्यसम्बन्ध हुनु होगा। हे चर्यामन् प्राथमिक भूमि में इसका अवलम्बन अनिवार्य है। उसके लिए इसकी प्रविष्टता सत्यता सन्तनना भी अभावश्यक है।— बिना इसकी सहायक बनाये हमारे अन्तर्गत स्वरूप परिभाषित नहीं हो सकत है। अतः

आर्त, रीढ़ परिणामों का सर्वथा त्याग करो। घम ध्यान में विलुप्त हो सतत करो। निरंतर शुभ भावों का अङ्गन करो, अवध्यान मत आने दो। मन की एकाग्रता होने पर कर्म बालिका आत्मा से वृषक होगी आत्मशुद्धि होगी और क्रमशः परम विशुद्ध शुक्ल ध्यान के बल पर परमात्मरूप प्रकट हो जायेगा, अनन्त अक्षय रहने वाला।

मोहाविष्ट ज्ञान स्वभाव परीक्षा नहीं कर सकता जिस प्रकार कोनों के मां से उभयतः प्राणी स्व स्वभाव को नहीं पा सकता। मोह नशा है। मधुर बराही है। इससे स्वाद में आसक्त प्राणी स्व पर का भद्र भूल जाता है। अपने स्वभाव से च्युत हो जाता है। जो स्वयं को न पहचाने मला बह पर को क्या जान सकता है? ज्ञान का स्वभाव दीपक समान स्व और पर दोनों का प्रकाश करना है। क्या कभी दीपक को देखने के लिए अन्य प्रदीप चाहिये? नहीं। और न दीपान्तर अन्य पत्तियों को प्रकाशनार्थ जुटे दीपक की आवश्यकता होती है। जो दीपक स्वयं अपने को दर्शाता है वही अन्य पत्तियों का प्रकाश कराता है जो अन्य को प्रकाशता है वही अपने (दीपक) को भी स्पष्ट ज्ञानवाना है। यही है ज्ञान का वैशिष्ट्य। ज्ञान भी स्व-पर अथ भासक है। ज्ञान ज्ञाता है, मय भी है। सबको जानता है इसलिए ज्ञाता है और मय ज्ञान का विषय होता है इसलिए मय है। ज्ञान इसीलिए आत्मा का अनन्य गुण है। या कहिए कि ज्ञान ही आत्मा है और आत्मा ही ज्ञान है। दर्शन और चार्मि भी ज्ञान की ही पर्यायें हैं जिस दण ज्ञान जीवार्ति सत्त तरवों के अज्ञान या भाव तरव के अज्ञान रूप परिणामन करता है उस काल में यही आत्मा का अज्ञान या सम्पन्न भाव है। यही ज्ञान जब सत्त तरवों के ज्ञानन रूप परगत होता है तो सम्पन्न बहुलाता है तथा जिस दण राग-द्वेष रूप परिणामन का परिणामन कर देता है ज्ञान निर्मल होता जाता है स्वच्छ हो जाता है उसी का नाम सम्मक चार्मि है। इन तीनों का एकीकरण ही आत्मा है क्योंकि तीनों वृषक अस्तु नहीं हैं अस्तु एक ही आत्म स्वभाव ज्ञान की ही सब पर्यायें हैं।

ज्ञान-वचन स्वयं आत्मा क्यों अत्यन्तबद्ध है? वही ही अतीविक आत्मवेदनक ज्ञान है। मला मियार द्वारा कभी बनाया निह देखकर हमें आवश्यक नहीं होता? अक्षय ही आत्मवेद की बात होगी अति आचारणन विरमनीय भी नहीं कही जा सकती। यह विमल अक्षय है किन्तु अनन्यव नहीं कही जा सकती। आत्मा के समान अतिशारी वृषक प्रथम है। इसके २३ विधों में २ प्रकार विशेष कार्यकारी है। इन समुद्र वृषक का नाम बनना है। ये २३ प्रकारों में विमल है विमल आत्मा से अतीव सम्पन्न रहने वाली है २ ही। अज्ञान वर्णना जीव बनना भावा वर्णना कर्म वर्णना और मनोवर्णना। इनमें भी प्रमुख रूप वर्णना रूप वृषका पर्याय है। कर्म में अपने बहुत से अक्षय को अक्षय गया है। आत्मा विमल समस्त जैसे इन में अक्षय बना वह अतीव के अक्षय में है। नहीं कहा जा सकता कि विमल

किसको अपनाया और किमने किसको अपने पास में रखाया । अतः हम इसे अनानि सम्बन्ध ही कह सकते हैं सुख और विद्वान्ताभावत् । इनमें कोन प्रथम और कोन द्वितीय है यह भी कहना असम्भव है जैसे बीज प्रथम हुआ कि वृक्ष यह नहीं कहा जा सकता है । जो ही आत्मा परतन्त्र है परन्तु सतत पराधीन नहीं रह सकती । पुरुषाद्य करने पर आत्मा निज स्वरूप को प्राप्त कर सकता है । हे आत्मन् तू भावधान हो । अपने स्वरूप को समझ । निज का समझ बिना उसे कम से पृथक् करते कर सकते हो । आत्मा और कम दोनों की जानकारी हुए बिना मित्र मित्र कैसे किया जा सकेगा । अतः मुनिविवक्त होता है ।

बाह्य जला अन्तरङ्ग भावों का साकार रूप है । यह विषय चित्रकला मूर्ति कला में स्पष्ट परिलक्षित होता है । चित्रकार विविध चित्रों में अपने अन्तःकरण का प्रकाशन करता है । उसका रागभाव व विरागभाव चित्रों में पूणत अभिव्यक्त होता है । वीरराग भावों से अक्षित चित्र दशक की वीरता का उभाड़े बिना नष्ट रह सकता इसी प्रकार राग रजित आकृति रागभावोत्पात्त होती है । वीरराग भाव से अनु रजित चित्र सवेग और वराम्य का जीता जागता दृश्य होता है । यह है आत्म निष्ठा का प्रतिफल । सच्चरित्र आध्यात्म रक्षित चित्रकार की मूर्तिका मानो उसका अन्तःकरण की आशाकारिणी होती होती है । उस मूर्तिका से प्रतिबिम्बित चित्र दशक की वीरराग भावना आध्यात्म्य वति एवं वराम्य परिणामों को उद्भक्ति अवश्य करती है । इस प्रकार के चित्र मानो बोले हैं । इसी प्रकार विलासियों के द्वारा निमित्त चित्र विलास मोला का साकार रूप उपस्थित करते हैं । कामोद्देक भाव से बनाये चित्र अवश्य ही अपने कर्ता को कामवासना प्रशिक्षण करने हैं । वस्तुतः चित्र किसी भी विषय की अनुपुन भावना का मणित सार है । जीवन्त मनाभावों का प्रकट रूप है । यही कारण है कि चित्र निर्माण काम में चित्रकार के शरीर अवयवों की आकृति जिस भाव रूप होती है उसी प्रकार का चित्र तयार होता है और अतः तक वही भाव चित्रार उत्पन्न करने में प्रवृत्त होता है । शुभाशुभ चित्र शुभाशुभ भाव ज्ञापन कर शुभाशुभ कर्मों की प्रेरणा प्रदान करने हैं । ठीक यही बात मूर्ति कला के सम्बन्ध में है । सराग भाव से निर्मित मूर्ति सरागता और विलासिता का संदेश देती है ता वीरराग भावों की शतश सत्तार शरीर भोगों से विरक्त कर शान्त भावों को उभाड़ वीररागता का उत्पन्न करती है । दण्ड की मूर्ति कला आगम का निषेध है । सत्तार का मूर्तिमान प्ररस-माकार प्रशान्त है । एक ओर राग रग है एक ओर भोगों की काण्ड अवस्था तो दूसरी ओर वराम्य का चर्मोत्थप । वीरराग मुग्ध के मध्य विह्वलती मीम्व दृष्टि अन्तरङ्ग विशिष्टि का मानो प्रमोद करती है । ओठों की मुस्कान लला उत्तम लला का पाठ पढ़ाता है । नयनों की नासाय दृष्टि अन्तः शान्ति का वरदान प्रदान करती है । उन्नत मलाट लम्बलोक का आलोक प्रदान करता है । आकाशमूक मुखाण कृतकृत्यता दर्शा रही है । स्थिर चरण मुगल ध्यान की अन्तिम पराकाष्ठा स्थिताकर स्वल्प (निश्चालस्थित) होने का

उपदेश देते हैं। वीतराग प्रभु के समवशरण में सरस्वती और सरसी का अविरोध प्रदर्शित होता है। साथ ही श्री बाहुबलि स्वामी के समक्ष करबद्ध आसीन राज राजेश्वर भरत की भावभीनी थढ़ा भक्ति भोग और योग में समन्वय प्रकट करती हुई सी प्रतीत होती है। भोगों में भी योग खोजा जा सकता है यदि भोग मर्यादित हो। कमल कीपड से ही प्राप्त होता है। ससारपूर्वक ही मोक्ष होता है। बंधन से ही मुक्ति मिलती है। अपने में अपनी दृष्टि पसार अपने को समझने की चेष्टा करा। आपा जानने पर ही पर को जाना जा सकता है और सबको जान लेना देख लेना ही परमात्म दशा है। भगवन्त अवस्था है। इस अवस्था की प्राप्ति त्याग तप, सयम और वराग्य धारण कर ध्यानस्थ होने पर ही हो सकती है। यह सिद्धांत प्रत्यक्ष जिन बिम्ब बह रहा है। देवगड स्मिति जिन प्रतिमा क्या प्रत्येक पाषाण मुखरित है उपदेश दे रहा है सरस वागगा बहा रहा है। हम सुनें या न सुनें। कुछ लें या न लें। कुछ समझें या न समझें पर तु वे अवश्य ही हम कुछ न कुछ कहने लगे हैं सुनाते ही हैं और नेते ही हैं। यही नहीं यही की कला-गच्चीकारी एक अद्भुत दशनीय है। मानो अपना वसव उगार हृदय से मुक्त हस्त वितरण करना चाहती है। आंतरिक प्रसाद गुण ससार को वितरण कर रही है। अपने में नहीं समाया आनन्द सुना रही है। यही प्रकृति का अणु अणु विश्व ब घुलन सबजीव वात्सल्य प्रेम की त्रिवेणी बहा रहा है। कण कण में वराग्य भाव अमर शान्ति का स्रोत बह रहा है। एकाग्र अनुबिन्तन की प्रदणा प्रज्ञान करता है। ध्यान और मोन ही जीवन की साधना है मुख और शान्ति ही इस साधना का मधुर फल है। अमृतोपम आनन्द यही उल्लसता प्रतीत होता है। आत्मा हल्का होता सा नजर आता है। कामुष्य घस स रहे हो। जान पड़ता है पाप पण्डू मुखर तबह रही है गिरने ही वाली है बह गई घुन गई। बसे टिकनी यही के पुण्यपूत्र से मुक्त करना उसकी शक्ति के बाहर है। अनिरस्य वनस्पती सीहार्द्र का स ज्ञेय दे रही है। वेदका की सीतल धारा भयों को जिन धरण कमल युगल प्रगापन को बाध करती है। खुर्चि ब हवर्गीय वसत्र है आत्मीय शान्ति है नैतिक पवित्रता है। भोगों की रमणीयता है जो अनुमेव मोहन का प्रसन्न गान कर रही है। सरतेश्वर का अक्षयनिष्प उषित ट प्रेमा यत्र तत्र विभूता पड़ा है उस पर त्याग और सयम को आनन्द का विनाश ऊर्ध्व सोर की यत्ना प्रदर्शित करता है। भक्ति धी का वषट निरन्तर कर उग पर सवार है। मनोछा हरण है। अद्भुत विनय है भोग और योग का। आश्वर प्रेम का उग मुकुट युल प्रविबिम्ब जरी वराग्य की वराकाया भुजिन कर रहा है। ससार और भोगों की निरमरणा बनना रहा है। जीवनान युग आत्म उपानि प्रत्यक्ष कर सयम का उपदेश दे रही है। मोन रोव बर्द्ध है। वशाध्य जाना है ता वर को न मनी मोन में ही निम मरता। उन ही धर्मो-नानो। धर्मो की प्रामाण्यभूति उगद ओ। पर नृप बननी है। ब्रह्मचर का तेज मलय पर मरणा है। विश्व प्रेम करने में समर्थ रहा है। यह है अद्भुत हरण इस जेवर्द्ध की वाचन भूति का। सय पत्नी पर अद्भुत हरण

भरा पड़ा है। जो जो चाहे वह यहाँ पाये यदि पाने की योग्यता है तो। नदी बहती है जिसका जितना पान है उतना पानी भरता है और जितनी जिसकी शक्ति है उतना जल भरकर उगा सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक भक्ष्यात्मा अपने अपने पुरुषार्थ पान और प्रक्रिया के अनुसार आत्म बभ्रव पाने की प्रक्रिया को पाता है और सयत्ना है ग्रहण करता है और क्रियाश्रित कर आनन्द पाता है।

बीनराग मु। आराम के बीनराग भाव की प्रतीक है। प्रत्येक आत्मा बीन राग स्वरूप है। यही कारण है कि यथा निमित्त नमित्तिक की मिट्टि होनी है। जिन बिम्ब कपी बीनराग निमित्त से हमारे-दर्शक के बीनराग भाव जाग्रत होन हैं। पुन पुन साध्याशुष्टि से जितस्वरूप दर्शन में निजात्मा रूप जिन प्रकट होता है। आराम अहम् स्वरूप है। परमात्म महान है मुक्त स्वरूप शुद्ध निर्विकार निरञ्जन है परन्तु वह स्वरूप आच्छन्न है आवृण है। उस आवरण का दूर करने के लिए जिन बिम्ब निमित्त है। जो जिन स्वरूप का अवलोकन करता है वह स्वयं अपने स्वरूप का भी दर्शन हो जाता है। निजावलोचन से स्वयं ही ज्ञान भी हो ही आयेगा। स्वयं स्व का ज्ञान पर का भी ज्ञान होगा। स्वयं ज्ञान होने पर कौन कृत्रिम माने बन्तु स्वयं पर बन्तु द्रव्य कहेगा? स्वभाव छोड़ कौन पर भाव में जाने की चेष्टा कहेगा? कोई नहीं। स्वयं स्व पर भा विज्ञान का मूल ज्ञान दर्शन है। पर पश्चिनि मिटन ही पर भावों का निरोध होना है। राग द्वय ज्ञान भाव ही तो पर भाव है। ये ही तो आत्म पुरुष ब्रह्म के कारण हैं और ब्रह्म ही संसार का हेतु है। यह सब आत्म स्वभाव का चालक है। इस रूप में बचाने वाला जिन बिम्ब दर्शन है। जिन दर्शन स्व दर्शन का मूल है। हे आत्मन् बीनराग मुग का रहस्य भरणत करो। जिन निम्न की परम करो जिन बिम्ब की छवि अपने में उतारो उस लौक्य मुद्रा से अपना विज्ञान करो। जहाँ जिनकी बसी है उसे दूर करने का प्रयत्न करो।

बाय विहार बधाय भाव राग दुषानि विषाद कषादि से जीव निवृद्ध है। वे बुद्ध हो सकते हैं। कसे? स्वयं अपने पुरुषार्थ से। पुरुषार्थ क्या हो? उनका स्वयं। स्वयंभाव होने पर विचार स्वयं दूर होने। विचार नैव न मे वेहू नहीं सकते। उदाहरणार्थ—यन चाहता है मैं स्वयं लोभ के रूप में। पर जिना छो क्या वह शक्ति कहा के लिए हो ली? नहीं। पुन चाह हुआ और बड़ी बिना फिर का भी। परिणाम क्या दिक्का। पुन पुन कपी अधिमान होनी रही और कोनामर हाग आनन्द होकर कम ब्रह्म होना क्या का निर्वर्ण दूर कर नद में आना क्या। यही अर्थ का और यही क्या रहा हैहा क्या रहेगा फिर हमने निराश क्या हुआ? कुछ नहीं। निरवर्ण विद्या। स्वयं है। कोनेका का कोनाम में उन स्वयं का कोन करने का बर्दाश होना है—ब्रह्म होना है फिर दर्शन आना है और यदि उन्म काल में उन काव की और नहीं छोड़ क्या ब्रह्म लीन क्या नहीं। बर्दाश और काव हुआ ही नहीं। ब्रह्मकाव से पुन बर्दाश काव कहेगा नहीं। निराश ही ही। कोनेका नहीं उनी

क्षण उस विषय सेवन का त्याग कर दिया, नियम बद्ध हो गया वह भाव स्वयं मर जायेगा। शान्त हो जायेगा। भाव के अभाव में नवीन कर्मसिद्ध नहीं होगा बंध नहीं होगा। पुनः फल नहीं देगा। बस पूर्व निबद्ध कर्म निजगति हो जायेगा। है आरम्भ! मुक्ति का यही सरल उपाय है। कर्मोभ्य आने पर उस रूप परिणाम नहीं हाने देना यही पुष्टपाथ है। यह पुष्टपाथ परम्परा से मिथि प्रदान करा देगा।

अवधार नय सापेक्षा सत्य और उपाये है। निरपेक्ष नय मिथ्या और हेय है। आत्मा अनादि से कम बद्ध है। मिथ्यात्व तथा म पड़ी है। अज्ञान और मोह से सनी है। बाहिर इस परिस्थिति से उसे ऊपर उठना ही होगा। यदि मध्यात्मा है तो मिथ्यालोक तक और अश्रव्य है तो नवप्रवेयक पश्यत। विचारणीय है इस महा भयकर गभीर गत से निकालने वाली शक्ति है क्या? ऊपर पोट्युक्ति प्रमाण के आधार पर यही सुनिश्चित किया जा सकता है कि स्व पुरुषाय ही है। यह पुरुषाय मूल में मिथ्या या वही नय तरंगों के मध्य उछल कर मचाकर किसी किसी प्रकार सम्पन्न रूप परिणमन कर गया। जैसे पापाण स्वर्ण जलधारा के साथ धिमत्ता किमलता ठुकराता रगड़ता गीन मोन रूप हो सालिगराम की बटिया बन जाता है। जो हा मिथ्यात्व और सम्पन्नत्व कम सामायापेक्षा एक ही है—समान है किन्तु स्वभाव लक्षण गुणों की अपेक्षा सवधा भिन्न है। जिस प्रकार गने का रम राव गुड चीनी उत्तरोत्तर स्वच्छ होती गयी और भिन्न नाम गुण धर्मों से युक्त स्थितायी पड़ते हैं। हैं सब एक ही रम की विभिन्न अवस्थाएँ। इन अवस्थाओं में होने वाली क्रियाएँ सभी व्यावहारिक हैं। इन्हीं व्यवहारों से गने की गुड चीनी रूप अवस्था प्राप्त हुयी है। इसी प्रकार मिथ्यात्व में सम्पन्नत्व अवस्था प्राप्त होता व्यवहार ही का कार्य है। निश्चय साविक सम्पन्नत्व होने पर भी जीव को चौथा ही गुणस्थान रूप दर्शा प्राप्त होती है। उत्तरोत्तर व्यवहार नय की परिपक्वता में उसे ऊपर गुणस्थान धनी चढ़ना होता है निम्न अणिदा स्वभाव न पड़ती जाती है और अन्त अन्तिम सीढ़ी (चौथी गुण स्थान) भी पार हो जाता है। जाये कर्म रत्न के का रोग (स्थान) भी नहीं कारण की नहीं। निमित्त समाप्त हो गया व्यवहार भी जहाँ का तहाँ टारनी लगाये वारा रहा। अब उसे उनम प्रयाजन ही क्या रमा? के सब कार्य हो गये। भगने आप ही छू गया। आप ऊपर उठने का प्रयास करने जाइये। आगे बढ़ने की जरिये। उस मस्तिष्क पर पट्टेबद्ध जहाँ से आना न हाता पड़ने जाओगे। अभिप्राय यह है कि सापेक्ष नय सत्य होन है निरा मिथ्या हान है। साधन मध्य है निरपेक्ष बाधक है। साधकों के साधना सिद्धि तथा बाधक का परि राग कर जात्य सोधना करने में प्रयत्नकाय रहो। आत्मसिद्धि होने में स्वैर स्वभावानुभूति प्राप्त हाता निर स्वस्व का मान होना। धीरे धीरे स्वात्म नुभव आरम्भ। उपर्युक्त विधि की ओर रुझाई अनुप्राण जगता सपना की ओर ह्यान प्रयत्न परम न विवेक बग बग रट्ट के भा जोर निर निरञ्जन गुड निम्न अविश्व अन्व बाधक है। यही आ सोधनी है। यही नयानीय नय

है। यहाँ क्या है? तो वही जो है सो ही है। उसे पावर खोया नहीं जाता न वह जो ही सबती है। ब्रह्मती भी नहीं बरनेगी भी नहीं।

हम जो कुछ सोचने विचारते या अनुभव करते हैं वह सब अधूरा है अपरिपक्व है। कच्चाई दुष्ट में खराई का काम करती है। यही कारण है कि हमारे जीवन कभी पय फट कर बिखर रहा है। कभी छिलला कभी उबला कभी थह और कभी बिबना हो रहा है। इस बिबुगी दशा को सुधारना है। देन-लेन उपाय से सारी विवृतियों को समाप्त कर स्व स्वरूप में आना है। इन्द्रियो (टेन्ड्री) में विभक्त जीवन अधूरा होने में निराल हो रहा है। बस्तुन अनन्त का साक्षात् है मुख बल बीर्य ज्ञान दर्शन सब अनंत है। परन्तु विभाव परिणमन होने से वह अनन्तता साक्षात् में परिणमि हो गई है। हे ब्रह्मन् अभी इस कभी को समझन का प्रयास क्यों नहीं करता है। ते मुझ चेतन होकर भी अब क साथ दोस्ती भी है? कहीं तो बर लो, अब तो छोड़ इस विदम्बना का। जो विचार तुमने उपाजिन किया है उन्हें तुम ही मिटाने में समर्थ हो। बिना प्रयत्न के मिट नहीं सकते। विवृति का कारण है विम्यात्व अज्ञान बयाय। स्वभाव के उपाय इनमें विपरीत सम्पत्तय जान और चारित्र। सम्पत्तजन सम्पत्तजन और सम्पत्त चारित्र ही मुक्तिमार्ग हैं। इन तीनों का पक्कीकरण ही है मोक्ष। मोक्ष का अर्थहीकरण है आत्मा। आत्मा का निज स्वभाव ही तो मोक्ष है। वह यहाँ आने की द्विहरम अवस्था के पुर ही हमारा साधना विचारना या अनुभव सब पुरा हो जाता है और अन्तिम विहाय अवस्था में इनका स्वभाव समाप्त हो जाता है। कारण कि अब पर निमित्त का समाप्त नहीं रहता। पर अब निमित्त से हान वाली सभी दशाओं लभित होती है। स्वाधीन परिणति में साम्बन्धिक भाव विद्यमान रहता है। स्वाधीनता का अर्थ स्व आधीन—स्व+आधीन—स्वयं अपने सहारे रहना। अर्थात् स्वयं आप्त और स्वयं ही आधार। प्रत्येक वस्तु का यही अनन्त आत्मविक स्वभाव है। जिस समय पदार्थ या तत्त्व स्व स्वभाव क्षुण्ण होता है तत्काल पराधीन होता रहता है। यही पराधीन कृति है। आत्मा अन्तिम में स्व स्वभाव क्षुण्ण है इति मत् पराधीन हो रहा है। बिना अन्त्यामी हान से उस पराधीन कृति से इनका पविष्ट फल मिल गया है कि उसे ही अपना स्वस्व मान लेना और समस्त व आव पर भी उसे स्वायत्त का सहार नही होना। मोक्ष मन्त्रि में उन्मत्त तत्त्व मोक्षामी साम्बन्ध सहारा का क्षुण्ण काई क प्रति अनुभाव इस तरह का सात्म उद्घाटन का ही अन्त्य है। मोक्ष में आत्मता क्षुण्ण का प्रति मर्त रहने का विदम्बना को समाप्त कर दे रहा है। पर पविष्टि का रस बन्दर जोड़ को बिना प्रचार प्रसार हो दे दो आत्मता है। आत्मा ही बिना विभाव भाव नहीं हो पायेगा और न स्वभाव भाव ही पाया जा सकेगा। यह आत्मता ही है वह पर आत्म विम्वर है जो। इस पर निज आत्मता होना ही विम्वर काय का सम्पत्तजन है। हे ब्रह्मन् इस का होता काहुन हो सो पराधीन हान के कारण का सम्पत्तजन पर इच्छे बरने का का रहे अन्ते में बराने का सम्पत्तजन है।

परम्परा बढ़ाता रहता है। हे आत्मन् इस भ्रान्ता बुद्धि का त्याग कर। स्वार्थ तप की समाप्त।

सत्य जीवन का प्रकाश है। वाणी का सार है। संसार का उपहार है। समाज का उत्थान है। राजा की शोभा है और प्रजा का कल्याण है। सन्निध में मानव जीवन का प्रत्येक पहलू सत्य की ज्योति से ज्योतिमय है। जहाँ सत्य है वहीं जीवन का प्रसार है। विकासोन्मुख जीवन ही उत्थान की एक अछिन्न धारा है। वह प्रवाह है जो दीर्घ नदी के रूप में प्रवाहित होकर अपने अंतिम गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर सदाकास की गतिहीन हो जाता है अर्थात् आना-जाना बहना आवश्यक ही नहीं रहता। व्यावहारिक जीवन में सत्य परमावश्यक है। एक शब्द भी एक बार भी जीवन में प्रयुक्त हो गया तो वह एतम कम में कम सहारक नहीं होगा। असत्य का टीका उसे लग ही जायेगा। वह अविश्वास का पात्र हो जायेगा। गृहस्थाश्रम समाज देश राष्ट्र आदि सबत्र मानव मान उसे हेय दृष्टि से ही देखने लगता है। एक बार का असत्य भाषण जीवन भर का विश्वास नष्ट कर देता है। वह चारित्रहीन की श्रेणी में आ जाता है जबकि सत्यवादी पूजा प्रतिष्ठा आदर और सम्मान का पात्र बन जाता है। असत्यभाषी की कोई भी मान्यता नहीं देता। वास्तव में सत्य में दया क्षमा शील सयम तप त्यागादि सब गुण समाहित रहते हैं। इन्हीं गुणों के आधार पर आत्मगुणों का विकास होता है। आत्म शक्ति पूर्ण प्रकट होती है। स्व स्वरूप की प्राप्ति होती है। स्वानुभव प्रकट होता है। स्व का गान होता है। स्व की जानकारी से पर का ज्ञान अनायास ही हो जायेगा। यही स्व पर भेद विनाश है जिसके आधार पर आत्म रूपी सुवर्ण तप कर कुटन बन जायेगा। कम कालिमा जो कर्म बाल भाव द्रव्य रूप कम नष्ट होकर अनंत चतुष्टयधारी आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जायेगा। एक गुणाभित वाय समस्त गुण स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। हे आत्मन् सत्य गुण का आत्ममन लेकर निज स्वरूप प्राप्त करने का प्रयास करो।

मंगलमय अनुमति प्राप्त करो। यह स्वानुभव ही आत्मा का स्वभाव है। इसकी उपलब्धि करने के लिए राग द्वेष विषय कषाय भोगाकांक्षा, मन क्षोभ आदि का त्याग करना अनिवार्य है। दमन शमन यम और नियम से श्रवित जीवन आत्मा का निज स्वरूप पाने में समर्थ होता है। जिसकी प्रवृत्ति इन बाधों की ओर झुकी हुयी होनी है वही संसार सागर के तट पर पहुँच रहा है यह सुनिश्चित है। विषय वासनाओं में उलझा प्राणी चाहे कि मैं भव जलधि के पार पहुँच जाऊँ तो यह नितांत अमंभव है। उसकी जीवन नौका भव सागर में निमग्न हो जायगी। उसे तो पर भावा के बोझ से रहित होना चाहिए। पर रूप विचारों का भार सत्ता है और अशम मन बचन बाध के छिन्न ध्वजे हुए है फिर भला नाव किस प्रकार पार होगी ? क्या वह डूबगी नहीं ? अवश्य निमज्जित होगी। तो क्या शुभाश्वर पार ध्वजे रहने पर बीजब नदी होगी ? होगी अवश्य कि तु वह जलमग्न हो जाय यह

मुनिविशेष नहीं हैं। मानिसय दुःखामय के कारण मृत शुभ द्वार सम्पन्नबुद्ध होने से मोक्ष को प्रवृत्ति मयाजन्त से जाने जाते होते हैं। जहाँ छट भावेण वही मोक्ष बाधकर स्वयं उससे विरक्त हो जायेगे हट जायेगे। क्योंकि वे मोक्षारोही को विभ्रम में नहीं जाने से अविशु सावधान सचेत बाधित दिये हुए थे। बराबर सचेत करत हैं भेषा में तुम्हारा सेवक हूँ तुम जब तक असमर्थ हो तुम्हारी सहायता करता हूँ जहाँ तुम्हारा। स्वस्वाम्य्य पुनः हो जायेगा वस हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध समाप्त। आरोही इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रहता। प्रतिपक्ष इस साध में बटा रहता हूँ कि जब मरा कार्य सिद्ध हो और जब इस मित को अवकाश दे विना कर दूँ। यही जानी का स्वरूप है। जान ही एक मात्र उसका अविभक्त गुण है। जानमयी जीवन ही उसका आत्मा है नहीं उसका निज भाव है। फिर ज्ञान के अतिरिक्त अन्य पदार्थभाव को मत्ता क्यों सहारा देगा। निजाम बनने वाला पक्ष पर चढ़कर बैठता है उसे सुरक्षित रखता है जब तक जब तक उस पर चढ़कर अपने काय (दिवाले की चिन्नाई) पुष्टि में सफल न हो जाये। जहाँ कार्य सिद्धि हुई कि पक्ष छोड़कर फेंक देता है अवकाश पक्ष-पक्ष स्वयं ही धूम धुमाकर समाप्त हो जाता है। यही हाथ है उन शुभ मार्ग-परिणामों का जो अपरिपक्व अवस्था में अभ्यस्त अनिकार्य हैं। और सिद्धि होने पर उसने ही अनावश्यक हैं। यही है नवी की पद्धति जो निरन्तर व्यवहार के सयोग से ही सम्भव हो सकती है।

मन धर्म का गुणाय है। छप सम्पन्न का दास। सतोप सोम का विजयी। सोम राग द्वय के धर्मों पर अपना भवन निर्माण करता है। राग-द्वय की परिणति रहन पर शान्ति नहीं हो सकती। अज्ञात जीवन में सुख कहाँ ? ह धामन्तू तू अपने स्वरूप का विचार कर। तू सोमाग्नि म भू व है। तुम में तेरा ही वास है। अन्य भाव आ नहीं सक्ता अर्थात् तुमने धुल नहीं सकता। तू भी अन्य में जा नहीं सकता। फिर क्यों सोमाविष्ट होकर पर म ममत्व क्यों करता है। यह तेरा कसब्य है नहीं। तू अपने स्वरूप को सम्हाल। अपने में आया मान। उसी में प्रीति अनुशास स्नेह कर। श्रद्धा न कर। मन्त्रो सत्त से नियमित रूप से कार्य में सफलता मिलती है। निजाम भावों में तल्लीन रहा। यही उत्थान का सोपान है। जीवन बड़ा जटिल है। विविध गुरिषयों में उसका जीवन सुलझाना सरल नहीं। हाँ अठ-माठ निघर से निघर सगी है यह अवगत हो जाव तो सुलझाने में भी देर नहीं लग सकती। आत्मा का सुधार इसी माध्यम से सम्भव है। हे भव्यारमन् अपने अंतरङ्ग में पड़ी हुई उत्तमनो को सुलझाने का प्रयास करो। परस्व बुद्धि का परिस्थान करो। परस्व भाव पराधीन वृत्ति है। पराधीनता में सुख शान्ति कभी भी किसी की प्रकार नहीं आ सकती। स्वतन्त्र बनो। स्वावलम्बी बनो। स्वावलम्बन के बिना आत्मा का किसी प्रकार भी बस्यान नहीं हो सकता। यही एक मात्र आत्मात्मान की कुञ्जी है।

नवीन जीवन का प्रादुर्भाव हो सकता है क्या ? सम्भवतः सामान्य जन यह कह सकता है कि रोज ही देखा जाता है अनेकों का नया नया जन्म फिर-हमारा न हो यह कैसे ? बात सही है प्रत्यक्ष प्रमाणित सी भी है । किन्तु जानी की भ्रम विज्ञान की दृष्टि इससे बहुत ऊपर है क्योंकि वह सम्भवतः क्षुब्ध पर सही उतरती हुई है । वह समझता है कि यह प्रतिनिधि का जोता-मरना न तो नया है न अपरिचित । यह अनेकों बार मुक्त भोगी है । इन पर्यायों में प्रत्येक जीवन केवल सङ्घान्तर बल्कि अनन्तों बार भटक चुका जन्म घर मर चुका । फिर भला नया क्या ? सत्य तो सत्य है । नया जन्म वही होगा जो अब तक घरा नहीं है । अनुचितनीय है वह नीनता भव-जीवन हो सकता है ? आगम में उल्लिखित है कि तोषमैत्र उसकी शची दक्षिणोद्गम सर्वापसिद्धि के अहमिन्द्रा लोकपाल एक भव धारण कर अर्थात् मनुष्य भव में आकर दिगम्बर मुग्धाघर कमनाश शिव पद में जा जामते हैं जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता । तो फिर सुनिश्चित है कि वही स्थान नया है, वही का जन्म नवीन होगा वही जीवन नूतन होगा । शेष में नवीनता कहाँ ? हाँ तो नया जीवन हो सकता है यदि इन स्थानों में पहुँचे तो ? और हाँ लोकांतिक अमरो का प्रवेश भी अभी तक अप्राप्य ही बना है वहाँ पहुँचे तो नवीन जीवन की शाही मिल सकती है । उस नवीनता में ही सच्चा रस है आनन्द है सुख है शांति है । परन्तु यह भी पूरा नहीं है क्योंकि यहाँ से पुनः प्राचीनता की शरण में आना पड़ता है । बिना पुनः परिवर्तित जन्म धारण किये अजर अमर और अविनश्यत नवीन जीवन प्राप्त नहीं हो सकता । ह आत्मन् इन नवीन जीवन में कौन प्रवेश कर सकता है कब कर सकता है किस भाँति कर सकता है ? किस विधि प्रयोग से कर सकता है किने काय को कर सकता है । इत्यादि प्रश्नों का परिशीलन करो परिज्ञान करो तन्नुसार आचरण करो । अवश्य सफलता प्राप्त होकर ही रहेगी । कौन अपने में नवीनता लावनी विकास स्कूनि आश्रित्वना ओर उरसाह नहीं चाहता ? हर आत्मा चाहता है । निज को प्रथम पहिचान करो । उस पर तक पहुँचने का मार्ग निर्धारित करो । सुनिश्चित पथ पर बढ़ने का उपक्रम करो । न ल भ्रष्टा कर चल पडा । जतों तो करो मग पी ड हवा मग कन्व स्थिति न हो इगछा पूरा पूरा ध्यान बनाए रहो । कम बढ़ा आओ । सुनिश्चित एक नि नवीन जीवन मिल जायेगा मिलकर तुम्हें भा उनी म त तीव्र कर विर साधो बना नया उगम ओर मुगम काई भ्रम भाव न हुआ । अरे क ओर कुछ नहीं अस्ति मु दा हावा । कम यहा ता एकत्र विभक्त का हावा विा वाहर उमी कर तुम हा जाओ । यही का करण म म न रहेगा । इयान ध्याना और काम एक कर हा हवा । एकान्त कर-गहारी जीवन हो गच्छ जीवन हावा । यही मुक्ति निज का है गच्छ करका है अपना करका है । निज करका हो मदन जीवन है ओ कभी छपना नहा हुआ क हा नहीं रहता किमी प्रकार परिवर्तित नहीं होता । यही है अतुल्य निज मुग्धा आश्रित्वना उगम जीवन ।

पुरषार्थ को प्रचार है विषय पोषक और आराम साधक । प्रथम विषयाराधक पुरुषाय तो जीव अनादि काल से करता आया है । किन्तु आराम साधक पुरुषाय तो अभी तक इस जीव की दृष्टि में ही नहीं आया । यही कारण है कि पुरुष अभी तक प्रमित हुआ घुम रहा है । घूम मिटे तो भ्रमण भी मिटे । भ्रमण छूटे तो मुख और शान्ति मिटे । हे आरमन् विचार तो कर आज तक कोहूँ क बँस समान महनिश अथक पुरुषाय कर शक्ति का अवस्थान करता आया किन्तु कुछ न मिला । मिलता बँस ? भला तुम कूटने से क्या ज्ञान मिल सकती है ? बाधू पतन से क्या रत्न प्राप्त हो सकती है ? कोन ऐसा है जो मुचको से आकाश कूटकर सपनता पा सके ? कोई नहीं । सब उद्योग व्यर्थ ही है । इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी सुखामास्य में जाना प्रयत्न कर अथ प्रमित हो समय सो रहे हैं । हे आरमन् सब जाग्रत हो । तही पुरुषाय का अव्येष्टन कर सम्यक उत्तरा परिशान कर और तन्नुसार सही पुरुषाय कर । समार के बच-बच में बिचरी अपनी शक्ति को सक्ति कर । सम्पूर्ण शक्ति के फँसाव को रोक कर एकत्र कर । सब ओर से आकषित कर निज्जात स्वरूप प्राप्त करने वाला एक मात्र उद्योग कर । इस उद्योग में सम्पूर्ण लौकिक कुरवों का परिहारा करना होगा । पर भावों से सबका विमुक्त हो तभी तुम्हारा तत्प्रयत्न एक मात्र आरम स्व भावोपमर्षि रूप सही पुरुषाय होगा यही है आत्मा के पान का उपाय । जो कुछ जहाँ पाना है उससे पाने को वहीं एकाग्र होना होगा । तब अनोखा आरम सुख है हे अठ अपने में अपनी शक्ति अपने द्वारा सविन कर एकाग्र कर अपने को पाने का उद्योग अवश्य ही सफल होगा । यही सच्चा मर्याद उद्योग है ।

पुण्य क्या है ? एक प्रकार का कर्म । वह क्या करता है ? यदि सच्चा-सम्यक पुण्य है तो आत्मा का पवित्र करता है और पुण्याभाय है तो आत्मा को पान पत्र में एकैक देता है । सम्यक्त्वबुद्धि अजित पुण्य साविशय पुण्य है जो परम्परया आत्मा को परम पुनीत बनाकर शुद्ध बना देता है या यों कहें कि इस सानिधय पुण्य के पुन स आत्मा इतना बलिष्ठ हो जाता है कि जज्ञात स्वरूप पान में समर्थ हो जाता है । एक प्रकार उसकी शक्ति विनशित हो जाती है जो शक्ति अमिट होती है । इसी के बल से आत्मा हम गुण में पुष्ट होता है कि जो पर रूप प्राप्त हो नहीं देता । शुद्ध बच्य से बड़ सुप्त जिस प्रकार सद्राम में लीन मान बर्षा में भी अछूना अवस्थ रह जाता है अर्थात् अवश्य वाण चारों ओर से बरसते हुए भी उस निर्मय योद्धा का रोम का चमायमान नहीं कर सकत सभी प्रकार सानिधय पुण्य रूपी बच्यधारी मुमुक्षु विषय-विचार-कदमों के ताण्डव बाण्ड में रहकर भी उनसे अछूना रह अपने रक्षण में पूण समर्थ हो जाता है । भला युद्ध विजय कर बच्य कोन पहने रहेगा ? कोई भी नहीं । उसी प्रकार सत्तार समर पर विजयी आत्मा भला पुण्य रूप बच्य को क्यों धारण कर रहेगा ? नहीं रहेगा । अठ पुण्य मित्र का साधक है । साध्य शिद्धि यदम् अवश्य प्राप्त उपान्य है ।

आत्मा की अनन्त शक्तियाँ हैं अनन्त गुण हैं। इस सभी में ज्ञान शक्ति ही एक मात्र प्रमुख है। कारण ज्ञान ही जाता है सभी को जानने वाला है। अनन्त पदार्थ है यदि उन्हें दर्शाने वाली प्रतीप प्रकाश ज्योति न हो तो उनका क्या महत्व है ? क्या उपयोग है ? कुछ नहीं। यही बात है आत्मज्ञान के आलोक की। ज्ञान गुण शक्ति जाने नहीं तो वे समस्त अनन्त शक्तियाँ मात्र दशनीय पुनर्ली है। चक्रमक परपर है बीच में रूई है दूसरी ओर पत्थर है। दोनों को रगड़ने पर आग रूई में ही लगी रूई न हो तो रगड़ मात्र कितनी ही लगाते रहो क्या प्रयोजन। यही समस्तो सम्पद्दर्शन सम्पत्तान और सम्पत्क चारित्र का महत्त्व। सम्पत्तान मध्य में स्थित है। देहली पाय बत सम्पद्दर्शन और सम्पत्क चारित्र को चोतित करता है। दोनों को भोग्य योग्य बनाता है। एक ज्ञान ही सबज्ञता का फलानुभव करने में समर्थ है। इस शक्ति की पूर्ति करो। यह शक्ति जड़ रूप कम नोकम के मध्य पड़ी धूमिल हो रही है। पत्थर से पत्थर का रगड़ बन अपने से अपने को रगड़ ज्ञान ज्योति जाग्रही जायगी। स्वसवेदन का अनुभव आयेगा। यही आत्म शक्तियाँ हैं यही स्वानुभाव है। स्वानुभूति ही आत्म स्वभाव है। हे विजये ! विजय चाहिए तो अपने पर विजयी बनो। जड़ चेतनात्मक पर पण्य तेरा भला बुरा कुछ करने वाले नहीं हैं फिर क्यों निरपराधों पर शासन करने का व्यर्थ परिश्रम कर बस पराक्रम का अपव्यय करते हो ? सावधान हो। ज्ञानी बनो।

उपकार और अपकार कौन करता है ? किसका करता है ? क्या कोई इसकी परिभाषा बना सकता है ? निश्चित सिद्धांत बना सकता है ? यदि यह नियमित सिद्धांत हो जाय तो फिर इससे विपरीत क्रिया न देखी जाय। किन्तु सबत्र प्रत्यक्ष विपर्यय देखा जाता है। गौ जन्मते ही बच्चे को चाटती है मन चाट कर साफ करती है एक क्षण उसे छोड़ना नहीं चाहती उसका अपाय सहन नहीं करती किन्तु देखा जाता है अपने पाँव को ही उसका बधक छूटा बना देती है। अधिक स्तन चूसा कि सात से छबर सेती है कुछ और बड़ा हुआ कि सींग से मारने लगती है। यह है विचित्र दशा संसार की। मनुष्य विवेकी माना जाता है किन्तु यही भी यही विपर्यय देखा जाता है। आज का मित्र हो कल का शत्रु बन जाता है। कहीं भी एकरूपता नहीं है। यही संसार का चरित्र है। इन विचित्र में उपकार और अपकार क्या और उपकारी और अपकारी कौन ? यह है विचित्र परिस्थिति इन प्रश्नों पर गहराई से विचार करें ता विदित होगा कि सासारिक विषय भोगा न कोई तथ्य नहीं कोई यथार्थ नहीं। इन संसार शरीर और भोगों के सम्बन्ध में न उपकार और अपकार की कल्पना ही नहीं होना चाहिए। अतः आत्म सम्बन्धी विचारा न तथ्यो में उपकार और अपकार का प्रयोग है। जो आत्म तत्त्व का उपकार करे वही मित्र है और जो आत्म स्वभाव के विपरीत करे आत्मा का अद्वित करे वही अपकारी है। यही उपकार और अपकार का यथार्थ अर्थ है। इस कसीटी पर कगने पर स्पष्ट

विदित होता है कि धर्म ही सच्चा मित्र है और अधर्म ही भयंकर शत्रु है। अब विचारणीय यह है कि आखिर धर्म है क्या ? धर्म क्या है जो आत्म स्वभाव विकास में साधक हो। अनन्त सहायक ही निमित्त कारण है। आत्मा है क्या ? यह भी विचार परमावश्यक है। आत्मा वह शक्ति विषय है जो पञ्च सामक भाव सम्बन्धित होकर अखण्ड बिंदुपदा का 'योतिमय' पुञ्ज है। स्वयं एक होकर भी अनेक है। अनन्त शक्तियों का समन्वय रूप एकरूप भाव को प्राप्त है। उन अनन्त शक्तियों में ज्ञान शक्ति ज्ञाता और अन्य समस्त अनन्त गुण सब हैं। ज्ञान गुण आत्मा का अनन्य है और अन्य अनन्त गुण भा अन्य हैं किन्तु सब प्रयत्न होकर भी एक रूप हैं यही। विलक्षण स्वभाव है। यह आत्म भाव अपने में पूर्ण है। समस्त त्रयोप पदार्थों का भी ज्ञाता दृष्टा है किन्तु अन्य रूप परिणमन नहीं करता। उस ज्ञाता दृष्टा स्वभाव पर अनाद्यविद्या का आवरण पड़ा है जिससे मेघाच्छन्न रजिस्वर वह पूर्ण प्रकट नहीं है। यह आत्म का अविकसित स्वरूप है। इसे विकसित करने में जो सहायक हो वह है 'धर्म'। आत्मावरण अनादि से है और नवीन-नवीन विविध निमित्तों से आते भी रहते हैं और जाते भी हैं। इन निमित्तों में प्रबल हैं—योग त्रय। ये शुभाशुभ रूप से दो प्रकार और मन्द मन्दतर मन्दतम, तीव्र तीव्रतर और तीव्रतम आदि तरतम भावों की अवस्था असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इनका तात्ता आने जाने का हर क्षण लगा रहता है उस काल में जिस प्रकार का जीवात्मा का कषाय रूप परिणाम होता है तदनुसार कर्माश्रय आकर स्थित हो जाते हैं। अग्निप्राय यह है कि शमाशम योग शमाशुभ कम रूप परमाणुओं का आकर्षण करता है और कषाय उन्हें अपना साथी बनाकर यथायोग्य आसन प्रदान करता है। इसी का नाम है क्रमशः प्रकृति प्रदेश और स्थिति अनुभाष्य बन्ध। बस यही तो शूडारमा का विचार परिणमन है जिस निर्विकार कर स्व स्वरूप को पाना है और पाकर पुनः पररूप में न आता है न रहता है। इसी का नाम मोक्ष परम सुख स्वरूप परम धाम। यह आत्म स्वभाव या वस्तु स्वभाव है। यही धर्म है। इसे पाने की प्रक्रिया में इसके दो विभाग हो जाते हैं—(१) श्रवण हार धर्म और (२) निश्चय धर्म। इसी प्रकार इन्हें साधन और साध्य धर्म से भी निरूपण किया गया है। इसका ही नाम व्यवहार मोक्ष मार्ग और निश्चय मोक्ष मार्ग कहा गया है। इनके स्वरूप का यथाथ समस्त तत्त्वानुसार वतन करना जीव का कर्तव्य है। कर्तव्यनिष्ठ ररायण व्यक्ति धर्म स्वरूप प्राप्त कर तत्तु रूप-रूप ही हो जाता है जहाँ शूड निश्चय का विषयमूत्र शूडारमा ही मात्र रहता है और पुनः अखण्ड हो हो नहीं सकता। यह है जीव की अवैदिक विद्याश्रो-मुद्यो सवधान-प्रतिष्ठा त्रिकोण आधार पर परमात्मा बनकर परमपराधिकारी हो जाना है।

उपयोगमयी आत्मा एक है और उपयोग दो प्रकार हैं। यह विरोध कथ ? आत्मा अत्र-यमया है। जेना का परिणमन या कार्य ज्ञान ज्ञान रूप होता है अत्र दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग रूप उपयोग है यह कहा जाता है। समस्त सामान्य है

और ज्ञान विरोध । प्रत्येक इच्छा गुण वर्तमान मत्ता मात्र सामान्य विरोधात्मक उभय धर्म युक्त ही है । सामान्य विरोधात्मक वस्तु सभी है । ज्ञान आत्मा भी एक इच्छा है अपने में समर्थ है और सामान्य विरोधात्मक है । वर्तमान ज्ञानमयी है । वर्तमान विरोध है—अज्ञानमयी है—अज्ञानमयी है अर्थात् अज्ञानमयी वस्तुतामोचर है अर्थात् ज्ञान गुण विरोध-माकार प्रविष्टा या मरिचक है । वस्तुतामोचर है । वस्तुता सामान्य वस्तुता है ज्ञान विरोधात्मक । ज्ञान का वर्तमान विरोध या मरिचक है परन्तु वस्तुता का मान अनुभव । वस्तुता स्वयं स्वयं से बाधा आने में ही समाहित रहता है बाधा प्रकाश उभयता नहीं कर सकता । वस्तुता की शक्ति एक ही रंग की अनेक वस्तुओं को देख रहा है वे कितने कम या अज्ञान ज्ञान में है सब जगती दृष्टि में ह परन्तु उनका अन्तर जो अन्तर में वस्तु अनुभव कर रहा है उसे वाणी से प्रतिपादन नहीं कर सकता । उनके अन्त विरोध धर्मों को वस्तुता अज्ञान समझा सकता है । अज्ञान एतानुभव ही दर्शन है और उनके विविध अवस्थाओं का प्रतिपादन विरोध या ज्ञान है । हे भगवन्तम् उभयोरप्योरी स्व स्वका का सम्बन्ध परिज्ञान कर उन्हें वस्तीन हो ।

आत्म निरीक्षण गुण का साधन है । स्वयं की भूष पहिचानो । अपने वहाँ हो ? वहाँ रहना चाहिए या ? और किधर रह रहे हो ? यह विचार करो । अज्ञ के गुण दोषों की आलोचना करने से आरम्भ प्रयोजन ही बना है ? आपको अपना विचार करना है । स्वयं निर्णय बनो । आदमी स्वच्छता में पर के विकार सलजने लगेंगे । आपकी प्रभा से उन्हें भी गुण रूप होने का आलोक मिलेगा । आप पर के दोष निरीक्षण में लगे रहे तो जीवन समय समाप्त हो जायेगा पर दोषों का पार पा नहीं सकोगे । आपने सुधार की प्रक्रिया ही नहीं की फिर मना बननाइये तो आपको क्या मिला ? कुछ नहीं । कोरे रह गये अपने तो । यदि कोई अरराध करता है तो उमका फल तो वही भोगना । उसकी बिता हम क्यों करें । अर भाई ! आज आप साधु समीक्षा में लग्न हैं । अहनिश इसी स्वप्न में डूबे रहते हैं कि किस सन्त में किधर क्या बर्मा है उसको बसे प्रमाणित करें । दुनिया को बसे विधायें उस बसे बतायें ? किस प्रकार उसे माग पर साये इत्यादि विचार तो करिये आप में कितने दुगुण हैं । वे क्यों आये ? बर और किस प्रकार आये ? क्या इ हैं हृदय से लगाऊँ ? त्याग दु या ग्रहण करूँ ? ग्रहण करने में क्या-क्या क्षति होगी और परिस्थान करने में कितना क्या लाभ है ? इन प्रश्नों पर विचार करते ही अरके समझ एक सद्धी नीच अवगुणावली छिब जायेगी । असत्य दोष आपके प्रत्यक्ष होने लगेंगे । आप अनुभव करेंगे कि मैं अभी मनुष्य भी नहीं बन पाया, गृहस्थ भी नहीं बहलाने योग्य है श्रावक की तो चर्चा ही भूष है पञ्च पाप छूटे नहीं सप्त व्यसनों से नाता तोडा नहीं अधक्य का त्याग नहीं समय की छाया नहीं आचार विचार पवित्र नहीं सामने पतन है घोर घातना है मृणा की भट्टी जल रही है । भोगों की बाछा बढ़ रही है । विषयों की बाह बाह

ही घटक रही है बेचन हो रहा है अतृप्ति का तांता लगा है फिर भला किस प्रकार आप सत्ता के माग दशक बन सकते हैं ? आपको स्वयं नेता चाहिए । मोक्ष मार्ग निर्देशा चाहिए और उसकी जिता छोड़कर भागदशक की समीक्षा करने बैठ जाएं तो क्या इससे आपको संपत्तता मिल सकती है ? आपको उसकी बेचनी क्या ? अवश्य मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्ग के बल पर असंख्य भावों को पार देता है । उसके उद्देश से अनेकों भव्यारमाण अनादि ससारोच्छेद कर निर्वाण प्राप्ति कर लेती है । वह यथा तथा ससार में ही परिभ्रमण कर भटकता रहता है । उसने द्रव्य लिंग को मोक्ष माग समझा—अपराध किया तो बाधन किसे हुआ ? अपराधी को दण्ड भोगना पडा न कि उसके निर्देशानुसार चलने बाने भव्य भोले प्राणियों का । उन्होंने तो उसके माध्यम से अपना काम सिद्ध कर लिया । क्यों ? क्योंकि उन्हें अपने कल्याण की अभिलाषा थी न कि उसके सुधार का । अपनी भूल मिटाओ । अपना काज समाता । अपनी गठरी देखो । कितना असली और कितना नकली मान उसमें भरा है । अपनी को रख नकली को निकाल फेंको । यही आपका साधकता पुरुषार्थ होगा । आपको श्रावक बनना है श्रावक धर्म का । उपदेश सुनो साधु धनता है यतिमाग उपदेश सुनो । उपदेश जिन बाणी के आधार पर है । जिनबाणी सत्य है जीवन्त है । उसके विपरीत यत्ना नहीं जा सकता—जायेगा तो फल भी पाये बिना रह नहीं सकता । परीक्षक कौन हो सकता है ? जिसको परीक्ष्य विषय का सर्वोद्भूत ज्ञान होगा । सोना की परीक्षा सुतार और हीरे की औहरी कर सकता है क्यों कि मुक्कण और हीरे का बाह्याभ्यन्तर दशाओं का उन्होंने परिचान किया है अभ्यास किया है । यदि आपने (श्रावक या गृहस्थों ने) संत और सत माग साधु और साधु धर्म का परिशीलन किया है उसे जीवन में उतारा है द्रव्य या भाव लिङ्ग का अनुभव लिया उसके आनन्द का आस्वादन किया है तो अवश्य ही आप साधु वग की बाह्याभ्यन्तर दशाओं किया बनावों आचार विचार आहार विहार की समीक्षा कर सकते हैं करने के अधिकारी बन सकते हैं । यदि आप उन गुण धर्मों में श्रूय हैं तो आपको समीक्षा का अधिकार नहीं है । उन्होंने बाह्याभ्यन्तर प्रयोग को सोन दिया निगम्वर मुक्त में आपका पथ प्रदर्शन कर रहे हैं । आपको मुक्तिपथा रुढ़ में लगे हैं । सम्भव का धून बीज दया करणा रस आपकी दीन दशा पर सरस बरस रहा है । आर क्या इनकी चर्चा कर सकते हैं अरा नग्न होकर ही तो देखो बाजार में एक दान की नग्न हो जाइये घर में हो जाओ । अरे जाने दो बाप रूप में ही छिड़की बिना लगाये रिहाइ बन बिये बिना नग्न हो जाइये तो । फिर देखिय आप अपनी भांडी हृत्प की छहकन पहरे की दशा शरीर की अवस्था मन की व्यापकता होती है । आप स्वयं अने ही सहन करने को समर्थ हो सकते हैं क्या ? पसीना पसीना हो जाइयेगा प्रकम्पन चाबू हा जाइया । समानता में समर की मोमा है । समबदरक में मंत्री है । समभावों में एक दूसरे का ज्ञान है । समान अर्थों में प्रतिन्दता है सार सभी निकलता है ।

[illegible]

इत इत्य वेद-गम्यादि की बहुत व्यवस्था नहीं पढ़ने पर शास्त्रिक सम्प्रदाय प्राप्ति की ओर उन्मुख हो रहा है। सभी शास्त्रिक ने पढ़ना नहीं हिम्मत समझ कर प्रहृति का देण करके का अग्निम समय प्राप्त कर लिया। इन भूमिका में अनेक वेदा शास्त्रिक सम्प्रदाय करता ही है। जब तक सम्प्रदाय प्रहृति का नाम नहीं होगा इत इत्यवेदक कहलाता है। यह शास्त्रिक शास्त्रिक का ही अन्त तर भव है इत्यदि यह सुनिश्चित होता है कि शास्त्रिक सम्प्रदाय शास्त्रिक से हो जाता है। उपर्युक्त ने नहीं। अनादि विद्या दृष्टि की ओर को उपर्युक्त सम्प्रदाय ही होता है। शास्त्रिक ने शास्त्रिक शास्त्रिक नहीं होता है। इत इत्य वेदक में अनेक नामों तीन करण कर परिणाम कर शास्त्रिक उत्पन्न करता है।

एक एक पुण्ययाम वर्ती परिणामों के असद्व्याप्त भेद होते हैं। जैसे मिथ्या दृष्टि मिथ्यात्व में रहकर इतने निम्न परिणाम बना लेता है कि नृबल सेव्या हो जाती है और उस आधार पर नवके प्रत्येक से पहुँच जाता है। वहीं मिथ्यात्व में इतने छोटे परिणाम हो सकते हैं कि इष्टन सेव्या रूप ही सातवें नरक में जा पड़ता है। इस सारतम्य को दृष्टि में रखकर विचार करने पर असद्व्याप्त सोक प्रमाण परिणाम भेद सहज ही समझ में आ जाता है।

सत्ता में बड़ा काम क्या करता है ? कुछ काम नहीं करता । जैसे बिना पावर का चरवा । आपने पाम चरवा है सतीप के लिए पर क्या उससे पदार्पविलोचन रूप काय विधित भी हो सकता है क्या ? नहीं होता । बस इसी प्रकार सत्ता स्थिति में प्रवृत्ति है ।

दशम निराधार निर्विधिता

म तो यह सदाय सही है किन्तु सिद्धावस्था में सविकल्पता कते हो सकती है ?
प्रकार स्वभाव से विद्यो में उत्पन्न भय धीर्य सिद्ध होता है उसी प्रकार विकल्प
ही बनता है । क्योंकि वस्तु स्वभाव किसी की अपेक्षा नहीं करता है और न तब का विषय

सरिसासरिसा दम्बे सदृश और असदृश द्रव्य में आरोप करना तदाकार और अतदाकार स्थापना कर्म है यथा कर्म रहन मदन बनाया, बोठों का नाम रख दिया अमुक २ कम बा। उनमें तब तब कर्म को स्थापना पुजादि स कर लिया यही तदाकार कर्म स्थापना है। कम किसी ने देख तो हैं नहीं कि जिने इ विम्ब समान उसका आकार बना लें। श्रुति गम्य ही विषय रूप से है। यही वस्तु स्पष्ट है। सालखें मरक का नारकी उत्पन्न होने के अनमहत काल को छोड़कर सम्यक्त्व पदा कर मरण के अन्तर्गत पहले तक सम्मृष्टि रह सकता है। चारों गतिवों में सम्यक्त्व हो सकता है परन्तु चारित्र्य मनुष्य पर्याय ही में प्राप्त होगा। प्रवचन सार

ओ जाणदि अरहत गुणरथ पपत्थ ॥ ८० ॥

अरहत भगवान की अंतिम अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय हैं। दण मं चेहरा दीखता है। ओर उस पर लगे धब्ब भी दिखायी पड़ते हैं। मान लीजिय अरह न भगवान की प्रतिमा भी दण है। इस दण में देखन वाले को चेहरा नहीं आत्मा दीखती है। आत्मा दीखता है तो उसमें लगे धब्ब भी अवश्य दीखेंगे। जिन दारों को सुझाकर दशक भगवान बन सकता है। इसलिए आचार्य कहते हैं ओ यशपति अप्पाण ओ यशपति अरह त सो यशपति अप्पाण इत्यादि।

सुवर्ण चाँदी आग से पिघलते हैं। गरमी से पिघलते हैं परन्तु सभी गर्मों से जब पर्याप्त गर्मी मिल जितनी गर्मी चाहिए उतना ही ताप मिलेगा सभी गल सकता है अथवा गरम तो हो जायेगा पर गल नहीं सकता। इसी प्रकार भगवान की भक्ति रूपी ताप से हजार अजस्र कर्म गल सकते हैं किन्तु भक्ति उतनी होनी चाहिए जितनी आवश्यक है। भगवत्पद स्वामी ने भक्ति की पर चन्द्र प्रभु ही क्यों निकले क्या अथ भगवान के प्रति उनकी भक्ति अपूर्ण थी कम थी? क्या उनकी दृष्टि में भगवान के प्रति कमोवेश का भाव था क्या? नहीं सभी अरहनों के प्रति अकटव धड़ा है भक्ति है किन्तु वे भक्ति के परमाणु अथ अभी पूरा नहीं हुए जितनी भक्ति बल चाहिए वह चन्द्रप्रभु तक पहुँचने पर ही आयी पूरा हुयी। इसीलिए चन्द्रप्रभु भगवान ही प्रकट हुए। यदि यह भक्ति इससे पूरा हो जाती तो वहाँ भी यह कार्य हो सकता था।

किसी गोल मकान का एक दरवाजा है उसमें एक व्यक्ति जिसकी छाँवों पर पट्टी बड़ी है जो बाहर निकलने की इच्छा से घूमने लगा। दीवाल पकड़ कर चला। दरवाजे पर आया दीवाल से हाथ उठाया आगे बढ़ने को टटोलने के लिए पर हुआ यह कि उसी छान छिर में खज्जी उठी और हाथ खज्जी में पहुँच गया दरवाजा भी छू गया और फिर हाथ वहाँ आ गया दरवाजे के आगे दीवाल पर। इस प्रकार बार-बार होता रहा। चाह कर भी न निकल सका। इसी प्रकार यह मनुष्य भव

रूपी एक दरवाजा है इस सप्ताह घोर तमोच्छन्न कमरे से निकलने का। इस अवसर को विषय भागों की चाह रूपी खूजली मिटने में गवाँ लिया तो फिर छूटा हो छूटा है। पुनः वही भ्रमण शक है। चारित्र्य धारण कर पार होना चाहिए यही इसकी सायकता है। मानव जीवन असूत्र्य निधि है। पाना ही दुलभ है और पाकर सो गई तो और दुलभ है।

आपने दण्डन में चहरे देखा। चहरे पर दाग लिखा लिया। उम दाग को छुड़ाने के लिए दण्डन को उगली से रगड़ने लग तो क्या वह दाग दूर हो सकता है? कभी नहीं। हे आत्मन् तू विचार कर अरे दाग चहरे पर है न कि दर्शन में। यथा स्थान प्रयत्न साध्य होता है। ठीक सही पाठ पढ़ कर चहरे को रगड़ना तो शक छूटेगा। दण्डन तो माग मात्र दण्डन है दर्शन दिया अब उसे छुड़ाने का प्रयत्न या पुनः पुनः तुम्हारा सही होना चाहिए। निमित्त साधन या व्यवहार निमित्तक या निमित्त का सहायक है परन्तु उचित दाग यथावसर सही प्रयोग किया तो सिद्धि करा सफाई है अन्यथा नहीं। ज्ञान प्राप्त किया। जानी बना। ज्ञान का प्रज्ञा बना लिया—मात्र धोकर स्वच्छ कर लिया। स्वच्छ ही नहीं किया उसे बना भी बना लिया। अब प्रयोग करना है कहीं कम और आत्मा के पथकरण करने में। ठीक सही सचि पर बार हुआ तो शीघ्र अतमूह ही में दाग भाग हो जायेंगे। चूक गया तो फिर क्या होगा एकत्र विपरीत हो जायेंगे। हे भगवन् तू भगवन् विज्ञान जड़ चेतन की पक्ष धारण कर। यदि नहीं होगी पहिचान तो क्या हानि होगी? एक दृष्टान्त स्पष्ट कर देगा इस विषय को। एक सठ्ठी प। उनकी परम भक्त सती शीलवती परम चतुर पत्नी थी। सठ्ठी विषय सम्पत्ति जलम अत्यासक्त थे। पत्नी विदुषी भी थी। उसी प्रतिभे की विषयसक्ति से मुक्त करने का उपाय सोचा। वह आने वाली बड़ी के यही रूप और उसमें सती आने माग जीव को पुनर्जीव बनना ला। रात्रि में एक दिन उस पुनर्जीव को चेतन पर मुखा दिया स्वयं छिप गई। प्रतिभे आये देखा दूसरा ही नाटक है विचार मरी पत्नी प्रतिभे मरी प्रतीक्षा में बाध जोड़नी रहनी भी आज क्या बात है सम्भव है बीमार हो गई है क्यों जगाऊँ। धीरे से पलक पर जा पड़। विचार आया मरी प्रतिभे प्रतिभे मरी पक्ष दबानी थी आज रण है तो चेतनी में ही दशा हुई। बग उठे और चार उग्र पक्ष दशान मने। पत्नी ने अवसर पाकर प्रवेश करने ही कहा क्याबी पक्ष क्या कर रहे हैं? तो चोखा अछा यह क्या मुख मुख टगा मुखन। पत्नी बाकी मैं नहीं टगा आज ही ज्ञान को टगने आज आज विषय प्रकार इन जड़ की सेवा कर रहे हैं उनी प्रकार क्या मर जड़ रूप इस जरीर का सेवा नहीं करना? पत्नी अज्ञान है भूल है। भूल समझा विचार दिया विषय भाग नरवर है रण रण के मुख के कारण है मुख स्वयं ही है। विरक्त हा बने। मुनिवरको म गुरु कर देता धारण कर ली। भद्र विज्ञान जग तो मनेव के रूप प्रज्ञा है। विज्ञान धारण का धारण माने उमर धारण का भाव नहीं हो

सकता। समार चित्र अनोखा है—कोई बीमार हुआ, औषधि लेता है वच ने पिन का आश्वासन दिया रोग ज्यों का त्यों रहा। तब उससे ऊब जाता है। अरे अब दूसरा इलाज करना चाहिए। घना जाता है उसकी दवा दार छोड़ कर। किंतु आश्चर्य है चाहु दाहु रोग शमनार्थ रात व दिन विषय भोग खी औषधि सेवन कर रहे हैं हम लोग। पर रोग मिटने के स्थान पर बढ़ता जा रहा है तो भी उनके प्रति उदासी नहीं आती विरक्ति नहीं आती? बार बार उर्दों के सेवन को धुसे जा रहे हैं उर्दों में। यह भयंकर विहम्बना है। इन भोगों से उत्पन्न आकृतना रोग का उपाय विषय-सेवन नहीं अपितु त्याग है। बादिराज मुनिराज को कुष्ठ रोग हुआ त्याग और तप क बल से उसके शरीर मन में उम भयंकर रोग क शमन की शक्ति जाग्रत हो गई। यही हुआ श्री सतगुरुमार् चक्रवर्ती मुनिराज का। ह आत्मन् समार रोग बड़ा भयंकर मन्नामक रोग है न जान कितने भय भटक चके हो। निगो पर्वीय में १ अतमुहून मात्र समय में ६०१२ भय धारण किये। विभिन्न पर्यायपेक्षा ६६३३६ भय एक अतमुहून में धारण कर जमा मरा। विचार कर किना कष्ट सहन किया। फिर भी उर्हीं भोगों की ओर ललक नग रही है। यही धारज्जान है मिथ्या बुद्धि है विपरीत प्रथम है। गानी बनी। विभिन्न सम्बन्धों में निजस्व बुद्धि का त्याग करो। जहाँ बुद्धि में स्व और पर अम जायगा वस वहीं स्व में निवास हो जायगा स्व में स्थिर हुआ कि पर अनायास छूट ही जायगा। स्वकीय चान्द का अवबोध होने ही परकीय चान्द छोड़ने में विनम्र नहीं होता।

अज्ञात सिद्धांत के साथ कम सिद्धांत वस्तु स्वरूप प्रतिपादन का अद्वितीय साधन है। मकी सिद्धि उभयनय से होती है। शब्दोपयोग की भूमिका में स्थित साधु को निश्चय पचावन्धन आवश्यक है जबकि शुभोपयोग साधक साधु को व्यवहार नपावन्धन भी अनिवार्य है। शब्दोपयोग की भूमिका में विचरण करने वाले व्यावक को व्यवहार नग किना प्रयोजनीय है य् स्पष्ट हो जाता है। आचार्य श्री कुन्द कुन् स्वामी ने समय सार महाप्रथ ही २४७ को गाथा एवं २५० वीं गाथा में स्पष्ट करन हुए लिखा है जो जीव यह मानता है कि मैं अथ जीवों को जीवित करता हूँ या अथ द्वारा मैं जीवित किया जाता हूँ वह अज्ञानी है इससे विपरीत मानन वाला नानी है। क्योंकि किसी भी जीव का जीवन मरण उसके आयु कम के उन्म रूप रूने और न रहने पर आश्रित है। जब तक आयु क नियम है तब तक जीवन है और आयु कम समाप्त हो गया तो मरण है यही सत्य सिद्धांत है। इस पर यदि एकाग्र विश्वास कर लिया जाय तो हर एक को उच्छल निरकुश प्रवृत्ति हो जायगी। चाहु जो चाह जिसकी गन्त उठाकर भी अहिंसक बना रह जायगा हरित काया का निसकोच में न करेंग। म प्रचार भयंकर अवस्था हो जायगी। तब फिर है क्या? स्पष्ट है कि व्यवहार नग से एक दूसरे के मरण जीवन में निमित्त है। बिना निमित्त के नमित्तक की सिद्धि नहीं हो सकती। जो जिसके

निमित्त से होता है वह उसका कर्म कहा जाता है और करने वाला कर्ता। यही कारण है कि कर्मव्य बुद्धि से कर्मासक्त होता है। कर्मासक्त ने बंध और बंध से ससार समार से दुःख। दुःख से भीत मानव हिंगादि त्रियाओं से बचता है। पाप भीरु हो शुभ त्रियाओं में प्रवृत्त होकर शुद्ध स्वभाव पाने की चप्टा करता है। समयसार शुद्धोपयोगस्व माधुओं की अने ॥ से सिद्धा गया है। शुभोपयोग की भूमिका में परिपक्व साधु वहीं अटक कर न रह जाय। हमने लिए उन्हीं शब्दावस्था में स्थिर करने के हस्तु आचार्य श्री ने प्रयास किया है। यद्यपि उन श्री का यह सिद्धान्त उपकार भी शुभोपयोग है। इससे विन्ति होता है कि स्वयं अपने को स्थित करने के उद्देश्य भी हम महान विनिष्ट अद्वितीय य य का निर्माण किया है। स्वाम्त सुसाय" लक्ष्य आचार्यों का सर्वोपरि लक्ष्य है। हे साधो ? यन्मान युग में शुद्धोपयोग प्राप्त करना अति दुर्लभ है और उससे भी अति दुर्लभ है उस अवस्था में स्थित रहना। हाँ आप अपना लक्ष्य अवश्य उसी को पाने का बनाये किन्तु उसके प्राप्त करने के प्रयत्न में फिसल जाओ। इससे बचने को सावधान रहना उमसे भी अधिक महत्व पूर्ण है। आपन पर्वतराज की चाटी पर पहुँचने का लक्ष्य सुनिश्चित कर लिया अब एक टक लगाय ऊपर मुह फाड़े धौडने लगे और वहाँ पहुँचने की धुन में यह भूल गये कि माग में रोड काटे भाटे खाड चड़ाई उतराई आदि भी है तो परिणाम क्या होगा ? लक्ष्य पर पहुँचना तो दूर रहा पटकी की चोटों में बना हुआ सत्य ही विस्मृत हो जायेगा। इसी प्रकार शुद्धोपयोग की दौड में बेहोश उमस सा हो तरतम भाव त्रम रूप मार्ग पद्धति का विचार न कर एकाएक उसे पाने की चप्टा करेगा तो सम्भव है कि माग न्युत हो शुभ से हटकर अशुभ रूप गर्त में जाकर पड़ जायेगा। शिखर की अपेक्षा रसातल में जाकर पड़ जायेगा। हे साधो अपेक्षा समझो। निरपराध पुष्पाय कार्यकारी नहीं हो सकता। सापेक्ष किया ही सफल होती है। अस्तु सत्य व्यवहारपूर्वक ही निश्चय की सिद्धि हो सकती है। हाँ व्यवहार अवस्था परिपक्व होने पर जिस समय निश्चय में साधक काम रखेगा उस काल व्यवहार स्वयंमव दशक बना वहीं पर स्थिर खड़ा रह जायगा। उसे प्रयत्न करने का प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर तुम्हें तुम्हारा साध्य सिद्ध करना है। साधन सही बनाये रहो साध्य तो मिट हो ही जायगा। शरीर बराग परमावश्यक है परन्तु शरीर व माध्यम से ही बराग पुष्ट करना है। यह भूत है। भत्ता देना ही होगा जा ले त्रिना ले ले दो परन्तु काम लेना मत भूलो। काम लेने में कमी रखी तो समय तो तुम्हारा काम सिद्धि नहीं हो सकता। यही सत्य बनाकर तन्तु सार पुष्पाय परमावश्यक है। पुष्पाय हीन लक्ष्य सिद्धि नहीं हो सकता।

तत्त्व विवेचना अनिवार्य है। मू म वस्तु स्वरूप का अनुपपन्न करने से मन एकाग्र होता है। नित्र की भूल पकड़ में आती है। भूल परिणाम से उसका परिहार

होता है और सब होता है आत्म परिवार । आत्म भी एक तत्त्व है जिस पर सब खड़ा है जज्ञ लगा है खड़े और । यह जज्ञ भी तत्त्व है खड़ा है । जिस प्रकार यह भी एक तत्त्व है आया है जिस प्रकार रुखा है कसे टहरा है कसे जाया है कसे और पूरा हटेगा कसे ये सब भी तत्त्व हैं । इन तत्त्वों के मध्य उत्पत्ता है हमारा स्व तत्त्व । आत्म तत्त्व जो निकल कर हो जायेगा परमात्म तत्त्व पाने ही जिसे हम बहुलायेगे अजर और अमर । यही है शिव मोक्ष । इस तत्त्व की प्राप्ति करने के लिए हमें सभी तत्त्वों की गवेषणा परमावश्यक है । स्व जाति और पर जातीय तत्त्वों को समझकर ही उनसे भिन्न निन्न का छोत्रकर निकास जा सकता है । अयथा नहीं । आत्मा विदाकार विमय है । धृतराष्ट्र की भूमिका म बड़ा चेतन अपने ही अकराध से बंदी बना है अपनी ही भूल सपत्तने पर स्वयं उनका परिहार कर भयन मुक्त हो सकता है । कम इसी प्रक्रिया का नाम तत्त्व गवेषणा है स्व का अवयवण है स्वात्मोत्पत्ति का पाना है । स्व सवदन के बिना आत्म रख नहीं जा सकता । स्वाद खसे बिना पुरुषार्थ नहीं जाग्रत हो सकता । पुरुषार्थ (सम्यक् चारित्र्य) के अभाव में आत्मतुष्टि कहीं ? स्व स्वभाव परिज्ञान कहीं ? और उसके बिना आत्मा का पाना भी किस प्रकार हो सकता है भला । अस्तु तत्त्व कर्षा मान्य मनोरञ्जन का साधन नहीं अपितु मनो निग्रह का सफल प्रयत्न है । मन का सयमन होने से बचन का और बचन निरोध स काय का निरोध सरसता से हो जाता है । हे आत्मन् शम दम नियम और परिष्ठा नार्थ तत्त्व विवचना में हर क्षण रत रहो । कम सिद्धांत की जटिल मूर्तियों को समझो । निष्क और समय प्रवृद्ध की काय प्रणाली का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करो । आत्मा इन्हीं दोनों के बीच उत्पत्ता है । कर्म मोक्ष आत्मा की सधि का परिधान करो । प्रज्ञावैद्वी से छेद भन्कर आत्म तत्त्व को ज्ञाता किया जाता है । यह तो सही है परन्तु सधि का ज्ञान हुए बिना वाय यम का तन हो गया तो क्या होगा ? विपरीत जन्य हो जायेगा । पाने के स्थान में छो जायगा । इस परिस्थिति में आत्मा का परमात्म स्वरूप कम उत्पन्न हो सकता है ? हे साधो ! साधना का सदैव समझो काय कारण भाव साधो साध्य साधन की माध्यमता में अपने स्व स्वरूप को पहचानो । पहिचान के बिना पाकर ही ग्रहण नहीं कर सकोगे । पुन छिटक गया तो फिर कहीं पाया जा सकेगा ? भला विचार तो कर । मूख मत बन । मनत जाग्रत रह कर अपने को समझने का सकल उद्योग कर ।

जीव न असंख्यात लोक और अनंत लोक प्रमाण अध्यवसान परिणाम है । इनकी रचना सयोग मूलक है । मोह और योग के सयोग स जाव विविध भाव करता है । कषाय अनुरञ्जन स योग प्रवृत्ति में नानास्व प्राप्त होता है । यह योग प्रवृत्ति कषाय मिथिन हो एह एह वर्गीकृत भावों को भी असंख्यात रूप परिणामाती है । प्रथम सयोगी दशा का नाम सवगवाणी में गुणस्थान रख १४ मार्गों म उनका वर्गी

करना दिया है। गुण एक एक का में कणायों से मिलत योग प्रकृति की संज्ञा लेना नहीं है। जिन्हें ६ भागों में विभाजित दिया है। कृष्ण नील काशोप, पीत पद्म और शुक्ल। इतना तरंगम भाव भी अर्गन्तान लोक प्रमाण है। एक एक गुण स्वान में छहों भी तरंगम भाव से पायी जाती है। यथा प्रथम निष्पात्य गुण स्वान इत छहों का बहान करना है। एक एक के परिणामों का गुणमीकरण करने से अन्तम ज्ञानयोग प्राप्त होते हैं। शुभाशुभ रूप में छहों दो भागों में विभाजित दिया है। प्रथम गुण स्वानी निष्पात्यो मन्त्र तम कणायों का धारण कर मन्त्रावाक्य रूप निम्नर भोग घर कर ज्ञान सहाय रूप निम्न भाव मार बहान करना हुआ। तबसे प्रथमक पर्यन्त दोड़ मगाकर पहुँच जाता है और गुण स्वान भर रहकर कृष्ण लेना के चरम अगम भावों में विवरण करता हुआ ७ वें तरंग में जा विराजता है। एव ही गुण स्वान में रहकर १३ रात्र की बीई यात्रा कर लेता है। यह महा विमयकारी परिणति है। बनिर्व समानी नहीं अत्यन्त के नि निग प्रसार इत प्रसार होते होंगे परन्तु बीर जिन काले म इनका एक एक अग परमाण मात्र स्पष्ट और मही शक्कर रहा है। हे मन्त्रात्म इन सूक्ष्मतम भावावसी का परिज्ञान करने की योग्यता लेरे अन्तर भी विद्यमान है अन्तर्बन छोलने का प्रयास कर। इन सङ्घियों को यादगा है तो इनका परिज्ञान भी परमावश्यक है।

आनन्द अनेक है विषयानन्द भोगानन्द उपभोगानन्द श्रीरानन्द हास्यानन्द जीवानन्द आत्मानन्द नमनानन्द दयानन्द तथा परमानन्द और परमात्मानन्द आदि। आनन्द मात्र ही सुख है क्या? विचारणीय तो यह है। जो पर निमित्तिक है वह सर्व हेय और त्याज्य है। जिसमे पर की अपेक्षा न हो स्वत जिसका आनन्द है उसी वस्तु के उत्सव हृदय तत्त्व से उत्पन्न हो वही सत्यानन्द उपादय भूत है। इस विषयानन्दक तवणा से विदित होता है कि आत्मानन्द और वही विस्तार की प्राप्त परमात्मानन्द स्वत उभूत केवल असहाय पूण स्वाधीन है। यही मही उपादेय भूत है। जहाँ तनिक भी परावनम्बन का लक्षण है वहाँ पूण स्वाधीनता नहीं। वह स्थायी भी नहीं। नक्कर स्व स्वभाव नहीं। स्व स्वभाव अभाव मे स्थायी आनन्द नहीं फिर भला वह सच्चा कैसे हो सकता है? हे साधो मन्त्रात्मन् विज्ञये आनन्द मे आ निकाल स्वा जाड स्वानन्द पाने का प्रयत्न करो। इसका सरल यथोचित उपाय पर का सयोग त्याग। बाल कोटि अप्रमाण मात्र भी अपना न समझ। इस समझ को बुद्धि म जड लो और प्रज्ञा की तीक्ष्ण धारा से पूव सचित सम्बन्ध की सधि पर डालकर दो भाग कर डालो। अपना ही अपना रह जायेगा। बस।

मनुष्य पर्याय म सर्वोत्कृष्ट मनोबल उपलब्ध होता है। मन का विनाश उपयोग हेयोपादेय वस्तुव्याकृत्य का विवेक करता है। बुद्धि व्यवसाय मन की सामर्थ्य से वृद्धिगत हाता है। मन की विगुद्धि से वचन और काय की भी निर्मलता होती है।

चित्तका मनोबल जितना समर्पित होता है उतना ही वह एकाग्र चित्त वृत्ति करने में समर्थ होता है। एकाग्र चित्त होना ही ध्यान है। ध्यान ही कर्म निजरा का एक मात्र उपाय है। ध्यानी तपस्वी होता है। इसीलिए तपसा निजरा कहा है। ध्यान और तप का अयो-याश्रय सम्बन्ध है। ध्यान गति पुत्रक ही होता है। तभी न नानी के शल माहि त्रिगुण से सहज टरें ओ।" यह सिद्ध होता है। कोरा ज्ञान कम निजरा का हेतु नहीं हो सकता। ज्ञान के साथ चारित्र्य होना चाहिये। चारित्र्य तप ही है। तप के बिना कोरा चारित्र्य क्या काय साधक होगा है ? नहीं। निष्कण स्पष्ट है मन बचन काय को एकाग्र कर ध्यान करना। समयपूर्व तपश्चरण करना मुक्ति का हेतु है। तप समय से ही शोभा प्राप्त करता है। इन सबके साथ सम्यक्त्व होना ही है। मनोबल के प्राकट्य से सम्पूर्ण चारित्र्य सिद्ध होती है। हे मध्यात्मक बीम जाग्रत करने के लिए मनोबल-दृढ़ सकल्यो बनो तभी तुम्हारा महावत यथार्थ फल मोक्ष का साधक होगा। मोह और शोभ से रहित परिणाम ही सम भाव है। मोह से अभिप्राय तत्त्व विचार शून्य परिणति। मोह का अप मुग्धा विवेकहीनता। मोही का विवक सुप्त रहता है। यथा नशा पान करने से ज्ञान विवृत हो जाता है विवक प्रच्छन्न हो जाता है। वह आवे को भूल जाता है। अपने को न समझने से पर को भी नहीं समझ पाता है। अथवा यथा तन्ना स्व और पर को मानता है। उसकी दृष्टि में किसी भी पदार्थ के प्रति स्थये नहीं जन्म पाता उसी प्रकार मोही मानव भी तत्त्व परिणाम विमुग्ध हो जाता है। आत्मा को पर और पर को आत्म रूप मानने लगता है। पर के साथ अपने सुख-दुःख का नाडा जोड़ता है। विविध कल्पना जालों में अपने को ललझाकर कष्ट उठाता है। सत्य माग न पाकर भटकता फिरता है। मन तन नाना मानियों में ८४ लाख योनियों में पथ भ्रष्ट हो भटकता रहता है। ३६३ पाषण्डों को आत्महित साधक समझकर उनमें ही ललझ जाता है। एकान्त पदा पकड़कर हर क्षण उनकी ही तरफ़दारी कर अशुभ अमर्द निरर्थक परिणाम करता जाता है। यह है मोही अज्ञानी जोष की दुःशा। आत्म स्वका बिद् स्वभाव के परिवर्तन बिना आत्मा अपने निज रूप में था नहीं पाती है। ठहर नहीं पाती स्थिर नहीं हो पाती। फिर भला स्व स्वकय कैसे मिले ? किस प्रकार रहे ? क ? ठहरे ? हे भाई मोह की आदर उठार कर फेंक। घुरका फेंकने पर सुन्दर कामिनी दृष्टिबोबर हानी है। बाँवली फेंकने पर सर्पराज जिस प्रकार प्रत्यक्ष होते हैं उसी प्रकार माह का लाना-आना राख हेल घुर करते ही आत्ममाराग करने स्व स्वकर में परिणित होने लगेगा इसमें शङ्कह नहीं।

दृष्टि है एक गुण विषय भेद हो होय॥

विषय भेद वेतन अवेगन रूप हो होय॥

बोनों का लोभोप रूप विषय बदरङ्ग होय॥

विचरीत विषय पाय दृष्टि भी विषय होय॥१॥

कोनों ही जगह गये शिष्या सब करि लये ।
 वेदों को अङ्ग बना मानकर श्रम करे ॥
 अङ्ग को लयेन भाव श्रम से उत्तम करे ।
 गङ्गा के जल वही वेदों विमान करे ॥२॥

मनि घम बना करो रागी में नने करे ।
 बान्धु में मोर देखे भोगों में कूब परे ॥
 संसय से दूर भागे वारों से प्रीति करे ।
 अरु तप न लेक चाहते सुखा की चाह करे ॥३॥

आत्मा को जून जाय घर में ही भाव मान
 राग द्वेष सेर अथ पाये कहें भाव मान
 कलश उलझा वरे पतिपत्नी की राह जाहे
 निज की वितारे मन बौड़ बौड़ वही भाव ॥४॥

हुमा क्यों-विचारों ऐसा शान्त हो ?
 मोह महरा का सारा खेन शान्त हो
 राग द्वेष मोह मित्र रयागो उरसाह से
 शान दीप जले तो अज्ञान हटे भावकी पहचान हो ॥५॥

॥ • ॥

आत्मा को शोधन करो । क्यों क्या छोड़ी बनें ? बाह जी अच्छा कहा मुझी
 महाराज मनुष्य पर्याय उत्तम कुल उत्तम गोत्र में पैदा हुए सर्वोत्तम धर्म पाया
 और आप हमें नीच छोड़ी का सुष्ठु कार्य बता रहे हैं । भ्रमा यह कैसे हो सकता है ?
 अरे भोले भ्रम्यात्मन् तू अनादिवासीन ब्रह्मा भाव का परिस्पाग कर शान्तिवित्त
 हो उत्तमता मत कर, तनिक गम्भीर बन । मरी बात वर्तमान मे बहुत अवश्य है किन्तु
 अत म विवाह बाल म अव्यक्त गुमचुर होगी । देखो महा तीव्र ब्रह्मा से आनुर
 रोगी ओषधि पीता है पीने के बाल म बहुत हाथ पर भी रोग निवृत्ति रूप बन
 बाल मे वह अत्यन्त रिय होती है । हे माई यही परिणाम छाड़ी मनन म है । तू सुन
 क्या छोटा है आत्म गुण निजगुण कवी वस्त्र का प्रणालन कर । वितसे छोड़ो । म
 शान्त हवी साधुन लो समरस नीर का सरोवर मरी स्वय अन्तरात्मा बनो । बहि
 रात्म युद्धि रयागो । बहिर शम्प ही कहना है कि तुम अपने से बाहुर ही अपनी शक्ति
 का उपयोग कर रहे हो । यह पर है । हे भ्रम्यात्मन् स्वार्थमत्त्व का परिणाम करो ।
 निजार्थ तरव को समझो स्व स्वकार का दशन करो । दशन बते होगा उत्त पर
 अनादिवासीन ब्रह्मा मल अपान मल और अविरत रूप कातिमा जस सदा जमी,
 हुई है उसे स्वच्छ करने में भव विज्ञान कवी छोडा साधुन ही समर्थ है । इस सोडा
 साधुन को केवल बनाने वाला समता रस है । यही जल उत्त अनादि कालिमा के

स्वच्छ करने में समर्थ है। हे साधो, शास्त्र स्थिर चित्त हो प्रज्ञाच्छेदी तयार करो। और उपयुक्त उपायों से निम्न रूप पहचान कर प्रज्ञाच्छेदी को बड़ी सन्धानी से बर्मे और आत्मा की सन्धि पर डाल दो वस तुम तुम और कम बर्मे का स्वयमेव प्रयत्न प्रयत्न हो जायेगा। यही संसारतोष रूप है।

सृष्टि के जीवन प्राण शत्रु है। जन्म में कला सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। नीतरायता और सरायता का सुन्दर साकार समन्वय गिर्य कला में अहित है। यह सत्र जीवन कला प्राण प्रतिष्ठा पा रही है। देवगढ़ सहाय खजुराहो क्षेत्र का पुगाउन बभ्रव दशनीय है। आत्मा का विकास ज्ञान जानना है तो हे भगवन् इन सन्धियों से बाधालाप करो। अपनी विधि उत्तम की उत्तमिष्टि चाहिए तो इन सन्धियों जिनविम्बों का सङ्गठन मुनो। इनके मनोम विम्बों की मुक्तान में अति रम्य मानव सन्धि साकार से रहा है। स्वानुभूति का गम्भीर और मामिक हनु यदि चाहिए तो इन प्राचीन प्रतिविम्बों से प्राप्त करो। यहाँ हमारी गोरव गाथा बिछी पड़ी है। अन्तरात्मा की अग्नि भूज रही है। आत्मा किस प्रकार परमात्मा बनता है। पुण्य का जन्म क्या है पाप का परिणाम क्या है? उभय रूप का जन्म क्या हो सकता है और उभयभाव का प्रतिक्रम क्या होता है यह इन बिहसते हुए सन्धियों में अनायास प्राप्त होता है। कलाकार की समस्त निर्मल पवित्र भावनाएँ पापान् प्रसन्नों में अङ्कित हैं। एक-एक मूर्ति में श्रुवार रस साकार हो उठा है। जिन प्रतिमाओं में शास्त्र रस प्रवाहित है। श्री १००८ शान्तिनाथ प्रभु के महा विनायक काय प्रतिविम्ब करण्य भावों का उत्प्रेक करने में पूर्ण सक्षम है। परम शास्त्र पश्य-विरसक आत्मा की कलक साकार हो रही है। राग द्वय भाव अनायास दशन मान सनष्ट हो जाता है। धृष्ट-नृपा की बाधा शमित हो जाती है। श्रम नष्ट हो जाता है। आत्म शांति वृद्धि होती है। शिखरों की छवि अनोखी है। अति मनोहर मङ्गल कलश सत्र स्वानि सागात् समस्त धारण के धूप घटों का स्मरण कराती है। सूक्ष्म कला पुण पापान् छत्र चमर जानो और चित्रकारी मानो प्रतिमान का धारण कर पधारी है। स्मारककला का अरपो स्वर्ण विनायक सोमा को प्राप्त हो चुका है। यहाँ (खजुराहो) की त्रिमयन कला अने पूर्ण वभव से प्राचीन आस्था, उत्तमोत्तम कला का प्रदर्शन कर रही है। द्रव्य क्षेत्र काम भव और भाव का सही उचित और योग्य उपयोग इन्हीं कलाकारों का है जिन्होंने अपने हृदय की भावावली को साकार कर प्रत्यक्ष कर मानव की क्लिष्टता योग्यता का परिवर्तन प्रदान किया है। नि रचना का सूक्ष्म सौन्दर्य यह है। शिल्पी की जीवन्त कला यहाँ प्रदर्शित हो रही है। आत्मशांति का स्रोत यह रहा है। अन्तरात्मा का प्रधान है। त्याग संयम शीत साकार हो उठा है। चर नियम की प्रतिमा मानो बन गई है किन्तु उचित कोटि की ति रकता है यह र नकलाही की भी मान कर लिया है इस पक्कीकारी ने। पृथ्वी का सन्तुष्ट भी इर र्त्त प्र रर भव बन हो गया क्या?

लेगव न भी जाय न नही ॥ ये श्वाभ्यां के बाधक हैं। दूसरे दिन हम
 बोला था न। वह नही सुनी वह उनके विधि का परिणाम हुआ। हमने
 भीतर ही है। भीतर भीतर में जान हो गया। हमने तो नहीं बोला है। हमने
 बहुत नहीं हुआ। जो ही जानने से रहा ॥ विचार में लागू हो रहा है। हमने
 वह कहा तो वो समझ गया ही का लेना। अब यही है तेरा स्वप्न है। दूसरे
 सामान्य विचार। विचार ही आधुनिक आधुनिकता में रहे। हमने ही जो
 धर्म-विचार को विचार का न विचार लकाव हो गया का प्रयोग कोमा वन वन
 राम धर्म में नर हो जायेगी। यही है विचार का वैभव। अन्तर्गत
 रहस्य। जान ही तुम्हारे को सुनकर जान ही तुम्हें जान रहा है। वह विचार
 है। अब तुम्हें भी देख ली जाती। सब ही तेरा हो जायेगा। फिर मैं विचारों
 के द्वारा जा लेता। यही है धर्म ही विचार। विचार ही धर्म है। तेरा धर्म
 और अन्तर्गत है। जाननी न ही समझना। अपने में रह। आपो को समझ।
 सार है। हमी में जान है। हमी में आगम है। यही है कर्तव्य। वो है सारा
 सार सब सारा का सार।

पराशर हो रहा है। एक ओर कोमों आ रही है। दूसरी ओर। वह हम
 है उनका ? क्या सकेत है उनका ? सोचो विचारो समझो मुनो उनका
 सकेत। आता आता ही सगर है। मुन और पुन का विचार परिणाम होता
 रहता है। प्रत्येक पर्याय धार्मिक है। जीवत इन नगर पर्यायों के समुद्र
 रहता है। इनके परिणाम का हमें है क्या ? क्या यही अन्तर्गत करता है।
 समस्त पर्यायों का निमित्त है कर्मकाण्ड। कर्मकाण्ड पर निमित्त पर्यायों में उन
 कष्टानुभव करता है और पुन-पुन उही विचारों में जाना। अन्तर्गत रहता है।
 अन्तर्गत व गहरे सस्कारों से पुन-पुन उही में पतता है। उही को अन्तर्गत
 है। उनमें ही रहता पतता रहता श्रुता अपना कर्तव्य समझ राम न नील
 है। फलतः निम्न को विमृष्ट कर लिया। अपना को भूल गया। आत्मा के विचार
 गया। स्वार्थ से अनभिज्ञ हो पराधुन हो गया। वह दुर्वृत्ति है। जीवत को
 स्वत ही अपनी दुर्गति में भरत हो रहा है। जिस में अन्तर्गत मुन में दुष्ट स्व
 पर की अनुभूति कर रहा है। इस साधो ! अब तेरा राज्य है। तू स्वाधीन हुआ है
 विषय वशाओ भोग विलासों पर आधिपत्य हुआ है। अब भा अपना कार्य नि
 नहीं करा तो फिर क्या करोगे। खूबा समय तो फिर न जाने क्या मिल। विदेह
 मिन हाथ में आया शत्रु यन्त्र निकल भागा तो पुन कहीं क्या पाया आ सके
 यह अनिश्चित है। अक्सर श्रुति ही भ्रष्टता है। अज्ञान है मिथ्यात्व है। आत्म
 यथाय करा।

धर्मधर्म का अर्थ है धर्म के सहायक कारण। धर्म धर्म का स्वभाव है।
 आत्मा वस्तु है। आत्मा का स्वभाव ही धर्म है। यही समय सार है। आत्मा धर्म

हो स्व स्वरूप में उपलब्ध हो समस्त मनों से रहित हो। मत ऊपर से निम्न हो
 ये तो नकार हैं। नकार उगार कर फेंक देना है बग घम स्वरूप आत्मा प्राप्त हो
 जायेगा। पुन क्या करना है? कुछ नहीं। भावों की परख करा मिथ्यात्व भाव
 और शुक्ल शेष्या एक साथ रह सकती है। भसा बाह्य चिह्नों से क्या परख करें।
 बड़ा अद्भुत सा प्रतीत होता है। किन्तु तो भी तारतम्य की अपेक्षा सूक्ष्म विचार
 करें तो प्रतीत होगा कि सम्पत्ति के साथ ही शुभ शेष्याओं का प्रादुर्भाव हो
 जायेगा। जहाँ चतुर्प से उनी तक गुणस्थान है वहाँ नियम से शुभ ही शेष्याएँ होती
 हैं। किन्तु जहाँ शम शेष्या हैं वहाँ ये गुणस्थान ही यह जल्द ही नहीं है। अर्थात्
 उनकी विषम व्याप्ति है। आठवें से तेरहवें गुणस्थान पर्यंत तारतम्य रूप से शुक्ल
 शेष्या होती है। यहाँ शेष्या और गुणस्थान की असम व्याप्ति है। अर्थात् जहाँ
 गुणस्थानों का सद्भाव है वहाँ नियम से शुक्ल शेष्या ही है और जहाँ शुक्ल
 या हो वहाँ ये गुणस्थान रहें यह कोई आवश्यक है। दिवंगा रूप कथन अवगम
 आगम का स्वरूप समझना चाहिए। भावों की पवित्रता अत्यन्त अनिवार्य है।
 प्रधान है। उनसे अधिक प्रधान है उन भावों की पक्क और उससे भी अधिक
 प्रता है उनका पाकर उनमें स्थिर रहना। स्थिर रहकर भी उनमें अलिप्त रहना
 योग्यायोग्य का निषेध कर अनुकूल भावों में अपने आपको लगाये रहना अपेक्षा
 से तटस्थ वृद्धि से।

जीवा समस्यते य येष वा त जीव समासा ॥

सम्पूर्ण जिनवाणी चार अनुयोगों में प्रविष्ट है। भगवान एक हैं, उनकी वाणी
 । फिर चार भागों में विभाजन क्यों किया? क्या भगवान ने चार प्रकार
 किया या? यह बात नहीं है विषय भेद अपेक्षा चार अनुयोगों में सप्रतीत है
 । जिन प्रभु का चार भाग रूप उपदेश है। वस्तु स्वरूप का प्रतिष्ठान एक ही
 रूप है किन्तु उसे सरल रीति से हृदयगम कराने भव्यो का उद्धार करने के लिए
 सर्वोपकारार्थ उसे चार भागों में संप्रहीन किया है। प्रथमानुयोग पुण्य पाप रूप पापों
 का निरूपण कथा साहित्य के माध्यम से करता है। ६३ शलाका के महापुरुषों का
 जीवन चरित्र किस प्रकार मुख्य-मुख्य के हिस्सों में झूलकर भटककर शुभाशम
 गतियों में गमनागमन कर स्थिर हुआ यह प्रथमानुयोग अति सरलता से स्पष्ट करता
 है। पुण्य-पाप के आधारभूत जीव तत्त्व पुण्य तत्त्व एवं अय आसव बन्धादि का
 भी प्रासंगिक निरूपण होता है। सम्पत्ति, ज्ञान और चारित्र्य धर्मियों के चरित्र विवरण
 में रत्नत्रय की प्राप्ति, वृद्धि समय तप ध्यानादि का भी नाति अल्प विवेचन होता
 है। शुभाशुभ कर्म प्ररित जीव जहाँ जहाँ जन्म मरणादि करता है उन स्थानों—
 सोर शत्रों का भी निरूपण इस अनुयोग में पाये बिना नहीं रहता। परिधान्त विवेकी
 जीव समयमात्राधना कर जिन प्रकार अणव मुख्य स्वरूप आत्म तत्त्व की उपलब्धि करने
 में समर्थ होता है यह भी इस अनुयोग में सुलसा रूप प्राप्त होता है। संनय म प्रथमा
 अनुयोग में चारों ही अनुयोग गमित है। प्राथमिक अवस्था में प्रथम इसी अनुयोग का

है। बाह्य निमनता बाह्य श्रद्धा शायिकी के सहज ही रहती है। पर तब दबा हुआ मोह राजा साक लगाये छिपा रहता है। उपमम धनी का काल अतमूहृत पूरा हुआ नहीं कि बट जीव को छेकेन लेता है फलत गिरता पड़ना पुन अपनी प्राचीन भात भूमि पर आ पड़ता है। यह ३ अनोखी दशा हम द्वा परम्परा मे जीव आत्मा को अपार कष्ट उठाने पड़ने हैं किन्तु यहाँ तक पहुँचने के बाद उसी भव मे दो बार से अधिक परास्त नहीं होता है और अनेक भवापेक्षा ४ बार से अधिक पराभूत नहीं होता है। ५ वीं बार अवय एक भवापेक्षा तीसरी बार नियम से अपने उद्देश्य मे सफल हो जाता है अर्थात् चार घानिया कर्मों का सहारे पर पूज जानी धनकर शेष कर्मों का नाश कर अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है।

आत्मा पुरुष और बाध की स्वतन्त्र सत्ता है। सबका भिन्न है फिर भला मेरा तेरा व्यवहार क्या? स्वभाव भिन्न है काय भिन्न है तो भी अनादि सम्बन्ध होने से दोनों का एक रूप व्यवहार होता भला आ रहा है। यह एवम्पना ही मानो निज स्वभाव हो गया है। यथा ज मा घ पुरुष ने घडा कभी देखा नहीं मात्र भी का घडा नाम सुनता रहा तो वह घडा भी का ही है ऐसा विश्वास कर बैठता है। वास्तव मे तो घडा भी का नहीं है अपितु मिट्टी का है परन्तु उसकी मानता में तो घी का घडा आ चुका है। जमी प्रकार जीवात्मा में प्रविष्ट बाध सयोग की धारणा दृढ़ हो जाने से वह इस सयोगी दशा को ही अपना मानकर व्यवहार करता है। उसी मिथ्य स्वाद को लेता है। मिथी दशा को अपना मान कर उसी में तल्लीन रहता है। मैं उस रूप हो हूँ ऐसा दृढ़ विश्वास है उसे यह है जीव की दुदशा। ह शानिष्ठ, अब अबसर आया है अतन्त पर्यायों मे भटक चुकर, सबत्र कष्ट सहे मुद्रा भास में रजायमान हुआ हो रहा है पर अम बुद्धि बस विपरीत परिणामन करता रहा है। अब अपने निज स्वभाव को पहिचानने का प्रयत्न कर।

प्रात खिरिमियों के प्रसार पूर्व ही छत्र वृद्ध कुहुकने लगते हैं उनकी पहच अविरल स्तुति रूप मे प्रारम्भ हो जाती है क्या प्रापना है भला उनकी? सध्या समय भी यही हान है भला इसका कारण तो अवगत करना चाहिए? हों विचारणीय है। प्रात उनका स्वर इसलिए मुखरित होता है कि रात्रि मे जमनावस्था मे हमने जो भी अनर्गल प्रकृति को है उसे भगवान समझ करे। साय दिनभर के कार्यों मे लगे दोषों के परिहाराय स्तवन करते हैं। दिन भर लड़त है बिना मासिक की आज्ञा के पर बन्धु का सेवन करते हैं भोजनानि भी इसी प्रकार लाते हैं। घोंठलाति के लिए लुणादि संघय कर परिग्रह पात्र भी करते हैं। शील समय विहीन जीवन है। निरुके साथ भोग किया इसका भी उन्हें ध्यान नहीं। मन है किन्तु उसका प्रयास मही रूप मे नहीं कर पाते। योग्यता नहीं हान स विवेक आग्रत नहीं हो पाता। तो भी वे परचाठाप करते हैं दुष्ट निवृत्ति के लिए ईश्वर भगवान की आराधना करते हैं। ह मानव सृता जानी है। दोषों को जान रहा है, समझ रहा है। उनकी अनुभूति भी

क्रोध क्या आया ? क्रोधकलाप भावनीय का उदय आता है। आया उन्हीं का जन्म आता चाहिए उसी राग रहा क्यों भी ? अरे कोई स्थिति और रसज्ञान का समर्थ नियुक्त होता है। तब सबको समान रहना चाहिए ? नहीं जिस समय क्यापायेव आता है उग जान म उसके रसास्वाद म क्रोध की जैसी अनुरक्ति या विरक्ति रहती है आसामी कामावधि पस्यान समय स्थिति आनि भी तदनुबन्ध निर्धारित हो जाती है। पुन अर्थात् काल समाप्त होने पर उसी के अनुबन्ध पम अधिक या कम अधिक समय या अल्पकाल तक प्राप्त होता रहता है। यह है रसोत्पत्ति अवस्था का क्रम। जिससे आपकी प्रीति है उसका काम करने उससे वार्तालाप करने आनि म आप अधिक से अधिक समय सपाने है। अवकाश नहीं होने पर मन-बन प्रकारेण समय निवासते हैं किन्तु जिसे अभिप्राय माना है उसका प्रति आप निरन्तर रहने हुए भी आना-जाना कर टाल देते उसके काय म सहाय्य ता दूर रहा और विपन्न हालते की व्यर्थ चप्टा करेंगे। इस धरो हान है क्यापायवसमायों का। जिनका स्वागत करा अधिक काल तक पम देते राग नहीं किया या अल्प किया तो तदनुसार फल भी नहीं देंगे और निया ता अल्प ही देंगे। तीव्र नहीं देते। सभी व्यवहारों म यी बात है और सभी भावों म भी यही भाव किया है।

दूसरी धान बाह्य निर्मित है। क्रोध आया, वह जिस निर्मित व आया बहु जितना ही शक्तिशाली होना नमस्तिव भी उतना ही शक्तिशुक्त रहगा। बाह्य कारण कई हो सकते हैं। मया—१ मान हानि २ अल्प शक्ति ३ विवर्धिकादृष्ट ४ मया चारी ५ सोमाधिक्य ६ अग्नि प्रीति ७ मन दोष ८ अशान्ति वातावरण ९ शासन विहीन सन्तान एवं १० व्यापाराणि में हानि और स्वकार्य की हानि इत्यादि। जिस समय मनुष्य क्याति प्राप्त अवस्था में कार्यारम्भ करता है और उसका सम्मान यथच्छ नहीं होता तो क्रोध का जन्म हो जाता है। किसी के साथ सुमनारम्भ किया प्रारम्भ की और अल्प या हीन शक्ति होने से परास्त हो गया अथ अप सपक्ष्य के कारण बदला से नहीं पाता तो क्रोधाग्नि की ज्वाला में झुलसने लगता है। शक्ति से अधिक श्रम करने पर विवर्धिकादृष्ट होती है और उस समय यदि किसी ने उसे सहयोग देने की चप्टा की तो अवश्य वह क्रोधराम का शिकार हो जायेगा। किसी का अहित कर कोई वस्तु ठगने पर उसने द्वारा उस ठगई के विषय में चर्चा वार्ता हुई तो वरु विवृति क्रोध म परिणत हो जाती है। मुख्यक पराई वस्तु अपहरण कर लेता है पुन मर्ष करने पर असत्य भाषण कर साम-लाल ओखें दिखाने लगता है। भयकर क्रोधा नम भडक उठता है। किसी के प्रति अत्याचारण होने पर यदि वह अपने अनुबन्ध नहीं चला तो अवश्य ही वह क्रोध का शिकार बनता है। राग के साथ द्वेष होता ही है द्वेष क्रोध का ही तो अकार है प्रीति का ही तो मुरब्बा है। किसी विशेष दग्धावस्था म मनुष्य अशान्त हो जाता है उग समय गुस्से से सुन्दर या उत्तम से उत्तम उपस्थ

उन्नति करते हो। पावर किस प्रकार बढ़े ? प्रभुता कहाँ से आवे ? नहीं आ सकती। यह है उपयोग की विविध धारा। ये विभिन्नतायें जिस क्षण आत्मा के ज्ञान में सुस्पष्ट होनी वह सावधानी से अनेक में एकीकरण कर अपना स्वरूप सिद्ध कर सगा। य विविध धाराएँ मिलकर नहीं अपितु मिसकर एक रूपकवल ज्ञान या स्वरूप हो जायेंगी। अपना स्वभाव उपयोग है यह तो सुनिश्चित है। देखा जाता है कि कठिन साध्य काय तो क्या असाध्य काय भी उपयोग की स्थिरता में सुलभ हो जाता है। शांत चित्त एकाग्र है यदि हम विचार करें तो बिर विस्मृत स्मृतिर्मा भी ताओ हा जाती है। यहाँ से अनभ्यस्त हिसाब आति विषय भी एकाग्र चिन्तन से सहज ही समझ में आ जाते हैं। उपयोग का सम्बन्ध बाह्य से मन के साथ मूला रहता है। मन शरीरस्थ है अतः बचन और काय से भी उसका (उपयोग) का पनिष्ट सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। इस स्वानुभूति में आत्मा अपने निज का आभास पाता है। एकाग्रता में आनन्द है सुख है शान्ति है यह प्रत्यक्ष देखन में आता है। किसी भी तत्त्व विषय पदार्थ के विषय में विस्मय हो जाती है देखा जाता है कि क्षण भर भी उपयोग की एकाग्रता कर विचार किया तो तत्क्षण उसका समाधान सोसवेदन हो जाता है। यदा-कदा प्रभु की भक्ति करत समय पूजा पाठ स्तुति स्तोत्रादि की बढ़ी या शब्दाणि बिरभूति हो जाता है—भूल जाते हैं बिन्दु-यों ही कुछ क्षण एकाग्र हाकर बैठ कि तत्काल स्मृत हो जाते हैं। यह क्या है ? उपयोग का स्थिरता और नियतता की शमता। उपयोग जिनना सबल और स्थिर होना हमारी स्मरण शक्ति उतनी ही तीक्ष्ण होगी और धारणा शक्ति भी उती अनुपात से दृढ़ शक्तिशाली होगी।

धारणा या पारणा दोनों का पनिष्ट सम्बन्ध है। धारणा मन की परिपक्वता है और पारणा मन का निर्माता है। विचार पुञ्जी का जहाँ विलयन किया जाता है। उनक गण दोषों का नवेयणा की जाती है उग हा हम धारणा कहत हैं। धारणा या का अर्थ ग्रहण करना या धारण करना है। प्राप्त वस्तु विचार भाव हा धारण निय जा सकते हैं अग्राम का मन्त्र। भाव विचारों का शुभाशुभ-अच्छाबुरा स्थानपान व अनुसार होना है। बाह्य द्रव्यों के ससर्ग से शुभाशुभ परिणति जोव की होती लाई है और आज भी हो रही है। इसे निवारण करने के लिए तत्त्व विचार धारणा और शुद्ध विचार पारणा परमावश्यक है। बिना इनक स्व स्वरूपोपनिष्ट नहीं हा सकती। इस स्वभाव की उपलब्धि के लिए हमें प्रयत्नशील होना होगा। ज्ञान और दान का हास संकलन परिणामों में विशेष होता है। संकलन भावा का उत्पादन अतिसप्र की दृष्टा है—पोपुता है बढ़ता है। जिनना बाह्याम्बर रहेगा विषय-कषाय-नास नाएँ उतनी ही अधिक बढ़ती जायेंगी, सकल विषय उतने ही उन्नत रहेंग विचार स्मरण धारणा शक्ति भी उती अनुपात से क्षीण होगी जायेगी। हे बभ्योत्तम तत्त्व परिज्ञान व निये धारणा शक्ति का होना परमावश्यक है। इसके निय दृढ़ गहन

होना चाहिये । अपने गवश में जो जिनका मुक्त, परमा मुनिचित रहेगा उसकी धारणा उतनी ही मजबूत होगी और आत्म विज्ञान भी उनी अनुपात में उपयोग होना चायेगा । स्वाभावित स्व स्वर्गोपलब्धि भी उसी प्रकार जायत होगी । वत नियम, यम मय दम की धारणा पालना बढ़ाना आदि में मुक्त मन्त्र अटल अवल रहना धारणा का फल है । आपत्तियों से बच जाना विपत्ति में घुसने देकर उन्ना उन्नयन परीक्षाओं में दौत निपालना कामर बनना धारणा का सहार करता है । मानवना से हटना है । स्व स्वरूप से गिराव कर गिरना है । यह कोई स्वामिमानी मत्त्वज्ञानी या परमात्मा का लक्षण या वक्तव्य नहीं । धारणा की पृष्ठभूमि पर आत्मानन्द के कुसुम बिल स्वातुष्टि का पराग बिखरे चिन्तन की सौरभ बिखरे और निघरे तब है मन्त्री धारणा का साथ फल । हमारी धारणा इतनी विशाल और सुलझी रहे कि स्व स्वभाव के सुख पर्याप्त क अतिरिक्त अथ कुछ भी राग द्वापा विभावों के दाग धब्बे तनिक भी न रहने पायें । यहो निर्मलता है । फिर दक्षिण अनन्त ज्ञान की अनन्त व्यापारियों में अनन्त सुख रूप वीजो ग अनन्तानन्द के कुसुम अनन्त शक्ति के विस्तार युक्त बिलों में । इनो भीनी गद्य में आत्मा मस्त हो चिरकाल मोन हो रमाव्याप्त करता अमरत्व को प्राप्त होगा और यथा तथा परिणमित रहेगा ।

अनादि सत्कारा से उद्भूत अम्यास के कारण यह ओष प्रथम ता शुभ क्रियाओं से भागता है । किरी तरह पुण्य प्रवृत्तियों का सचय हो भी गया तो उहे पचा नहीं पाता उन्नयन देना है । जिस प्रकार कुत्ता भी पी लने पर उस पचा नहीं पाना वलित कर देता है । इस प्रकार जीव भी त्रिधा का उद्भवन कहत है । शुनी हुई ११ प्रवृत्तियों में ही मन्त्र यम साम होता है । ४ प्रवृत्तियों हैं—१ सम्मन्त्र २ आहारक ३ अहंकार ४ वैजिघ्रिण भागोपाग ५ मनुष्य गति ६ मनुष्य गत्यानुपूर्वी ७ वैजिघ्रिण ८ वैजिघ्रिण भागोपाग ९ मनुष्य गति १० दव गत्यानुपूर्वी ११ उच्च गति १२ नियञ्च गति १३ तिर्यञ्च गत्यानुपूर्वी । अभिप्राय यह है कि शुभोपयोग में प्रविष्ट होने के लिए बुद्धिपूर्वक उतना ही उदाग करना होगा जितना कि अशुभोपयोग से गतन सावधान रहकर बचने का । जित काल अगुम का अशय अभाव और शुभ का पून परिपाक होने पर शुद्धावस्था में प्रवेश होगा । प्रविष्ट होते ही वहाँ स्वयम्ब स्वैव का जायका । उस स्वयं दत्ता में मान शुद्धात्मा ही दृष्टिगत होगा अथ कुछ भी प्रायश्चित्त की होया । पुन एक अपूर्व दृश्य चायेगा अपना शुद्ध स्वरूप स्वच्छ रूप में समझ आया नहीं कि समस्त सत्कार भी ज्ञानकन सतया । स्व और पर के ज्ञानकने में कोई बाधा नहीं होगी । तिसो प्रकार का यम न होया । उदात्ता न होगी अगिनु परमात्मक होया देगा । यह वही उन्नयन स्थिति में पहुँचने का मार्ग ही ज्ञात होगा । अथ कोई उन्नयन प्रवृत्ति में सदा के म कद मरता है । ही यह कह सता है कि अनौदिक मुक्तानन्द अवस्था प्राप्त होगा शुद्धात्म दत्ता में ।

धातुवत् धन विचार करता जा रहा था। अचानक कास जगमग पगलान म छिन्न
 गई। उसका हृत्पथ म काम का दुर्भाव आ टकराया। उसने निश्चय कर लिया यह धाम
 मरी धातुवत् है। मुझ मुछी हाना है ता इस बाल्यापी हेतु का मूर्खोच्छन्न करना ही
 होना अथवा मुझ निराकुलता मझी आ सकती। अतः वह उससे आभूत उत्पाटनाय
 घट्टी मट्टी से सीकने लगा। हे जानिन तू विचार कर तरे आत्मस्वरूप का घातक कीन
 है ? राग द्वय माह ही स्व स्वरूप के धातुवत् है। जब यह निश्चय है कि आत्मस्वरूप
 के ये धातु हैं फिर क्यों इनका मचन कर पोषण करते हो ? अरे अज्ञान दशा म पोषा
 तो पाया परन्तु अब ता तू मुबद्ध है हेपोषायेय मनि समन्विन है। ह भोद अद्यात्मन्
 इन अवसर को व्यर्थ मच जाने ?। यत् राग द्वय भोत् से अविनिर्वाचन शरीर वृत्त तेरा
 भयकर धातु है यह मधुर शब्द-वैध से —वदयन्त्र म फमाने वाला महा निम्पी घोषबाज
 है। तू इसी का प्रथम मझार कर। अपना हेतु द्रव्यरूप है ये भी इसी में प्रच्छन्न है
 इसी के निश्चय म छत्र कर तरे अमर धन पर छावा कर रहे हैं। रोग और कष्ट को
 बझाने वाला का मझी हा मरता है ? कर्माणि नहीं। यह शरीर सबसे बड़ा रोग
 है। इसे मज पाली मच पोषा अग्निनु अह म उभूतन करने का प्रयास करो समार
 शरीर मोक्षों की वैराग्य रूप विरक्त भाव रूप मट्टा से इसका सेवन करो। तभी इसका
 नाश हो सकता है। अथवा नहीं। इस भाव का क्षयने में स्थायित्व प्रगन करो।
 स्वैग और निर्वैग की शक्ति को ब्रह्मन् नीर म चरो। नाताम्युनि से घर घर पान
 करो कृति होनी आयेगी। यह कृति जगत् गुन अकृति ही ही नहीं चरेगी। अर्थात्
 शरीर कृति आपकी गण्य होगी। हे आत्मन्। यह ज्ञान ब्रह्मन् घटान नहीं अथवा
 नहीं है अग्निनु तेरे स्वभावस्वरूप मझाने का ता का रूप ही बड़े है। फिर क्यों घटवत हो
 शीत ? अपने पर रहस्य करो कर ? रक्षा करो जाने से अपने को पान का प्रयास करो
 साधन ही करो। जगत् अह जैव-मम कम भी एक दार म पा पा लो कम फिर
 वह तुमसे घृष्ट मझी हा मरता। कम तुमसे हट मझी मरता। तुम ही वह रूप ही
 हो। कम मझी ना म है यह तो निश्च है मझी निश्च मुद्ध निश्चय। स्वस्व है।
 इसी को पाओ। ममार दशा की मुझारी है और म आक का भी अग्नि अवाहि से
 है। जब अवाहि बाल में मम दशा का घटन मझा है ता अह का घटवाने हो
 करार हुआ। दशा में ममको उस निश्चि पर रहना है जगत् अह जाने में ही निर
 हो जाओगे। इस निश्चि की कृति के निश्चि विरक्त दशा करार की परमावाक्यता
 है। आत्मा दशा को के विरक्तमम ब्रह्मन् दशा उगी से दशा मम म जी के निश्च हा
 मझा है। मम अवाहि को ह मझा मझा हो मझा है। इस ही दशा मझा है मझा
 इसने ही उसे मझा है।

विचारमय नहीं है। अथवा मझा है। यह विचार दशा मझा है ? हो
 विचारो मझा दशा मझा मझा मझा है। मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा
 मझा ही ही मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा मझा

अपनी ध्वनि सुन । अपना स्वर सुन । अपनी गूँज में अपने को छात्र । यही अवसर है स्व स्वरूप को पहिचानने का यही समय है । पूरा मतक हो जाओ । अपने में अपनात्व लाओ । स्व में प्रीति लगाओ । निज में निज को ध्याओ । कुछ न करो तो मत करो किन्तु अपने को मत भुसाओ । प्रज्ञा अँगना में स्नेह जोड़कर शिव सतति की वृद्धि करो । धूँरी फनो बड़ते चनो । पल पल प्रतिक्षण अपने ही में अपनी जाँच पड़ताल करो । विवेक रूप ज्ञान की छिहवीं ओर चरित्र की रोशनी में बिहार करो । तुम्हारा परिहार तुम्हारे में है उसे ही पालो पोपो सजाओ । वारो बस स्व में स्व ही दृष्टिगत होगा । हे भर्मा तू सबेरे हो अपना नकाब उगार फेंक बस अपना ही अँसनी रूप आपके समक्ष उपस्थित हो जायेगा । आज तक जिसको नहीं पाया उसे पाओ । जो नहीं मिला उसे खोजो । जो नहीं देखा नहीं जाना उस देखो जानो समझाओ ग्रहण करो बस यही एक मात्र तुम्हारा पुरुषार्थ है—वस्तव्य है । बस अपना सही पुरुषार्थ करो । जितना भी आत्म साधक पुरुषार्थ है वह समस्त शुभोपयोग ही तो है । शुभोपयोग में निष्कियता है, कृत कृत्यता है अथवा क्रियाश्री की शयता है । मात्र वहाँ एक स्वानुभूति है वह क्या और कभी है यह न कहा जा सकता है न लिखा ही जा सकता बस जो है वही है । क्या है वह तो पान पाल के ही अनुभवगम्य है । यह है आत्मा का अनोखा रूप अनौक्तिक क्षण अनुपम द्रव्य अभूतपूर्व काल और अरूब भाव । उसी का उपभोग करो जो आज तक उपयुक्त हुआ ही नहीं हो उसे ही भोगो जो अब तक भोगने में नहीं आया है । उस रस को चखो जिसे आज तक कभी चखा नहीं गद्य लेता है तो बिगानन्द की गद्य सूखी जिरका मधुर पराग आज तक तुम्हें मिला ही नहीं । वह देखो उमका अवलोकन करो जो अभी तक तुम्हारे दृष्टिपथ से रहा गुजरा हो तुमने जिसका निरीक्षण नहीं किया हो उसकी ध्वनि सुनो जिसका स्वर तुमसे अग्ररचित है जो तुम्हारे अन्तर में आ रहा है और तुम्हीं को सुनाई पड़ती है । यह समस्त उपक्रम तुम्हारा निज का वभव है अपनी निजी सम्पत्ति है स्व का पुरुषार्थ है अपना काम आग साधा सभी तो सद्य सक्ता है । अपना पुरुषार्थ आप करो सभी तो मिटि मिल सकते हैं । स्व कल्याण में लगा । आत्म साधना में मिटो । परमाय में विचरण करो । आ माराम बिहारी बनो वनी न भूय न व्यास न गद्य है न रस स्पष्ट शब्द वण । न जाना है न जाना न करना है न भोगना फिर क्या है अपना ही करना है एक मात्र शुद्धात्मा ।

‘पुरुष शब्द अपने में अनन्त शक्ति छिपाये है । पुरुष=आत्मा पते—सेवा करना अर्थात् आत्मा की सेवा करने वाला है पुरुष । सेवा तो करता ही आया है कर रहा है और करता ही रहेगा । परन्तु किसकी कर रहा है । आज तक पुरुष और पर जीव की सेवा में लगा रहा है । परन्तु पर रूप का उस मानियों में भटक रहा है । भ्रमण का भ्रम कारण यही प्रान्ति है । भ्रात धारणा के वश होकर यह जीव अपनी शक्ति पर में भी नगता घट रहा है । उन्हीं में आया मान रहा है । स्वयं को भ्रम

रहा है। पुण्य का अर्थ है आत्मा। आत्मा का स्वभाव है ज्ञान और दृष्टि। इस दृष्टि का परिणति अर्थात् ज्ञान है आत्मा भाव है अथवा गर्व परभाव है कर्ता—कर्म पत है जहाँ दृष्ट्य मोक्षद्वय परिणामन है अर्थात् सब पर है—असत् है भ्रम है नश्वर है अहितकर है ससारकर्तृक है कल्याणकर है। इस समस्त परेशानियों से रक्षा चाहते हैं तो अपने स्वभाव में आओ। कर्ता भी बनने की चर्चा बार्ता छोड़ो। स्ववर्तिन से सगमो। एक विचार जो सगम अधिक कष्टकर है वह है भूल को भूल न स्वीकार करना। अपराध को अपराध नहीं मानना। आ व्यक्ति नृत्ति को मान स्वभाव सेता है उसने अवगुण गदगुण में परिणमित हो जाते हैं। शनं शनं समस्त विना अविचार रूप धारण कर सामने आते हैं। यह है उत्तम उपाय। सन्तु अपनी पुण्य धोत्रते रहो और जानकर मानकर छोड़ते जाओ बस शीघ्र समस्त आत्मगुण प्रकट जायेंगे।

यस आत्मा को परतन्त्र बनाये है। पर कर्म शुभाशुभ रूप धारण कर रहा है। बाह्यदृष्टि में यह दो प्रकार का प्रतिभाषित होता है किन्तु यथायं में अन्तर्दृष्ट होकर विचारने पर दोनों समान हैं। इनके समानत्व को चार प्रकार से मिट कर रखे हैं—१ हेतु २ अनुभव ३ आश्रय और ४ उत्पत्ति। 'शुभ पुण्यस्याशुभ' वाक्य शुभ रूप विभाव परिणामो में पुण्याश्रय होता है और अशुभ रूप विभाव भावों के रूप अशुभ-नापासव होता है। शुभाशुभ परिणति दोनों ही शुद्धात्म स्वभाव से भिन्न औरत हैं। अत आत्मा में विचार होने की विभावरूप हेतु से आते हैं। कर्म सामान्यण दोनों एक ही हैं। निमित्त साधारण होने से दोनों में समानता है। पुण्य या शुभ का और भुर गति का भ्रमण कराता है और पाप अशुभ कम नरक और नियन्त्रण को आश्रय कर जीव को नचाता है। दोना का आश्रय है ससार ही। वस्तुनिष्ठ रूप ससार भ्रमणा दोनों के अभाव होने पर ही मिट सकती हैं। अन्त आश्रयानेमा शुभ शुभ कर्म एक ही प्रकार हैं। एक की अनुभूति दृष्ट विषयो में अनुरक्ति जाग्रत करती है तो दूसरे की अनुभूति अनिष्ट में वलात् प्रवृत्ति करा विरक्ति उत्पन्न करती है। राग द्वय दोनों ही ससार चक्र के कारण हैं। सुख-दुःख दोनों ही भाव-आत्म स्वभाव से भिन्न भाव परभाव हैं। अत अनुभवानेमा दोनों एक ही हैं क्योंकि दोनों ही अन्त स्वभाव से भिन्न हैं। उत्पत्ति की अपेक्षा विचार करें तो दोनों की जन्मभूमि एक ही है। दोनों ही जड़ रूप हैं। पौष्टिकत्व रूप रस गन्ध स्पर्श युक्त है जबकि आत्मा की स्वभाव सर्वथा इनमें भिन्न है। चारों हेतुओं से पुण्य पाप ससार के ही कारण हैं। ससारभाव का कारण तो बीतराग भाव है जो शुद्धोपयोग अय है। बीतराग समस्त युक्त ज्ञान और परिश्रम का तात् मोक्ष का कारण है। इस पक्षों की अपेक्षा पुण्य का सारा कारण अथवा शुभ कर्म के समान हेतु ही हो जायेंगे तब तो सर्वथा स्वायत्त ही है। किन्तु यह बात नहीं है। अशुभ का अभाव बुद्धिपूर्वक करने पर ही शुभ भाव आता है। शुभ भाव भी बुद्धि पूर्वक ही धारण करना होगा क्योंकि इनके बिना अशुभ

वहीं छूता । पुनः शुभ भाव पुण्य भाव शुद्ध भाव का साधक है हेतु है । त्रिस प्रकार मयन अघकार को धीर कर आने वाला उपाय का बंधन । यद्यपि उपाय कात का मुर मुग भी अघकार ही है क्योंकि प्रकाश तो सूर्योन्मूलन पर ही होता है परन्तु वह मोघुनि का छिछना बंधन ही प्रकाश का निमित्त है सहकारी है । उसी प्रकार अशुभ भाव कर्म धीर अज्ञान अघकार है और पुण्य शुभ मरग भाव अशुभ रूप साधककार को फाड़कर उत्पन्न होने वाला आत्मा की मरग परिणति है जो मानव के प्रयत्न से शुद्धात्म ज्ञान प्रकाश को उत्पन्न करने में समय पारण है । हे भव्य उस मरग समय ज्योति की चमक से अन्तर्ज्योति जलाओ । यह माद रघुना उसके प्रकाश का उपयोग करता उसने सामानात्म सेना तेरे स्व पुन्यार्थ पर ही निर्भर है । अनुत्पन्न भाव से सेवन करने हुए वह बीतराग परिणति की साधक होती है और आसक्त भाव हो गया तो रमात्मन म पट्टाचने में नेता बन जायगी । शुभोपयोग का झरमुटा भूयमुचया से कम नहीं है । यह अकम्पूह है जो कमर निबन्धना नहीं जानता वह मोत के घाट उतर जाना है । जो प्रवेश कर निबन्धना जानता है वह मुनिश्चित उस पार हो जाना है वह सोट कर नहीं जाना । आरपार हो जाता है इस पारावार के । शुभ भाव वह निश्चिच्छद तरी है जो निश्चिच्छद शक्ति पूर्वक आराही को तन पर ले जाती है । किनारे पट्टाचकर वह आरोही को कर ग्रहण कर उतारती नहीं क्योंकि वह स्वयं अहं है— अचेतन है । तब यहाँ क्या होगा ? होगा क्या ? यदि सवार विवशी है भेद विज्ञानी है प्रज्ञावान है तो उस मोका सहार का मोह छोड़ कर अपना पुन्यार्थ कर घाट पर उल्ल जायेगा मोका जहाँ की तहाँ वहीं स्वयं रह जायेगी वह कम अज्ञान अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जायगा । आया समय में । साधो ! साधधान रहना होशियारी से मोका बिहार कर शुभोपयोग की भूमिका को पार करो जीवन मध्या इम मगा न जाय वहीं अहं छिन्न हो जाये अहंकार ममकार के लूणन न भा महराय क्पाति पूजा लाभ की चाह के पट्टियालों से न टकरा जाय । इसका पूण ध्यान रखना । सम्पूर्ण ज्ञान विवेक की ज्योति जलती रहे । अस अज्ञान अघकार धीरत हुए बढ़ते जाओ वहीं धनरा नहीं होगा । स्वशक्ति का उपयोग करो ।

ससार धन है । इसका कपण जोतने वाला है कपाय । कपाय हन है । इसे प्ररणा देने वाला है कर्म । जीवात्मा कम में ही सहयोग से कम क्षत्र को जोत कर नवीन कम बीज को बोना है । राग द्वेष रूपी जल का सिक्कन कर पल्लवित करता है । मोह अज्ञान की पवन पाकर ये कम बीज तेजी से पनपते हैं । यह बढ़ाने वाले ये राग द्वेष मोह मिष्यस्व अज्ञान कपायादि हैं । इन बिचारों को दूर करने का उपाय है मोह को मम धम के वतमिरयादि चिन्तन करना । मेरा स्वरूप क्या है ? मैं एक चैतन्य स्वरूप शुद्धात्मा हूँ । यह कपण शुद्ध निबन्धन नय से है । परन्तु यह दशा वर्तमान तो उपलब्ध है नहीं । फिर आप हैं क्या ? यह प्रश्न आत ही हमारे हृदय में एक कोतुहल उत्पन्न होता है विशेष विज्ञाता जागृत होती है उत्कटा जागती है कि

नीच गुणा सहस्रा विंशति सूत्र वनाकार चतुर भूष पञ्चि आनि नाना शुभाशुभ
उपाधियों से विभूषित किया जाता है। जो कुछ भा है यह चा उ व पीछे लगे औषा
धिय बह है। शूद्रात्मा की विभाव परिणति व निमित्त से बाह्य वम शुभाशुभ निमित्त
भाव को वाकर आत्मा को विविध रूप में रजायमान कर है। आत्मा उम पर रूप
मज्ञान मिथ्यात्व भाव को अपना मानकर दुखी हो रहा है। इसे सम्यक प्रकार
समझो।

हे आत्मन् बाह्य द्रव्यों को छान बीन करने हुए तो अनादि बान हो गया।
अब तो तू बेत अपने को पहिचान। पर गीत कुटुम्बी परिजन-पुरुजन आदि स्वार्थी
हैं यह सम्यक विनि है पर इन जानकारी से नाम क्या है। यन्नि सब जानने-जानते
शक्ति का अभ्यस्य करते रहे और करने रहोग तो भना इसमें क्या तुम्हारा निज
कार्य सिद्ध होगा। श्वानुभव मिद्धि होया स्वात्म जान होया? नहीं हो सकना। तू
इस जीवन की घड़ियों का महत्त्व समझ। प्रति क्षण की महिमा का महत्त्व अनुभव
कर। तेरा एव एक समय अपूर्व है। जितने स्व स्वरूप पा चुक है वे स्वय अपने ही
पुण्याय मे पा सके हैं। सभी भगवान बनने हैं कोई भी बनाये नो जाने हैं। भगवान
कोई अपूर्व अपूर्व वस्तु है क्या? असद् क्या उत्पन्न हो सकता है? नहीं फिर क्या
है? जो अज्ञादाश्रया में भगवात्मा है वही अपने निज पुण्याय स कर्म कानिमा का
प्रशानन कर अनमयी ना पुञ्ज परमादाति रूप परिणमन कर जाती है उसकी
अचित्य शक्ति जो अनादि स आज तक निर्गोहित थी आविभूत हो जाती है। उस
चाद्वि एकमात्र सम्पन्न परभाव। यथोचित उपक्रम योग्य प्रिया। इससे शीघ्र ही
काय निद्धि हो जायेगी। वन तप समय दान शीन दानि सम्पूर्ण प्रक्रियाओं की
साधकता एकमात्र आत्मज्ञान प्राति हो है। भूत ज्ञान व विना स्वयम का यथाय
वन प्राप्ति नहीं हो सकता है। आत्मा का पाना ही तब निधारित करे।

हे आत्मन् तामोवसाय मे निरत रहो। हाँ यह ध्यान रखना उसी मे सीन
होकर बठ मनी बाना है। उदात्त ऊपर भी उठना है और उती पूरक अर्पण श्रुमो
पयोग पूरक हो उठना है। यन्नि पूण आत्मज्ञानि चमत्कृत करता है ता सावधान
रहो प्रथम श्रुमोवसाय रूपी तब मे अज्ञात मन आत्मा का र नहर भरी प्रवार स्वच्छ
साफ कर लो तदनन्तर टीनोरात स्वानीय दादापयोग मे दाता तब वहीं धमक
आवेगी। अरे कहे कहे को सीधा मे जाकर टीनोरात मे जान निरा जाय तो क्या
का भयक भवता है? नहीं। अभी प्रवार जो विरा-वसाय भोगा अज्ञत विकल्पों मे
पगे है वे चाहें कि हम सीध दादपयोग मे जा विराजें ता क्या का रण्ड हो सकता
है? कर्म कानिमा दूर हो सकती है? नो हो सकती अविनु का सग्न प्रत्यक्ष ही
स्पष्ट हो जायगा। यह प्रयास कथ के रानी भांजने व समान है। जब कोई अज्ञा
एक और मे रानी भांजना है तो दूसरी ओर मे बच रहना जाता है। कम दान हान
अनुभवशील का है यह व प्रथम श्रुमोवसाय—दा पुत्र्य मे—जा उन्नत पुत्र्य से अरना

आत्मा को पवित्र नहीं करता। निम्न गढ़ो बनाना तो वह कदापि गड़ोपगोम की उपलब्धि प्राप्ति नहीं कर सकता है। जब सिद्धांत मनोवैज्ञानिक है क्रमिक है। निम्न सिद्धे बार विभाग होता है विधि। कर्मों से विप्लव होता है। उसरी पुनर्जाद एव ही निम्न में क्या सम्भव है? नहीं संभव पाकर ही होगी। पर यह भी कोई एकता नहीं है मान लीजिए कोई मंदिर निर्माण कराना चाहता है उसका समय २० रोज लगाना है। अब बांधाने वाला चाहता है कि मैं ५ ही दिन में तयार कर दू। तो क्या नहीं कर सकता? कर सकता है। कते? मजदूरों की संख्या और काम का परिमाण बढ़ाकर। ८ के स्थान पर १६ घण्टे कर दे और १०० के स्थान पर २०० मजदूर लगा देने पर क्या है इच्छित समय में काम निम्न हो जायेगा। इसी प्रकार तपश्चरण की वृद्धि कर जागे आराधनाओं का आराधन कर निम्न के उत्कृष्ट बल से अन्तर्मुख बन निजरा कर सब कर्मों का क्षय कर देगा मान मध्य है उपयोगी और उचित है परंतु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करिये मूल सिद्धांत में कोई करक नहीं आ सकता है। निम्न तीव्र गति से गड़ोपयोग परिवर्तक होगा उगी हिसाब से अगम कर्मों का नाश और शुभ कर्मों का आगम होगा। ये आगम शमकर्म क्या करेंगे? बस यही कि अन्तर्मुख बचड़े और उनके गस्कार रूपी गति को निम्न के निम्न। जितनी तेजी से गड़ोपयोग काम करेगा उतनी ही शीघ्रता और प्राप्ति से शुद्धोपयोग भी आयेगा और आत्मा को शुद्धावस्था में विराजमान कर ही देगा। परंतु पुरुषार्थ क्रम यथावत् सही आकर्षक और सज्जन होना चाहिए। हृ भव्यात्मन् स्व कृत्य और मुक्तस्य ही प्रणाली का समझो हृदय में उतारो उसके अनुरूप किया करो। ऐसी किया करो कि उसके पूण होने पर अन्तर्क्रिया न करनी पड़े और वह भी छूट जाय।

मनोराज्य सर्वोपरि है। इसे आत्मन्त्र हो या न हो सीमा बढ़नी जाती है और असोमन्त्री हो जाती है। मन का काय और बाह्य प्रणाली दोनों ही निराली है। अप्रुव होना है इसका ज्ञान विषय। कभी अपनी सीमा में रहता है तो कभी सीमा के बाहर ने इसका प्रारम्भ पता चलता है न तो अन्त। विविध क्या है जो इस मनवशा की। गति भी अति नाय है। एक समय में १४ रात्रि पार कर जाय और तो भी और उनका भी दूरी हो ता वहाँ तक भी पहुँचने की शक्ति रखता है। यह है इसका माहात्म्य। गति प्रति ण सत्त्व से बननी जाती है कोई हिसाब नहीं है इसकी बात का। है तादात्म्य बनना शीघ्रगामी अन्तर्मुख उपनयन हुआ इसकी तेज उतकी बात है फिर भी अन्त अन्त कल्प स्थान पर नहीं पहुँच पा रहे हो यह महान आकर्षक है। पर इसमें आवश्यक की बात हो क्या है? मन शीघ्रगामी है परंतु इससे दूर दक्षिणा नहीं है विवर्जन। है स्वच्छ है स्वच्छ नहीं। पर तु स्वयं आत्मा चाहे तो इस पर सकार। फिर जान तुम्हें म हरा गीत कर अपने स्व स्वस्व की निम्न कर सकता है। आत्मा इस पर सकार हो स्वयं पार हो जाय पार पहुँचने पर मान पर उतता नही कि यह (५५) की तादता रह जायेगा फिर क्या इसका क्या बस बन सकता

ई ? कुछ नहीं । यह स्वयं स्वयं में और आत्मा स्वयं आत्मा में । वस दोनों स्वयं हो जायेंगे । यही है अपना अपना राय । अपना अपना काज । फिर कोई परावनम्य नहीं रहेगा—परतन्त्रता भी न होगी ।

योग आत्मा की परिणति है । यह शुद्धशुद्ध रूप में निविष्ट है । अशुद्ध भी शुभाशुभ भन्त रूप है । अशुद्ध परिणमन पर निमित्तक होता है । पर निमित्त शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार हैं । इसीलिए शुभ निमित्तक योग शुभोपयोग और अशुभ निमित्तक अनुपयोग कहे जाते हैं इनके निमित्त में आत्म प्रवेशों में प्रवृत्ति होना है अतः यही शुभ योग और अशुभ योग में कर्मसब में कारण होता है । आगत कर्मों में एक प्रकार का संघट्ट होता है उस काल आत्मभावा में जिस तरह का जितने पावर शक्ति रख कषाय राग-द्वेष परिणति होती है उसी प्रमाण से उसी अनुमान से उन आगत कर्म रूप पुद्गल परमाणुओं में स्थिति और अनुभाग शक्ति प्राप्ता होती है । आत्म प्रवेशों का सम्बन्ध होना निज स्वभाव है कि तु उनका तीव्र तीव्रतर तीव्रतम मन्द मन्दतर और शान्ततम आन्ति विकल्पात्मक होना पर्याप्त है पर निमित्तक है । यही कारण है कि स्व स्वभाव स्थिति सुनिश्चित होने पर भी संसार दशा में चलती है—रहती ही है वह चाकस्य बाह्य निमित्त कारणों के अनुरूप अच्छा बुरा कम या अधिक होता है अतः उसे स्थिर करने के लिए बाह्य उपकरण निमित्तों का सुधार नियमन और त्याग परिहार परमावश्यक हो जाता है बिना उन्हें सयत् किये अन्तःकरण सयत् किस प्रकार हो सकता है ? स्थिरकरण बिना श्रद्धा कहाँ ? आत्म-प्रवेशों की चञ्चलता और स्थिरता बाह्य मन वचन काय के प्रयोग और अप्रयोग पर ही निर्भर है । मन वचन काय की प्रवृत्ति और निवृत्ति भी विवेकपूर्वक सम्पत्क तत्त्व स्वरूप अवगत करने और नहीं करने पर आश्रित रहती है । हे भाई देखो बाह्यजन्यमन में ही योगी में चाकस्यभाव आसत होते हैं वे भाव भी पूर्व मस्कार और अविवेकता पर आधारित हैं । जिस समय निर्मल सम्पत्क किरण स्फुरायेमान होती है इन त्रियोग रूप चारों की दोड़ धूप स्वयंसे अनायास ही बन्द हो जाती है । मोह शोक, राग द्वेष आदि विकार तभी तक मन पर अपना प्रभाव जमाते हैं जब तक कि वह भेद विज्ञान की साफल्य के मध्य प्राप्त नहीं होता । आत्म भावों के मध्य प्राप्त मन पुष्पाप आनाकारी सेवक की भाँति स्थिर हो जाता है नृपति के परास्त होने पर अवशिष्ट काय विरत सत्ता की भाँति अन्य सभी इन्द्रियाँ हस्तप्रभ हो अपने-अपने विषयों से विरत हो शांत हो जाती हैं । कारणभाव कायस्थायि न युक्ति के अनुसार आसव रूप काय भी उपरत हो जाता है । करेक्टिवहीन इन्विट्रक के तार कषा काय प्रकाश या अन्य काय को सिद्ध कर सकते हैं । कभी नहीं उसी प्रकार त्रिलालम्बी योग प्रणाली भी आत्मा का धानक या बाधक सिद्ध नहीं हो सकते । सुनिश्चित है बाह्य और अन्तरंग युगल कारणों के गुणन प्राप्त होने पर ही आत्म स्वरूपोपनिधि रूप कार्य सिद्ध होता है ।

प्रत्येक पदार्थ को स्वतन्त्र न समझा है। बहुत मत र्ग है। जो सत्य है वह सही है यथार्थ है। यही प्रश्न यह उठता है कि सत्य मात्र जब यथार्थ है पात्र अपना सत्य व्यक्त करेगा भी तो पदार्थ है सत्य है फिर ये भी सत्य सत्य होने चाहिए। इसको भी ग्राह्य कहना चाहिए। फिर मिथ्या तो कुछ हुआ ही नहीं सब ही तो सम्भव रूप है। यन्त्र किस प्रकार व्यवस्था होगी? यह मर्यादा है कि जो जिस रूप में सत्य है वह उसी रूप में सत्य है न कि पर रूप परिणामन हो जाय। पाप-प्राप्य है, पुण्य-पुण्य रूप है हिमा मिथ्या है अर्थात् गा अहिमा है गावर गोबर है मिठाई गुड़ गुड़ है। अपना अपने स्वरूप सत्य से सत्य सत्य है न कि ग्राह्य अपाह्य उपादेय हेतुप्राप्य सब एक है। जहाँ जिसकी उपयोगिता है वहाँ वह प्रयुक्त है और जहाँ अनुपयोगिता है वहाँ बाध गीण है। भोजन करते समय गन्ध ग्राह्य है मुख्य है किन्तु गन्ध की विविधता के जमीन चिपकने लग तो उसको चोपने में गोबर उपान्य मुख्य है गुरु गीण है। अस्तित्व मात्र होने से सत्य समान है न कि ह्योपादेय उपयोग-अनुपयोगिता को अपेक्षा। यही कारण है कि अनेक कारण होने पर भी निमित्त सब नहीं बनते बल्कि उग दाण जिस काय की निवृत्ता है उगको निमित्त में जो सहायक सिद्ध होता है उसे उसका निमित्त कहलाता है। निमित्त काय में धुम नहीं जाता—तद्रूप नहीं होता। काय निष्पत्ति के अन्तर भी यन्त्र अपने स्वरूप रूप पृथक् सत्ता लिए रहता है। जिस प्रकार अश्वारोही अश्व के निमित्त ने अपने गन्तव्य स्थान को चला। दो चार चरणों में वह अभीष्ट प्राप्ति में पहुँच गया। उसकी समस्त क्रिया समाप्त हो गई वह अपने काय को गिद्ध कर चुका। अब यन्त्र निमित्त रूप अश्व अपने स्व स्वभाव में जाता का सत्ता विद्यमान है। निमित्त मात्र गन्तव्यता देता है वह भी अपने स्व स्वरूपादिवश को रहित रहित हुए न कि अपने को अपना कर। अब यन्त्र घोड़ा मू में दृष्टि से विचारित कि क्या उस स्थान पर सत्ता जाने में घोड़ा ही समर्थ था? नहीं गाड़ी मोटर सीसा साइकिल आदि अनेक साधन थे किन्तु उन्में हम उगने लिए निमित्त नहीं कह सकते क्योंकि वे उगक में नव्य स्थान में पहुँचाने में सहायक नहीं हुए हैं। फलतः अनेक साधन ही सत्य हैं हैं न। परन्तु निमित्त नहीं होता है जो जिस कार्य की निष्पत्ति में सहायक होता है। यन्त्र निमित्त कारण जिसमें सहायक होता है वह कार्य इसमें सर्वथा भिन्न हुआ। काय रूप का परिणामन हुआ वह भी तो सत्य स्वरूप है। वह क्या है वह वही उपादान कारण है। आपा भाजन बनाया मान भीक्षण दास भात बना बना बन्धन में कारण एकत्रित विषय—अपना बन्धन तथा विमर्श लक्ष्मी बूढ़ा पानी व कोई रसोईपर इत्यादि। अब इनमें दास भात में सन्ध्या की कौन-कौन हुए? आप आप बूढ़ा बन्ध्या और पानी आदि। हा सत्ता में मुख्य गीण की दृष्टि से विचार करें तो अग्नि मुख्य है और प्रत्येक गीण प्राप्ति सर्व साधन एकत्रित कर लेने पर भी वह अग्नि प्रवृत्ति न हो तो दास भात का काय निमित्त नहीं तो सत्ता। अग्नि प्रवृत्ति वह है कि प्रवृत्ति वसाय में मुख्य गीण का अपादा सम्बन्ध है वही साध्य-प्राप्य

भाव है निमित्त-नमित्तिक भाव व सम्बन्ध है। ज्ञाना घनिष्ठ सम्बन्ध हान पर भा
अग्नि अग्नी स्वभाव गता निग दान भाव रूप काय स सबका भिन्न स्वयं व स्वभाव
म स्थित है। दान भाव रूप नहीं परिणमी। अस्तु दान और चावल जो स्वयं न
परिणमन की शक्ति युक्त है वे ही ज्ञान भाव बन न कि निमित्त। निमित्त भाव
सहायता कर देता है। काय स्वयं अग्नी स्वभावता स्व स्वभाव स्व शक्ति से
परिणमिन होता है। ज्ञान चावल म दान भाव हान रूप योग्यता है ना अग्नि आदि
सहायका ने उन्हें उग रूप परिणमन करा दिया सहायक हो गये यदि उनका साथ पर
आटा गड होता तो क्या य निमित्त दान भाव बना देने ? नहीं कभी नहीं बना सकते
थे। निम्न यह निम्न कि स्वयं वस्तु की योग्यता हान पर ही वह परिणमन करती
है। उस काय म अन्य सहायक साधन जो अनुकूल गड निमित्त बन जाता है। वस्तु
स्वयं अपने स्वभाव स काय रूप परिणमन करती है। ह गाथा : ' तुम स्वभाव स्वयं हा
आमा हा ज्ञान बनना ज्ञान बनना रूप हो। इस रूप तुम्ह स्वयं ही परिणमन
करना है इसमें भिन्न जो भी परिणमन है वह तुम्हारा स्वभाव नही है। यदि तुम
बहु कि मैं चाहता नहीं तो भी न जान किन कारणों न परिणमन कर लेता है ?
क्या कर ? कुछ मन कर उस परिणमन के ज्ञाना दुष्टा बन रहा। ये मने नहीं है
इतना यदि दुष्टि मे रहा तो व तुम्हारा कुछ भी बिगाड न कर सकते है। शुभा
शम रूप परिणमन म वस्तुत्व भाव नही ज्ञान दा भाक्तत्व भाव स्वयं भाव योग्यता।
कर्ता भाक्ता दाता भाव नहीं ना फिर मुख-दुख रूप पत्र ना तुम्हारा नहीं हा
सकता। तब क्या हागा तुम स्वयं अपने ही निज स्वभाव के वता और भाक्ता
बन रहोगे। यही ता आपका अपना स्वरूप है। यही उपादान सिद्धि है। ध्यान म
राग ज्ञान म राग भक्ति म राग पूजा-अनुष्ठान म राग परहित म राग स्वहित
म अनुराग य सारे विकल्प भा तर मद्ध स्वरूप क नही है अत्र की ता बात ही क्या
है ? हा इतना अवश्य है इन विकल्पा का आश्रय बनाकर इनका निमित्त बनाकर
या मानकर ही अपने स्वरूप का प्राप्ति हागी। परम धीतराग दशा का प्राप्त करने
क लिए परमधीतराग भाव और परम धीतरागा त्रिनगर का अवलम्बन निराल
आवश्यक है उनका बिना परम धीतराग दशा सिद्ध नही हागी। वम निमित्त नमित्तिक
सहायक का ज्ञान कर स्वयं ज्ञाना दुष्टा बना।

आत्मा जाता है। पन्थ जय है। ज्ञान म ज्ञेय जानकत है। उनकी प्रतिवृत्ति
आती है ता क्या जय ज्ञान म समाहित हा जाते है ? नही ऐसा ता नही जाना।
अत्रा बिना समय ज्ञान म जय प्रकाशित हो रहा है उस समय वह जय युक्त स्थान
रिक्त हा जाना चाहिए परन्तु हाना नहीं है। तो ज्ञान उनम जाता है क्या ? यह भी
नही है कारण ज्ञान हान आत्मा नही हा जाती है। फिर क्या है ? पन्थ की छाया
ज्ञान म प्रतिबिम्बित हाता है ता क्या उत्तरा अश्र आकर क्षत्तकता है यह भी नहीं है
क्योंकि यदि ऐसा हाता तो पन्थ क्षीण हा जाता यह हाता नहीं। क्षाण वस हा जाता

प्रत्येक पन्थाय की स्थापना सत्ता है। यह मत सत्य है। जो सत् है वह सही है यथार्थ है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि मात्र मात्र जब यथार्थ है पार अपवादा राग द्वय अभावादि भी तो पन्थाय हैं सत् हैं फिर ये भी सत्य सत्य होने चाहिए। इनको भी साक्षात् कहना चाहिए। फिर विचार्य तो कुछ हुआ ही नहीं सब ही तो सम्भव सत्य है। यह किस प्रकार व्यवस्था होगी? यह सत्य है कि जो जित सत् में सत् है वह उसी सत् में सत्य है कि पर सत् परिणामन हो जाय। पाप-पाप है पुण्य-पुण्य सत् है हिमा हिमा है अहिमा अहिमा है गाबर गोबर है मिठाई गुड गुड है। अपने अपने स्वरूप सत् से सत् सत्य है न कि प्राक्त अशाक्त उपाये हेयान ता सब एक है। जहाँ जिसकी उपयोगिता है वही वह प्रमुखा है और जहाँ अनुपायेयता है वही वह गौण है। भोजन करत समय गड्ढा प्राक्त है मुख्य है किन्तु गुड की निपारिगाह में जमीन बिपक्वे समे तो उसको सोधने में गोबर उपायेय मुख्य है गुड गौण है। अस्तित्व मात्र होने से सब समान है कि हेयोपायेय उपयोग अनुपयोगादि की अपेक्षा। यही कारण है कि अनेक कारण होने पर भी निमित्त सब नहीं बनने अति उम दण जिस काय की निवृत्ता है उसको निमित्त में जो सहायक निमित्त होता है वही उसका निमित्त कहलाता है। निमित्त काय में घुम नहीं जाता—सत् रूप नहीं होता। काय निष्पत्ति के अनंतर भी वह अपने स्वरूप रूप पृथक् सत्ता निर रहता है। जिस प्रकार अश्वारोही अश्व के निमित्त ने अपने गन्तव्य स्थान को चला। दो चार घण्टे में वह अभीष्ट ग्रानादि में पहुँच गया। उसकी गमन क्रिया समाप्त हो गई वह अपने काय की निमित्त कर चुका। अब यह निमित्त रूप अश्व अपने स्व स्वरूप में जैसा का सत्ता विद्यमान है। निमित्त मात्र सत्त्वता देता है वह भी अपने स्व स्वरूपास्तित्व को रक्षित रखत हुए न कि अपने की अपण कर। अब यहाँ थोड़ा सूक्ष्म दृष्टि से विचारिय कि क्या उस स्थान पर ल जाने में थोड़ा ही समय था? नहीं गाड़ी मोटर ताँगा साइकिल आदि अनक साधन थे कि तु उह हम उनके लिए निमित्त नहीं कह सकते क्योंकि वे उसका गन्तव्य स्थान में पहुँचाते में सहायक नहीं हुए हैं। फलतः अनेक साधन हो सकते हैं जो पर तु निमित्त नहीं होता। जो जिस काय की निष्पत्ति में सहायक होता है। यह निमित्त कारण जिसमें सहायक होता है वह कार्य इसमें सबका भिन्न हुआ। काय रूप का परिणामन हुआ वह भी तो सत् स्वरूप है। यह क्या है क्या वही उपस्थान कारण है। आपा भोजन बनाया मान सीजित दान भात बनाया बहुत से कारण पर्वित विषय—घर ता बेतन तथा विमन सबकी पूँहा पानी बरनोई रसोईघर इत्यादि। अब इनमें दान भात में सहयोगी कौन-कौन हुए? आप आग पूँहा बरनोई और तनी आदि। इन सभी में मुख्य गौण की दृष्टि से विचार करें तो अग्नि मुख्य है और अन्य गौण क्योंकि सब साधन एकत्र कर लेने पर भी यदि अग्नि प्रकृत न हो तो दान भात रूप काय निष्पत्ति नहीं हो सकता। अभि प्राय यह है कि प्रत्येक पन्थाय में मुख्य गौण की अपेक्षा सम्बन्ध है वही साध्य-साधन

भाव है निमित्त निमित्त भाव न सम्बन्ध है। इसका परिणाम सम्बन्ध ही नर भी भक्ति अपनी स्वभाव सत्ता विना दात भाव रूप कार्य से सर्वथा भिन्न स्वतन्त्र स्वभाव में स्थित है। दात भाव रूप नहीं परिणामी। अस्तु दात और प्राप्त या स्वतन्त्र नष्ट रूप परिणामन की शक्ति युक्त है वे ही दात भाव का न निमित्त। निमित्त भाव सहायता कर देता है। कार्य स्वतन्त्र अस्ति स्वभावता स्व स्वभाव का शक्ति से परिणामित होता है। दात प्राप्त में दात भाव ही स्व सहायता है या भक्ति आदि सहायता ने उर्ध्व उग्र रूप परिणामन करा दिया सहायक हो मये मनि उर्ध्व सहाय नर भाटा मृग होना तो क्या ये निमित्त दात भाव क्या देन ? नहीं कभी नहीं क्या सहायक । निमित्त वह निमित्त वि स्वयं स्वतन्त्र की योग्यता ही नर ही यह परिणामन करती है। उक्त भाव में अतः सहायक साधक जो अनुभूत पक्ष निमित्त भाव जाता है। स्वतन्त्र स्वयं अतः स्वभावता से कार्य रूप परिणामन करती है। हे साधक ! तुम स्वतन्त्र स्वयं ही अस्ति हो जान पेरना दात पेरना रूप हो। इस रूप तुम्हें स्वतन्त्र ही परिणामन करना है इसमें भिन्न जो भी परिणामन है वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। या तुम कहा वि मैं चाहता नहीं तो भी न जान वि। कारणों में परिणामन कर लेना है ? क्या कर ? कुछ मग करा उग्र परिणामन के जाता दुष्टा को रहा। ये मये नहीं है स्वतन्त्र मनि दृष्टि में रहा तो ये तुम्हारा कुछ भी विनाश नहीं कर पाये है। शुभा शुभ रूप परिणामन में स्वतन्त्र भाव न निमित्त दा भाव स्व भाव स्वयं भाव सहायक। स्वतन्त्र भावता दाता भाव नहीं तो फिर शुभ दुष्ट रूप क्या पता भी तुम्हारा नहीं हो सक्ता। तब क्या हुआ तुम स्वयं अस्ति ही निमित्त स्वभाव के करती और भावता था सहायक। यही तो आपका अपना स्वभाव है। यही उपादाय निमित्त है। भाव में राग ज्ञान में राग, भक्ति में राग युक्त-अनुष्ठान में राग परहित में राग स्मृति में अनुष्ठान में सारे विवरण भी तारे शुद्ध स्वरूप के नहीं है अतः की ता मात ही क्या है ? ही स्वतन्त्र अस्ति है दा विवरणों का आदर्श दातकर दाता निमित्त दातकर या मातकर ही अपने स्वरूप की प्राप्ति होगी। परम धीतराग दशा में प्राप्त करों के निमित्त परमधीतराग भाव और परम धीतरागी धीतराज का अस्ति निमित्त आवश्यक है उक्त विना परम धीतराग दशा सिद्ध नहीं होगी। यह निमित्त निमित्त नहीं स्वरूप का भाव कर स्वयं भाव दुष्टा को।

आपका जाता है। पदार्थ मय है। ज्ञान में मय दातकर है। उरारी प्रतिबुद्धि आती है ता क्या मये जाता में समाहित हो जाने है ? नहीं ऐसा ता देखा नहीं जाता। अतः यदि जिस समय ज्ञान में मय प्रकाशित हो रहा है उग्र समय वह मय युक्त स्वभाव सिद्ध हो जाता चाहित परन्तु होता नहीं है। तो ज्ञान उग्र जाता है क्या ? यह भी नहीं है कारण ज्ञान ही आत्मा नहीं हो जाती है। फिर क्या है ? पदार्थ की भावता ज्ञान में प्रतिबिम्बित होगी है ता क्या उग्रता अतः भावता है यह भी नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होता तो पदार्थ धीन हो जाता यह होता नहीं। क्षीण मय हो जाता

है इसका कोई दृष्टांत है क्या ? हाँ है देखो एक शीशे का महल है चारा आर दीवाला म हजारों कीच के टुकड़े जड़ हैं आप कमर के टीक मध्य म बिराज है । प्रत्येक कीच के टुकड़े म आपकी प्रतिमा झलक रही है द्रग दशा म आपके अश यन्त्रि हा जात है तो आपम क्षीणता जाना चाहिए दुबलता होना चाहिए । पर क्या कमजारी होना है क्या ? आप म अशक्तता जानी है क्या ? नहीं आता । फिर क्या व्ययम्था है ? ज्ञान का स्वभाव हा निमल है ज्ञान की स्वच्छता ही मात्र पदार्थों के झनझन म कारण है । यथा दपण म मयूराणि पश्य झनझने हैं तो इसम न मयूराणि दपण म प्रविष्ट हात हैं न दपण उनम जाता है न उन मयूरादि का अश ही आता है अपितु मात्र पदार्थों के झलकन म दपण की निमलता ही कारण है । दपण जितना स्वच्छ हागा उसकी स्वच्छता रूप पर्याय के अनुरूप ही पश्य भी प्रकाशित हाग । यह उसकी निमलता का ही परिणमन स्वभाव है । अय पदार्थों का ता ज्ञान प्रकाशित करता है फिर ज्ञान का कीन करता है ? ज्ञान स्वय प्रकाश है प्रकाश्य ता है नहीं फिर उस प्रकाशन का क्या उपाय है ? एग नहा है । ज्ञान स्वय प्रकाश और प्रकाश्य है । यथा प्रदीप । तपक स्वय अपन का दितताता हुआ ही अय घट पटाणि पदार्थों का भा तिमलताता है । तपक का देनने के लिए अय द पक की आवश्यकता नहीं हाता । वह ता स्वय हा स्वय का शर्वाकार अय का भा दर्शता है । यही ज्ञान स्वभाव है । ज्ञान आत्मा की पर्याय है । सगरी आत्मा की पर्याय जगुद है अस्वच्छ है वह अया-अया स्वच्छ निर्मल हाता जानी है ससार के सस्यान अमस्यान और अनन्य पश्य अपना-अपना अनन्य पर्याय सहित उगम प्रकाशित हात जाते हैं । ज्ञान का पून निमलता गुडनम पर्याय है वरत ज्ञान । यह आत्मा की सब विगुड दशा रूप पर्याय है । इसक अतिरिक्त चेतना जा मा का गुण है वस्तु व्यवस्था सम्यक प्रकार समझ बिना यथार्थ ज्ञान न हा करना । वस्तु स्थिति का परिज्ञान करने के लिए गहा ज्ञापन करना परमावश्यक है । ज पश्य की गहराई म जात्मा स्वच्छ हाता है जात्मा विगुडि हा गव विगुडि का हनु है स्व स्वस्वावर्ताध है ।

आत्मा और ज्ञानानुभव एवं स्वानुभव का हेतु यह ज्ञान कर हा आत्मा स्वमर्चन का समास्ता न सजता है । स्व का जाना है ता सहज प्रमन उठता है वह स्व है कही और वही वही कि वह है उम स्वान्त नक पट्टेका का माग कही और कोन है । न प्रमन के उतर का छात्र हा पुण्याय है और उम पुण्याय का सहा-नही कर हा जात्मा के स्वभाव का साधक है । जा मा है आत्मा म उम सब पट्टेके व का भा है जा मा है जोर उसका माग है न यय जा मा का नित्र स्वभाव रूप हा है आत्मा के व जात्मा है जोर व ह जा मका है । सम्यग्भन सम्यग्ज्ञान है और सम्युक्त ज्ञान हा जा मा का स्वभाव है । नहा प्रकटाकरण हा जात्मा का वय के अतिरिक्त कुछ न । अय रजस्व आत्मा स्वभाव म काद भिन्न सत्ता जाना नहा नही है । न रजस्व आत्मा न और यहा मध्य है । वहा कारण हाता है यय भा वगा है

हाना है। गफन गूत्र संध्याया वस्त्र भी शुक्ल ही होता है। रतनय से निमित्त आत्मा भी रतनपातमव ही होता है। यही है उपादान हेतु। अन जो हेतु स्वयं काय रूप परिणत हो वह है उपादान। उन सिद्ध करने के लिए अन्य निमित्तों का आशय कना है वे एक भा हो सकते हैं और अनेक भी। अनेक कारणों से एक काय को सिद्ध हानी है। उन अनेक में जो काय सिद्ध में निकटतम होता है वही यहा निमित्त होकर सहायक निमित्त कारण सत्ता प्राप्त करता है। छत्र यह प्रपञ्च है। इन साधारण भाषा में कष्ट कहते हैं। कष्ट करने का अर्थ है घान्ना। छत्र कष्ट धेना दगा वञ्चना य सब पर्यायवाची है। चाहे लौकिक जीवन हो या अलौकिक जीवन साधना में। इनका प्रयोग सबत्र अशुभ असत्ता एवं अन्तराय कम के आशय का हो कारण होता है। यही नहीं ज्ञान दानन के रिपय में यदि इनका प्रयोग हुआ तो य ज्ञानावर्णी और दशनावरणी कम के भी कारण होता है। जीवात्मा कम बधनयुत होकर ही समान चक्र परिष्करण में भटक रहा है। इन बधन का मूल हेतु स्व वचना ही है। जिस हम पर वञ्चना कहते हैं वास्तव में वह आत्म वचना है निज का ठगना है। हम निज स्वाय सिद्धि के लिए अन्य व्यक्ति का विश्रस्त करत हैं अपने वक्तव्य के लिए वचनबद्ध हो जाते हैं। पुरा-मूरा आश्रमागत दत्त हैं हमने विकास में सहाय्य देने का उसके साथ सरन मत्स्य व्यवहार करने का उपाय। बराबरी का पत्र प्रदान करने का अपने व्यवहारा का सरन एवं उचित बनाये रखा का यहाँ तक कि उसके अन्यधना-वचना-मूला गुरु के समान करने का अधिक क्या लिया जाय, चरण स्पर्शकर नमस्कार कर विनता और स्तुतिकर आदि नाना पापनूमी कर अपा वस में करने का प्रयत्न करता है। कब तक? जब तक कि स्वयं अगत कमजोर रहता है। नहीं स्वयं में समाध्य आया नहीं कि बग नतवा ही निरस्कार करने लगता है। नमस्कार के स्थान में अपमान कर उसकी वृद्धि का ध्यान करने में उल्टा रूपा जाता है। यह प्रवृत्ति न बचन साधारण जन में देखी जाती है अपितु साधु सन मुनि गुरु की उपाधि पान वाल निस्संग साधुओं में स्पष्ट निलीई देता है। त्याग कर पुरुष बग में। क्या कि वह सन से नारी ज्ञान के प्रति अग्रहिष्णु और अनुत्तर रहता चला आया है। उस क्षण भय रहता है कि बहा नारी सच्चा तपस्विनी बहणी बन गई तो मरा सम्मान नहा होगा और यदि हुआ भी तो प्रभूत मात्रा में सर्वोपरि नहीं रहेगा। बट भूत जाना है सिद्धांत का कि चराती और तीव्रकों का भी मान गलित हुआ तो हम जन साधारण को क्या क्या है जो हो मरे जीवन का गच्छा अनुभव है सत्य घटना है यथाय नित्रण है, पुरुष हर क्षण में अयाय करने पर उत्तम हो सकता है और नारी हर क्षण में उमक उत्थान ही की कामना करती है। एक मत्स्य सरल हूँया गच्छी मौ का जीवन उच्छ उपाकरण है श्रष्टार उपाहरण गुरु का और श्रेष्ठतम नमूना है धीनराग भाव सम्पन्न स्वायि वस्तु की अन्वयक गुरु भगिनि सारी साध्वी महावृत्त पवित्राङ्ग मयमी साध्वी। मद है का हूँक काय में पुण्य बग इतना निम्न स्तर पर उतर चुका है कि उह

भी बन्ना म मुक्त नहीं छान्न । स्वयं अध्ययन अध्यापन का म अपनी असमयता प्रकट कर उनसे मरा कर उनका नाम भी प्रकट करना तो दूर रहा मुनता भी नहा है । प्रियकार है ऐग विन्म्वित जीवा को ।

तत्वाय सूत्र म ६ वें अध्याय म आस्रव क प्रकरण म देवायु के आस्रव क कारण म सम्प्रकृत का भी कारण कहा है । सम्प्रकृत च यह सूत्र है । प्रथम अध्याय म मा त्माग कहा है । सम्प्रकृत ज्ञान चारिप्राणि मात्माग । इस प्रकार का कथन विग्राहाभा म प्रतीत होता है । किन्तु सूत्र म विग्रह - स्पष्ट हा जाता है कि यही आचार्य श्री का अभिप्राय यह रहा है कि सम्प्रकृत बध का कारण है किन्तु यह है । सम्प्रकृत पूरक शुभापयोग देवायु के आस्रव का कारण है न कि सम्प्रकृत । क्योंकि आस्रव का कारण पाप है और बध क कारण कर्माय नहीं है । पुरुषाय विद्वत्पुणाय म भी स्पष्ट किया है कि जितने अशा म सम्प्रकृत है उतने अशा से बध नहा है और जितने अशा म राग है उतने अशा म बध है । यह शुभापयोग का अपराध है । अपराधी का सजा मित्रा चाहिए । प्राय दण्डा जाता है कि अपराधी को तो अपराधी का दण्ड मित्रता हा है किन्तु जो अपराधी का साथ देना है उस भी सजा भागता पड जाता है । श्री प्रकार शुभापयोग देवायु के आस्रव का कारण है और सम्प्रकृत मित्र र सम्प्राप म होता है मन्त्रिण उम भा बध या आस्रव का हनु कह दिया गया है । विद्वान् परिज्ञान के लिए मूर्ख तत्पर परिज्ञान परीक्षण परमावश्यक है । तत्पर विवेक क बिना बन्धु व्यसंधा गरी तही बा सक्ता । अतः तत्पर विज्ञान अवश्य अप र्नाय है ।

आस्रव क प्रकरण म २५ विवादा का उल्लेख किया गया है उही सम्प्रकृत किया और सम्प्रकृतन श्रिया क नाम । अतिप्र गितन है । इसम प्रतीत होता है कि सम्प्रकृत नामगण की अभिव्यक्ति है और अशा किया २५ दापा से रहित उम का आसन म प्रयोग करता है । विवादा भू है । सम्प्रकृत आरम्भय निराहित गुण या बध प्रकृत हा गया । प्रादुर्भूत शक्ति का यदि उपाया न किया जाय कार्पावित नहीं किया जाय ना फिर उमका प्रकृत धीर प्रकृत मन्त्र म कार्य जगत् नहीं दृष्टा और नाम भा कुछ नहा हा गचना । अन्तु नामा क उदा गुण का प्रादुर्भाव सम्प्रकृत है और उमका आसन म म कर प्रयोग हुना-गना उम और लक्ष्य बना रहना यह दर्शन भावना है । भावना का अर्थ अनुचितन बार बार चिन्तन करना । पुनः पुन विचारना । मागज म प्रवृत्ति मावश्यक बरना और उत्तरातर नाम स्वभाव का कृष्ण होन जाता भावा का यदि बार बार जाना मन्त्रविरुद्धि भावना है । जीवन का यह प्रकाश है । जीवन का भाव न म क ह्य स्वकृत किया प्रकार सम्पन्न वा मचना है का अर्थ म विचार न दृष्टा पडा है ? जगत् उपाय सम्प्रकृतन ही है । सम्प्रकृत क विचार र र जगत् का प्रयोग भी जीवन म नहा हा गचना । बिना सम्प्रकृत क मन्त्र जीवन है शिवाय है अथवा पदवि है । अनिवार्य है भावा म प्रकार का

अन्धिर दशा में ज्ञात स्वभाव का भाव बिना प्रकार ही रहता है ? कभी नहीं हो सकता है । सम्पूर्णता वह जोति है जो ज्ञान व माध्यम में जीवन का चमकाने का परमात्म स्वरूपोपनिधि बनाती है । अनन्तशुद्धि आत्मा के परिणाम में मानस्य पुनः परिणत हो जाता है जिसके मन्त्रागमा के सर्वोत्तम पुनः प्रकृति । मोक्षका का आवरण होता है । त्रिगुण स्वयं को अविच्छेद का चोबदारिद्र्यनित्य प्राप्त होता है । अद्भुत है चतुर्वार दृग लक्ष्मी का अद्भुत आनन्दन का अ । वर्णविधि योग्य बनने में प्रथम अकार होता है । वागव्यापार में अं भाग जाता है । शुभ कर्म में भी का प्रथम स्थान है उमा प्रकार त्रिनागम में आत्मज्ञानावधि । म सम्पूर्णता का सबप्रथम स्थान है । अ न बिना बगमाता का ज्ञान हो जाता रहता । अ न का बनने का प्रयत्न कर ना पायत ही समझा जावेगा । इसी प्रकार सम्पूर्णता व बिना कोई आध्यात्म भाना में परमात्मज्ञान का अध्ययन करती बाह तो बढाई हो रही राखता यदि होन का प्रयास कर ना वह उसका मात्र न्यम है प्रोटष्ट-बहाना है उमरा पछा है । परिधम स्पर्ध है । अ न जो समय और उमरा गार पाना चान्ता है उम प्रथम सम्पूर्णता व हान पर समस्त ही पुनरावृत्ति का माधव हा रहने है अरथा त्ता । यह है आरम शापन की प्रणाली । आरम स्वल्प गीत का महत्त्व । आरमप्रतिबन्ध होन का मार्ग । सहा यथाय पथ । दृग पर चरकर गता अरम गार पहुँच सकता है ।

सम्पूर्णता की भूमिका में आने वाला भक्त मनी पञ्चर्चन्य जीव उत्तरातर परिणाम शुद्धि करता हुआ प्रवेश करता है परिणाम की निर्मलता से ही जीव स्व स्वरूप की ओर उभुत होता है । समस्त प्राणिनों व समस्त दा ही ना माय है—ना ही विषय हैं । स्व और २ पर । आत्मा की ओर प्रान और परवर्ण्य की ओर उपात । सार सार व जगद् त्रिना-न-नाय हैं व सब पर ही में गमिता हैं । शय मात्र आत्म-स्व द्रव्य अपना है । न म म एह का निरावृत्ति है यह कोई बड़ी बात नहीं है । हृदय स्वयं अपनी श्रम बुद्धि कर डाली है । उमन की भाँति हम विन्म्वता कर रह हैं । पर का अरना माना और फिर अपना ही उगे गिद्ध भी करता चाह रह हैं । निज का पर म फमाया और पर को अपना बनाया यह है हमारा विद्वत स्वभाव की परिणति हम पर म निज घुम ठहर रम रहे पथ और इतने तनीन हो गये नि बग निज स्वत्व का भी भूत गय । अन भूत कि गुण उपस्थ का भी अयथा बहने लग । आग्नि माहनीय की चार म पसर करके दिग प्रकार मृत भाई का भी जीवित कहला है किरी फा गुन का तयार नहीं अपितु मन बहने वादे का ही स्वरी शागी गुनाता है फिर भला दशा मान्तीय मिथ्यात्व व नग का ता कहना ही क्या है ? यह ता मय मा म है । यह नगा साधारण नहीं है । तीव्र भराव व तीव्र नशे को उत्तरन व निज जत का मात्र आवश्यक होती है । उ ती प्रकार मिथ्यात्व मोह मन्त्रि का नगा उत्तरन व निज गगार मार आवश्यक है । जब जीव मगार दुःख में मग्न होगा तभी निज का साज में उतरेगा । दृग उपलब्ध प्रतीक्षा की मार सहता हाया । तप

की आज्ञा में जाता गया होगा तब कभी जाना में आया। आपो में जान के लिए
 नया उत्तरना चाहिए। जसा कि विद्यादा अतिरिक्त कथाएं आदि सब तब ही ना है।
 इन्हें उत्तरने के लिए समस्त रक्षा मिष्टान्त सम्पत्तियां रूप अमृत और चरित रूप
 साधक की आश्रयता है। १ भव्यात्माओं उग पर पर को छोड़ा। तुम अपने का
 छोड़ने का बात का करता हो ? पर का छोड़ा को बात करता। जा जो पर स्व है
 वह बनकर निश्चय होता। आपो में प्रसाद करो दूर हुआ। उनमें प्रीति मन का
 बग फिर तुम ही तुम रत जाओगे। आप में आप ही का पाया। अपने में जान ही
 का देता। अपने में अपने ही का जाना माता और समाना। यही है स्व स्वभावा
 पलब्धि। आ मा यथा में नहीं है वह यथन रूप है ही नहीं। पुनः पुनः से पुनः ही
 बधता है - कम से कम बधन का प्राप्ति है। अरे गाय बैठा है पर क्या सबकुछ
 गाय बैठी है क्या ? रस्मी की रस्मी में गाँठ है रस्मी से रस्मी ही ता बैठी है।
 इस बधन में गाय ता स्वतंत्र अलग है। रस्मी की रस्मी से गाँठ लगी तो बग स्वयं
 गाय स्वतंत्र बधन मुक्त ही है। यही बात आत्मा को है। कम से कम बधा है उह
 सालार अलग करा आत्मा आत्म रूप में स्वतंत्र निमन निर्विकार रह जायेगा। मैं
 छूट मैं छूट ता रतन हा पर मैं छाड़ मैं जाड़ यह ता विचार करो तुम जब तक
 छाड़ोगा ही पर छाँगा क्या वह ता जा है निर्जीव है अविचलित है सभी ता आप
 इसारे पर नाचता है। तब जापरा मन यत्न और बाध चल विचल हुआ कि क्या
 वह आज्ञाकारी नाकर के समान आकर उठा हा जाता है आपक करणा में नव हा
 हा जाना है सदा करने का। अनादि से आपका सदा करता आ रहा है। आप
 साधक या बहुते अच्छा सदा है अपने समान हम भी सदा का दास बना लिया
 दुस्त भय गत में दान दिया। पर सब का कहिए इसमें उग बेचार का क्या दाग है ?
 परत ता आपकी हानी चाहिए। आपन उन लुट्टा का क्या नक्क बनाया। पांड की
 पहिचान न कर सकार हा जाए और हरा स बात करने वाला अब अपने वेग से
 उठन लग आप गिर पड़े दिन दूर जाय हडिडियां चर चूर हा जायें रक्त बहने लग
 प्राणा के लान पड़ जाय ता भना इसमें उग अकार छोड़ का आराध क्या ? वह ता
 अपने स्वभाव से काम कर रहा है। गतनी ता आपकी है आप क्यों चढ़ चढ़े ता
 विचार क्या नहीं ? पहले परसा क्या नहीं समझा क्या नहीं उत ? ह भव्य अपने में
 सावधान हा निज का निज में परध देव समझ जाय स्वतंत्र बना यही शिव है।
 क्या है बभ्रव का चमत्कार ? दया गुना और समझा ? वनमान युग का बभ्रव क्या
 है ? प्रथम विचार। दा नम्बर की कमाई प्रथम प्रकार धूसरारी दूगद प्रकार
 की कमाई। अनेकमाँटिंग तीमर प्रकार का अब चारा डकनी प्रकार घोषा श्व
 प्रविष्टान्त व्यवहार ताराट मित्रा साया भुडा की जटी मिनी रगी बगर साल रग
 निमित्त मित्र पगात के बीच बगाम का नी मिरच आदि। छ व प्रकार औपधिया
 ऊपर दान भीतर पोत्र शीशिया पक्क द ७ वाँ प्रकार शाली दादुआ के व्यापार से

उत्पान्ति नव्य यथा ताही व ताही का गुड शराय गोजा अजीम धनूरा आनि
 ८४वां नाच-नुच्छ तासां चमड का घोवी साईं पुनार, वन् आनि का धधा ये हैं
 प्रमुख धनोपायों के साधन दा व नये भी धनवान भवत्वपूर्ण और वनमान का राजा
 है सविन-नौकरी। इसके वलीभूत राजा महाराजा भी हो गये हैं। भना अय की
 क्या जान है? अब विचारिण जन सोतों से आगत धन कसा हो सकता है? माय
 जमा हागा उगत प्राप्त वस्तु भी वसी ही होगी। जिस मार्ग से पानी बहकर आयेगा
 नदी की स्थिति शुद्धता गंदगी व अगदना वगी ही हो जायेगी। तन्नुमार वह
 पेय या अपेय रहणी। ग्राह्य अप्राह्य हित अनहित कर रहेगी। वम यही दसा है धन
 की कमाई की। जिस निशा से गजरेगा वसा ही पन बुद्धि मतमात्र व दानानि
 त्रिशाभा का करन न करने वाला होगा। यह है उसका प्रभाव। आज पत्यक्ष इसका
 अगर हमारे देश समाज गहूस्त्री पर कुटुम्ब परिवार म, धार्मिक सामाजिक राज
 नितिक अध्यापिक नैतिक धया म स्पष्ट दिशा दे रहा है। सर्वत्र अविश्वाम का
 बोधवाला है प्रचारण और धावावाली आनि है। एक दूसरे के प्रति घृणा और
 निरस्कार का व्यवहार देना जा रहा है। जेम स्नह वारगत्व और अनुराग का नाम
 निशान भी नहा है। पारस्परिक मत्री प्रमाद काव्य्यानि भाव ता मानो भू से नम
 को प्रमाण कर गये हैं यह जमान अय का चमत्कार। कन्दवा की सजावट होटलों की
 बनावट सादियों की बमय जूना की दमक और होटों की साली, घाल में नजाकत
 बात में बनावट घेहरे पर मफनी नयना म गरीबी नयना मे परत्व और व्यवहार म
 उठान भना यह क्या भारत का आश्रय है भारतीय मनुति है? नहीं। नहीं तो
 फिर जनरय की छाया कौन दिनेगी? जेद समाज का निर्मय आनुत्व स्नह मानु प्रम
 धम का गौरव उच्चांग की महता वाणी का शौष्ठव वचन का प्रमाणत्व शरीर
 का पुष्टत्व एकत्व का दून अधा भना किम प्रकार पाया जा सकता है? इसका
 प्रत्यक्ष प्रमाण यदि दाना है तो एक गागर सा विनाय शहर को पकड़ा और ननी
 का सा छोटा गाव गला दाना की तुलना कर दिखल कर परख कर एक म आदर
 वभव कीडा उठा धधरा या नच प्रतीत हागा और दूसरे म तुलना-तुलना किन्तु
 मत्रीय कहीं निमकता करवत बन्ता और म-म-मुक्ताता।

अर्थाधीन प्राणी स्वात्मा क बलाण का भूल मा जाता है। वह मात्र सप्रह
 का सदन रमता है जबकि परिग्रह नरकायु का प्रधान कारण है। दुःखा की भी गार
 है। नास्ती एक आश्रि की टिमकार मात्र काल में भी मुक्तानुभव नहीं करते न कर ही
 महन हैं। ऐसी दुःखि मे पड़ने का क्या भना संवाद का कनव है? नहीं। कानि
 नहीं। धन महा पान वाला उसे प्राप्त करने व निष् अनेक आयों म प्रवृत्त होता
 है और पान वाला उसकी वृद्धि के उपायों म मल रहता है एवं उनका रक्षणाय नाना
 विधमता कर विविध दुःखों म लक्ष्मता रहता है। यही नहीं पर सम्पत्ति देल आली
 पुत्रता कता है पर भारी पनरा देम विसृता है। आह ईर्ष्या और घृणा की मट्टी

[illegible]

अर्थात् प्राणी राज्यात्वा व कर्मणा का भूत भा जाता है। यह मात्र मरह का मरह रहता है जबकि परिग्रह नरवानु का प्रदान कारण है। दुःखों की भी मात्र है। नाशकी एक औषध का टिमकार मात्र काल में भी सुखानुभव नहीं करते व बर ही मरते हैं। ऐसी दुर्गति में पड़ने का क्या भया साम्राज्ञ का चलन है? नहीं। कर्मणि नहीं। धन नहीं पान जाता उस प्राण करते व तिर अनेक क्षणों में प्रवृत्त होता है और पान जाता उसी मृद्धि के उपार्ण में भरत रहता है एवं जने रक्षणार्थ जाता विहम्बना वर निरिष मर्त्यों में प्रवृत्तता रहता है। यही नहीं पर मर्त्यता देत क्षणी पुनरा कर्मा है पर भारी पलक देव प्रसूता है। यह ईर्ष्या और मृणा की मृष्टी

उत्पत्ति का क्या तात्पर्य है तात्पर्य तो यह है कि यह शब्द गौत्रा जमीन धरा आदि
 ४वाँ नीच-नुच शब्दों का समूह है जो कि गौत्र, धरा, आदि का धन्वा ये हैं
 प्रमुख धनोपायों के माध्यम से इनमें भी धनवा महत्वपूर्ण और सामान्य का शब्द
 है सविस्तर-नीचरी। इसके बारीक-गूढ़ गहरा महाराम भी हो गये हैं। मत्ता अर्थ की
 क्या बात है? अब विचारिए इन शब्दों में भाग्य का क्या हो सकता है? मार्ग
 जसा गंगा उससे प्राण्य वस्तु भी बनी ही होगी। जिस मार्ग में पानी बहकर आया
 नये की स्थिति का गुणना गन्धी व अगुणना बनी ही हो जायेगी। तन्नुसार यह
 वेद या अर्थ रहनी। शास्त्र अर्थात् हित अनहित कर रहेगी। यह यही दशा है धन
 की बर्बादी की। जिस निष्ठा से गुजरेंगा वसा ही पत्र बुद्धि मनाभाव व दाना-
 निष्ठा का बन्धन न करने वाला होगा। यह है उमका प्रभाव। मात्र प्रत्यक्ष इसका
 अर्थ हमारे देश समाज गृहस्थी पर कुटुम्ब परिवार में धार्मिक सामाजिक राज
 नतिक अध्यात्मिक नतिक क्षेत्रों में स्पष्ट निष्ठा दे रहा है। सच अविश्वास का
 बालबाला है प्रचारण और धावावादी आदि है। एक दूसरे के प्रति घृणा और
 निरस्कार का व्यवहार देना जा रहा है। वेम स्नेह वाग्व्य और अनुराग का नाम
 निश्चय भी नहीं है। पारस्परिक मन्त्री प्रवाद, वाग्व्याप्ति भाव ता माना भू से नभ
 को प्रमाण कर गये हैं यह वर्तमान प्रय का समत्व। कबो की सजावट होटलों की
 बनावट साडिया की समक जूता की दमक और हाटों की सली घाल में नज्जकत
 बान में बनावट चेहरे पर सकेदी नयना में मरीची नयनों में परल और व्यवहार में
 उठान बना यह क्या भारत का आदर्श है भारतीय सभ्यता है? नहीं। नहीं तो
 फिर जैनत्व की छाया कहीं मिलेगी? जन समाज का निर्मल भ्रातृत्व स्नेह मातृ प्रेम
 धर्म का गौरव उच्चार्थों की महत्ता वाणी का गौणत्व वचन का प्रमाणत्व गरीर
 का पुण्यत्व एकत्व का दुः खघन भना विम प्रकार पाया जा सकता है? इसका
 प्रत्यक्ष प्रमाण यदि दलता है तो एक मागर या विजाल शहर कोह पक्को और नगी
 का सा छोटा गांव जसा दाना की चुनना कर शिवार कर परल कर एक में आकर
 बसव फीका उठा धंधला या नष्ट प्रतीत होगा और दूसरे में दुबला-पतला किन्तु
 मज्जीव वहीं मिलकता कम्बट बनता और मन्त्र मन्त्र मुम्ताता।

अर्थात् प्राणी स्वात्मा के बर्णन का भूत सा जाता है। यह मात्र संप्रद
 का लक्ष्य रहता है जबकि परिग्रह नरवायु का प्रधान कारण है। दुःखा की भी मान
 है। नारकी एक आँख की टिमकार मात्र बान में भी सुखानुभव नहीं करने न कर ही
 मकन है। ऐसी दुर्लभ में पड़ो का क्या भला सभ्यता का बलव्य है? नहीं। कदापि
 नहीं। धन नहीं पाने वाला उसे प्राप्त करने के लिए अनेकों में प्रवृत्त होता
 है और पाने वाला उसी वृद्धि के उपायों में मस्त रहता है एवं उसके रक्षणाय नाना
 विध्वना कर विविध दुःखों में जनमता रहता है। यही नहीं पर सम्पूर्ण देश अपनी
 चुनना करता है पर भारी पल्ला देम बिसूरता है। डाह, ईर्ष्या और घृणा की मट्टी

(७८)

म जलता रहता है। नयनर हृदयमात्र कर दुःखी होता है। इस प्रकार प्रिवार करने पर स्पष्ट होता है कि वित्तस्पर्हा एक प्रकार की दाह है जलती आग है जो ईश्वर पार्श्व की तकती है और नही पान पर भा जलती रहती है बड़ी विचित्र अनोखी कहानी है यह अथ विष्णु की। अर्थात् प्राणो की भी बाजी लगा बंठा है। नही साच पाना कि जीवन (वर्तमान पर्याय) समाप्त हो जान पर उन सम्पत्ति का वास्तिर क्या होगा ? क्या मैं उसे भाग सकता हूँ ? उससे लाभान्वित हो सकता हूँ ? दूसरी बात यह है कि चञ्चल अथ क्या कभी स्थिर हो सकता है। जबकि मैं—निज्वात्मा जमर हूँ फिर नगर घन का मुझसे क्या सम्बन्ध ? कुछ भी नहीं। हे भगवान् प्रभव म तेरे साथ एक वण भी नहीं जा सकता फिर क्या कृपा शक्ति समय व्यय गायन करता है। अथविष्णु का परिवर्तन कर। पूर्व पुण्याजित अथ का गायन उचित तायवृक्ष उपभाग कर। दान-पूजा एवं नमस्कारों व मन्त्रादि म नगर मनुष्योपयोग कर। यही है तेरा अपना साधन।

प्रतिष्ठा स्वाभिमान अहंकार

पर्यायवाची

प्रतिष्ठा स्वाभिमान अहंभाव प्रभुत्व ममकार आधिपत्य आदि एव समाज पर्यायवाची शब्द प्रजात हात हैं किन्तु सब अपने अपने म स्वतन्त्र हैं। कोई भी किसी अपने रूप परिणामा नहीं करता। साधारणतौर पर लाभ इनका प्रयोग प्रतिष्ठा करने है। दश की प्रतिष्ठा समाज राष्ट्र विश्व परिवार समाज और देश की प्रतिष्ठा के आधार महत्त्व बनता रहता है अपनी प्रतिष्ठा का भूत इनका जबर हो जाता है कि फिर मनुष्य जगत् का सर्वोपरि मान बैठता है और दूसरे का सम्मान तो दूर रहा किन्तु पर का अपना को जार भी उतारा लक्ष्य गरी गाना। सामान्य जन की बात तो भिन्न है गांधी मता तो व भी वक्तो की भीमत नहीं करता। साधु का उपहास होवे तो हा जाना किन्तु हमारी बात हमारे समाज की नाश हमारे मान की इज्जत और हमारी बात की जान रहनी चाहिए किन्तु तत्पुत्र काय हम करना नहीं चाहते। युद्ध का सम्मान कर नहीं सकते वरिष्ठ स्वयं की बुद्धिमान विमान दूरदर्शी और अत्यधिक मान्य हैं। हम अहंकार की ताड़ना में साये रहते हैं। मनुष्य हा जान ३। अतः ज्ञान व भक्त म युद्धात्मा का निरस्तार कर चले हैं मह है हमारे अज्ञान मान छिन्न ज्ञान और कारे दम्भ की दशा। मनुष्य अतः मानसिक पर ठेव सत्य ही ब्राह्मण हा उन्ना है छापान लगता है उगत पूज उसी कार दुष्टि नहा सी। कारे लभ व बहुम म ज्ञान मानव पण पर टोकर लाता है और हाप मय मय कर पठाता है। अहंकार जन का भूत रूप है। माती का घग क्षीण हो जाता है। प्रतिष्ठा का सी है। प्रभुत्वशक्ति क्षीण हो जाता है। अज्ञान मित्र सच हा जा है। पुना का पात्र हा जाता है बाई उसका नाम भी नहा लेना चाहता रास्य इच्छा उत्पन्न है। विमलशक्ति हृत्तर भी दुर्बल का पात्र बना। अतः म अभिमान का पान मुक्तिवा है। अहंकार म हाने कामा मानव अपनी गूना-गूना और बुद्धि का का बै-ता है। विमल शक्ति नहा रह पातो। अतः समय घोणा साकर

गिरना है तब हाथ आना है। ऊपर मुह उठाये चलने वाला जिस समय गत में जा पड़ता है तब अवन आता है कि मैंने नागनी की है। नीचे गत में गड़ाकर चला। यान की अवन तब तुलना होती है अब लम्बे से टकराना है और उलाट में रक्त बहने लगता है। यह टट्टी गति का टेढ़ा पत्र। मञ्जुल विहार होना चाहिए। जिसका भाई आत्मा का ? नहा शुद्धता स्व प्रवेश। म स्थिति स्व ही प्रवेशो म निवास करता है भला उमका मगन विहार क्या ? तब फिर क्या पुद्गल का ? शरीर का अरे वाह जड़ भी कोई विहार करता है क्या ? जड़ तो जड़ ही है शरीर जड़ है पुद्गल है वह स्वयं विहार कर नहा सकता। गाड़ी में बने जाते बिना क्या वह चल सकती है ? पत्ताधार बिना क्या पतंग उड़ सकती है ? नहीं। इसी प्रकार जीव का सहारा लिए बिना शरीर का विहार-गमनागमन नहीं हो सकता। अस्तु सुनिश्चित है कि शरीर में स्थिति कमबद्ध अनुदात्ता का मगल विहार सम्भव है। अनुद क सम्बन्धी सभी अनुद होने उनका परिणाम भी प्राप्ति अनुद रूप ही होगा किन्तु ध्यान रहे सम्भादृष्टि की भाग्य प्रणय रूप कियाए सभी अनुदावस्था में ही होती हैं। जहाँ शुद्ध स्वरूपोप नब्धि हुई कि बग मगतागमन भाग्य प्रणय सेन-सेन गभी समाप्त हो जाते हैं। व्यवहार व्यवहारिया का हा धम है व्यवहार में ऊपर उठने वालों ने लिए निश्चय प्राप्त है किन्तु व्यवहार सापेक्ष निश्चय होता अनिवार्य है। निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं। मिथ्या नया का समुत्पन्न भी टूट-टूटा हो जावे तो भी वह वायवारी नहा होता अस्तु सापेक्ष नया की व्यवस्था अति उत्तम ढंग में चलकर आत्मा का अपने निज स्वभाव में ही जायेगा ? आप बिना ही स्वतन्त्र रहें तो वस्तु व्यवस्था सापेक्ष ही होती है। निरपेक्ष नय अब क्या है निरपेक्ष क्या है। स्वयं अवयव काय सम्पादन किम प्रकार कर सकता है भला ? नहीं।

आत्म शुद्धि करा। आत्म शुद्धिपथ गुरुज्ञा करना। सभी आत्म बदी १ गुरु पद्धति है। इस पद्धति गुरु का गुरु वीतरागी हितोपदेशी मवज प्रभु श्री वीरनाथ भगवान की देशना उपदेश प्रमोदनेन प्राप्त हुआ था। प्रभु की जन्ममागती भाषा खिरी थी। दिग्दर्शनि प्राप्त हुए थे। यह है अधिवान देशना का मग्य पवित्र पत्र। भगवान ने अपने जीवन को तपा कर बुद्धि बनाया पापपुच्छ स्वरूप बनाया वीतरा गता की प्राप्ति का पूरा दण्ड दृष्ट सम्पूर्ण गहरावर उनके पाप और दण्ड के मुग पत्र बिपय बना। तभी तो मग्य भाष्य सम्पूर्ण का देखा और जाता। आत्मा निवारण हुआ। निवारण हुआ और उसका गम्भीरी पुद्गल भी उनके साहचर्य से परमोन्नति रूप में प्राप्त हुआ। यह है आत्मा का प्रकाश, शुद्ध स्वभाव का प्रकटीकरण निज भाव की उपपत्ति। स्वयं शुद्ध हावर ही तो अन्य को भी शुद्धि पथ प्रदर्शन कर सकते हैं। यह स्वयं शुद्ध बुद्धि निरपेक्ष चिन्तनावस्था में पहुँचे तभी कि समस्त विचार दण्ड भग्य में लपट हो जाते हैं। पत्र पुन जाते हैं। प्रत्येक आत्मा परमात्मा का मकान है।

आत्म साधना में निमग्न हो सरता है एवान् म निस्पृही ध्यान द्वारा अनंत कर्मों की निजरा कर सकता है। कम विषाक को भी हनका बनान में ममथ हो सकता है। धनि बलघारो माछ ह्म कान में विशेष भाव शुद्धि करना है और अमख्यान गुणी निजरा भी सहज ही में कर लेता ह्। निजरा ही ना तप का फल है। बारह प्रकार का तपस्वरण ही आत्मा को तपाना है। आत्मा न्न तपो स तप्य हो धीरे धीरे बुद्धन बनता है। जब तक अन्तिम पाक नहीं आया तब तक ८१० २० कितने ही पाक चने जायें किन्तु यथानुरूप अन्तिम शक्ति न ही प्रतिन पाक पूरा नहा होगा आत्मा निर्मल नहीं हो सकता। यह कान आत्म तत्त्व शोधन का है आत्मा का स्वच्छ बनाने का है अन्य भी ह्मयति मयम का नाघक है ह् साधो। आत्म निरागण करो स्वयं दोष देखो और निक्कलो यही सर्वोत्तम उपाय है।

स्व स्वभाव में रहना है। अब परभावों का त्याग करो कि कल्पों में स्व स्वरूप नहीं नजर आ सकता है। विक्षेप का कारण क्या है? ममकार और अहंकार। जहाँ अपने से मेरापन है तेरापन है वहा उन उन विषयों के प्रति इष्टानिष्ट बुद्धि होती है। उनकी प्राप्ति अप्राप्ति हाने पर राग-द्वेष परिणाम हान हैं। राग-द्वेष आत रौन का हेतु होता है। मानसिक क्षति मकल्प है और बाह्य उपायनों की प्राप्ति न हाने पर क्षुब्धन हाना या उन्हें पाने का प्रयत्न करना विक्षेप है। इन मकल्प विचलों में उनसन है ह् भय सरन बना विषागों से सरन। वक्ता छाडा। निज घर में आना है तो सीज बना। मय सुधार में भक्तता है चक्ता है तो टेडा ही टडा चक्ता है किन्तु जिस समय अपने बिन में प्रवेश करता है सीघा होकर ही घमना है। आत्मन्। सावधान होकर अपने में अपने का पाने का प्रयत्न करो। स्वयं अपने को अपने में प्रविष्ट कराओ। टडापन विभाव है। सीघापन है स्वभाव। विभाव है पर और स्वभाव है निज। निज में निज के जग निज को प्राप्त करा। मुक्ति नगर की ढगर पर चडत ह्म बडने जाओ अपने का अपने साथ लहर बने। अपने में मेरा तरा भाव छोडकर स्वयं को पहिचानी। अपने से प्रीति करा। अपने ही का जाना समथा अनुसर करो। आत्मा में प्रीति करने से आत्मा मिलेगी और आत्मा को जानने से उगने प्रीति होगी। यही सत्य उपाय है।

मन का माछ जीवन का तोड। राह और चाह। चाह से राह बनती है। चाह मन में हानी है। मन विचारा न रात्रा है। शुभाशुभ अछ बुरे ममल विचारों को प्रथम देना है। न्म भरना है मम गों होने का। गाम्य भाव का अब शिष्टा को दण्ड और अतिष्टा का अनुग्रह करना है क्या? नहीं। जिसका जता स्वभाव है जिसकी जमी करती है जो त्रिन योगना का पाव है उमरे प्रति उसी प्रकार का व्यवहार करना यथाकिन साम दाम भय दण्ड नीति में सामाग पर जगाना साम्य भाव का अभिप्राय है। ममता धारी अन्याय न करगा और न करते हुए स प्रसन्न ही होगा। रात्रा का कत न्म मय प्रत्रा का पावन करना है साथ ही उमे योग्य धर्मत्मा और शिष्ट बनाना भी है। धम अब काम और मा। चार पुण्या है चारो का

अविरोध रूप में गवता करना परम बतव्य है। प्रथम धर्म पुण्याप्य मेवत करे और
 उसने पासन के साथ साथ जर्ज काम का सपन करते हुए माता का भी यद्वान-नयन
 बनाये। माधव ज्य ही आत्मा की सिद्धि करने में समर्थ है। प्रथम ताता पुरदायी का
 अविरोध भाग करने पर अन्तिम पुण्याप्य अरुण ही सिद्ध है। सचता है। यही तो
 असली सुख का साधन है। आत्मोत्पत्ति सुख अविनाशी है। शास्त्र है अरुण अरुण
 टकोत्कीर्ण है। मन का चगाम बगो सब सिद्ध होगा प्रत्यक्ष आत्मा जाना है। स्व
 को भी जानता है और पर को भी। परन्तु अनुभव अपना ही अपन में कर सक
 है। चाहे शुद्धात्मा है या अशुद्धात्मा पर के सुख-दुख को जान सकता है अनुभव में
 नही सकता। हम ज्ञाती आगमाधार से सिद्ध सुख का जानते हैं बचन अपने निज
 ज्ञान से समस्त जीवों में सुख-दुख को जानते हैं परन्तु भाग तो अरुण-अपने ही
 आनन्द ज्ञान सुख दुख का ही करत है। ताता-दुष्टापना ध्यानी है किन्तु स्वानुभव
 सुमानुभूति आनन्दानुभूति निज निज की स्वयं अपनी अपनी अपने में ही होती है।
 किन्तु अनायास सिद्धांत है अटल सत्य है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं रागी व रोय को
 वच डाक्टर परीक्षण कर जान लेता है एक दूसरे में सुख दुख का हम योग की
 देखते जानते हैं परन्तु विपाक फल तो वही स्वतः भागता है अनुभव करता है। इन
 जन्म फल ही अथवा आत्मोत्पत्ति स्वयं ही स्वयं का अनुभव करता है। शिव लोक का
 वाता तीन लोक के समस्तवासी जीवों के सुख-दुख से परिचित है किन्तु वे इन्द्रियज
 विषय भाग बच सुख दुख तनिक भी उनकी अनुभूति में नहीं आते। हे साधो! तु
 स्वतः है अपने सुख दुख का स्वयं आप विधाना है। आप ही अपना सुधार विधा
 करने में समर्थ है अपने बल पर अपना विकास कर। आत्म बभ्रव अनुभव है।
 अनन्य है और अविनाशक है। असंख्य गुण विष्णु है ग्रहण करा प्रवृत्त करो। आत्मा
 जाना है दुष्ट है किसरा जाना दुष्ट? क्या ससार का नहीं-नहीं उसे क्या कर
 श्रवता है पर के जानने देखन की। आप बीजे होगे कि आज तक सब हमने यही
 गुना यही पड़ा यही समया। परन्तु यदि आपम का मयि तत्त्व पान का प्रयत्न किया
 होता तो कमजोरी की आवश्यकता न होती। शुद्ध परिणति कर देगा समझा अनुभव
 करा। आत्मा अपने स्व आत्मा का ही दुष्ट है और स्व आत्मा की ही जाना है।
 व्यवहार नय से यह कथन है कि सबजगत् पन्धों को युगपत् जानते देखते हैं।
 वास्तव में निर्वचन-परमाय से वह स्वयं अपनी ही आत्मा का जाना दुष्ट है। पर
 पार्थ जगदी आत्यन्तिक निमग्नता होने से निश्चय ही भाव नाश रूप में ह
 जा। स ज्ञानन सत्ते है प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। न भगवान् शुद्धात्मा जानता है
 र दया है क्योंकि जो पापछा ही नहीं है जाना देखन की। यदि जान देगन का
 स्वभाव मात्र जिज्ञा जाय तो फिर रम्य अरुण पन्धों व प्रति इच्छा, अनिच्छा
 भावों होगी और इस प्रमाण स्वीकृति में राग-द्वेष हो जायगा। जीवराग परिणति
 नष्ट होने से परमा या दशा ही नहीं बानी। अतः स्वयं में स्वयं का स्वयं देगा
 जा। वात परमात्मा की सचविमुक्ति में अथाग अनाद पार्थ एक समय में एक

साथ विद्यालय परीक्षाओं सहित स्वयंसेवक बनने लगते हैं। यह स्वभाव ही है ज्ञान का झलकाने का और पणधियों का उदय झलकाने का। यथा सृष्टि मणि। ज्ञान दीने पणधियों का सामने आये झलकाने लगते उगी क्या म। आत्मा ज्ञान स्वरूप है अर्थात् से मजिन है। उगों गगन स्वच्छ हागा पर पणध स्वयं झलका। मजिन। व झलके का म झलकें झलका—तुलना का प्रयोजन दासे। हे साधो! अज्ञान को स्वच्छ बनाओ। जीवनराग चारित्र्य प्रकट करो चारित्र्य यन्तु धम्मा है वह चारित्र्य आत्मधर्म गाम्भिर्य भाव है। जीवन मरण साम-अनाम सवाग विवाग बाधु रिपु समान-महान काँच-कञ्चन आदि में समान बुद्धि हाता साम्भिर्य है। यह माह धाम विद्या परि ज्ञान मे ही प्रकट हो सकता है। माह राग धाम- है। यही आत्म स्वभाव है आत्म स्वभाव ही धर्म है जैसा जग है यन्तु स्वभाव धम्मा। यही स्वात्मोत्पत्ति है यही स्वमजित है। स्वात्मोत्पत्ति यही है। हे भाई साधो! इमी म जाया गमी यथायं साधुत्व का आनन्द का मजना है। सही साधुत्व का अनुभव हो सकता है यथायं साधुता का साम हो सकता है। मानागमाय का विगम्या आत्ममजिन का कारण है जीवनरागभाव का घातक है। स्वमजिन का नाशक है अन्तु क्वाति पूजा का भाव मजपा रमाय और मजत सावधान रह इग भवकर भूत से। धर्म वस्तु का स्वभाव है। मजत स्वभाव ही धर्म है। आता तत है—वस्तु है। वह भी परिणामन मीत है। त्रिम काय वह स्व स्वभाव रूप परिणति करता है वही धर्म है और पर रूप परिणामन अधम है। पर पणध दो प्रकार के हैं शुभ रूप और अशुभ रूप। शुभ में आत्मा परिणामन करता है ता शुभ परिणामन हुआ 'शुभोपयोग' कहलाता है। यह शुभ भी ७ प्रकार का है मिथ्या रूप और सम्मत् रूप। मिथ्यात्व पूर्वक शुभ क्रियाएँ शुभराग शुभ परिणामन निश्चय म मसार वद्धक है दुःख का कारण है। जैसे पत्र दायादि करना-कराना मरानी देव गद शास्त्र का पूजन मानना पठन-पाठन मीतन यथावाचन आदि शुभ क्रिया कही जाने पर भी यथायं शुभ नहीं है। अर्थात् इनसे होने वाला पुण्य मसारवद्धक है। स्वर्गादि म मे जाकर विपदासक्त कर दुःखति का पात्र बना देगा। किन्तु इयं विररीन गम्या, टिवाव का पुण्य वगमान भागी को मुनमता से प्रसर मात्रा म प्राप्त करा देगा उनम अयामक्ति लाभ का प्राप्ति या मोह पण नहीं होने देता। पर भव म भी पञ्चेन्द्रिय क्रिय-व्यापार का प्राप्ति प्राप्ति करायेगा किन्तु उनमें त्रिज नहीं होने देगा न आश्चय है न मोह दोष। अतः शुभ साविशय-सम्भरत्व पूर्वक उपाजित पुण्य स्वयं मापान है उध्वलोच की सीढ़ियों का काम देगा यदि तुम चाहोगे तो। सही समझाये ता। हे आत्मन् शुभा शुभ का समस्त समग्र प्रक्रिया समझा तदनुसार ग्रहण करो तदनुसार व्यवहार करो तब वही उमय ऊपर का माग प्रगस्त हागा और शुद्धावस्था म पहुँचन म समथ हो मकीये अयथा जीवन म त्रिमना आ जायगी। सराय सम्भरत्व या जीवनराग सम्भरजन पूर्वक जो क्रिया होगी वही चारित्र्य है। यह मरग चारित्र्य व जीवनराग चारित्र्य हागा।

की शक्ति का सर्वोपरि है। शुभाशुभा के भी ऊपर है। शुभ की सीमा पर बर पुन नहीं कुछ काल रह उन स्थिति का पुष्ट करने का शक्ति कहा शुद्धोपयोग की दशा प्रकट हो जाती है कि वह स्थिति में आर्यो। उस मन्त्रों का समय उह पनरान का प्रयत्न नियमान पर व बढ़े और पुष्ट होत तब कहा उस शुद्धोपयोग का रसास्वात्न करने का मिलेगा उसका स्वाद प्रायण पुन उनम अनिदानुभूति होगी और वह ज्ञानामृत लेगा होगा कि फिर मन्त्र का कुछ भी नहीं सुहायगा। एक मात्रा बड़ी होगी उसी में एक लयता आयगी। यही अतुल्य की कमाई चिर अनन्त होगी अबन और अटल रहेगी एव एक समान मनन रहकर परमात्म स्वरूप बने विराजमान रहेगी। है आत्मन तू तर स्वभाव का विचार कर किता प्रकार में पत्र वारक सम्पन्न रहित है। चित्त चतुर्थ अन्तर्गत ज्ञान का उत्पादन मैंने हा किया है। अन्त में स्वयं स्वयं का कर्ता है। मग विज्ञान धन चतुर्थ आत्मा अन्त हा का आत्मा आत्मा द्वारा अवगत किया जाना है साधक तम करण आत्मा (मैं) ही है। सब पर जय भावो रा रहित निर्विकल्प आत्मा ही अपनी निरात्मानुभूति में निमग्न हा आनन्दानुभव तीन होता है अन्त अपने लिए हा सम्पन्न रूप है। पूव अपने ही ज्ञान स्वभाव की विपरिणमन रूप मति श्रुति अग्रिम मन पयस ज्ञान रूप विविध विपरिणमन करना या अब उन पर द्रव्यो स सत्रया भिन्न होन से स्वयं अपने ध्रुव स्वभाव का अपावत्य भाव हात स अपादान है। अपने ही स्वतन्त्र रूप स्वातुभवानुरञ्जित होने से स्वयं निज में हा अबल-अटल रहकर आत्मशोधना करना है। अस्तु अयाधिकरण का अभाव है। स्वयं ही स्वयं में तीन है इस प्रकार सभा वारका का समाहार इन आत्मनत्व रूप स्वभाव में ही समाज हा जाता है। अर्थात् हर क्षण विचार करा १ मैं आत्मा है २ मैंने हा भरे मुद्राप योग रूप भावा का स्वयं प्रकट किया है। मैं ही कम है। मैं ही मर आत्म स्वभाव को परिपुष्ट बनान का प्रयाग किया है मैं सतत स्वयं अपने हा में रहता हूँ। अपना-अपना को आश्रय है स्वतन्त्र वृत्ति होने स। स्वाधीनता में ही सार है।

आत्मा एक रूप है। अन्य द्रव्यो स भिन्न है। समस्त रूप अपनी-अपनी सत्ता में विद्यमान है। निज निज स्वभाव में स्थित है। पर द्रव्य अन्य द्रव्य रूप वस्तुति नहीं होता यह असम्भय निश्चय है अन्यथा द्रव्य छ ही होते हैं कम या अधिक नहा होन यह निश्चय नहा बन सकता। द्रव्य अपना इयत्ता का कभी भी नहीं छोड़ते। अस्तु आत्मा चतुर्थ है। चतुर्थ ज्ञान-दर्शन रूप परिणमन करना है आत्मा भी ज्ञान-दर्शन रूप हुआ। ज्ञान ज्ञान का निज स्वरूप को प्राप्त करता है वह सर्व-पर्यायो युक्त सत्र पण्यों का ज्ञान हा जाता है इस ज्ञान के आधार भूत नामा को सर्वत्र प्राप्त होता है। ज्ञान अनीन्य है परात्मत्वा रहित है सर्वत्र गायक है अन्त गवगन है ज्ञान सहकारी आत्मा भी सब व्यापक है। सब व्यापक भी ज्ञान आत्म द्रव्य स बहिर्भूति नहीं है। आत्मा निष्ठ ही है। आत्मा से अधिक या कम ज्ञान नहीं है

अथवा अधिक ज्ञान में बढ़ता हुआ जायेगी और उगका ज्ञानुर स्वभाव गूढ़ हो जायेगा। स्वभाव नाश होने से स्वभावों का भी अन्तःस्वभावों की शक्ति निराश्रय बने रह गयेगा है? उभय का अन्तःस्वभाव हो जायेगा। मान शून्यता का प्रमाण हो जायेगा। अतः ज्ञान प्राप्त प्रमाण है यह निश्चित है। आत्मा में ज्ञान कम भी नहीं है यदि आत्मा ज्ञान विहीन है तो ज्ञानस्वभाव नहीं बनेगा और सप्रमाणता का भी अन्तःस्वभाव हो जायेगा।

इस प्रकार अज्ञेय दोगा का उन्मादन होने में तब व्यवस्था नहीं हो सकती। आत्मा स्वयं सिद्ध है वगैरे ही उगका स्वभाव है। आत्म तत्त्व का परिज्ञान करने के लिए सब तत्त्व व्यवस्था जानना परमावश्यक है। हे आत्मन् तू निज आत्म स्वरूप का परिज्ञान कर। निज स्वरूप को जाने बिना स्व परिज्ञान नहीं हो सकता। अस्तु आत्मा व्यापक है और ज्ञान व्याप्य है। ज्ञान आत्मनिष्ठ है। आत्मा में ही समावेश रहता है। किन्तु ज्ञेयों का ज्ञान है इसलिए ज्ञेय प्रमाण है ज्ञेय सोचाना प्रमाण है ज्ञानि ज्ञान सवगत है। ज्ञान घन आत्मा परमात्मन कारण अनन्त सुख-अन्य दशन युक्त है। अनन्त ज्ञेय और अनन्त पर्यायों व भी न जानवनी और त्रिविधत्व ज्ञेय उन सबका ही एक साथ आत्मा देवता और जानता है। यही नहीं अपितु ये सब पदार्थ पर्यायों ज्ञान में प्रतिबिम्बित होती हैं ज्ञानवन्ती हैं। यही आत्मा का शुद्ध सत्य स्वरूप है। जय विभिन्न मतावलम्बी विविध आत्म स्वरूप मानते हैं वदन्तिका प्रमाण आत्मा है या अगुष्ट प्रमाण अथवा श्यामक प्रमाण आत्मा यह सिद्धान्त अप्रमाण है अतः उपयुक्त कथनानुसार आत्मा का स्वरूप ही यथाय मानना चाहिए। अस्तु आत्मा स्वरूप का निश्चय कर ज्ञान करना ही साम्यत्व है। बार-बार चिन्तन करने से स्वस्वदन की प्राप्ति होना सम्भव है।

व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा नय २ भू है। नयाना समीप उपनया जा नयो के समीप में रह व उपनय है अर्थात् आत्मन उपसामय प्रमाणादोना व तेया गुणसमीप नयतीति उपनय। जा आत्मा व या उन प्रमाणात्मा को अत्यन्त निवृत्त पट्टेचाता है वह उपनय है। उपनय। उपनय ३ भू है—। (व्यवहार नय) तन्मूत व्यवहार नय २ असम्भूत व्यवहार नय और ३ उपचरित असम्भूत व्यवहार नय। भदापचारतया वस्तु यद्विभूत इति व्यवहार। अर्थात् भद और उपचार व द्वारा जा वस्तु का व्यवहार होता है वह व्यवहार नय है। जा भद द्वारा वस्तु का व्यवहार कर वह सद्भूत व्यवहार नय है। एव जा उपचार द्वारा वस्तु का व्यवहार कर वह उपचरित असम्भूत व्यवहार नय है।

सत्ता सत्या काण प्रपात्रन का अपक्षा वण और गुणी म भद करन वालो नय सद्भूत व्यवहारनय है। इस प्रकार पर्याय पर्याया में स्वभाव-स्वभावों में कारण कावकी में भी भू करना सद्भूत व्यवहार नय है। यथा उगता स्वभाव और अग्नि

प्रभावे न भूत वर्त्तत । तथा मृगशिरः की शक्ति विनाश कारण म और मृगशिरः
कारणों म भेद करना य सब सद्वृत्त व्यवहार नय क दुष्टता न है ।

असद्वृत्त व्यवहार नय—अयत्र द्रष्टुं धर्म (स्वभाव) का अयत्र गतारोप
करन जाती असद्वृत्त व्यवहार नय है । जैसे पुष्पन आदि म जो धर्म (स्वभाव) है
उसका आशक्ति म गतारोप करना । इसका भेद है—

१ मध्य म मध्य का उपचार ।

२ पर्याय म पर्याय का उपचार जस पुष्पन म जोध का उपचार अर्थात् पृष्ठा
आदि पुष्पन म एहंत्व और का उपचार करता । जस पर्याय का पर्याय म अन्य
रूप प्रतिबिम्ब का उपचार ।

३ गुण म गुण का उपचार जस मनिमान मूर ६ यही विज्ञाति शार गुण म
मूल गुण का आराग किया है ।

४ मध्य म मध्य का उपचार यथा—अजीव जाय जय ज्ञान विषय
है यही आश्रित जीव द्रव्य म जो गुण का उपचार है आराग है ।

५ मध्य म पर्याय का उपचार जस परमाणु बहुप्रमाणों है अर्थात् परमाणु द्रव्य
म बहुप्रमाणों पर्याय का आराग है ।

६ गुण म द्रव्य का उपचार यथा श्वेत प्राणां यही प्राणां मध्य का श्वेत
गुण म आराग किया ।

७ गुण म पर्याय का उपचार — ज्ञान गुण के परिणामन म ज्ञान पर्याय का
पहण करना गुण म पर्याय का आराग है ।

८ पर्याय म द्रव्य का उपचार—स्वयं का पुष्पन मध्य रहना यही पर्याय म
मध्य का उपचार है ।

९ पर्याय म गुण का उपचार यथा इगका शरीर रूपमान है । यही शरीर रूप
पर्याय म रूपवान गुण का आराग उपचार किया गया है । य सब असद्वृत्त व्यव
हार नय है ।

उपचरित असद्वृत्त व्यवहार नय

मुख्यभावे सति प्रयोजन निमित्ते भोग्यार प्रवृत्त मुख्य क अभाव म प्रयोजन
वश अथवा निमित्तवश उपचार की प्रवृत्ति हानी है । जैसे बाजब का गिह कहना
या मारजार का गिह कहना ।

सद्वृत्त व्यवहार नय क दो भेद हैं—शुद्ध सद्वृत्त व्यवहारनय और अशुद्ध
सद्वृत्त व्यवहार नय ।

शुद्ध गुणी और शुद्ध गुण म तथा शुद्ध पर्याय-पर्यायी म जो नय भेद का
कथन करता है वह शुद्ध सद्वृत्त व्यवहार नय है । यथा सिद्ध जीव और सिद्ध पर्याय
म भेद कथन करना ।

अशुद्ध गुण और गुणी एवं अशुद्ध पर्याय-पर्यायी म भेद कथन करना यह अशुद्ध
सद्वृत्त व्यवहार नय है ।

अगद्भूत व्यवहार नय क ३ भ० हैं—१ स्वर्गात् अतद्भूत २ विजाति
अतद्भूत और स्वजाति विजाति अगद्भूत ।

हे आत्मन् ! आज प्रमान आया है । प्रजात पाया है । समय पाया है । य
रत है । सरागमल युक्त है । हाथ म आया है । अब तरासा मान शेष है । विवेक
ज्योति स निणय कर मन विचार विनना कहीं-कहीं मिला है ? तरी इति म यह
जैव गया तो फिर भ० करने म क्या देर हो सकती है ? कुछ नहीं मान अनुमूह
म सब विशुद्ध परमशुद्ध परमात्मा द्वारा उपलब्ध हो जायगा । अनाति से यह मति
है विकारी ह विकार भी अनाति है कोई नय नहीं है । नवीनता प्रकट करना है
जा पुष्टपाय साध्य है । स्व पुष्टपार्थ व बन स उन दो अनाति तत्वा का अलग-अलग
कर देना है बस इतना मान काय ही तुम करना है । ह गुण अनाति मिश्रता को
काट छाँट कर शुद्ध रूप म लाना है । इसी का प्रयाग करा । यह काय सरल भी है
और कठिन भी । कठिन तो इसलिए कि भव भव के प्रयास अभ्यास स यह कोमल
पात हो सकती ह और सरल इसलिए है कि अभ्यासनिष्ठा होने पर मात्र एक
अतमुद्धत माम काल लगगा बस । ह भाई अभ्यास कर तत्व चिन्तन का । तत्व
चिन्तना व लिए तत्व परिज्ञान परमावश्यक है तत्व परिज्ञानाथ विषय विरक्ति
इन्द्रियासक्ति-मुक्तभिलाष त्याग अत्यावश्यक है । तत्व और तत्व विवेचना की स्थिति
नया व आनित है । द्वैतव्यक्ति नय तत्व का विषय करता है और तत्व विवेचन
व्यवहारानित है । विवेच्य तत्व विवेक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है । तत्वावबोध आत्म
साधना का साधक है । स्व पर भद विज्ञान ही अपर नाम है । यह स्वविवक्ति का
उपाय है । आत्मा ज्ञान है ज्ञान आत्मा है यही तत्व है, तत्व पदार्थ का सार है । सार
निचाड़ ही पदार्थ का चिरतन स्वरूप है । जो चिर है वही अमर है जो अमर है वही
सत है सत है वह परिणमनशील है परिणमनता वस्तु का स्वभाव है स्व स्वभाव निज
स्वरूप । स्वरूप स्वभाव सिद्ध है स्वत सिद्ध है परापेक्षा यहाँ कुछ कार्यकारी नहीं
है । जहाँ पर अपेक्षा है वहाँ स्व स्वरूपापेक्षि नहीं हो सकती । हम स्व स्वभाव
बाह्य है स्वतत्वापेक्षा की बाधता करत है किन्तु वह मिल कस ? नयो का पणपान
छूटना नहीं स्व पर का भ० होना नहीं । दुराग्रह स हम हटत नहीं । फिर वस्तु
स्वरूप सिद्ध हो किम प्रकार सकती है । साध हान पर भी पूर्व सत्कार आने है
बनान् आत है हम विवश करत है हम उनम पुन जान है मिल जात है निज का
भूल जात है पर म हो आया मान सत है और फिर निभाव की वह लड़ी-कड़ी जुझी
जाती है बढ़ती जाता है यहाँ है सत्कार सत्कार की परिपाटी सत्कार की वृद्धि और
दुःखा की अन्त छाँटि हम परमाप स हट विषयो म प्रवृत्त हो जात है यह है
सत्कारा की निरलसा निवारा की अपरिपक्वता और सद्भावना की छाप की दुर्बलता
पक्षाभा-वचता गुण का गुण्य व कारण का साधना का चारा आर स पुष्ट का
सबका का ज्ञान बढ़ाना करा कि साधक हो जाय पुष्टपत्ता नित्यपरा । यही

है निश्चय ही है अमर फल पाने का साधन । यह मूल रूप का पद अस्मिन् पुनः रूप का ही पद है । फल पाने पर मूल की आवश्यकता नहीं किन्तु फल पाने के लिए मूल का होना अस्तिनिवार है । बिना मूल के फल प्राप्त नहीं हो सकता । यही पुण्य उपाय है साधन है आवश्यक है अत्यावश्यक है परमावश्यक है । इसका मूल है शुभाचरण । आज बोला तो फल हा मूल नहीं हो जाता है और त ही लगभग फल हा प्राप्त हो सकता है अपितु धैर्यपूर्वक विविध प्रयत्नों के अन्तर्गत अनुचित साधना के उपायान्तरों से ही होनी है बस यही है मुक्ति का अमर फल पाने का विधान । पुरुषार्थ की पाठ परिचय शुभाचरण में प्रमाण बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करना उद्यम की पुनः उद्यम आदि न रहे । लग्न रह फल पर । अक्षय निश्चय हागी शीघ्र होमी तही हागी और वह फिर अमर रहेगी । यह है हमारा निश्चय पुण्यार्थ का समस्तार स्वात्मोपलब्धि का उपाय और परमार्थ प्राप्त ।

ज्ञान और आत्मा क्या भिन्न है ? या एक है । यदि भिन्न है तो यह ज्ञान अमूर्त का है अमूर्त का तही यह कि प्रत्यक्ष अद्वितीय हागी । फिर आत्मा ज्ञान विधान जिस समय हागी तो वह जड़ रूप हो जायगा । जड़ में ज्ञान गत्याय तो ज्ञानापना आत्मा तो अन्य जड़ पदार्थों में भी नश्यत स्वभाव आता चाहिए । परन्तु यह सब असम्भव है । फिर ज्ञान अमूर्त और आत्मा भिन्न है तो अमूर्त ज्ञान अमूर्त आत्मा का है यह निश्चय बात हागी ? अथ आत्मा न तो वह भी जड़ है जड़ जड़ में गत्याय किम प्रकार क्या सकता है ? क्या कभी टेबुल कुर्सी में ज्ञान जाड़ सकता है ? बागवत-वनम में साध ज्ञान का साधन कराकर वनम का ज्ञानी बना सकता है ? नहीं फिर क्या दाता एक है ? यदि हा तो ज्ञान और आत्मा दो व्यपदेश नाम क्या क्या हात हैं । आत्मा और ज्ञान मात्र क्या प्रणामी का भेद है । यथाय म दाता अभिन्न है । दाता में व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है । अयोध का अस्तित्व एक ही है । आत्मा ज्ञान प्रमाण है ज्ञान ज्ञय प्रमाण । परन्तु शुद्ध दशा में स्थानुभव समूहिक अवसर में दाता एक है । ज्ञान ज्ञयकार परिमणन करता है स्वयं स्वयं तथा रूप शक्ति वाता हान स ज्ञय अनन्त है और अनन्त पर्यायों में सम्पन्न है । इस दशा में ज्ञान को अनन्त पदार्थ और पर्यायों का जानने वाला ज्ञान ज्ञयानुसारण परिमणन करता है । उन अनन्त आकारों का अपना ज्ञान भी अनन्त है । आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है अस्तु ज्ञानव्य भाव ज्ञान भग्न मुक्त हाकर सबशाया है । किन्तु काल त्रिग समय ज्ञान पर पदार्थों को आवश्यक करता है—ज्ञानता है युगपत् तब वह सब दर्शी या सबज्ञ है । सबका जानता हुआ भी सब में सबान्तर अन्तर प्रविष्ट तही हाता अब आत्मा प्रमाण हो रहता है । अज्ञान जितना ज्ञान है उनका आत्मा है और जितना आत्मा है उनका ज्ञान है । यथा व्यपस्था गमीचीन टकात्कीण मुष्मिन् हागी है । आत्मा ज्ञान और ज्ञान आत्मा है । अथवा आत्मा के ब्रह्मता का प्रमाण आ जाव और फिर आत्मा ज्ञाता न रहे । आत्मा जड़ भी है । एकान्त पद पकड़ना मिथ्यात्व है । एकान्त मिथ्यात्व समस्त ब्रह्म है । समस्त की अनन्त परमाणु का कारण है । आत्मा के अनन्त गुण हैं

ज्ञान योग की । यह सभी ज्ञान है उस जो ता था मा ज्ञ है । अतः का नि
जड़ पाना मत करी करना अतः परमार्थ गयी जा ही है । और भी मे विचार
और आत्मज्ञान भग है । ही के स्वरूप में भी ज्ञान कि गारे जगते गगान प्राय
हा वा है । यह है तनु की गरी कारणता । अर्थात् अकारण अयोग्य
विच्छेद । अतः परमार्थमात्र शुद्ध विचार आत्मा का स्वरूप होता । योग है उगता
प्रदान ज्ञान और आत्मज्ञान होता पाणि । ही गगता है । यह तनु स्वरूप या स्वरूप
है । स्वरूप में एक नहीं होता । हे आत्मा अतो में आता अनुमान का गिर हो
का प्रता का गता उगता है ।

अवधारण आत्मज्ञान का है ? आत्र ही गरी विचार करता है । अतः योग
पञ्चक य पुनः पुनः गीत गता है । अतः का अर्थ है अतः-अतः अर्थात्
का भी दो पानों में स काइ एता योग का अर्थ गता गीता है ही—मिना हुआ
जाह अवच्छेद का अर्थ है पुनः भिन्न-जगता । अतः विचार करा सबका एक साथ
अर्थ विचार करने पर स्पष्ट हा जाता है कि अतः में अतः जगता भा गता है सपाय
का अभाव जगता शुद्ध एता पता एता हा प्रसार गुण-कर्म त्रिया स्वभाव स गगता
पता । जानका ततः । आत्मा भी अतः योग-अवच्छेद स्वभाव है । संसार दशा में
वह सपाय है । सपाय भय पता का गता है व चाह मूल हा या अमूल ।
स्पून हा या गुदम । गता भिन्न है जगता हा या पान । इन सब भावा स भिन्न शुद्धात्मा
का स्वरूप है । इसी का एकता-विभक्त यह कर आकार्य श्री गुण-कुण्ड स्वामी न समय
सार महापति प्रथम चतुर्षु गता में स्वरूप किया है । ह गता ! निरन्तर उग
पान का प्रयास कर । प्रथम स्वरूप स गता नाम सपाय स अज्ञान कर पुन ज्ञान
कर नन्तर वहा स्वरूप हा उगता में रमण कर वग अपने में अपने का पाताग और यही
हाता अन्य योग अवच्छेद । अर्थात् सपाय पर सपाय स विविक्त शुद्ध चतन रूप
आत्मा । ह साधा साधुता का यही सहा पता है । सपाय मूल दुख परम्परा में अनादि
रा दुखी हात आ रहे हा अतः इस रूपा का समझने का अवसर आया है पाया है ता
भटका मत । राह मत छाहा । "य स प" विचारा वि भय है पदन का गिरने का
हाव पर टूटने का अपात् ससार भटकेन का । सावधान हाकर नित्र में नित्र का
समाप्ता अपने में अपने का देता समझा ग्रहण करा । यहा आत्मा का सार है ।
आत्मा की अनुभूति शुद्ध नयात्मक है । शुद्ध नय आत्मस्य है । प्रत्येक पता शुद्ध है
वहा शुद्ध नय का विषय है अवहार य अनुशुद्ध का ग्राहक है । अनुशुद्ध पदाय अपने
स्व-स्वरूप स च्युत है छट्ट है गता है । नाटक में आय पात्रवत् है । नटवत् है ।
सम्पूर्ण द्रव्य है ६ । उनकी द्यता ६ हा है न ७ ह न ५ हा । इनमें ४ द्रव्य सतन
निरन्तर शुद्ध स्व स्वभावन स्थित अनादि स ही है और अनन्तकाल तक भा इसी
प्रकार रहण । किंतु जाव जाव पुद्गल दाना का सपाय है दाना हा स्व-स्व स्व-स्व
च्युत हा दागले वन है अनादि स । दाना ही अनुशुद्ध है । न ता पुद्गल ही अपने शुद्ध

परमाणु रूप था और न आत्मा ही शुद्ध सत्त्व-रूप में। दोनों ही अपने-अपने स्वभाव से विचलित हुए मिश्र भाव का प्राप्त कर अशुद्ध बने नाना रूप परिणमन कर रहे हैं। यही समार है। तभी तो दुनियाँ दुरंगी बही जाती है। दो भावों के संयोग से उत्पन्न है समार। इसमें दो ही जड़ चेतन पदार्थों के संयोग का समस्त स्वन हो रहा है। जो विवेकी पहिचान लेता है वह इस ध्यान की ऊपरी तटक भटक से गाव धान हा बाह्य चमक-रमक से हटकर भीतर में अन्तः प्रविष्ट हो अपने का गाव धान करने का प्रयत्न करता है। वस यहीं से बुद्धि विकास स्व स्वरूपाभास, निजा नुभूति स्वतन्त्र परिज्ञान का अकुर प्रादुर्भूत होता है। अपनी सुध में आत्मा आता है। हम और आप या जो कोई भी प्रत्येक प्राणी अह अह रूप से अपने में अनुभूति करता है वही अन्तर्जन्म रूप स्वाभाविक अनुभव-आत्मानुभव है। हम पूर्ण सावधान हैं मुद्वह हैं अपने का निर्मेय निद्वन्द्व निर्विकार मान बैठ हैं अचानक शर की गजन मुनी या जोर से विद्युत की तडकन हुई चौक पड़ यह क्या है? वही आत्मा की विकारी शक्ति। आत्मा विकारी है। आज से नही जब से उसका अस्तित्व है तब से। निर्विकार आज तक हुआ ही नही जा हा गया फिर विकारी हागा नही। जोव और उसका विर सायी पुद्गल दाना ही सग म विकारा ही हैं। परमाणु हे नही हा जाना है शुद्धात्मा हे नही हा जाना है। उनमें शुद्ध रूप परिणमन का शक्ति है याग्यता है उस प्रकार का गुण है। यह बाह्य निर्मितो पर हो आश्रित है। बाह्य निर्मित भा अपने स्वयं पर निर्भर है। हम उनका जसा श्रितना जब उपयोग करण तब उनसे उनका उतना ही उपयोग कर लाभ उठा सकत है। अस्तु निर्मितता से सामावित होना न होना यह स्वतः जाव न उपर निर्भर है। ह साधा। अपने आत्म स्वरूप के साधना का सम्भव उपजिन सम वय सबद्धन और प्रयोग करो तथा काय सिद्धि सम्भव है।

वर्षा-काल और आत्मशोधना

वर्षा-काल मन्त्राणि का समय है। इस समय सबसे उत्तम-दुष्टन दृष्टिगोचर होती है। नयी-नयी नयी माय कृष्ण-पीध जीव जंतु मर-नारी सभी का जीवन एवं विविध प्रकार की अनुभूति करता है। जीवा में विपरिणमन हो हा जाता है। शरीर रिक रांगो का प्राचये पाचन शक्ति की हीनता गभनागमन की अमुविधा एवं गामूहिक उत्पत्ति की कभी स्वभाव मे हा जाती है। सम्भव है इन सभी अमुविधाओं का दृष्टि में रखकर जनाचार्यों ने इस काल का आत्मशोधना का काल निर्धारित किया है। आत्मा और शरीर का संयोग सम्बन्ध है। दो विराधा अस्तुओं का मिलन एक दूसरे का साधक न होकर शत्रु बनता है यह प्रत्यक्ष है। सास और पोषण का सम्बन्ध हान पर वह पोषण का आमूल नष्ट कर देती है। शरीर का भी यही हान है यह स्वयं पुष्ट होता जायेगा तो आत्म का महार करने में बाध नही आयेगा। हाँ यह अवश्य है कि आत्म स्वरूप का नाम तहा कर सजना। पर उन विद्वतों का अवश्य ही करना

है और माग च्युत कर दुःखा का पाप बना देता है। जसा कि पूज्यपाद स्वामी का निम्न श्लोक प्रतिपन्नित करता है—

यज्जीवस्थोपकाराय तद्देहस्यापकारकम् ।
यद्देहस्थोपकाराय तज्जीवस्थोपकारकम् ॥

अर्थात् जिससे आत्मा जीव का उपकार होता है उससे शरीर का अपकार होता है और शरीर का उपकारी आत्मा का अपकारी अहित करने वाला है यह मुनि विवक्षित है।

चातुर्मान वाल म शरीर पापक सभी तत्वा का सभी व्यापारादि कार्यों का प्रभाव स्वभाव में ही मंद हो जाता है। पाचनशक्ति मन्द होने में विविध व्यञ्जना पक्वाप्रा की आवश्यकता नहीं रहती आपान निर्माण का साधना भी असुविधा से व्यापारि मंद हो जाते हैं। जन धर्म दया भूतक है। अहिंसा इगका प्राण है। जीव माय का रक्षण करना इसका कर्तव्य है। प्राणी माय का उत्थान विकास करना इसका ध्येय है। इसीलिए तो जनम सत्य धर्म का स्थान प्राप्त किया है। सर्वो दय की स्थापना जन सिद्धांत का नाव पर हा हा सकती है। क्योंकि सबभूतहित भावना इगम निहित है। यथा—

सत्त्वेषु मत्री गुणिषु प्रमोद
चित्तेषु जीवेषु कृपा परम
माध्वस्य भाव विपरीत वृत्ती
सदा ममामा विवधाति हेव

अर्थात् मत्री भाव जसा में ममता सदा प्रीति में नित्य रह दा दुःखी जीवों पर मर उर का रक्षा सात बड़े दुःखन पूर पुमाय रता पर शांति नहीं मुक्त आव साम्य भाव रहनी। मैं उन पर एसा परिणाम हो जाय मणी जना का दत्त हृदय में मर प्रम उमड़ आव बन नहीं तक उनकी मरा करक यह मन मुग पावे।

क्या समय में आकाशति प्रकृ ममात्र में हो जाती है। सूक्ष्म जीवों की अन्त ममा हारी है। सूक्ष्म मागारण में पाप की उत्पत्ति हो जाने से मयमी त्र। हा ममता ममन बड़ हो जाता है। यही नहा अविरतिवो का भी अनाशरक विराति नग करना चाहिए। विरति जायक रसावर हिमा का स्थायी नहीं होने पर यथाशक्ति उनका रक्षण हो करना है किन्तु वे जावो की रक्षा पूष मावधानो में करना है। जिहा प्रहार प्रमात्रक ज्ञान या ज्ञाता ज्ञाता में विराधता हो भी गई ता जाकारि मरकना का कारण भूत में आभावनता कर योग्य प्रायश्चित्त कर शुद्ध करने है। माय निराकरण करने है।

भूत ममा वास्तवि और अय विक्रम जन अनेनी पञ्चांग्य ज्ञानि क जास का भावना ज्ञान का भाव व त जाना है। कक्षागरी परम दशानु नि ज्ञान। भूमादिजी मुनि ज्ञानि ज्ञान का भाव व त जाना है। ज्ञान में एक हो स्थान पर

निवास करत है। पुष्पा भावा निर्वाण भूमियो अधिष्ठान धरा यही समय की बुद्धि
होना है मन ही वी राग हानी है ध्यानादयः विविध हाता है वही। राग
करने है अर्थात् चातुर्मास स्थापन करत है।

अध्यात्म आचरक गण भी गृह कागो न निवृत्त हा यही गुरु चर्या म आचर
निवास करते है। यही आप परम्परा है।

धर्मोत्प्रेष्य यत्न कर आह्वारानि चातुर्मास दान दत्त पञ्च-गाठनामि कर
जन नियम समय धारण कर यथाशक्ति आत्मसाधना करत है। परन्तु पत्रमात्र
पाठका की यह आत्म साधना आत्मसाधना प्राय निमित्त हा गई है और उत्तरोत्तर
होती पढ़नी जा रही है। इसका कारण क्या हा लगता है ? लाभ का चातुर्मास
तृष्णा की बुद्धि प्रमाण का प्राच्य और पश्चिम सचय की साक्ष्य अभिप्राय। अत्र
शास्त्र मुक्ता क प्रति अ तद्म परमाण्वद् यत्ना का अभाव है।

वर्तमान युग भावा का उत्कर्ष काव है। इसमें परिग्रहागति इतनी अधिष्ठ
हा गई है कि सत्तार हिताहित का जीवन की विचार नहीं करता। अर्थात् भागाव
भोग विनाश ज्ञान म ही आधार मानक बढा हुआ है। पर क्या इससे आत्मस्वरूप
का पात्र नहीं होगा ? अवश्य ही होगा। योग पात्र का वात बघाना। लाभ
तृष्णा का बीज है बीज स अकुर और अकुर म पीया और फिर पुन पुन पत्र
होना स्वाभाविक और अनिवार्य ही है। यही आनुमता है आनुमता क समय म
सम्य नहीं मिल सकना। गुण का अभाव ही ऐसा है। यही कारण है कि वर्तमान
मानव जाति का हस्त-म म यत्ना म मानव बूदा निम्न हा रहा है। मानवता उगकी
श्रद्धा में निम्न रनी है। आत्मा लक्ष्य रही है छान्दस्य रती है व्याकुल हो रही है।
उत्तरात्तर नितिक स्तर पतित होता जा रहा है। आध्यात्म्य क्षय उजड़ा जा रहा है।
आध्यात्मिक जीवन म ध्यान क स्थान म पतनग्रस्त हा रहा है ताजगी के स्थान म
मुन्दी छा रही है। स्वाग दान पूजा पाठ ध्यान स्थापना सन्धार शिष्टाचार
विनयाचार का स्थान भोग लोभ मिनेमा रेडियो टेलीविजन पपर कचरा
आतिशबाजी स्वच्छन्दता और नागिरी ने शरीर-मा दिया है। अनुशासन तो पीने
कच्चे रंग की भानि उठ गया है। स्थानि पूजा शिष्टा का झूठा प्रतीक वर्षासमीन
सत्तावा की भानि चारा बार छा गया है जिनके बीच जीवन क सच्य सिद्धान्त छे
से उगसीन स यत्र-तत्र मुगधे-से दृष्टिगत हा रहे है।

जा हा यदि हम आज नी जाग्रत हा जायें। अपने प्राचीन सिद्धान्त का
अपनायें। छाद्य समागम म धार्ये। चातुर्मास क सन सुनहले सिन्हा म धर्मजन पुष्पा
जन म सलग्न हा जायें भगवद्भक्ति म लीन हा जाय तो हमारा चर्याण दूर नहीं।
पाप का मूल लोभ है और लाभ का प्रतिफल है परिग्रह का सचय। परिग्रह क्या है ?
मूर्च्छा बहाली स्व-स्वरूप की अनभिज्ञता, विषय लम्पटता। मूर्च्छा माह कम का
प्रत्यक्ष है। मोहनीय आनन्दानि का योग्यता साधन है। विप्लव-स्थापों का प्राण

बाई अन्य है मैं है सबया उसम भिन्न । मग्न एक रूप रहने चाहा । अनन्त काल तक अपने मे व्याप्त फिर निराता मग्नबहार । बस जा शतना हो गया तो सब कुछ हा गया । यही है शुद्ध बुद्ध परमात्म दशा । हे भय साधा ! मग्न और मा रस स्वभाव का बग ठहर जा उम्मी मे अनादि भूत स्वयम्ब छू जायेगी ।

आत्मा स्वय आत्मा की भूल से बन्धनबद्ध हुआ है । स्वय जब पुरुषाय करेगा तो स्वय ही बन्धनमुक्त होगा । आज तक यह बन्धन-मुक्त का रहस्य विदिन ही नहीं था फिर भना पुरुषाय कस हाता ? कहाँ होता ? कब हाता ? भना अनात दशा म प्रयत्नशील नहीं हुआ तो नहीं गही किन्तु अब ता जायन हुए हो । जमाया है जिन बाणी ने प्रेरणा दी है जिनेत्र प्रभु न और आन्ध्र उपस्थित किया है श्री वीतराग निग्रय मुद्यों ने । हे भय साधा ! अब सावधान हो शकनत छोडो । अनादि मिप्पात्व का बमन करो अविरति से विरक्ति दृढ़ करो सवेग जगाया वराग्य बढ़ाया प्रमादा का परिहार कर साधना पथ जितना बठार है उतना ही मुकुमार कोबल भी । जितना बाह्य म दुःख है उससे अनन्तगुण अन्तरम म सुख भी । क्या श्री फल ऊपर स बठोर और अंदर स मुक्ताडु मधुर कोबल नहीं होना ? होता ही है । जो बाह्य में मुनोयन मन्त्रिबन्धन हाता है वह अन्तर से बठार रहता है यथा वर-यन्त्री पन । आत्मान ऐसा ही है अनाथा अनुपम और अग्नीय । आत्मा स्वय सिद्ध है अनादि है परन्तु आज तक अगुद्ध ही बना हुआ है । शुद्ध रूप कभी देखा नहीं असली स्वरूप साधने आया नहीं फिर भना उसका रस कसे भिने ? वह रसास्वा कहाँ कब कम भिजना ? अब आगम मे प्रथम उम मग्नता दृष्टि में जमाया थडा म बठाओ आपरथ म उतारो जिया म लाओ राग द्वेष विमादा का हटाओ स्व स्वभाव का अपनाना । बस फिर शान आने जगता अमृत पान करने पर फिर भना कोई गारा जल पान करेगा ? क्या नहीं । जिस एक बार स्व स्वम्बर का भान हा गया कि फिर वह अन्यत्र विमाद मे क्या जायगा ? स्वभाव अपनी बस्तु है निज पन्थ म राग पर परिणति का हास है । विमाद विचार है विचार पर निमित्तव हात है जो पर अन्य है वे विनश्वर है साय स्थायी हैं । भस्तु विमादो के मिटान म कोई विसम्ब नहीं हाता । मात्र उपाय करने की आवश्यकता है उपाय प्रयत्न है यही पुरुषाय है । विचारणीय यह है कि यह उपाय कसा होमा ? क्योंकि प्रपन्न सत् और अश्वत् दा प्रकार क होत हैं । एक बातर भी पुरुषाय करेगा है रूप पथ साता है किन्तु उनमे कई मुन साह कर फँस देता है कुत्तों को उगाह कर ऊपर बना देता है ताव-ताव पन पथ दखते ही उगवे मुह म पानी भर आता है फिर क्या ? भूय हो न हा साय-न साय किन्तु गब हो को तोह-ताह कर अमीन म बिछा देता है । यह महा भयछुर धातक प्रपल है मार्जारवृ कष्टगदी है । मार्जार का स्वभाव है साय न साये किन्तु लुढ़काय तो जम्बर ही । बरा यह पुरुषाय है ? नहीं । यह तो शक्ति का पुरुषाय है आत्म स्वरूप का साय है । निज स्वभाव के विपरीत है । आत्म स्वरूप प्रकाशन म जा समय

है। प्रथम जटिल विचार का पुष्कल्लक्षण करना होगा। अर्थात् पाप रूप प्रगाढ़ कर्मों का उच्छेद करना होगा। माह ता सब कर्मों में जटिल है शक्ति और स्वभाव दोनों से ही बनवान है यह शुभाशुभ में देखा जाय तो अशुभाश ही इसमें नजर आत है अस्तु प्रथम इसका उच्छेद आवश्यक है साथ ही अन्य कर्मों के पाप वितान का उद्धान भी परमावश्यक है मक्षर में पाप का परित्याग अशुभाशयाग का उच्छेद सर्वोपरित्याग है। प्रयत्नपूर्वक इसका परिहार नवकोटि से करना आवश्यक है। अब इसका त्याग करने पर ग्रहण क्या करना ? यह स्वाभाविक प्रश्न उठ खड़ा होता है बस उत्तर में यही कि पुण्य संचय करना। सावधानी से उस सम्भालना प्रयत्न पूर्वक ग्रहण करना। विषय कषायों को काम भोग बंध की कषायों को ठगन के लिए यह परमावश्यक है। न कि पुण्य से उपाजित बंधन द्वारा विषय तृष्णा की वृद्धि करना। भोगों के साम्राज्य से ऊपर उठकर निज के साम्राज्य में पहुँचने के लिए यह करना है। पाप का छोड़ो सावधान होकर पुण्य प्रयत्न से पुण्य का संचय करो तत्परता से प्रयास और कषाय का परित्याग कर। उससे उत्पन्न बलात् प्राप्त भोगों को निरस्तुव होकर और भोग कर छोड़ दो जहाँ के तहाँ समय को धारकर भानस तन मिला उसकी रक्षा करो उससे तप करने के लिए ध्यान और स्वाध्याय करने के लिए। शरीर के सम्पर्क से शुद्ध भी अशुद्ध हो जाता है निरतु रताप्य द्वारा इसी अपवित्रता के मध्य छपा शुद्धात्म प्रकट हो जाता है। यह अनौचित्य प्रक्रिया पुरुषाय साध्य है। तुम स्वयं करने में समर्थ हो। यथाय त्रिया-आचरण करने से ही उपलब्धि होती है। यही उत्तम सार है। सोना पाटा है अशुद्ध है बिजारी है कब से ? अनादि से। यही दशा है आत्मा का। क्या सुवर्ण का शुद्ध नहीं बनाया जाता बनना ही है शुद्ध। किस प्रकार ? उचित प्रक्रिया करने पर। बस फिर क्या आत्मा का शाधन नहीं हो सक्ता। अवश्य हो सक्ता है तत्पुनः उचित योग्य प्रक्रिया करने पर।

हम हर जगह मोड़ लगाते हैं। कपड़ा की तरह करना हमें तो मोड़ लगाने हैं। गाय भस बाघें छोड़ें तो भी मोड़ों की भाँट कम नहीं हाना। आदमा स्त्री बाल बच्चों को भी मोड़ते हैं। अपने अनुकूल या प्रतिकूल। मोड़ते तो अवश्य हैं चाहें वे मुँह या न मुँहें। अरे भाई मोड़ना सरल नहा है। न जाने कब किस मोड़ में जीवन अपने सही रूप में आ जाय यह कौन समझ सकता है। अनेक बड़े मोड़ भरे पड़े हैं जीवन में। उसका पीछा छूटना क्या कोई सरल है ? अरे भया धीरे धीरे अभ्यास करते करते जीवन एक समाय की सरल ढंग पर आ सकता है। आत्मा धबड़ा चुका है बहुत कुछ। नवीन मान दख रहा है। जब विघर में मोका रग जाय और द्रुम लाइन पर आ जाय। यह है जीवन की कला। बनाकार किस प्रकार अपने हाथ की सफाई से जीवन के सार क्लेशा में मुक्त अविन करता है। उन्ही तरह अपने आपको भी स्वच्छ शुद्ध और निर्मल बनाकर आत्म शोधना करता है। आत्मा ही आत्मा की शुद्धि करने में समर्थ है। आत्मा का ज्ञान आत्मा को ही होना समर्थ है अन्य को नहीं। आत्मा ज्ञानी है नहा ज्ञानमय ही है। ज्ञान में अनिरुद्ध कुछ नहीं है। ज्ञाना

1944

पति हो जाता हो जायगा अनन्तकाल परत । यही है सब स्वप्न । यही है विषय
आत्मा सम्यगार । यही है शुद्ध-शुद्ध परमात्मा । मुक्त-मा ।

शास्त्राभास ज्ञान (विद्या) का द्योतक है । अन्तर्गत साधन-अध्यात्म ही वा
ज्ञान प्रकाश भी उत्पन्नतर निर्मल होता जायगा ज्ञानाध्यात्म के साथ स्वप्न भ्रम विज्ञान
रहने पर सगार शरीर भागों में वारण बढ़ता जायेगा ब्रह्म के साथ सत्य बढ़ता
और सत्य में आत्मानुभव की स्थिति होगी । स्वभाविकता से ज्ञान की निद्रि हानी
और ध्यान में ही मुक्त की उपलब्धि । यह आत्मसाक्षात्कार की पुष्टि है । स्वाध्याय
से शुद्धाशुद्ध ज्ञान की अनन्त पर्यायों का परिमाण होता है । समान शब्दों का स्वप्न
व्यापार्य समान में आता है । प्रत्येक पदार्थ आत्मा के समान स्वभाव है । स्वप्न निद्रि
शब्दों की गता सकल स्वप्नानि स्वप्न स्वप्न से स्थित है । सम्पूर्ण इन्द्र ६ है ।
इसमें धर्म अधर्म आकाश और वायु सत्ता में निम्न शुद्ध स्व स्वभाव में ही स्थिति
प्राप्तकर शोषित होत है । धर्म इन्द्र ज्ञानीन रूप से और पुष्टता की समान प्रिया में
सहायक होता है । अधर्म इन्द्र भी अत्यन्त हीकर उत्पन्न टहने में निमित्त बनता है ।
यद्यपि वे दोनों शब्द अनादि से शुद्ध हैं और साथ भी सत्य ही रहते । प्रत्येक अगत्याय
प्रदेशी है ; वायु भी अत्यन्त बनता स्वभाव का विना असत्त्व प्रदेसी है किन्तु वायुवान
नहीं है । इसका कारण है कि हमारे एक एक परमाणु पृथक् पृथक् स्वस्वभाविकत्वं बिम्बर
हुए हैं । मिलकर एक में हुए न होत हैं और न हा ही सत्त्व है । आकाश भी अत्यन्त
प्रदेशी रह कर हा समान शब्दों में अवगाहन निवास स्थान प्रदान करता है । ये
चारों इन्द्र अपने में स्वभाव होते हुए सत्ता शुद्ध रूप में ही रहते हैं । सभी भी अनुद्ध
नहीं होते । किन्तु जीव और पुष्टता का स्वभाव निराता ही है । ये सदा में
अनुद्ध दशा का हा प्राप्त है । आज तक हमें एकस्वप्ना का स्थान ही नहीं
आया । हमेशा से 'सानी स्थान का ही स्वप्न पड़ा है । यास पूरा भूता ही मिलानर
स्थान आया पर भला शुद्ध भोजन का स्वप्न बरा से सक्ता है ? नहीं से गकता ।
इसी प्रकार हम ना कम और भाव कर्म में आवृत्त आत्मा अपने शुद्ध स्वस्व का
परिणाम या दर्शन किस प्रकार कर सकता है ? यह अनादि की निम्न भावन की
बाट छूट ता एक शुद्ध वस्तु का स्वप्न आव । बाह्य दृष्टि से माइ दा अन्तर में धुमा
दा । अपने का दक्षी पर की छोड़ा । पर पर क्या है और स्व क्या है ? इसकी
पहिचान तो कर ता । स्व-पर का भेद विज्ञान हुए बिना किस ग्रहण कराय और
किसका त्याग कराय ? हे आत्मन् अनादि के स्वप्न का छोड़ा वागना का त्याग करो
सकारों को मिटाओ नयी दुनियाँ में आआ नया जीवन अपनाओ नयी आभा का
देना जा वास्तव में अनादिकातीन प्राचीन हाकर भी तुम्हारे लिए नवीन बना हुई
है । जानव का छोले । मिथ स्वप्न में शुद्ध का स्थान तुम भूत गय हा उस ही ग्रहण
करो । नवानता ही वह श्वा हाया जा सत्ता फिर वही ही रहेगी उसमें परिवर्तन नहीं
होता ।

हं साधा । आपका स्वरूप अनुपम है । आपनी शक्ति अचिंत्य है । आपका वधव निराशा है । आपकी महिमा गर्वोपरि है । आपका प्रभुत्व आप ही के समान है । अर आप ता आप ही हा । आपका छोड़ अंग का कुछ है वह आपने भिन्न है सबका निपरीत है पूणत उनटा है । आप अपने म आर प्रवश बरा बाधानर भूमिका का टटोरकर देता वहाँ सेणमात्र भी पर का आवाग नहा है । आप बने मे आआ पर स्वयं छूट जायेगा । लौकिकव्यवहार को प्रयम साधा । पुन पारलौकिक जीवन म पहुँचकर स्थिर हो जाआ । बिना बाह्य शुद्धि के अन्तरङ्ग शुद्धि न्ने हो सकती । बाह्य परिशाधनाय जावन म शुभाचरण और नमरा वढ़ाकर शुद्धाचरण म उतरो । सत्य अहिंसा अवीर ब्रह्मकय एव अपरिग्रह भावा को आपनि बाह्य शुद्धि का उपाय है । बाह्य शुद्धि हान पर ही अन्तरङ्ग शुद्धि सम्भव है । कपाय रहित दया म भी हाने वाली शुद्धि आत्मा का स्वभाव नही क्योंकि वह ता पौङ्गलिक है । उन आत्मा का क्या सम्बध ? वह ता मात्र निमित्त है । निमित्त कभी भी काय का परिणमन नही करता न कर ही सकता है । सत्ता हो उपायान कारण हो काम का स्वय परिणमन होता है । यहा है जीवन का या आवका निज स्वभाव कि वह स्वा काय रूप परिणम । किन्तु यहाँ ता कपायाध्यवसाय के अभाव होन पर माय प्रवृत्ति समचित्त जो कुछ शुद्धता है वह पुङ्गव का है क्योंकि कम-नोकम रूप द्रव्य हो अगुद रूप ही आत्मा पर आच्छादित या उस हटाया या उगारा शोधन किया अशुभ म शुभ और शुभ म शुद्ध । य दशाएँ पुङ्गव को है ता शुभ और शुद्ध पुङ्गव हो परीएँ हूँ । आत्मा का उदय क्या सम्बध । आत्मा ता मूल म शुद्ध ही है । भला शुद्ध का क्या शुद्ध किया जाय ? यह ता निष्पक्षण ही हुआ । फिर प्रश्न हो सकता है कि कं एगा ही है ता फिर आत्मा शरीर करी निज म क्यों ताता बना बैठा है ? पन्तर म वह ताता हा है ताता निजके म है । निज ने तात का बाधन म काम रक्षा है यह भी गत्य है किन्तु निजका निजका है और तोता तोता है । ताता निज म रहकर निज का तनिक भा, कुछ भी विचार नहा कर सरता न कर ही सरता है । उनी प्रकार निज ने तात का बाध किया किन्तु ता भी पिता तात का स्वरूप द्रव्य पुन कुछ भी नहा बिगाड़ गया । यत्ता एव किय रण बाध है । क्या रूप हाकर भी अन्तर म एक दूसरे का कुछ भी बिगाड़ नग कर सता ।

बिन भक्ति बिना भीक्षण जगद्य मरणा का दासमर म टाकने मे समर्थ है । जीवन म अनेक अपातिन घटनाएँ हो जाया करता है उता प्रमादित अनेका भान बाध अपना कुर्वाता कर बतन है । उतर समन मुक जात है । किन्तु और मनकी परम धैर्यशासा जगद्यमा धमनिष्ठ उह मुचाकर उहा का भक्ति बड़ा देन है अर्थात् उह पार कर अपन । य की गिद्धि का मत है । इस बाध म वही मगन होत है जो अहमर्षा म द विचन रहत है । बिनका ब्रह्मवद नन चमकता है और ना बड़ा बग व प्रमाण म अपन शुद्ध स्वयं का लोकी शान्त करत है । भी बिना का

माहात्म्य भा. ता. १८ ० शीर्षे जीर ८४ ०००० उत्तर गुणा वा चरम सीमा व
निष्ट पट्टन म है। यहा ह उनक मन्त्रिण्य आन चन चनय स्वभाव की जनि
व्यक्ति है आगत ज्ञान समस्त मित्रता का परित्याग कर नि एव मात्रमीन का
का अवन अज्ञान निमन बनान का प्रयास कर लिया ता सबकारण प्राप्त हो सक्त
है। मन्त्रिण्य निष्ठि हा गी जायेगी। तुम्हारा सर्वोपरि राम इगी ब्रह्मन् का कमी न
कारण है। जिनकी परिणाम शुद्धि हागा उनी ही रागमुक्ति हागी जायेगा। अन्तरग
शुद्धि करा। परिणाम शुद्धि पर दृष्टि न्याओ। रजा विकार का मूल कारण मन्त्रा
विकार है। मन्त्रा की शुद्धि स रजा शुद्धि हाता है। आत्मा का सम्बन्ध उसी म है
आत्मा शरीर म फल है। कौनो जन म है जल बरस क समान है क्या और कद
एव क्याना जीर कद का फल सबधा भिन्न भिन्न हाते हुए भी एव दूसर क जायत्र
है। कदा न बिना क्या बिना और क्याना क्या कहनायेगा उनका फल बोन
भायेगा। अस्तु प्रमुख क्या बिन्दु है कनी-आत्मा। यहा ज्ञा है शरीर कारागार म
पद म आत्मतत्त्व का। आत्मा त्रितस्त रता है। स्वभाव स ? नहा परभाव स। पर
निमित्त स। पर सयोग स। एव विनशय शक्ति ह जद की—आस्रव की। आस्रव
जाय निवद है। इनका स्वभावबद्ध धातक है जतुपादप क समान। य आस्रव अध्रुव
है। यथा मृगी रागा का वय। मृगा बाल का कभी अनिवद आता ह और कभी
अतिमन्त्र। तन्मुरूप आस्रव है। य अनित्य है शीत दाह ज्वर क समान। आस्रव
अशरण भूत ह काम वय उत्पन्न हात ही बीषशरण जिस प्रकार अशरण ह उसा
प्रकार ज्ञान प्राप्त आस्रव का शरीर स कौन बचा सकता है ? कोई नहा। नित्य
आतुगता क मूल है अत दुख स्वस्व हा है। इनका (आस्रव) पराणाम पन आतुना
त्याग हाते स दुखरूप फल के दायक है। आस्रव का उत्पत्ति व हनु वृद्ध क कारण
स्वर्गिण क निमित्त सभी आत्म स्वभाव स विपरीत है। आत्मा ध्रुव ह नित्य ह
सशरण है सुख है और सुख का कारण है क्वाचि चन य चिमय विमान धन स्वस्व
निराकृत है। अस्तु आत्मा और आस्रव का कोई सम्बन्ध नहा दाना का स्वभाव
शक्या भि न है। दाना ही विपरीत स्वभाव है फिर भला उनका सम्बन्ध हो करा ह ?
कुछ नही। है आत्मन् सू जानी है गानागार है ज्ञान धन है—चारा भार ज्ञान रूप
हो है। ज्ञान ही आत्मा का स्वभाव है यह एकाग्र नहा। आत्मा मे अनन्त गण है
बिन्तु ये समस्त गुण एव ज्ञान गुण क द्वारा हा उपातिन प्रकाशित हात है। ज्ञान
बिना हरे कौन जनावे। अस्तु मही नदय रखकर आधायो न ज्ञान गुण का प्राप्ताज
दिया है। ज्ञानाग्नि सभा क्रियाई फलित होता ह। अस्तु न सम्बन्धानुसार सम्म
ग्यन और सम्मकारिण भा जना हा महत्वपूर्ण है। ताना का एकीकरण ही ता
आत्मा है आत्मा कोई अन्य वस्तु नहा है। रत्नव्यामक हा आत्मा है य गुण मानन
हा रह है। चरणात्मक भणि क्या तान रग दिखन स ज्ञान रूप हाती दे नहा।
उन रगा को कोई चाह नि प्रयत्न प्रयत्न करने तो कभी नही हो सके।



बाना शुभ का लाने वाला निश्चिन्न रहने वाला। जिस क्षण हम आत्म तत्व का विचार
 करते हैं तो आत्मा भी एक सर्वोत्तम मंगल द्रव्य समझ आता है। जो व्यक्ति आत्मा
 पर चिपटी ग्य्य भाव ना कम पशु का प्रभावित कर लेता है वह उनका ही स्वच्छ
 हो जाता है और माणविक द्रव्य बन जाता है। तपस्वी की आत्मा तपकर निमल हो
 जाती है वह मंगलमय समझी जाती है। प्रधान काल में स्वप्न काल में शुभ
 कार्यारम्भ समय में जगका दर्शन पवित्र और विघ्न निवारक समझा जाता है। सफट
 मोचन उसका नाम मञ्जा गिनी जाता है। प्रत्येक शुभ कार्य में उसका स्मरण किया
 जाता है। देखा जाता है थडा पूर्वक स्मृत नाम गवया सफट मोचन में समर्थ होता
 है। कितना धनिष्ट माम्य है इस मंगलवार का जीवन में वस्तुतः मानव जीवन की
 प्रसन्नता का द्योतक है आनन्द का माना प्रतीक है। इसी कारण यह जिन मंगल
 नाम से प्रसिद्ध हुआ हुआ। अस्तु। इसका वाग ही आता है बुध। बुध शब्द अवकाश
 का वाचक है। ज्ञान का प्रतीक है। यद्यपि जीव मात्र में ज्ञान रहता है। ज्ञान
 रहित पदार्थ जड होता है। जड आत्मा से गवया भिन्न है। ज्ञान आत्मा का गुण है।
 बुध से बोधि या बोधि से बुध मान सकते हैं। बौद्ध शब्द रत्नत्रय का वाचक है
 रत्नत्रय आत्मा है। अतः बुध शब्द सीधा आत्मा से टकराता है। अत्यन्त धनिष्ट
 सम्बन्ध है इसका आत्मा से। विचारारम्भ आदि बुद्धि वद्धि कार्यो का प्रारम्भ इस
 जिन करना श्रेष्ठ गिना जाता है। मानविक ज्ञान का यह द्योतक समझा जाता है।
 इस जिन किया कार्य स्थिर माना जाता है। बुध यह त्रिगुण बलवान होता है वह
 तीव्र बुद्धि उच्च विचारक होता है। हस्त रखा में भी बुद्धि का स्थान ऊँचा रहा ता
 वह व्यक्ति प्रतिभा सम्पन्न होता है। सामुद्रिक ज्ञान में बुध स्थान का विशेष महत्त्व
 बताया गया है। रेखा ज्ञान मानव जीवन से हा अनुप्राणित है। अन्यथा में
 इसका कोई महत्व नहीं। जीवन क्षणा में इसका महत्व व्याप्त है। दशाभा में भी
 अचानक दशाएँ होती हैं। जिनका मिलन से शक्ति बढ़कर निम्नित हो जाती है।
 इसके परचाय आता है गुरुवार। यह भी यथा नाम तथा गुण है। गुरु का अर्थ दे
 भारी और गुरु द्योतक है दोषों का पचाने वाला का। गुरु सामान्य से बड़े जन को
 कहा जाता है। शिक्षा गुरु दी ता गुरु पालक गुरु जनक गुरु माता गुरु आत्मा। ये
 सभी सम्बन्ध शरीर के हैं। शरीर का उपयोग आत्मा से है। आत्मा विरहित शरीर
 का कोई सम्बन्ध नहीं महत्व नहीं गुण धर्म नहीं। अतः गुरुवार मानव जीवन का
 उपहार है। यह बृहस्पति का द्योतक है। बृहस्पति है विद्या का अधिपति ज्ञान का
 प्रतीक प्रतिभा का चिह्न। यही कारण है लोक में बृहस्पति को विविध मान्यता पूजा
 प्रीति और उत्सव होता है। गुरुवार को बड़ी पूजा पाटी पूजा अक्षरारम्भ पाठनामा
 प्रारम्भ आदि औचित्य विधान के कारणों का आयोजन करते हैं। सामुद्रिक ज्ञान में गुरु
 स्थान का महत्व और पुष्प हस्त धर उभे व्यक्ति का यथावत पारित करना है। प्रभा
 का रिकामय यह दिन माना जाता है। आरम्भ विचार का भी यह प्रतीक है। धर्म

कार कर देता है वर बुद्धि पराजय को दृष्ट कर वह मार के धर्म और धर्म विहीन कर देता है। इस समय जो अपने ज्ञान का सुदुर्भाग करत है व अगहाय धर्म का सहारा पकड़ने है और अज्ञानी भाने बेचारे जैंग कर मर मिटने है। शनिवार का विद्यालय भी अज्ञान ही सत्य है। इस दिन स्वभाव में मनहूगोनी छा जाती है। यह दिन स्थिर कार्यों का साधक शुभ समय माना जाता है जैसे नवीन गृह प्रवेश नूतन व्यापारारम्भ इत्यादि। कुछ कार्यों में अशुभ माना जाता है। नूतन वस्त्रादि धारण और वि प्रारम्भ चिकित्सा निरीक्षण आदि कार्य वर्जित मान जात है। सामुद्रिक शास्त्र में हस्तरेखा प्रकरण में ज्ञान रेखा की स्पष्टता दृढ़ चारित्र्य की द्योतक मानी गई है। अतः शनिवार का जीवन व विभिन्न क्षणों में विविध प्रकार का महत्त्व वर्णित है।

अब आता है रविवार। इस शूयवार भी कहा जाता है। यह शूय नक्षत्र का भी प्रतीक है। रवि रश्मियों १२ हजार है जिनके तन्त्र में सम्पूर्ण भूमण्डल आवासा होता है। इस दिन व महत्त्व और पावनता में जीवन का अज्ञान धुनकर धर्मोपास होता है। यह दिन भरण पदसाधनी सहित प्राशस्त्य भगवान का धन निवृत्त कहलाता है। यह गर्व भुज्ज का है। इस दिन नमस्कार का त्याग करत है। जैनाचार्यों ने इस मौकिक सम्पत्तियों का दाता ना कहा हो है गाय ही आत्मबुद्धि का भा सत्य सत्य साधन कहा है। हिन्दू इस शूय महाराज का वर कहकर मान्यता दत्त है। इस दिन अधिकांश कार्यों से अवकाश रहता है। कार्यागारों का प्राय छुट्टियाँ रहनी है स्कूल विद्यालय भी प्राय बन्द रहते हैं। क्योंकि छप्ताह में एक दिन निर्विकल्प होकर ज्ञान वित्त निज स्वरूप का विचार करें। अपने का गमानों। स्व स्वरूप का विचार करें। परन्तु जनमान में विपरीतता दृष्टिगत होती है। प्राय कायवर्त्ता जन निवृत्त हो इस स्वर्णिम दिवस का अपने का पान व स्थान में स्थान में व्यता कर दत्त है। यथा—पार्थ महर्षि सात चौदह मिनता चाय पाटियाँ टहनता विविध भाग इन्ध विषय सेवन आदि ससारवद्ध व कार्यों में व्यस्त कर दालत है। यह महा अज्ञानता का प्रतीक है। अपने का टगन का प्रतीक है। ह आत्मन् ! तू विचारक है।

आधोपान्त मूल्म दृष्टि में निरीक्षण कर। विचार कर देख भला एक भा समय करा तेर जीवन उत्थान से शूय है क्या ? प्रतिक्षण हम उत्थान का संदेश द रहा है। सच तो यह है कि प्रकृति का अणु-अणु स्व स्वरूप प्रकाशक है। चतुर्दि आत्मोत्थान की गहनाई बज रही है। पक्षीगण बसरा ज ससार की असारता का पाठ पढ़ात है। एकत्व भावना गिघाते हैं। परिवार कुटुम्ब की ममता छटात है। दिन भर अथ परिवर्धन कर चंगा चुगकर अशुभ अन्तराय व बन्ध से सावधान करते हैं। मिश्रारी हाथ पहार दान नहीं देने के फल का सूचन करता है। अहिरात्र धनसाक्त व फल का प्रशंसित कर रहा है। किन्तु अज्ञाना इन सब का देखकर भी उनकी विशेषता का नहीं समझ पाते। विध्यात्व

तो पुनः जायेगा जब नहीं तो वृक्ष मूल ही जायेगा फिर बननेगा ही क्या ? पुष्प तो पुष्प ही होगा—गर्भाग्य पुष्प वह पुष्प जिसमें बगैर ही पुष्प ही ३ र६ फिर क्या होगा वह बहना मरी सीमा यहाँ तक है आ। आओ दूसरा दम मिनेगा पहुँच उग भजान प्रदेस में बस बन्म बड़ेगा यथास्थान रूप हीयार होगा शुद्धोपाय पत्रिका उस पर पहुँचयेसी निश्चित्य घुसक बनेगे बिह स्वयं ही स्वयं म स्वयं स्व गुनगा-जानगा और भेवगा यही हागा गुनना । बग फिर क्या गुनते रहा देखत रहा जानते रहा अभीष्ट बान तक अनन्त सीमा पयना ।

आत्मा त्रिधा विहीन है निराकार है अरूपी और अगन्ध है । पुद्गल भी स्वयं जब है अचनन मूर्तिव और रूपा है । यह भी कुछ कर सकता नहीं । फिर कौन कर्ता घर्ता है ? तो स्पष्ट उत्तर है कि मयागी आत्मा हा कर्ता घर्ता है । जो हा मूत्र मरा स्वयं का स्व विद्ध रूप धारण करना है पाता है । उग पाने के लिए अपन निज स्वरूप का जानना परमावश्यक है । यह किस प्रकार अवगत हा ? थडा म जमाओ में निमन, शुद्ध एक रूपा हैं । पर पत्राय दा प्रकार है बाह्य मूर्तिव स्थूल पदार्थ आरम्भ परिष्कृत और अन्तराह है राग-य माह बाध मान साध पञ्चबन्धिय रिपय व्यापार मन् अह आत्मा । य भी पौर्णानिक रूपी है त्रिन्नु सूत्रम है । इन सूत्रम स्थूल भावो-भ्या व मध्य म ही आत्मा उगता हुआ है । इन उगता की श्रियर्वा नवीन नहीं है अनि प्राचान है दुरत है कल्पित है दुरुह है । इनको समझना ही दुलभ है । इनको जानना समझना अनि कल्पित है । ह आत्मन् तू अरुन का सभाज । गुलसा । क्या गुनमाना है ? उगमन म उगता गही है स्वयं उग उगी रहन दे अपन का निकाल ले पत्र पडा रह जायगा । कौन पूरगा उग ? आप ही मिट जायेगा । साराण यह है कि स्वयं का स्वयं मभाय म । अपने स्वरूप का विचार कर अपने को देख जा और उगी म स्मरण कर । आप स्वयं अने म रहोण पर जायेगा ही नहीं । बस ।

जन शासन की आधारशिला स्याद्वाङ्म है । अनेकान्त की नीव पर जिन शासन का महत्व बना है । उसही आधारशिला की योग्य नय प्रमाण प्रणाली हैं । नया की गुतिधर्षों के मन्त्र मयार व मनस्त व्यवहार-व्यवहृत हात है । इन व्यावहारिक त्रियात्रा म तत्त्व विवेचन म वस्तु स्वरूप प्रतिपादन म गर्वत अनेकान्त अपन बल पर उन विरोधों का भन्कर एक मुख्यवस्थित व्यवस्था निर्धारित करता है । समस्त उलझने अनायास स्वयमेव गुलझती ही जाती है विराट् अस्त हो जाते हैं शयडा को अवकाश नहीं रहता । आत्म-परमात्मा जीव-वृत्तन और जब के सबन्ध पार्य अपने-अपने म समाहृत हो जाते हैं । कहा भी किसी व माष विरोध नहीं होता । वस्तुन एक ही वस्तु म रहने बान अनेक विरोधी गुण व शक्तियाँ जिसके द्वारा निरिवाध स्थान पा सें उस ही अनेकान्त कहते हैं ।

परिचित वस्तु के प्रति विचारण हाता है । अपरिचित के प्रति अनुराग । यह है स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य की । प्राय यही व्यवहार म दसा जाता है । पर्याय म

विश्राम अनावस्यम हो जायगी । हाँ ! जो वागत बोले सुना जो जन गधरों का नाम तम का प्रयोग यदि तही राग गता तो मातरा का जन हो बरा होगा । सवार स निस्वगत हूँ शीघ्र । ५ भा रना रा तही बा गता सो फिर कुछ नाम नहीं हो सता । आन और गय वह सो पुराना ही बरत रहा । बरा बरा विरा कुछ नहीं । भक्त शीघ्र पाता और पाकर लो निरा फिर बरा विरा है ? हे मातरा मातरा हो । शाय माय पर आ बुता आगार वृद्धिग बर । आगार बरेगा तो नाम होगा । मता टाग आकर कोई वागसी नहीं हो गता ' बरा ' मकर गीतग बरो । ताम उता । वनी जीवन है ।

आवहारिक जीवन एवं अपनी बरा है जो निश्चय के साथ-साथ पतनी है और वह एक पतनी है जहाँ तक जीवितमा पतनी है । जिस राग आगार स्थित हो जाता है । निश्चित अवस्था का प्राप्त होना है टाग उगी गमन आवहार नय उता रा राग छोड़ देता है । कुछ समय विश्राम-गय का कार्य होता है और जहाँ गिद्ध दशा हुई कि वह भी एक बरत हो जाता है । यह भूमिग ही गपानी बहनाही है । यहाँ नरों का ध्यागार रव जाता है । दम स्थिति म नय प्रमाण निक्षपाणि बरे विश्राम नहीं रहता । यह आध्यात्म्य का जन है । आत्म स्वका की उतावलि का प्रति पत है । स्व स्वभाव की जायति है । दूगी का पान का प्रयोग करना मातरा का गार है । पर्यायों में धूमना जीव अनाति बान मे मटक रहा है । तो भी गता अन्त नहीं गता । इनस ऊपर उत सो ही बस्याण का भागी बने । पर्याय बुद्धि गदो । ग्यष्टि बना । पर्यायों उताग है । जात है । पते है । गिटराटे है । भगवत भूत है । भगवत है मुक्ति माग म वि पु ता । नी इनर बीष म गुजर बिना वह मुक्ति स्थापित भी तो नहीं सता । यहाँ राग गदुबने का लिए इन्ही गार सवरा को बरत छाँट कर माय बनाना हाया । अपनी पगदण्डी स्वयं अपने आग बारा होगा उग पर आवधानी स गमन करना हाग माग का रोड़-बाघाएँ हटाना होगा सभी गमना स्थापन पर जाया जा गता है । ररा की शक्ति आगार है । अपना माग स्वयं भागे स अपन म आप बरा और स्वयं ही उताग गत भागे । गदी तो बरत गिद्धाग है । कम की शक्ति आशयगति का गमन ही है बरतग है गमी ता ता । का संयोग अनानि स बरा आ गता है । भगवत गिरे दगता ही है वि बरत जड़ है उतावी शक्ति भी जड़ है जड़ स्वयं का गार-गिद्धाग गदुब सवता । आगार गारी-गैग है । वह अपना इस पताग रव स्वभाव शक्ति दगता रग पर दामों का देग और जात सता है । हे आत्मन् निज स्वका का भाग बर, मान बर, समस जान बुता तव बरत राग निज बमव तुमे प्राप्त हाया । गय मातरा गूटी में हीरा दवा ग गद देर हाने स गूटी बराग रव गद और स्वयं भूत है । गाविक न आवारा लगाई जात ग । बरतग कर है जो ? राग । गता गैगो गगता उता ५ ११

अहंकार क्या है ? यह मानसिक अस्तित्व का एक विपरिणयन है। चित्त व्यग्रता का विकार है। मन धाम की सज्जना है। हम जब अपने को बड़ा विचारते हैं महान् कल्पना करते हैं उस समय यह भाव यन्त्रि हमारी मस्तिष्क शक्ति की धार से ऊपर उठ जाता है तो अहंकार का रूप धारण कर लेता है। उन्नति भाव प्रगतिशील है उत्थान की भावना सराहनीय है विकास-मुख होना कल्याणप्रद है आत्मविकास की भावना उत्तम व सनी पुण्यार्थ की धारक है किन्तु इन विचारों का अतिरेक होने पर ये विपरीत रूप धारण कर लेते हैं और ये ही भाव अहंकार का रूप धारण कर लेते हैं यम यहीं से जीव का उत्थान के स्थान पर पतन प्रारम्भ हो जाता है। उनका यम विद्या बभ्रव प्रभुत्व बुद्धि आदि हातो मुख हो जाता है। नतिव स्तर निम्नता की ओर जाने लगता है। आध्यात्मिक जीवन का सौख्य है। पराग हीन-गुण का महत्व ही क्या ? गंधहीन कुसुम क्या शोभा पाता है ? जीवन का पराग नाशना विनय है। विनय हीन की विद्या निरर्थक है। अहंकारी के गुणों का प्रियाम तो दूर रहा उनका अभाव हो जाता है। मित्र शत्रु बन जाते हैं हित्रो धातक हो जाते हैं सहयोगी ही उनका विनाश चाहते लगते हैं। हे आत्मन् अहंकार जीवन का भयंकर घन है इससे रहा।

करना निरापद पद प्राप्त करना है। आपत्तियों से डरो मत।
 भयभीत होना जाता है। आप ही स्वयं अपने का
 भेदन कर जाओ डरो पाप से। घन
 है तो उससे अपने पुण्यार्थ को
 लिखना ही तो कीरता है। अतः भय
 का नाम डबाना है। मौन ऐसा माँ
 सगायेगा। मोह वश यदि कोई
 हतोत्साह नहीं होना
 अत्रेय होना है। आत्म
 ही जाना विनय को नहीं
 उत्थान का विचार करना।
 रहता। जो धारणा की
 नाशक व सभी नाते रिक्ते
 आत्मा स्वयं अपने म गुण है

हो है। मैं मेरे द्वारा है।
 । हो मैं मैं ही है। अब क्या
 है वह स्वयं यही है कि मैं मैं

संभन उतर जाये छोड़ो गारी को । जगत् साम्राज्य छोड़ो ही ? हाँ पर जाइ गा और पुनर्विस्तार मानो जिन मन्त्र में कहाँ लिख हो लिख दे लिख कर कहाँ ? कुछ नहीं । विद्वान् कहाँ ? बहु भी कुछ नहीं बग किता कहाँ ? भाग ही भाग । बारी ही में भाग । मान निम्नतर विरहान रहता ही है नौचोचोचन हो गया अरु इन्हा ही क्या मान ? कुछ नहीं ।

चारित्र्य की परिभाषा बड़ी जटिल और अस्पष्ट लगती भी है । साधारणतः साधारण का नाम चरित्र है । साधारणतः कहता है शुभाचरण शुभचारित्र्यसाग चारित्र्य है और शुद्धाचरण शुद्ध चारित्र्य बीतराग चारित्र्य है । गराम चारित्र्य साधन है और बीतराग चारित्र्य साधन है । यही है निमित्त निमित्तिक सम्प्रत्यक्ष । हेतु ने हेतुत्व की सिद्धि होती है । आगम ज्ञान-गत्यागम म द्वितीय प्रतीति सम्प्रत्यक्ष है तत्त्वस्वरूप परिभाषा जय ज्ञान का गुण्य विज्ञान ही सम्प्रत्यक्ष है । शुद्ध चेतन रूप आत्मा ज्ञान है और ज्ञान अथ गुरु बीतराग शुद्धतम धर्म अर्थात् आचार्य का चरित्र जय है जय गुरु आचार्य का सम्प्रत्यक्ष विज्ञान ही सम्प्रत्यक्ष है । शुद्ध ज्ञानभाव म—आत्म स्वभाव में विवरण—विषय सम्प्रत्यक्ष चारित्र्य है । इन विवेका से ध्यान, ज्ञान और चारित्र्य आत्मा को छोड़कर और कुछ अर्थ नहीं है । न आत्मा का छोड़कर अर्थ रत्नत्रय है । यह है वस्तु स्थिति । हे आत्मन् निम्न इमी का स्मरण मना चिन्तन अनुभव कर उगी म स्मरण करा । बग यही आत्म स्वरूप का मार्ग है । साधन है । आगमसाधन बिना यह साध्य नहीं हो सकता । अस्तु आगम का अध्ययन करो । भावधन ही निरात्मा है ।

आत्मसाधन का मूल ज्ञान शब्दापयोग है । शब्दापयोग की सिद्धि के बिना शुभोपयोग भी परम अपेक्षित है । निमित्त से निमित्तिक फलित होता है । यह सत्य है । सत्य शाश्वत होता है । यह नियम भी अकार्य है । आगम गहन है क्योंकि हमारी बुद्धि अल्प है । मिथ्यात अकार्य है क्योंकि सबज्ञ प्रमाण हैं । वक्ता की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता सिद्ध होती है । सबज्ञ बीतरागी ही होगा क्योंकि चातुर्य कर्मों का नाश निर्विकल दशा म ही हो सकता है । कर्मभाव हुए बिना सरलता नहीं आ सकती है । सबज्ञ ही हितोपदेशी होते हैं हितोपदेशी सबप्रिय होने म समर्थ हो सकता है । इन सबका मूल ज्ञान आगमज्ञान से उत्पन्न भेत् विज्ञान है । इन पर का ज्ञान आचार्य और परमेश्वर विचार ही भेत् विज्ञान है । वचनार्थक भेत् विज्ञान ता सरलता से सबको जाना समर्थ है परन्तु भावात्मक भेद विज्ञान होना जति दुर्लभ है । एक बार भेत् विज्ञान हा जाय ता आ न ससार धन भर म कट जाय स्व स्वह्यानुभव तत्क्षण हा जाय । पर परिणति का अभाव जाना ही स्वातुभव है स्व स्वरूप स्थिति है । निर्विकल्प रत्नत्रय न सिद्धि है । यही एकाग्रता कर्म सहार करने म मग्न होती है । कर्मभाव ही शुद्ध आत्मावस्था है—शिव है—माक्ष है ।

अहंकार क्या है ? यह मानसिक असंतुलन का एक विरिणमन है । जिस व्यपना का विचार है । मन धाम की मना है । हम जब अपन का बड़ा विचारते हैं महान बन्पना करते हैं उस समय यह भाव यत्न हमारी मन्त्रिण शक्ति की पावर से ऊपर उठ जाता है ता अहंकार का रूप धारण कर लेता है । उन्नति मात्र प्रगमनीय है उत्थान की भावना सराहनीय है विवादा-मुक्त होना ब-याणप्र है आत्मविकास की भावना उत्तम बमही पुण्याय की धोनक है किन्तु इन विचारों का अनिरेक हानो पर ये विपरीत रूप धारण कर लेते हैं और ये ही भाव अहंकार का रूप धारण कर लेते हैं वन महीं से जीव का उत्थान के स्थान पर पतन प्रारम्भ हो जाता है । उनका यश विद्या बंधव प्रमुखा बुद्धि आदि हातो-मुक्त हा जाता है । नतिव स्तर निम्नता की धोर जाने जगता है । आध्यात्म्य जीवन का गौरव है । पराग होत-मुक्त का महत्त्व ही क्या ? ब्रह्महीन कुमुद क्या मोमा पाता है ? जीवन का प्रगम मन्त्रना विनय है । विनय हीन की विद्या निरर्थक है । अहंकारी के गुणों का विभाग ता दूर रहा उनका अभाव हा जाता है । मित्र शत्रु बन जाते हैं हिनयो घातक हा जान हैं सहयोगी ही उधका विनाश चाहते लगते हैं । हे आत्मन् अहंकार जीवन का भयंकर घन है इसमे निरन्तर सावधान रहा ।

सधर्मी स मधर्मी करना निगण्य पन प्राप्त करना है । आपत्तियों से डरो मत । सामना करो । उनका भयभीत होना अपने का खाना है । आप ही स्वयं अपने को भिडाना है । अपातिर्वा आती हैं जाने दा मौन सग्रहन कर जाना डरो पाप मे । वन धारण करने म यत्न किसी प्रकार का विघ्न आना है तो उससे अपने पुण्याय का चरित्र पणु नहीं बनाना चाहिए । समय पर माहस निगाना ही ता बीरता है । वन भग करना बायला है माँ का दूध लगाना है । पिता का नाम डबाना है । बौन एमा माँ बाप हागा जा अपन दूध की लजायेगा वन को दाग लगयेगा । मोह वश यत्न कोई नाटक करना है तो उममे स्वयं का परास्त नही करना चाहिए । हतास्ताह नहीं होता है । आत्मवच धारणा करो । आत्म शक्ति आत्म विश्वास नजय होता है । आत्म शक्ति व समग शरीर वन कुछ नहीं कर सकता । कपाय ननी जाना विनय को नहीं खाना स-जनता और सरला नही छाडना । निरन्तर अपने उत्थान का विचार करना । अपने निज स्वल्प का विचार करना । अपने मकली म डड रहना । जा धारणा की है प्राण पण से उठका पावन करना । आत्मा अमर है । ससार के सभी नाते रिफते शरीर मे सम्बन्धित हैं । आत्मा स क्या सगकार । आत्मा स्वयं अपने म गुप्त है रक्षित है ।

मैं मरूँ । मैं मरूँ । मैं मरूँ ही हूँ । मैं मुझमें हा हूँ । मैं मरे ना हूँ । मैं मुझका ही हूँ । मैं मरे ही मिला हूँ । ओ हूँ वही हूँ । हाँ मैं मैं ही हूँ क्या ? बाकी क्या है ? कुछ है क्या ? कुछ नहीं । जा है वह सबस्व मही

हो है । पर मैं नहीं । पर मरा नहीं । मैं पर का नहीं । पर का मैं करता नहीं । पर मुझका कुछ करता नहीं । पर के लिए मैं नहीं और मेरे लिए पर नहीं । पर मैं म मुझसे पर होता नहीं और पर से मैं होता नहीं । पर मैं तू ही जोर मुझ पर नहीं । फिर क्या है ? पर पर नहीं है पर पर का ही पर है पर सही पर है पर के लिए ही पर है पर का ही पर है पर में ही पर है । हे आत्मन् तू इस निश्चय समझ परम ध्यान कर । इसी प्रतीति से तेरा स्व स्वरूप प्रकट होगा । जाग्रत जागा । तू अपने में आदेगा । आपा पर का भेज जान रिता निज वस्तु को नहीं पा सकता । माह वली है राजा है सर्वोपरि शृंगार है ससार का । इसकी शान न गिर इस पर दृष्टि सगी तो समझ लो तुम्हारी अपनी शान मिट कर रहेगी । इसकी शान मिटाने में दक्षित हुए तो बस तुम्हारा नजारा चमक कर ही रहेगा । जाग्रत हा जागता आपका आत्मन् । आत्मा क्या परमात्मा । आत्मा ही तो परमात्मा है यदि कम ता कम और भाव कम से शून्य हो जाय । यही बरा ।

हे चाह का व्यापार बड़ा ही अलबेना है क्योंकि मन का स्वरूप ही निर्माण है । देखा एक आर सुन्दर नव-यौवन परम गुणवान प्राणाधार पुत्र शिरछ हा जाने से घरा पर चिर निज ले रहा है । बीड़ा बड़ा है पुत्र शोक की राह से मन व्यथित है । प्रतिशोध की भावना से भरा है । प्रतिकार का प्रबल जोश बढ़ा है । शोधान्ति धधक रही है । दूसरी ओर परम सौन्दर्य के घाम सनाम रूप राशि पुत्र घातक नरमण दृष्टिगत होता है । बाहरी चाह क्या ही विचित्र मोह परिणमन है पुत्र त्रियाग की दुख घारा उनके (लक्ष्मण) के संयोग की बल-बल निनाम्नी सरिता के प्रवाह में परिणत हो जाती है । अपव्य शव को त्याग राम की शरण में प्रणय भिन्ना का अनुरोध जा करती है । यह है ससार । ससार का व्यापार ' स्वाध का सग्राम । विषय क्याय का उद्धार । अभा क्या ? तनिक और बड़ा आगे प्रणय भीख की ठुकराहट निराशा की चीख घिसानापन की झुझलाहट । चाह भयकर प्रतिशोध असत्यासपण युद्ध सग्राम । घोर रणभूमि का प्रवेश और फिर अत्रि छत्र बल दान । धम स्वन । अग्रम मवन । ताण्डव नृत्य । घोर अत्याध । पतन । आत्म पतन । नरक गमन धम विजय शिव गमन । आकाश पाताल एक साथ हिल उठे । क्यों ? मात्र चाह का अन्त का कारण । एक चाह आता और दूसरी जाता । मात्र इतना ही है मगार चक्र का घूमना । हे आत्मन् ! चाह की राह रोकने का उपक्रम करा । मगारभाव स्वयम हो जायगा ।

आत्मनिराग स्वात्मापत्ति का सफल उपाय है । जिम अपने स्वरूप की प्राप्ति करना है वह आत्मन वृद्धि का उपाय कर । आत्म ध्यान-नृत्य ध्यान है । आत्म पात तत्त्व पात है । आत्मानुचरण नरवानुचरण है । अभिप्राय यह है कि जो आत्म द्रव्य का उद्धार में जाता है जानता और अनभय करता है वह सम्पूर्ण तत्त्वा का निरवशान ताता ताता का त्रिकालवर्ती सत्य द्रव्य का गुण गर्वायो गुण ध्यान

करता है जानना है और तदनुसूल आचरण करता है। स्व म स्व का और पर म पर का अनुभव करना है। आत्मा अपनी वस्तु है। उसके विषय म यथार्थ अवगम करना कठिन नहीं है। निज पर मे आन और रहना दुःख नहीं है। हे आत्मन् जाग जाना गुण-बुद्धि सम्हालना। जानो परल बरो। अनरात्मा की प्राप्ति तुम्हारा निज धन है। अपनी विभूति है। अज्ञानि स भ्रमण करत हुए अनन्त सुखो का शिकार बना आया है भना एक क्षण भी सुख शांति मिली ? मित्रों कहाँ से। अपने म अपना रात्र करे ता शांति मिले। स्वयं शांत है। शांतता ही जीवन है। जीवन की धड़ियाँ मुख की धड़ियाँ हैं मुख की धड़ियाँ जीवन का मणियाँ हैं।

सगार और सहार। जीरात्मा और उसकी पर्याय। पर्यायो का उत्पान और विनाश प्रनिक्षण होता रहना है। यही उत्पान विनाश सगर है। पर्याय बुद्धि पर्याय की उत्पान है। पर भाव ही विभाव है। आत्म स्वरूप स भिन्न जा कुछ है सज विभाव ही है। यही विभाव का सारतम्य अनादि स रगा है। इन विकारी भावा म समाहित चित्त प्राणा स्वभाविक भावा का भूल कर विभाव म हा अपन का अपना मान रहा है। यह अज्ञानि का भूल हा इतना घातक है। गज क्यों बधना है ? अपनी ही भल स। नर क्या पित्रह म कमा ? वह अपने ही अराध स जाप दुःखित हुआ। अर साचा आप क्या दुःसा है अपन हो विचारा स करना ही कल्याण स। यथा मानना कृष्ण पद्म का रात्रि है दीपक है नहीं महसा आप बिनी अनाद पर मे घस और उघर स आया सहसा घर का मासिक बम आप चिल्ला उठ चोर और वह भी चिल्लाया पकड़ा। दोना आकुल-आकुल पबराय। पर हजा क्या ? अपने अपन म स्वयं का भ्राति। अपना अपने म विचार। नन्ही सी बच्चा न ताउटन का बत्ती ऊपर की दाता न एक दूसरे का दसा और समझा। समय कि जा म जा आया। यथाय म सत्य का विचार करा क्या आया क्या गया। न कुछ आया और न कुछ गया। सब कुछ अपने म ही अपना समाय है।

मनुष्य बुद्धिवादी है। बुद्धि का प्रयोग दो रूप म करता है (१) मदबुद्धि और (२) सुबुद्धि। दुबुद्धि स्वभाव स प्रयुक्त होती है—बिना किसी प्रयत्न क इगका व्यवहार होता है जबकि सदबुद्धि प्रयत्न साध्य होती है बठार प्रयत्न करने पर भी उगका सही प्रयोग नहीं हा पाना। अनेक निमित्त साध्य है यह। मनुष्य इसके पान । यत्र-तत्र विचर जाता है-स्मलित हा जाता है। कारण अनभ्यस्त है। हे साधका। साधना का साधन सदबुद्धि है। सम्यक परिणति है। अपना परिणमन सही बनान म दर्शावित हा जाआ। एकाग्रचित्त हान स सकन काय हा सकता है। सबल बन बरा। अपने म अग्न रहा। स्व म स्व का रखने का अभ्यास करा। तमा सग परिणमन रह सकता है। जन सम्यक यथायोग्य अग्रि मे अधिक बचन का प्रयोग करा। पर का मयाग जिकन कम हागा आम साधना भी उजनी मुरगित रहेगी। अपना-अपना देखा अपना-अपना जाना और अपने

रमाया । जग जगान अगम है । इगम कोई सार नहीं । कभी साम्प्रदायिक मत निगमा है । निरुमार का सम्मान बनाना एक मात्र मानव जीवन का उद्देश है इसी को मर्मन कर । इसी में सार है । यही सार जग का कर्म है ।

सम्यग्दर्शन चारों अनुयोगों से एक रूप ही है भाव साधक भेद है । अर्थ भेद भी कहीं-कहीं हो सकता है । किन्तु भावार्थ को वही सार गती है । सुखानुभव इष्टानुयोग से सम्पन्न है तो कर्णानुयोग से स्वानुभूति की ओर उन्मुख परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्पन्न है । कर्णानुयोग की भाषा में उसे कर्ण मण्डि के नाम से कहा जाता है । सब का सार पर द्रष्टा से हटकर स्व मन्त्रो-मुक्ता ही ता है । प्रथमानुयोग मन्त्र-य साधन मुख की श्रद्धा को सम्पन्न करता है । मन्त्रों के शास्त्र मुख का गहिष्ठान आत्मानुभूति के अभाव में क्या भसा हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान होने पर ही सम्पन्न होना यह आवश्यक नहीं । अन्यथा निर्व्यञ्जा अनादि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षियों का सम्पन्न होना सिद्ध नहीं होगा । सम्पन्न प्राप्ति में मात्र कर्णानुयोग ही कारण है यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा घोटोपम विजयी नवम प्रवेष्टक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह आरम्भ श्रद्धा विशेष परिणाम है । इसका सम्पन्न करना बिना आगमाध्यय के नहीं हो सकता । जब वही किम प्रकार इसका उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यन्तर कतिपय सक्षण हैं भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यमारी उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आग माध्यास अवश्य करते रहें । परिणाम तत्त्वज्ञान हमारे अंतरङ्ग उपायान को जाग्रत करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आगमाध्यास अथ भवान्तर में भी सहयोग होता है । श्रवानादि नियम पर्याप्त में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्पन्न करने का निषेध नहीं है । यह क्यों है ? इसका कारण पूर्व सस्कार हैं । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर श्रद्धा नहीं हुआ । मिथ्यात्व वश ही रहा मरण कर निर्व्यञ्ज्यादि हो गया । यही दशना का निमित्त पाते ही अन्तरङ्ग सम्पन्न भावना तत्क्षण जाग्रत हो उठती है । यह देशना कालवधि के उक्त में सहयोगी बनकर उस भव्य का कर्म सिद्ध कर देती है । सम्पन्न आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमलता चारित्र्य है । सराग परिणति में अनुकम्पा मन्त्री प्रमोद काश्य भाव उमक दशक है । हम सम्पन्न के हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भी गण, पर्याप्त धर्म स्वभाव के अंत का ज्ञान बिना उसका वास्तविक फल हमें उपबन्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का घनात्मक विश्लेषण करना अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अर्थ का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कवली ज्ञान में समस्त ससार के सम्पूर्ण अर्थ अपनी-अपनी गुण पर्याप्तों से युक्त बन सकती है किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं होता । क्या उससे कवली का भार लगता है ? नहीं दण्ड में प्रतिनिमित्त पदार्थों से दण्ड विवृत नहीं होता । आत्मा जान घन है । ज्ञान

जाना है पर ममा भेद है। उनसे हमारा कुछ नही बिगड़ता और न बिगड़ ही सक्त है। आत्मा अपने में सदा आप ही रहता है। पर्याया में विकार है। व परिवर्तन होनी शक्ती है उनका स्वभाव ही ऐसा है। परन्तु वह नही भूयता कि स्वभाव पर्याया में विकार नही होना किन्तु विभाग पर्याया में ही विचार हुआ करता है। विभावा का अभाव विभावी के द्वारा हो जाता किन्तु विभाव हटते ही मात्र स्वभाव रह जायेगा। यही वस्तु स्वभाव है।

जीवा प्रवाह है। प्रवाह वैग है। वह बग जा चलन ही रहता है। सरिता का प्रवाह चला ता फिर चलता ही रहता है क्वा ता नदी का नाग मिट गया। गही हाल है जीवन का। वह भी परिवर्तन होना रहता है क्षणिक और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ यहाँ एक भव सम्बन्धी पर्याय से है। जब बाई जीव मनुष्य हुआ क्षणिक बशी आति यह जाति वर्तमान भुजमान आयु पय त है किन्तु वही व्यक्ति दिन भर में प्राण शोषाणि कम करता हुआ शून्य है पुन स्नानादि क्रिया कर शुद्ध क्रियाओं से भगवत् भक्ति करता है ता ब्राह्मण बन गया क्योंकि यजन याजन वम ब्राह्मणा का निगोहित है। पश्चात् वही व्यक्ति अपने आजीविन व कर्मों में रत होता है तब वक्ष्य हो जाता है। पुन अपने स्वावलम्बन के अभिमान से भरा रात्रि का विश्राम लता है ता स्व रक्षा तत्पर वह क्षत्रिय हो जाता है। यह हालत प्रत्येक मानव की है। दशा से विचारने पर जाति में बाह्य न होकर अन्तरग हो जाता है परन्तु इस अभिमान से बाह्य जाति वेद का लाप करना अपने जीवन की निम्नता पर कासा घणा लगाना है। वण व्यवस्था का उच्छेद कर ताथकर प्रभु का अवणवाद करना है। अस्तु उस धार पापवृत्ति से बचन के लिए जिनवाणी का अनुसरण करते हुए उस अनार्ति जाति व्यवस्था को बनाये रखना हमारा परम वक्तव्य है जाति बंधन हमारा स्वतंत्र जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाढ़ का सीमा में धान फटना फूलता है। जिस से वेष्टित नगर सुरक्षित रहता है। पति के शासन में नारी का नारीत्व समकाल है। राजा व शासन में प्रजा फननी फूलता है। फिर भला जातीयता का बंधन कह कर उपास करता नितान्त भूय नहीं है। मर्यादा का उल्लंघन स्वयं अपना ही नाश करता है। मर्यादित जीवन निश्चित होता है। त्याग की बाढ में वेगों तप ही कारिया में समय व सुमन खिलत हैं जा चारित्र्य के सूत्र में बंध कर मुनिवर दूहा का सेहरा बनाता है जिसके धारण से और पानन से मुक्त बंधू का कथं हाना है। अर्थात् शिव रमणी वरण करने में समय होता है। भला बंधन पातक कस हो सक्ता है (बंधन से सक्षार है और बंधन हा से मुक्ति)। जा बंधता है वही छूटना है। जिसके देश पडा नही ता वह धोलाया क्या ? कुछ भी नही बंध और मोक्ष दाता में धनियत सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इ आत्मन समस्त बंध का। मन कर पूजा उससे अपितु प्यार कर। बंधन के निशानों की जलन ही तुम्हें मुक्ति की आर ले जायेगी। बंधन का आनन्द ही छन्दार की मुहानी निगा का परिचय देता है। आत्मा

रमाया । जग ज्ञान अमर है । इसमें कोई गार नहीं । क्या ही सम्भव गार निम्न है । निम्नार का गारमय बनाना एक मात्र मात्र जीव का उद्देश है इसी को गार कर । इसी में गार है । यही मानव जन्म का कर्म है ।

सम्पूर्ण चार अनुयोगों में एक ही है मात्र शास्त्रिक भेद है । अर्थ भेद भी बहिष्कृत हो गया है । किन्तु भाषा का बही स्थापन नहीं है । गुणानुसंगिक अनुसंगिक सम्बन्ध है तो चरणानुसंगिक से स्थानुभूति की ओर उन्नत परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्बन्ध है । चरणानुसंगिक को भाषा में उमे चरण तन्त्रि के नाम में कहा जाता है । गार का गार पर प्रत्येक से हटकर स्व सम्बन्धानुसंगिक ही ता है । प्रयत्नानुसंगिक सम्बन्ध शास्त्रिक गुरु की श्रद्धा को सम्बन्धित करना है । गुरु के शास्त्रिक गुरु का पहिचान आत्मानुभूति का अभाव में क्या भला हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान होने पर ही सम्बन्धन हाता यह आवश्यक नहीं । अथवा त्रिवेन्द्रा अनारि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षि का सम्बन्धन हाता सिद्ध नहीं हाता । सम्बन्धन प्राप्ति में मात्र कथापापशम ही कारण हा यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा धोरापमग विजयी नवम प्रवेद्यक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हा सकता । यह आत्म श्रद्धा विशेष परिणाम है । इसका सम्बन्ध करना बिना आगमाभ्यास के नहीं हा सकता । अब कहा कि प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यन्तर कतिपय सम्बन्ध है भी ता उनका अवगमन का उपाय क्या है ? यह भी ता निर्णीत नहीं है । हा यह अवश्यभावी उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आगमाभ्यास अवश्य कर रहे । परितक्क तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपानान को आग्रह करने में सहकारी हाता । भव भव में किया गया आगमाभ्यास अथवा भवान्तर में भी सहायक हाता है । स्वानारि त्रिवेद्य पयाय में तत्त्व ज्ञान नहीं हाता पर भी सम्बन्धन का निषेध नहीं है । यह क्या है ? इसका कारण पूर्व संस्कार है । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर श्रद्धान नहीं हुआ । मिथ्यात्व वश ही रहा मरण कर त्रिवेद्ययादि हा गया । यही दशना का निमित्त पाते ही अन्तरङ्ग सम्बन्धित भावना तत्क्षण जाग्रत हा उठती है । यह दशना कालत्रिघ्न का उद्भव में सहायगी बनकर उम भव्य का कर्म सिद्ध कर देती है । सम्बन्धन आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र्य है । सराग परिणति में अनुकम्पा मंत्री प्रमोद काव्य भाव उसके दशक है । हम सम्बन्ध के हृदय का समझन का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भाग में, पर्याय धर्म स्वभाव का अन्त का ज्ञान बिना उगका वास्तविक फल हमें उपलब्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का घनात्मक विश्लेषण करना अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अन्य का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कबली ज्ञान में समस्त गुणों का सम्पूर्ण अभ्युपगम अपनी-अपनी गुण पर्यायों से युक्त ज्ञानवती है किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं हाता । क्या उसका कबला का भार जगता है ? नहीं दशक में प्रतिनिमित्त पलायनी स दशक विद्वत् नहीं होता । आत्मा पाप घन है । ज्ञान

जाता है पर यथा ज्ञेय है। उनमें हमारा कुछ नहीं विद्यमान और न विचार ही नहीं है। आत्मा अपने में मग्न आनन्द में रहता है। परमात्मा विचार है। वह परवर्तिता होती रहती है उसका स्वरूप ही ऐसा है। परन्तु वह महा भूतना विस्मयकारी। न विचार नहीं होता किन्तु विचार करने में ही निरंतर हुआ करता है। विचार का अभाव विचारों के द्वारा ही होता किन्तु विचार करने ही मात्र स्वरूप रह जायगा। यह बात स्वरूप है।

जाता प्रवाह है। प्रवाह बल है। वह दल का बल ही रहता है। जाति का प्रवाह बना या फिर बनता ही रहता है बना या बना का नाश हो गया। यही हानि है जाति का। यह भा परिवर्तित होता रहता है जाति और व्यापक रूप में। व्यापक का अर्थ यही एक भव सम्बन्ध बनाया गया है। जब कोई जीव मनुष्य हुआ क्षत्रिय बना जाति, यह जाति कतमान भुक्तमान मान्यता है किन्तु बड़ी व्यक्ति निम्नतर में जाति गोत्राणि कर्म करना हुआ हुआ है पुनः स्नानादि किया कर शुद्ध विद्याया से भगवत् भक्ति का ही ता काह्मण बन गया ब्राह्मण यज्ञन याजन कर्म ब्राह्मण का निराति है। परवान् बड़ा व्यक्ति अपने आजीविता कर्मों में रह जाता है तब बल्य ही जाता है। पुनः अपने स्थावयम्बन क अभिमान में भरा जाति का विद्याम सता है ता स्व रक्षा तत्पर वह क्षत्रिय हो जाता है। यह हानि प्रत्येक मानव की है। दया से विचारन पर जाति ज्ञेय बाह्य न होकर अन्तरण हो जाता है परन्तु इस अभिमान से बाह्य जाति का साथ करना अपने जाति का निम्नता पर जाता घटा लगाना है। बल व्यवस्था का उच्छेद कर तोषकर प्रभु का अवगर्हण करना है। अन्तु उन धर्म पादकृति से बचने के लिए जिनका का अनुसरण करते हुए उस बनाति जाति व्यवस्था का बनाय रखना हमारा परम कर्तव्य है जाति बचन हमारे स्वतन्त्र जाति विकास का प्रमुख अंग है। बाढ़ की सीमा में घात पतन फूलना है। विष प वृष्टि नगर मूर्च्छित रहता है। पति क शासन में नारी का नारीत्व समता है। राजा क शासन में प्रजा फणी-धूमना है। फिर भला जातिपना का बंधन बह कर उठना करना निताम भूल नहीं है। मर्त्या का उत्तम स्वय अपना ही नाश करना है। मर्त्यान् जीवन विकल्पित होता है। स्वय की बाढ़ में तनी तप की क्यारिया में समय का मुमन खिलत है जा चारित्र के सूत्र में बंध कर मुनिवर ब्रह्मा का सहारा बनाता है त्रिगुण धारण में और पावन से मुक्त बंधु का रूप होता है। अमानुष शिव रमणी वरण करने में समर्थ होता है। भला बंधन घातक कत हो सकता है (बंधन से तयार है और बंधन ही से मुक्ति)। जा बंधना है बही छूटना है। त्रिगुण बंधा नहीं नहीं ता वह छानना क्या ? कुछ भी नहीं बंध और मोक्ष दानों में धनित सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे में पूरक है। इ आत्मन समस्त बंध का। पूजा उनसे अपिपु प्यार कर। बंधन के निशानों की जलन हो जायेगी। ही छटकारे की मुहानी।

सम्यक् । तब संसार भग्न हो है । इससे कोई मार नहीं । बारी सामान्य यह निश्चय है । निश्चय का मारमय बनना एक मात्र मातृ प्रीति का उद्भव है इसी के लक्षण का । इसी में मार है । यही मातृ प्रीति का लक्षण है ।

सम्यक्ज्ञान का भी तत्त्वज्ञानों में एक रूप ही है भाव साधक भेद है । अर्थ भेद भी बहिर्य है भग्नता है । किन्तु भावार्थ को बारी स्थान नहीं है । शुद्धात्मानुभव दशात्मानुभव में सम्पन्न है तो बाल्यानुभव में साधुभूति की ओर उन्मुख परिणाम शुद्धि का नाम हो सम्पन्न है । करणानुभव को भाग्य में उगे करण लक्ष्य के नाम में कहा जाता है । सब का मार पर प्रत्यक्ष में हुक्कर सब लक्ष्योन्मुक्तता ही ता है । प्रत्यक्षानुभव सम्पन्न १६ साधक शुद्ध की प्रज्ञा को सम्पन्न करण है । मरने देव साम्य शुद्ध की प्रज्ञा साधुभूति के अभाव में क्या भया हो सकती है ? तब परिज्ञान होने पर ही सम्पन्न होना यह आवश्यक नहीं । अथवा निवेष्टा अनानि मिथ्या दृष्टि तत्त्व प्रमाण का सम्पन्न होना सिद्ध नहीं होगा । सम्पन्नान्न प्राप्ति में मात्र बाल्यानुभव ही कारण हो यह भी गही का सत्ता । अथवा चोरापनाम विजयी नरम वैभव में जाने जाना मिथ्यादृष्टि भी हो सकती है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह व्यर्थ प्रज्ञा विशेष परिणाम है । इसका सम्पन्न करना बिना आध्यात्मिक के नहीं हो सकता । सब बारी किम प्रकार इसका उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्यात्मिक बलिष्ठ सम्पन्न है भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो निर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यमारी उपाय है कि तब परिज्ञान स्वाध्याय आग साम्यात्मिक अवश्य करने रह । परिणाम तत्त्वज्ञान हमारे अनुरक्त उपादान को जाग्रत करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आध्यात्मिक अन्य भवांतर में भी सहायक होता है । श्वानानि नियम पर्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्पन्नान्न का निषेध नहीं है । यह क्या है ? इसका कारण पूव सत्कार है । पूव भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर अज्ञान नहीं हुआ । मिथ्यात्व वश ही रहा मरण कर तत्त्वज्ञानादि हो गया । यही दशना का निमित्त पाते ही अन्तरङ्ग सम्पन्नत्व भावना तत्क्षण जाग्रत हो उठती है । यह दशना बाललक्षि का उद्भव में सहायगी बनकर उम भव्य का कथ सिद्ध कर देती है । सम्पन्नान्न आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमलता चारित्र्य है । सराग परिणति में अनुकम्पा मन्त्री प्रमोद कारण भाव उससे दशक है । हम सम्पन्न के हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भी गुण, पर्याय धर्म स्वभाव का अन्त का ज्ञान बिना उसका वास्तविक फल हमें उपनयन नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का घनात्मक विश्लेषण करना अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अर्थ का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कवली ज्ञान में समस्त सत्ता का सम्पूर्णद्रव्य अपनी-अपनी गण पर्यायों से युक्त झलकती है किन्तु ज्ञान में कोई विकार नहीं होता । क्या उसका कवली का भार लगता है ? दण्ड में प्रतिनिधित्व पदार्थों से दण्ड विद्वत् नहीं होता । आत्मा ज्ञान धन है ।

पाता है पर गमा जे है। उनग हमाग कुछ नई बिबरन भैं न बिबर ही भवन
है। कम्मा मरने में मरा जेग हा रहग है। परसों में बिबरन है। वन परसों
होनी रहनी है उनग रबनाइ हा ऐग है। पान्ग रह नही भूना कि नदनाइ रनी ?
में बिबर नही हाता हिन्दु बिमार पानी में ही बिबर हुआ कम्मा है। बिबरन
का खभाव बिमारों क हाग हा हाग हिन्दु बिमार हमे ही पाव नदनाइ रन
जायेगा। नही कम्मा खभाव है।



[illegible]

रमा आ । जग जगत् अमल है । इगम कोई सार नहीं । कभी सम्भवतः यह निम्मार है । निम्मार का सारमय बनाना एक मात्र मानव जीवन का उद्देश्य है इसी को सफल करा । इगो मे सार है । यही मानव जन्म का फल है ।

सम्यग्दर्शन चारो तनुयोगा से एक रूप ही है भाव शान्तिक भेद है । जय भेद भी कवचित् हा भजना है । किन्तु भावार्थ को वहीं स्थान नहीं है । शुद्धात्मानुभव द्रव्यानुयोग से सम्पन्न है तो चरणानुयोग से स्वानुभूति की ओर उन्मुख परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्पन्न है । करणानुयोग की भाषा में उसे करण सन्धि के नाम में कहा जाता है । सब का सार पर द्रव्य से हटकर स्व द्रव्योन्मुखता ही ता है । प्रयमानुयोग सन्धि त्व शास्त्र गुरु की श्रद्धा को सम्पन्न कहता है । सन्धि देव शास्त्र गुरु की पहिचान आत्मानुभूति के अभाव में क्या भला हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान हाने पर ही सम्पन्न होना होगा यह आवश्यक नहीं । अन्यथा तिर्यञ्चो अनादि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षियों को सम्पन्न होना सिद्ध नहीं होगा । सम्पन्न प्राप्ति में मात्र कषायपशम ही कारण है यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा घोरपशम विजयी नबम प्रवेयक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह आत्म श्रद्धा विशेष परिणाम है । इसका समन्वय करना बिना आगमाभ्यास के नहीं हो सकता । कब वहाँ किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यास कतिपय लक्षण हैं भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यभावी उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आग माभ्यास अवश्य करते रहें । परिपक्व तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपासन को जाग्रत करने में सहायकी होगा । भव भव में किया गया आगमाभ्यास अन्य भवान्तर में भी सहायक होता है । श्रवणानि नियम पर्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं हाने पर भी सम्पन्न का निषेध नहीं है । यह क्या है ? इसका कारण पूव सत्कार है । पूव भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर श्रद्धा नहीं हुआ । मिथ्यात्व बस ही रहा मरण कर तिर्यञ्चपाति हो गया । यहाँ दर्शना का निमित्त पाने ही अन्तरङ्ग सम्पन्न भावना तरक्षण जाग्रत हो उठती है । यह दर्शना कालनिधि का उद्भव में सहायगी बनकर उस भव्य का कार्य सिद्ध कर देती है । सम्पन्न आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्त चारित्र्य है । सरास परिणाम में अनुकम्पा प्रीति प्रमोद कारण भाव उसका दण्ड है । हम सम्पन्न के हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भा गुरु पर्याय धर्म स्वभाव का अर्थ का ज्ञान बिना उगका वास्तविक पत्र हमें उपलब्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पर्याय का अनात्मक विवेचन करना अनिवार्य है ।

नित्र स्वभाव में अविचल रहने पर अर्थ का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कभी ज्ञान में समस्त ससार के सम्पूर्ण अर्थ अना-अना गुरु पर्यायों से युक्त शान्तनी है किन्तु ज्ञान में कोई विकार नहीं होता । बस उसका कवना का भार अपना है ? ज्ञान में प्रीतिमय पक्षों से लपक सिद्ध नहीं होता । आत्मा शांत बन है ।

जाता है पर ममा जैय है। उनमें हमारा कुछ नहीं बिगड़ना और न रिगड़ ही सारा है। आत्मा अपने में मग्न आप ही रहता है। पर्याया में विचार है। व परिवर्तित होनी रहनी है उनका स्वभाव हा ऐसा है। परन्तु यह महा भूतना कि स्वभाव गयाया में विकार नहीं जाना किन्तु विभाग पर्याया में ही विकार हुआ करता है। निमाया का अभाव विमायो के द्वारा हो जाता किन्तु विभाव हटते ही भाव स्वभाव रह जायेगा। यहा वस्तु स्वभाव है।

जीवा प्रवाह है। प्रवाह वैग है। वह वग जा चलन ही रहना है। भरिता का प्रवाह चला ता फिर चलना ही रहता है का ता नगे का नाग मिट गया। गहो हाल है जीवन का। वह भी परिवर्तित होता रहता है दानिक और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ यहाँ एक भव सम्बन्ध पर्याय स है। जस कोई जीव मनुष्य हुआ क्षत्रिय वशी जानि यह जाति वनमान भुजमान आयुष्य त है किन्तु वही व्यक्ति जिन भर में प्राण मोचानि कम करना हुआ शून्य है, पुन स्नानानि प्रिया कर शुद्ध विषागों में भगवन् भक्ति करता है ता ब्राह्मण बन गया क्योंकि यजन याजन कम ब्राह्मण का निर्धारित है। परचान् वही व्यक्ति अपने आजीविता के कमों में रत होता है तब वश्य हा जाता है। पुन अपन स्वावदम्बन के अभिमान से भरा रात्रि का विश्राम लता है ता स्व रक्षा तत्पर वह क्षत्रिय हा जाता है। यह हालत प्रत्येक मानव को है। दगा से विचारने पर जानि भक्त बाह्य न हाकर अन्तरग हा जाता है परन्तु इन अभिमान से बाह्य जानि वेद का ताप करना अपन जीवन का निमग्नता पर बाला प्रभा लगाना है। वग व्यवस्था का उच्छेद कर तीक्ष्ण प्रभु का अवगवान् करना है। यस्तु उस धार पापवृत्ति से वचन के लिए जिनवाणी का अनुसरण करते हुए उस बानानि जानि व्यवस्था का बताय रखना हमारा परम कर्तव्य है जाति बधन हमारे सतम्भ जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाढ़ की सीमा में धान फलता फूलता है। फिर ९ वेष्टित नगर सुरात रहता है। पति के शासन में नारी का नारीत्व कमजोर है। राजा के शासन में प्रजा चलती-फूलती है। फिर भला जानाया का बधन बह कर उरगा करना नितान्त मूल नहीं है। मर्त्या का उल्लेखन स्वय अपना ही नाश करना है। मर्त्याजि जीवन विवक्षित होता है। त्याग की बाढ़ में नगी तप की फारियों में सपथ के सुगन्ध तिलत है जा चारित्र के मूल में बध कर मुनिवर दूहा का सेहरा बनाता है जिनके धारण से और पालन से मुक्त बधू का बध होता है। अर्थात् शिव रमणी धरण करने में समर्थ होता है। भला बधन घातक कस हो सकता है (बधन से संतार है और बधन हा से मुक्ति)। जा बधना है वही छूटना है।  बेड़ी पड़ी नहीं ता वह खायेगा क्या? कुछ भी नहीं बध और मोक्ष दोनों में  पम्प है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हे आत्मन समस्त बध का। मन कर प्यार कर। बधन के निशानों की जयन ही तुम्हें मुक्ति की ओर न आनन्द ही उत्कार की मुहानी निग का परिषद देता है। आत्मा

रमाभा । जग अज्ञात अमर है । इगम कोई सार नहीं । कन्ती स्मरण प
निम्मार है । निम्मार का सारमय बनाता एक मात्र मानव जीवन का उद्देश्य है इसी
को सफल करा । इसी में सार है । यही मानव जन्म का फल है ।

सम्यग्दर्शन ' चारों तनुयोगों से एक रूप ही है भाव शान्ति भेद है । अथ
भेद भी कविता हो सकता है ; किन्तु भावार्थ का वहीं स्थान नहीं है । शुद्धात्मानुभव
द्रव्यानुराग से सम्यक्त्व है ना चरणानुराग से स्वानुभूति की ओर उन्मुख परिणाम
शुद्धि का नाम ही सम्यक्त्व है । करणानुराग की भाषा में उम करण तन्त्र के नाम
में कहा जाता है । सब का सार पर द्रव्य से हटकर स्व द्रव्यानुभूति ही ता है ।
प्रथमानुराग सच्चे स्व शास्त्र गुरु की श्रद्धा को सम्यक्त्व कहता है । सच्चे देव शास्त्र
गुरु की पहिचान आत्मानुभूति का अभाव में क्या भला हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान
हाने पर ही सम्यग्दर्शन हांगा यह आवश्यक नहीं । अथवा तिर्यञ्चा जनाति मिथ्या
दृष्टि पशु पक्षियों को सम्यग्दर्शन हांगा सिद्ध नहीं हांगा । सम्यग्दर्शन प्राप्ति में मात्र
कपायापशम ही कारण ही यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा घोरपक्षय विषयी नवम
प्रवेयक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह
आत्म श्रद्धा विशेष परिणाम है । इसका समर्थन करता बिना आत्मश्रद्धा के नहीं हो
सकता । अब वहाँ किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है ।
वात्स्यायनर कतिपय लक्षण हैं भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो
निर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यमात्र उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आत्म
माध्यास अवश्य करते रहें । परिणत तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपादान को जाग्रत
करने में सहकारी हांगा । भव भव में किया गया आत्ममाध्यास अथ स्वान्तर में भी
सहायक हाता है । स्वानाति तिर्यक पयाय में तत्त्व ज्ञान नहीं हाने पर भी सम्यग्दर्शन
का निषेध नहीं है । यह क्या है ? इसका कारण पूर्व सस्कार हैं । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान
तो किया पर श्रद्धा नहीं हुआ । मिथ्यात्व बस ही रहा मरण कर तिर्यक्त्वपाति हा
गया । यहाँ दर्शना का निमित्त पाने ही अन्तरङ्ग सम्यक्त्व भावना तराण जाग्रत हा
उठती है । यह दर्शना कालवर्धि का उक्त में सहयोगी बनकर उम भव्य का कथ
सिद्ध कर देती है । सम्यग्दर्शन आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में
शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र्य है । सराग परिणाम में अनुकृष्टा मंत्री प्रमोद
काश्य भाव उगम शर है । हम सम्यक्त्व का दृश्य का समझन का प्रयत्न करना
चाहिए । किसी भागुण पर्याय धर्म स्वभाव का अन्त का ज्ञान बिना उगका बाल
विक फल हमें उपलब्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का अन्तर्गत विश्लेषण करना
अनिवार्य है ।

नित्र स्वभाव में अविचल रहन पर अर्थ का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कश्मीर
ज्ञान में समस्त मन्त्र के सम्पूर्ण अन्त-अन्त का पर्यायों से पुनः ज्ञापना है
किन्तु ज्ञान में कोई विकार नहीं हाता । क्या उल्लेख कथा का भार मगा है ? दृष्ट
दृष्ट में प्रतिबिम्बित पदार्थों से ज्ञान विवृत नहीं हाता । आत्मा ज्ञान पा है । ॥ १ ॥

माना है पर मर्यादा जैसा है। उनका हवाला कुछ नहीं दिया जाता और न विचार ही मर्यादा है। आत्मा अपने में मग्न जा रही रहता है। पर्याप्त में विचार है। वे पर्याप्त होनी रहनी है उनका स्वभाव ही ऐसा है। परन्तु वह महा भूतना कि स्वभाव नहीं। म विचार नहीं होता किन्तु विचार पर्याप्त में ही विचार हुआ करता है। विचार का अभाव विचारों के द्वारा ही होता किन्तु विचार होने ही मात्र स्वभाव यह मानेगा। महा बन्धु स्वभाव है।

जीवा प्रवाह है। प्रवाह बग है। वह बग जा जाता ही रहता है। गाँगा का प्रवाह बना ही फिर बनता हा रहता है बना ना बना का मान सिर्फ मर्यादा। गाँगा हाल है जीवन का। वह भा परिवर्तित होता रहता है शक्ति और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ यहाँ एक भव सम्बन्ध पर्याप्त में है। जब कोई जीव मनुष्य हुआ धर्मित बना जानि, यह ज्ञाति वर्तमान भुजमान आयु पर्याप्त है किन्तु वही व्यक्ति निम्न म प्राप्त मोक्षानि बर्ण करता हुआ भूत है पुन स्नानानि त्रिमा कर भुज विचारों में भगवन् भक्ति बगता है ता बाह्य बन गया बाह्य यजन पावन बर्ण बाह्यता का निर्धारित है। परन्तु वही व्यक्ति ज्ञान आजीविता ब बर्णों में रा होता है तब बग हा जाता है। पुन अपन स्वावयम्बन क अभिमान म मर्यादा रात्रि का विचार मर्यादा है ता स्व रक्षा तत्पर वह क्षत्रिय हा जाना है। यह हासत प्रत्यक्ष मानव को है। दान स विचारन पर जानि भूत बाह्य न हाकर अनरण हा जाता है परन्तु इन अभिमान स बाह्य जानि बग का साथ करना अपन जावा का निमज्जना पर बासा घन्ता लगाना है। वण व्यवस्था का उच्छिन्न कर तीव्रकर प्रभु का अवलोकन करना है। अस्तु वन घार पापवृत्ति स बचन के लिए जिनवाणी का अनुसरण करत हुए उत बनानि जानि व्यवस्था का बनाय रखना हमारा परम कसब्य है जानि बचन हमारा स्वतन्त्र जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाढ़ की सीमा म घान पचना पूसता है। विन से वक्षित नगर सुरक्षित रहता है। पति ब शासन म नारी का नारीत्व धमकाता है। राजा ब शासन म प्रजा पयनी-कूलना है। फिर भला जानीपना का बंधन वह कर उपाय करना निराल भूल नहीं है। पर्याप्त का उत्पन्न स्वय अपना ही नाश करता है। पर्याप्त जीवन विकसित हाता है। त्याग की बाढ़ म योगी तप की कारिया म समय के मुमन स्थित है जा चारित्र के मूत्र म बन्ध कर मुनिवर दूहा का सहारा बनता है जिसके धारण स और पावन से मुक्त बधु का बध होता है। अर्थात् शिष्य रमणी धरण करने म समर्थ होता है। भला बन्धन बाधक बस हो सक्ता है (बन्धन स मसार है और बन्धन ही से मुक्ति)। जा बंधना है वहा छूटना है। ~~मर्यादा~~ बेड़ी पडा नहीं ता वह छात्रगा क्या ? कुछ भी नहीं बंध और मोक्ष दाता म ~~मर्यादा~~ मर्यादा है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इ आरम्भ समस्त बंध का। मन कर धार कर। बन्धन के निशानों की जलन हो तुम्ह मुक्ति की आर ने आनन्द ही पट्टकार की सुहाना निम्न का परिचय देता है। आत्मा

रमाया । जग जज्ञात अवतर है । इसमें कोई सार नहीं । कभी सम्भव यह निम्नार है । निम्नार का गारमय बनाना एक मात्र मानव जीवन का उद्देश्य है इसी को सफल करा । इसी में सार है । यही मानव जन्म का फल है ।

सम्यग्ज्ञान चारों तनुयोगों से एक रूप ही है भाव शास्त्रिक भेद है । अर्थ भेद भी बर्तित हो सकता है । किंतु भावार्थ का वही स्थान नहीं है । शुद्धात्मानुभव द्रव्यानुयोग से सम्यक्त्व है ना चरणानुयोग से स्वानुभूति की ओर उन्मुख परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्यक्त्व है । करणानुयोग की भाषा में उसे करण तन्त्रि का नाम से कहा जाता है । सब का सार पर द्रव्य से हटकर स्व द्रव्योमुखता ही ता है । प्रयमानुयाय सच्चे त्व शास्त्र गुरु की श्रद्धा को सम्यक्त्व कहता है । सच्चे देव शास्त्र गुरु की पहिचान आत्मानुभूति का अभाव में क्या मला हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान होने पर ही सम्यग्दर्शन होगा यह आवश्यक नहीं । अथवा तिर्यञ्चा अनादि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षियों को सम्यग्दर्शन होना सिद्ध नहीं होगा । सम्यग्दर्शन प्राप्ति में मात्र क्यापापशम ही कारण हा यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा घोरपसम विषयो नम्र प्रवेयक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह आत्म श्रद्धा विशेष परिणाम है । इसका समन्वय करना बिना आगमाश्रय के नहीं हो सकता । अब कहाँ किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यन्तर कतिपय सक्षण है भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यभावी उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आग माभ्यास अवश्य करते रहें । परिपक्व तत्त्वज्ञान हमारे अंतरङ्ग उपादान को प्राप्त करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आगमाभ्यास अन्य भवान्तर में भी सहायक होता है । श्रानादि तिर्यक् पर्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्यग्ज्ञान का निषेध नहीं है । यह क्यों है ? इसका कारण पूर्व सत्कार है । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर भ्रष्टान नहीं हुआ । मिथ्यात्व बश ही रहा भरण कर तिर्यक्चर्या ही गया । यहाँ देशना का निमित्त पाते ही अंतरङ्ग सम्यक्त्व भावना तरक्षण जाग्रत हो उठती है । यह देशना कालस्थिति का उ क म सहपाणी बनकर उस भव्य का कार्य सिद्ध कर देती है । सम्यग्दर्शन आत्मानुभूति है किंतु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र्य है । सारा परिणाम में अनुकम्पा मैत्री प्रमोद वात्सल्य भाव उत्तर दर्शक है । हम सम्यक्त्व के हृत्पथ का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भी गुण पर्याय धर्म स्वभाव का अन्त को जान बिना उसका वास्तविक पक्ष हमें उपरम्य नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का वनात्मक अतिवर्ष है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अन्य का प्रकाश
ज्ञान में समस्त समार के सम्पूर्ण रूप अपनी-अपनी
किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं होता । वरा
दान में प्रतिनिधित्व पशुओं से दान ।

जाना है पर सभी चय है। उनमें हमारा कुछ नहीं बिगड़ना और न रिगड़ ही जाता है। आत्मा अपने में मग्न आप ही रहता है। पर्यायों में विचार है। व परिवर्तित होती रहती है उसका स्वभाव ही ऐसा है। परन्तु यह नहीं भूलना कि स्वभाव पर्यायों में विकार नहीं होना किन्तु विभाग पर्यायों में ही विचार हुआ करता है। विभावा का अभाव विभावा के द्वारा ही होगा किन्तु विभाव हटते ही मात्र स्वभाव रह जायेगा। यही वस्तु स्वभाव है।

जीवन प्रवाह है। प्रवाह वग है। वह वग जा चले ही रहता है। सरिता का प्रवाह चला ता फिर चलना ही रहता है का ता नये का नाम मिट गया। यही हान है जीवन का। वह भी परिवर्तित होता रहता है शक्ति और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ यहाँ एवं भव सम्बन्ध पर्याय है। जस कोई जीव मनुष्य हुआ क्षत्रिय वशी जाति यह जाति वर्तमान भुज्यमान आयुपय त है किन्तु वही व्यक्ति जिन भर में प्राण शोकादि कम करता हुआ शून्य है पुन स्तनादि प्रिया वर सुख विद्याओं से भगवद भक्ति बन्ता है ता ब्राह्मण बन गया कर्वा वि यजन वाजन कम ब्राह्मणा का निर्धारित है। परधान वही व्यक्ति अपने आजीविता क कर्मों में रत होता है तब वय हा जाता है। पुन अपने स्वावलम्बन के अधिमान से भरा रात्रि का विधाय लता है ता स्व रक्षा तत्पर वह क्षत्रिय हा जाता है। यह हालत प्रत्येक मानव को है। दया से विचारने पर जाति भेद बाह्य न होकर अन्तरग हा जाता है परन्तु इस अधिमान से बाह्य जाति के का लोप करना अपन जीवन का निमलता पर बाला घस्था लगाना है। वग व्यवस्था का उच्छेद कर तीव्रकर प्रभु का अवलोकन करना है। अस्तु उम पार पापवृत्ति से बचने के लिए जिनवाणी का अनुसरण करत हुए उस बन्ता जाति व्यवस्था का बनाय रखना हमारा परम कर्तव्य है जाति बचन हमारा स्वतंत्र जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाड़ की सीमा में घन पनना फूलना है। जित से बढित नगर सुरक्षित रहता है। पति के शासन में नारी का नारीत्व घमकना है। राजा के शासन में प्रजा पननी-फूलती है। फिर भला जानीपना का बचन वह कर उपाया करना नितान्त भूल नहीं है। मर्यादा का उल्लंघन स्वय अपना हा नाश करना है। मर्यादा जीवन विकसित होता है। त्याग की बाड़ में नमी तप की कारिगो में समय के गुमान सिमन हैं जा चारित्र के मूल में बच कर मुनिवर दूहा का सेहना बनता है जितने धारण से और पानन से मुक्त बंध का कथ होता है। अर्थात् श्रमण रमणी धारण करने में समर्थ होता है। भला बचन बाह्य होत हो मरना है (बचन से संसार है और बचन ही से मुक्ति)। जा बंधता है वहा छूटना है। जिनका बंधा पदी नहीं ना वह छोडिगा क्या ? कुछ भी नहीं बन्ध और मोक्ष दाना में बाँट सन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। है आत्मन समग्र बन्ध का। मन कर बना उमग अस्तु पार कर। बचन के निरालों का बचन ही मुझे को जायेगी। बचन का मानस ही छन्दार की मुरली बिसा का ता है।

यद्यपि ब्रह्मा का परिज्ञान मुक्ति का द्वार है और उगसे छटकारा है परम मुक्ति।
देगो ज्ञान का दीपक लेकर ज्योति जलाओ दीवाली मनाओ अपने को दशाओ अपने
म आओ आगे म सुभाओ निज मे ही रम जाओ स्व म ही घुल जाओ। यही है ब्रह्म
ज्ञान अपना मान अपना ही अनुराग।

आत्मा आत्म गुण समूह का भण्डार है। परन्तु यदि स्वयं का स्वर आगे
पूजी का भान न हो तो भला उसका फल उसे क्या मिलेगा? कुछ नहीं। भान
बाधा बना रहेगा। भार ढाना गधे का काम है। मूल्यता है। फिर क्या करना?
प्रथम अपनी पूजी का श्रद्धा न कर उस ज्ञान करे और पुनः उसका उपयोग प्रयोग कर।
तत्पश्चात् फल का उपलब्धि होगी। आपके पास बीज हैं भूमि है परन्तु मरी है यह
विविध नहीं तो कुछ नहीं। प्रथम आपका विश्वास होना चाहिए कि मेरी जमीन और
भूमि है। पुनः कसा बीज है कसी जमीन है किस ऋतु में बाने योग्य है किस प्रकार
का भूमि के योग्य है किस काल में बाना चाहिए इत्यादि का परिज्ञान होना चाहिए
पुनः तदनुसार किया करना होगा। जमीन शुद्धिकरण करना पुनः वहाँ पर बाना
जहाँ बाना चाहिए। पुनः उस खाचना आदि किया करना चाहिए। सब करके भा
उसका पहरा देना होगा। यदि रक्षा बाढ़ नहीं लगायी तो पकी पकायी खनी उखड़
जायगी खा जायगी। उसी प्रकार आत्म गुण विकास को भी प्रक्रिया है। प्रथम आत्मा
परमात्मा हो जाता है यह थडाना हो पुनः उसका स्वरूप का परिज्ञान हो। ब्रह्मान
दशा और भावी परिणमन का ज्ञान हो तदनन्तर सम्यक् चरित्र किया हो तब वह
स्वरूप प्राप्त होगा।

निश्चय सम्यक्त्व का सिद्धि करना है ता व्यवहार सम्यग्ज्ञान का आश्रय नो।
सारागता व बिना वातरागता नहीं आ सकती। बीतरागता के ज्ञान पर वहाँ सारागता
निक नहीं सकती यह नियम है। बिना पुण्य व फल नहीं आ सकता किन्तु फल के
आते ही पुण्य नहीं रह सकता। प्रकृति का यह नियम है कारण के बिना कार्य नहीं
होता और कार्य के होने पर कारण नहीं रह सकता। हे आत्मन् कार्य सिद्धि के हेतुओं
के पात ही कार्य सिद्धि करने का प्रयत्न करो कारणों की उत्पत्ति में पड़ने की आवश्यकता
नहीं। कारण तो स्वयं हटते ही जायेंगे। अपन अन्तरङ्ग माह राव-द्वय पर
विजय कर। समाहित चित्त हात ही इष्टानिष्ट बुद्धि समाप्त हो जायेगी और तब
कोई भी ससार की वस्तु शुभाशुभ न रहेगी फलन बीतराग भाव जायग हुआ।
एकाग्र ध्यान होगा। आत्मनिष्ठता आयेगी। पर पन्थों का समझार विकल्पा का
उत्पादक है। अपन का सम्हालन स सब सम्हाल जायगा। स्वयं तू यथास्थान हो सारा
ससार व्यवस्थित हो जायगा। तू अव्यवस्थित है स्वयं इमीति तुम विरव अरिभ्यः
दृष्टिगत हो रहा है। पन्था उगरी उत्पन्न में स्वयं की उत्पन्न भूमि कर उपम ही
उपम रहता है। क्या पराई भूमि का बो रहा है। दे शास्त्र समस्त समस्त आत्मा रूप।
दण्ड आत्मा स्वरूप। पहिचान अपना धाम। निवास कर यही स्वयं आगे म। बाह्य जो

होता है हान दे। हर विषय हो या राग मोह। कुछ भी रहे मू उन सबक पर है
मित्र है सर्वथा निराशा है। निराशानन्द है फिर उनम बना जाना बना कंगना क्या
बसना बना रमना ? पर ता पर ही है पर ही रहने। आशा ही अशा है भग्न म
आना ही स्तर है अपनी भूल म पने हा स्वयं अपने ही ज्ञान म निबन्धन। यह मरा
है वह तेरा है यही भूल है म कुछ मेरा है म सरा है मी मी है मू मू है बग गही ज्ञान
है भू विज्ञान मन्वी परत। इस ही पा। विमन इन पा निग बहुत भव पार हा
जायगा। हा इमक निग धर्म की आवश्यकता है। साहज चाहि। स्वाधान बना।
विहृ वृत्ति धारण करो। आत्माबन्धनो बन बिना स्वाधीन गुण प्राप्ति नहीं हो सकना
है। आत्मार्थी ही माधार्थी बन सकना है और मा तर्पी हा आत्मार्थी। मनुष्य अपने
ही म अपने को खोजता है क्यों जी पचर म होना है पर हीरा हीर हा म है परवर
म तो मात्र महाचय स बह निया जाता है।

उसी प्रकार शरीर म आत्मा है यह भी उपचार कथन है। बाह्यक मे आत्मा
म आत्मा है। शरीर म शरीर है दोनों ही स्वभाव भिन्न हैं। एक परमाणु मात्र भी
अन्य का एक दूसरे का न मिला है न मिल सकता है। यह ध्रुव अटल निश्चय है।
भीव सदब अकला है स्वयं सिद्ध है ज्ञानघन है जिन प्रश्नों म हा अवस्थित है।
यह एक जीव का विषय गुण है लक्षण है। आत्मधून लक्षण है अतय ज्ञान पुत्र।
इमे कभी भी आत्मा स भिन्न किया नहीं जा सकता। आत्मा अविनाशी है अनादि स
पुद्गल भी जड़ स्वभाव है स्वयं रूप है। सयोगी है। दोनों ही भिन्न हैं तभी ता मिल
गये मिल नहीं गये किन्तु मिल ही हैं। यह भी एक स्वभाव का विपरिणमन है जा
अनादि है। वस यही है मसार हेतु तीसरा रूप जब जनन का। ह आत्मन् अब समझ
इमे बिना समझे यह धून बनी रहसी और तम स्व-स्वरूप छष्ट हो भटकत रहोग।
क्यों दुःख के कारण जुगते हो। निज निधि को खोकर पर पदार्थों म भटक रहे हो।
यह तेरा निज रूप नहीं—स्वभाव नहीं। क्यों भूला है र अनादी। आप म आ जा।
अपनी गुण बुध सभान से अपने म लग जा। पर वा सयोग रहे ता तेरा स्व-स्वभाव
प्रकट हो अवस्था नहीं।

आगम म अर्णित है ज्ञानी क बन्ध नहीं होता। ठीक भी है, होना ता नहीं
चाहिए अवस्था ज्ञानी और अज्ञानी म फिर अंतर ही क्या हुआ ? किन्तु समयवार म
गाथा न १७१ १७८ म बुद्ध-बुद्धाचार्य महाराज करते हैं इस कारण ज्ञानी क
आस्रव है—बन्ध है। यह जिनासम मे विरोधाभास कसा और क्यों ? यह विरोधा
भास (कसा) नहीं है अपितु पपाय व्यवस्था है। रतत्रय के जघन रूप परिणमन
२

॥ आत्म ज्ञान अल्प ज्ञान रूप विपरिणमन करना है इसी के चारित्र
॥ पाणि क सद्भाव म ज्ञानी का बन्ध क आस्रवक कहा जाता है। य
॥ के अभाव के कारण संसारवद्धक नहीं है इसी लिए ज्ञानी
है। परिणाम शुद्धि क उत्तरात्तर वद्धिगत होने स गुण-स्थान परि

पाणी में डगर डगर बर्मास्रन और, यद्य हीन-हीन हाता जात है ।
 रागांश हाता है स्वल्प आस्रव हाता है और जिनने अशर्म ज्ञान
 रहती है उनमें अशर्म आस्रव-बंध का अभाव रहता है यह जमानुगत प
 पाव स्वामी ने लिखा है—इत्यादि शर्म कि माह गमयित ज्ञान स्व
 नहीं कर सकता । किम प्रसार माता मत्त व्यक्ति वस्तु स्वरूप निगम
 सम्बन्धन न होने पर भी स्वानुभूति की उत्पत्ति साथ साथ व्योमि नहीं
 व्याप्ति है । जब स्वानुभव होगा तो सम्बन्ध उपयोग रूप है किन्तु
 अथ घट पतानि की अनुभूति भी रहती है उसमें कोई विरोध नहीं
 जय-य छद्मस्थ सम्बन्धान व साथ है । मतिज्ञान श्रुतज्ञान
 समिक ज्ञान अपूर्ण है पूर्णता की अपेक्षा य सब पूरा है यानी अपने
 नहीं है । अर्थात् यथा क्वात चारित्र्य व नहीं हाता पर ज्ञान
 ज्ञान का यह कमजारी ही आस्रव की हृत् बनती है । क्या-क्या
 जाता है आस्रव का प्रभाव मात्रा, शक्ति भी कम-कम हाती
 ज्ञान अथवा वेगपूर्वक पुरुषावा-नुसार सब बर्मास्रन द्वार प्रत्यक्ष
 हा जाता है पूर्व साधन कम पुत्र एक साथ मिल जाते है
 बभय ज्ञानधन स्वभाव का प्राप्त हा जाता है । यही
 का ज्ञान स्वल्प है । ह साधो ! अनादि अशुद्ध विषय
 मुक्ति ज्ञान मुक्ति और धारित्र्य शक्ति का प्रयत्न करो
 की सफलता है । ठात अस्वास्त और दुःख विवशात होने
 कम जिनका होकर पुन मुक्ति हाता संभव है । पुरुषाव
 है । तब मुक्ति का होना परमावश्यक पुरुषाव है ।
 सिद्ध करने में समय होता है । मुक्ति का पूर्णता हा
 जाता है । तब शर्म रहित दशा ही अपनी आत्मा का
 विद्यान करा । बाह्य विद्यान क्रिया-काण्ड में आरम्भ शक्ति
 बाह्य इन्द्रियसम्बन्ध की आवश्यकता नहीं हाती । जिनकी
 जिनकी मुक्त निविचार सत्ता की पूर्ण स्वतन्त्र अवसर है मात्र
 और हृत् सकल । आत्मा स्वयं यज्ञ करता है । ज्ञान अनादि
 अन्दि है, तब का हवन कुछ रत-तय रूप मीन कुछ है
 है, कुछ कम निरन्तर समिधा है । बग एकाधिकत स अपने
 का प्रारम्भ करा सत्ता से पर होने में दर न मगनी । कति
 विद्वान्निराध ध्यान परन स उक्त आवणी फिर समता रग
 जावेगा बग मान रह जावेगा मुक्त और व विद्रुप
 करना है । तभी मुक्त सत्ता का प्राप्त ज्ञान पुन कम
 अन्तर्भाव का प्राप्त होकर अनन्त काव लक्ष्य का काव न
 पार हाता है त इस बंध का तैयारी में न नष्ट हो जाय ।

होते-होते पूर्ण शुद्धता हो जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छोड़ो अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना होगा रतत्रय भावना को परिष्कृत बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ो और बड़ते ही जाना जहाँ परम पारु हो जायेगा वस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायगा । इसी लिए तो भ्रुमोपयोग दशा बुद्धि पक्क घारण करना परमावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूर्ण परिष्काक बिना शुद्ध की गीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना शब्द आत्मज्ञान-परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार शिव लाभ हो सकता है ? अब प्रकार नहीं हो सकता ।

अतःतीतिव्रत जा बहु ओर बाड़ लगावे यह व्रत है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे अत बहने हैं । इसीलिए समाप्तवानि आचार्य परमेश्वरी ने कहा है तत्त्वार्थ सूत्र में निम्नोक्तो व्रती अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन शब्दों से जो रक्षित है वही ब्रह्म हो सकता है । यू कि ये तीनों आत्म धातक है आत्मा का विभाव रूप परिणामन कराने वाली हैं । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा की बुद्धि बिना इनके त्याग न नहीं हो सकती । व्रती बने बिना संसार दुखो-छा नही हो सकता । अभी यह पञ्चम काल हुआ है सपिनी चल रहा है इसक १८३ हजार वर्ष बाकी हैं पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अति सुखभा काय जा रहा है पुन २१ हजार का छठवाँ और २१ हजार का सप्तम ५५ वर्ष काय आयेगा । मध्यस्थ छठवें कालो म ४२ हजार वर्षों तक धर्म राजा और अग्नि का लोप रहगा । रामस्त जीव धम कम विहीन-पापी मासाहरी दुःखरित्री होगे । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुण्य दत्त समय निर्णय निरनिवार अणु व्रत भी पालन करेगा वह सागरों की स्थिति गुन स्वर्ग प्राप्त कर इन दुखों से बचि हो सकते हैं बच सकते हैं अथवा नहीं । ह भगवान्मनु निमन वन धारण कर निर्णय पालन कर पू साधु है साधना म रत हा स्व-स्वरूप का विचार कर वस्तुस्थ में मुहड़ हो । अपने को तपाये बिना तम्हारे अन्दर छुपा आत्म बुन्दन प्रकट नहीं हो सकता है । संवेगोत्पन्न करो । बिना संसार भय क भव सागर निरा नही जा सकता । आत्मा का वराग्य और सबेय दोनों ही हाना चाहिए । इनक बिना शरीर मोह कम नहीं हो सकता । शरीर वराग्य सर्वोपरि है । भोगों से वराग्य हो भी जाय किन्तु शरीर वराग्य और भी कठिन है । या ता तीनों ही प्रकार के वराग्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूसरे की ओरता कमी बेसी है । जा हा बिना वराग्य और सबेय के न तो अनुग्रह धारण हो सकत है और न महाव्रत ही । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अति दुर्लभ है पालन भी किये और सातिचार हुए ता वह निरा राघ का बोझ बाने के समान है । उसस आश्रव रुक नहीं सकता । साधव निजरा भी हुद ता वह कोई कार्यकारी नही है । ह साधा । अध्ययन क साध मनन कर । गढ़ना उसम है किन्तु गुनता सर्वोत्तम है । बिना सुविचार के पठन का फल

[illegible]

होने-होते पूज शुद्धता हा जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छोड़ो अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना होगा, रत्नत्रय भावना को परिपक्व बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ो और बढ़ते ही जाना जहाँ चरम पाव हो जायेगा बस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायगा । इसी लिए तो मुमोपयोग दशा बुद्धि पदक धारण करना परमावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूज परिपाक बिना शुद्ध की गीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना शय आत्मगणा-परमात्मगणा प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार जिव लाभ हो सकता है ? अब प्रकार नहीं हो सकता ।

प्रततीतिव्रत जो बहुत और बाढ़ लगावे वह वन है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे व्रत कहते हैं । इसीलिए उपास्वाति आचार्य परमेश्वरी ने कहा है तत्त्वार्थ सूत्र में नि ज्ञानो व्रती' अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन तत्त्वों से जो रहित है वही व्रती हो सकता है । चूंकि ये तीनों आत्म पातक हैं आत्मा का विभाव रूप परिणमन कराने वाली हैं । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा की बुद्धि बिना इनके त्याग क नहीं हो सकती । व्रती बने बिना ससार दुःखोच्छेद नहीं हो सकता । अभी यह पञ्चम काल हुआ है सपिनी च न रहा है इसका १८½ हजार वर्ष बाकी हैं पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अर्थात् दुःख काल आ रहा है पुन २१ हजार का छठा और २१ हजार का तन्मन्तर १२वाँ काल आयेगा । मध्यस्थ छठवें काली म ४२ हजार वर्षों तक धम राजा और अग्नि का लोभ रहगा । समस्त जीव धम कम विहीन-पापी मानाहरी दुःखचरित्री होंगे । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुरुष इस समय निर्णय निरतिचार अण वन भी पालन करगा वह सागरों की स्थिति युत स्वयं प्राप्त कर इन दुःखों से वचित हो सकते हैं अब सकते हैं अथवा नहीं । हं भव्यामनू निमल जन धारण कर निर्दोष पालन कर नू साधु है साधना म रत हा स्व-स्वरूप का विचार कर कसम्भ में सुदृढ़ हो । अपने को तपाये बिना मुन्हारे अन्दर छपा आरम बुद्धन प्रकट नहीं हो सकता है । संवेगोत्पन्न करो । बिना संगार भय क भव सागर निरा नहीं जा सकता । आत्मा का वराग्य और सवेग दोनों ही होना चाहिए । इनक बिना शरीर मोह कम नहीं हो सकता । शरीर वराग्य सर्वोपरि है । योगी स वराग्य हो भी जाय किन्तु शरीर वराग्य और भी कठिन है । यो तो सीना ही प्रकार क वराग्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूसरे की अपेक्षा कमी बेसी है । जो हो बिना वराग्य और सवेग के न तो अनुदित धारण हो सकता है और न महाव्रत हो । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अर्थात् दुर्भन्ध है पालन भी किये और सातिचार

अब जो अब जिव मय का ओषा लेते के समान है । जसस आकाश दश

श्री जिनैव के रूप सावण्य का वसन आचार्यों कृत व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को नहीं। वही व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार सामान्य जनो को भ्रांति पदाकर देती हैं। किंतु यदि सम्यक विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शांकाओं का निरसन है। एकांतपत्नी व्यवहार मिथ्या व अभूनाय हेय है। किंतु निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही जातीय का उत्सृजन न कर विचारने पर पाप समान है। कोई भेद नहीं है किंतु विशेषापेक्षा विचार करने साधक है और निरनिशय सत्ता का कारण है।

गुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है इससे नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। स्वस्व स्पष्ट हो जाना है। एक ही पक्ष को लेकर ही गवता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अतः का प्रकाश मानवासार सत्य वृत्ति है। मनोभिलाषा होना तो भिन्न करता यह स्व-पुरुषार्थ है। आत्म साधना है पौद्गलिक है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या बता है? सयोगी है। दो पृथक् पक्षों में ही स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कम दोनों साक्षात्कृत सम्बन्ध नहीं है। अस्तु भीर नीरवत् हारी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए कर्म भिन्न है। दाना का सत्त्व स्वभाव गुण ह माघो विचार कर लेनी सत्यता भिन्न है। यदि एक हो जाय तो अव्यक्ता ही न या ७ ८ इत्येव हा जयेंगे। पर ऐसा मुक्ति है। यही विशेष महत्त्व की चीज है। इसे जना होता ही चक्षुः। ही तत्त्व निर्णयानुसार नहीं तो तत्त्व निजय कुछ कर नहीं सम्बन्धन और ज्ञान अवश्यम्भासी की है। भवतीय है-हो भी और नहीं भी हो। ने पुण्याद मित्रपुण्य मे विना है कि विन का भाव हा उनी समय तत्त्व धारण कर सना

मिट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत धारण दिये बिना जीव नहीं पनप सकता । धात्र की रक्षा बाढ़ से है । बाढ़ नहीं तो मशू प्रवेश नहीं एक सकता उसी प्रकार प्रती से बिना जीवन मयम आरिज ज्ञान दहन रूप रत्नी की रक्षा दुर्घम है । हे भाई वत धारण करा और पालन भी करो । धारणा और पालना ही जीवन की साधना है । जीवन की महानता और साधकता है । यही मानव धर्म है ।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या ? आत्मा एक स्वरूप है । एक दृश्य है । क्या ५ दृश्य ? कसा त व ? पर दृश्यो म एक निराला और नवतत्वों में एक अन्तिम अनुपम इसका अस्तित्व हो अपन दग का अनुठा है । सब जग है पर यह अकेला चतन्य स्वमान सु सभी च्युन नही होता । अत्रर-अमर अविनश्वर और विरन्तन है । इसका अपना स्वरूप स्वय अपने म है । अय दृश्य भी अपने-अपने म स्वतन्त्र है । सब भिन्न भिन्न है । सत्य स्वय स्वतन्त्र है । छद्म दृश्यो में आत्मा जीव और भुम्भन ये दो तत्व या रूप अपने-अपने स्वरूप से च्युत हो सगोपी दशा को प्राप्त हैं जब कि अय चारों दृश्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव म ही रहने हैं । सभी विकारी नहीं होते । जीव और पुद्गल भिन्नकर विकृत होते हैं । विकार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विभ्रजित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं । वभाविक परिणति ही ससार परिघ्रमण का कारण है । यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और बन्ध है । जिस काल आत्मा और जग कम नाकम का विभाजन होगा उस समय मटठा और मबखन घृत की भाँति दोनों सबका अलग अलग हो जायेंगे । उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे । एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुन अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है । यही यथाय है ।

आत्मा का धात्र कहां है ? आत्मा स्वय आत्मा म ही स्थित है । उसी के अस्तव्यास प्रदेश उस का धात्र है । अपनी इयत्ता का वह सभी उल्लेखन नहीं करता । और करेगा भी नहीं । आत्मा सग्रास्य अपने म ही स्वय अवस्थित है । यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावपेक्षा । व्यवहार नयापेक्षा आत्मा का धात्र कोई भी निश्चित नहीं है । कर्मावृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा से उसे यत्न-तन्त्र निवास करना पड़ता है । नाम कम की बतवत्ता से वह जसा स्थूल सूक्ष्म शरीर पाता है उतने ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप हाकर ठहरता है । गतिनाम कम चारों गतियों में विहार करता है जिस परि म त्रिग आक र स शरीर मिला उसी हिमाव से आत्मा सषु सीध हयका घारी मोन-मनना आदि अनेक रूपों म विभरन हो जाता है । इस स्थिति म इसका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता । यह है आत्मा के धात्र की कथा सबका सार यही है कि अशुद्धावस्था का धात्र माना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धावस्था का एक निश्चित धात्र है । अन्तिम शरीर से कि चित्त-बद्ध पुरपाकार तित्त मोर के आवागम प्रदेशों में स्थित या सब अस्तव्यास प्रदेशों म स्थित । यह है सत्य समयसार का निर्भय अपना विर धात्र निवास स्थान शुद्ध निरन्तर निश्चिकार ।

श्री जिनदेव के रूप लावण्य का वणन आचार्यों कृत उपलब्ध होना है। इधर व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह देय कहते हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उत्तिष्ठति है। इस प्रकार की कचन प्रणालिग सामान्य जनो को भ्रान्ति पदाकर देती है। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता है। एवातपणी व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु साधे। सत्य व्यवहार निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य स कर्म जातीय का उत्सवधन न कर विचारों पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यता के कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सातिशय पुण्य भुक्ति का साधक है और निरतिशय ससार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है। इससे आत्मशुद्धि में वह साधक है बाधक नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय मिड नहीं हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। ज्ञानाबोध निरवस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अत का प्रकाश है। हृदय की प्रफुल्लता प्रगूत है। मनकासार सत्य अस्ति है। मनोभिन्नाया होना तो एक नैसर्गिक है परन्तु उमका सत्य पित नरना यह स्व पुरुषार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्व का प्रार्थन है। मन पौद्गालिक है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही। क्या है? सयोगी है। दो पृथक् पन्थों में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई सारकारित सम्बन्ध नहीं है। आप्तु शीर नीरवत् सयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य विद्ये हुए हैं। आत्मा स्वयं स्वयं पुण्य है कम भिन्न है। दोनों का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सबका ज्ञान है। हे साधो विचार कर देखो सबका भिन्न पन्थों में शंकीकरण किस प्रकार हो सकता है। यदि एक हो जाय तो व्यसत्ता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थाप पर २४ या ७ ८ द्रव्य हो जायेंगे। पर ऐसा भुक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता है। यही विशेष सत्य की बीज है। इसे समझना ही तत्व का परिज्ञान है। तत्व दिने चना होना ही चाहिए। हाँ तत्व निर्णयानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। क्रिया नहीं तो तत्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ क्रिया चारित्र्य सम्बन्ध है वहाँ सम्यक्ज्ञान और ज्ञान अवश्यम्भारी की है। किन्तु सम्यक्त्व के रहने ज्ञान चारित्र्य भजनीय है-हो भी और नहीं भी हो। चारित्र्य परमावश्यक है। श्री अमरनाथार्थ ने पुरुषार्थ मिडपुण्य व विद्या है कि विद्य सपर जहाँ भी भवत धारण करने का भाव हो उसी समय तत्त्व धारण कर लेना चाहिए। वग सीमा है। परिधि है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी घाट धारण बिने बिना जीव नहीं पनप सकता। धात्र की रक्षा बाढ़ से है। बाढ़ नहीं तो पश प्रवेश नहीं स्व सकता उसी प्रकार वनो से बिना शील मयम आरिष ज्ञान ध्वन ह्य रत्नों की रक्षा दुलभ है। हे भाई घाट धारण करो और पासन भी करो। धारणा और वाचना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक तत्व है। एक हृद्य है। क्या हृद्य? क्या तत्व? पद हृद्यो म एक निराला और नवतत्वों म एक अद्वितीय अनुपम इसका अस्तित्व ही अपने दग का अनुठा है। तब जड़ है पर यह अवना घतन्य स्वभाव से कभी च्युन नहीं हाता। अजर-अमर अविनश्वर और चिरन्तन है। इसका अपना स्वरूप स्वयं अपने म है। अय हृद्य भी अपने-अपने म स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सत्य स्वयं स्वतन्त्र है। छ, हृद्यो म आत्मा जीव और पुनश्च यद्यत् तत्व या हृद्य अपने-अपन स्वरूप से च्युन हो शरीरी दशा को प्राप्त हैं जब कि अय चारों हृद्य निरंतर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विकारी नहीं हाते। जीव और पुनश्च भिन्न-भेद विवक्त हाते हैं। विचार युक्त हाते से स्व-स्वरूप से विवर्जित हो जाते हैं विभाव रूप परिणमन करते हैं। विभाविक परिणमि ही सत्ता परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तब सत्ता है दुःख और क्लेश हैं। जिस काल आत्मा और जड़ वम नाकम का विभाजन होगा उस समय मटठा और मवधन घृत की भांति दोनों मवधा अलग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुन अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है। यही यथाथ है।

आत्मा का धात्र कहाँ है? आत्मा स्वयं आत्मा म ही स्थित है। उसी के असम्पान प्रेश उस का धात्र है। अपनी इच्छा का वह कभी उत्पन्न नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सदाकाल अपने म ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा। व्यवहार नयपेक्षा आत्मा का धात्र कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मवृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्ररणा से उने यन्त्र-निवास करना पड़ता है। नाम वम की व्यवस्था से वह जमा स्थूल सूक्ष्म शरीर पाता है उने ही प्रमाण म सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है। गतिनाम वम चारों गतियों में विहार करता है जिस गति म जिग धात्र से शरीर मिला उसी हिसाब से आत्मा लघु दीप हलका भारी मोटा-पतला आदि अनेक रूपों म विवर्त हो जाता है। इस स्थिति में इसका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का धात्र माना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित धात्र है। अन्तिम शरीर से कि वित्-न्यन पुण्याकार सिद्ध लोक के आकाश प्रदेशों म स्थित या स्व असम्पान प्रदेशों म स्थित। यह है निम्न समयसार का निर्मल अपना बिर धात्र निवास स्थान शुद्ध निरजन निर्विकार।

श्री जिनमेव के रूप सावण्य का वणन आचार्यों कृत उपन्यस्य होना है। इधर व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह देय कहते हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार की कथन प्रणालियाँ सामान्य जनो को भ्रांति पदाकर देती हैं। किन्तु यन्नि सम्यक प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता है। एकांतपक्षी व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु साधेन सत्य व्यवहार निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कर्म जातीय का उत्पद्यन न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यत्वेना कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सातिभय पुण्य मुक्ति का साधक है और निरनिशय ससार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही है 'पुनातीति आत्मानमिति पुण्यो' जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है। इससे आत्मबुद्धि में बड़ा साधक है बाधक नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करे तो वयार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय मिथ्य नहीं हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही वयार्थ हो सकता है। ज्ञानाद्योप निव वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अत का प्रकाश है। हृदय की प्रकृत्यता प्रमूत है। मनकासार सया वृत्ति है। मनोभिलाषा होना तो एक नैसर्गिक है परन्तु उमका संय मित करना यह स्व पुण्यार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रमिति है। मन पीदुगानिव है कमजब है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही। कसा है? सयोगी है। दो पृथक् पण्यों में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया गण्य कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई संस्कारित सम्बन्ध नहीं है। आपत्तु तीर नीरवत् संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए है। आत्मा स्वयं स्वतन्त्र पृथक् है कम भिन्न है। दोना का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सवय भूत है। हे साधो विचार कर देखो सवया भिन्न पण्यों में शहीकरण किस प्रकार हो सकता है। यन्नि एक हो जाय तो व्यसत्ता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर १४ या ७८ इत्य हो जायेंगे। पर ऐना मुक्ति प्रमाण में न हुआ और न हा ही सकता है। यही विशेष महान की चीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवेचना होना ही चाहिए। हाँ तत्त्व निषयानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। जिना नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ क्रिया-व्यतिरिक्त सम्पत्ति है वहाँ सम्पत्ति न और ज्ञान अवश्यम्भारी की है। किन्तु सम्पत्ति के रहने ज्ञान व्यतिरिक्त भवतीय है-हो भी और नहीं भी हा। व्यतिरिक्त परमावश्यक है। श्री अमर-शास्त्र में पुण्यान मित्रपुराण में लिखा है कि विषय सवय जहाँ भी सवय कारण करने का भाव हा उसी समय तत्त्व कारण कर सना च हुआ। वय सीमा है। व्यतिरिक्त है। //

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता। धन की रक्षा बाढ़ से है। बाढ़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार जलों से बिना गील मयम प्रारित ज्ञान दहन रूप रत्नों की रक्षा दुर्लभ है। हे भाई वत धारण करो और पालन भी करो। धारणा और पालना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक तत्त्व है। एक द्रव्य है। कसा ४ द्रव्य? कसा तत्त्व? पट द्रव्यो म एक निराला और नवतत्त्वों में एक अद्वितीय अनुपम इगका अस्तित्व ही अपने ढंग का अनुठा है। सब जग है पर यह अकेला चतुर्थ स्वभाव से कभी च्युत नहीं होता। अजर-अमर अविनश्य और चिरन्तन है। इसका अपना स्वरूप स्वयं अपने में है। अन्य द्रव्य भी अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सत्त्व स्वयं स्वतन्त्र है। छठ द्रव्यो म आत्मा जीव और पुद्गल ये दो तत्त्व या द्रव्य अपने अपने स्वरूप में च्युत हो सयोगी दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों द्रव्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विकारी नहीं होते। जीव और पुद्गल मिलकर विकृत होते हैं। विकार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विचित्रित हो जाते हैं विभाव रूप परिणाम करते हैं। विभाविक परिणाम ही ससार परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और बन्धन है। जिस काल आत्मा और जड़ कम नोकम का विभाजन होना उस समय मटठा और भस्वन घृत की भाँति दोनों सबका अलग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है। यही यथार्थ है।

आत्मा का धर्म कहीं है? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है। उसी के असम्प्राप्त प्रदेश उस का धर्म है। अपनी इच्छा का वह कभी उत्सर्जन नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सगकाल अपने में ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा। व्यवहार नवापेक्षा आत्मा का धर्म कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मावृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा में उसे यत्न-तन्त्र निवास करना पड़ता है। नाम रम की बलवत्ता से वह जसा स्थल सूक्ष्म शरीर पाता है उसने ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है। गतिनाम रम चारों गतियों में विहार कराना है जिस गति में जिस आकार में शरीर मिला उसी हिमाव से आत्मा लक्ष दीप्त हुनका भारी मान-नयना आत्मा अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में इसका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का धर्म नामा और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित धर्म है। अन्तिम शरीर से कि चित्त-न्यून पुराणकार सिद्ध लोक के आकाश प्रदेशों में स्थित या स्व असम्प्राप्त प्रदेशों में स्थित। यह है निमित्त समपथार का निर्मल अपना बिरे धर्म निवास स्थान शुद्ध निरञ्जन निविहार।

श्री विनये के रूप साधन का वर्णन आचार्यों कृत ज्ञानग्रन्थ होता है। इधर
 व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताप्य कह देय कहते
 हैं। कहीं व्यवहार निश्चय का साधक उत्पत्तिमि है। इस प्रकार की कथन प्रणालि
 सामान्य जनों को भ्रान्ति पैदाकर देती है। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से
 विशेषात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता
 है। एकाग्र ही व्यवहार मिथ्या व अभूताप्य हेय है। किन्तु साधक सत्य व्यवहार
 निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य स कम
 जातीय का उत्पत्ति न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यपेक्षा
 कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषात्मा विचार करने पर सातिशय पुण्य मुक्ति का
 साधक है और निरतिशय सगार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण भी है
 'पुनानीति आत्मानमिति पुण्या' जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह
 परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है। इससे आत्मशुद्धि में वह साधक है बाधक
 नहीं। क्याकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ
 स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय सिद्ध नहीं
 हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत अस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। जानाबोध निज
 वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अस्त का प्रकाश है। हृन्म की प्रफुल्लता प्रमूढ है।
 भावासाय सदा वृत्ति है। मनोभिलाषा होना तो एक नैसर्गिक है परन्तु उसका सय
 भित्त करना यह स्व-पुष्टयार्थ है। आराम साधना है। आराम तत्त्व का प्रदर्शन है। मन
 पौष्ट्यातिशय है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही।
 क्या है? संयोगी है। दो पृथक पदार्थों में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया
 रण्य कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई
 सार्वभारित सम्बन्ध नहीं है। आपत्तु गीर नीरवत् संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर
 हारी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए हैं। आत्मा स्वयं स्वतन्त्र पुण्य है
 कर्म भिन्न है। दोनों का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सदाया ज्ञा है।
 हे साधो विचार कर लें तो सदाया भिन्न पदार्थों में शंकीकरण किस प्रकार हो सकता
 है। यदि एक ही जाय तो द्रव्यसत्ता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर ५४
 या ७८ द्रव्य हो जायेंगे। पर ऐसा मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता
 है। यही विशेष महत्त्व की चीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवे
 चना होना ही चाहिए। हाँ तत्त्व निष्पत्तानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। क्रिया
 नहीं तो तत्त्व निष्पत्त कुछ कर नहीं सकता। जहाँ क्रिया चारित्र्य सम्भव है वहाँ
 सम्पत्तिजन और ज्ञान अवश्यम्भासी की है। किन्तु सम्पत्ति के रहते ज्ञान चारित्र्य
 भजनीय है-हो भी और नहीं भी हो। चारित्र्य परमावश्यक है। श्री अमनन्तनाथाय
 ने पुण्यार्थ सिद्धप्राप्त में लिखा है कि निज समय जहाँ भी सदाय धारण करने
 का भाव हो उसी समय तत्त्व धारण कर लेना चाहिए। अत सीमा है। परिधि है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वस्तु धारण बिना बिना जीव नहीं पनप सकता। पौध की रक्षा बाड़ से है। बाड़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं एक सकता उसी प्रकार वर्ता से बिना जोन ययम धारित्र ज्ञान दक्षन रूप रत्नों की रक्षा दुर्लभ है। हे भाई वस्तु धारण करो और पासन भी करो। धारणा और पासना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक उल्ल है। एक दृश्य है। क्या दृश्य? कृपा त व? पट द्रव्यों में एक निराला और नवतत्त्वों में एक अन्तिम अनुपम इसका अस्तित्व ही अपना उग का मनुष्य है। सब जड़ हैं पर यह अकेला चतुर्थ स्वभाव से सभी च्युत नहीं होता। अजर-अमर अविनश्वर और चिरन्तन है। इसका अपना स्वरूप स्वयं आपन में है। अन्य दृश्य भी अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सतत स्वयं स्वतन्त्र हैं। छह द्रव्यों में आत्मा जीव और पुद्गल यदा तत्त्व या दृश्य अपने-अपने स्वरूप में च्युत हो सरोधी दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों दृश्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विकारी नहीं होते। जीव और पुद्गल धिनबर विकृत होते हैं। विकार मुक्त होने से स्व-स्वरूप से विभक्ति हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं। विभाविक परिणति ही समार परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तक समार है दुःख और क्लेश है। जिस काल आत्मा और जड़ कम भोक्तृ का विभाजन होगा उस समय मृट्टा और धक्कन घृत की भांति दोनों मलया अनग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह ध्रुव सत्य है। यही यथाथ है।

आत्मा का धाम कहाँ है? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है। उसी के अस्तम्यात प्रभेद उस का धाम है। अपनी द्रष्टा का वह सभी उल्लेखन नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सगकाल अपने में ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभाववेणा। व्यवहार नयावेणा आत्मा का धाम कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मावृत्त आत्मा परन्तु है पर प्रणाली में उगे यन्त्र-तन्त्र निवास करना पड़ता है। नाम कम की अलक्षणा से वह जसा स्थूल सूक्ष्म शरीर पाना है उनसे ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है। गतिनाम कम चारों गतियों में विहार करता है त्रिषु गति में त्रिषु आकार से शरीर मिला उसी विभाव में आत्मा सध दीध हुनका भारी भोग-योग आदि अनेक कथों में विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में इनका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा के धाम की कथा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का धाम नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित क्षेत्र है। अन्तिम शरीर से कि कित्-न्यून पुण्याकार सिद्ध भोक्तृ के आवागम प्रभेदों में स्थित या स्व अमर्याद प्रभेदों में स्थित। यह है निमित्त समयधार का निर्मल अपना विराम विश्रुति स्थान सद्ध निरन्तर निर्विकार।

श्री जिनदेव के रूप लावण्य का वणन आचार्यों द्वारा उपलब्ध होता है। इस व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताप हेय कहते हैं। कहीं व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार की कथन प्रचारियाँ सामान्य जनो को भ्रान्ति पदाकर देती हैं। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता है। एकात्मपक्षी व्यवहार मिथ्या व अभूताप हेय है। किन्तु सापेक्ष सत्य व्यवहार निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कर्म जातीय का उत्सर्जन न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यापेक्षा कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सातितमय पुण्य मुक्ति का साधक है और निरतिमय ससार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का संग्रह ही है पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां" जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है इससे आत्ममुक्ति में यह साधक है बाधक नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। अब ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो बाध मिट नहीं जा सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। ज्ञानाबोध निश्च वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अन्त का प्रकाश है। हृदय की प्रफुल्लता प्रगूढ है। मनकासार सत्य वसति है। मनोभिलाषा होता तो एक नैमित्तिक है परन्तु उसका संग भिन करना यह स्व-पुरुषार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रगर्भ है। मन पौद्गलिक है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो नहीं। क्या है? सयोगी है। दो पृथक् पक्षों में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई संस्कारित सम्बन्ध नहीं है। आपनु गीर नीरवन् संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए है। आत्मा स्वयं स्वयं व पृथक् है कम भिन्न है। ज्ञान का संग्रह स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सत्य व भ्रम है। हे साधो विचार कर देखो सत्यता भिन्न पक्षों में साक्षीकरण किम प्रकार हो सकता है। यदि एक हो जाय तो व्यक्तता ही न रहेगी। फिर तो १ के स्थान पर २ ४ या ७ ८ द्रव्य हो जायेंगे। पर ऐसा युक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता है। यही विशेष महार की बीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवेचना होता ही चाहिए। ही तत्त्व निश्चयानुसार किया होना परमावश्यक है। किया नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ किया चारित्र्य सम्बन्ध है वहाँ सम्बन्धन और ज्ञान अवगम्यकारी की है। किन्तु सम्बन्धन के रहने ज्ञान चारित्र्य भवतीय है-तो भी और नहीं भी हो। चारित्र्य परमावश्यक है। श्री अमरनाथजी ने पुण्यानुबन्धन में लिखा है कि विन सत्य जहाँ भी सत्य धारण करो वहाँ भाव हो उसी समय तत्त्व धारण कर ज्ञान आदि। वन सीमा है। परिच्छेद है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत कारण बिदे बिना जीव नहीं पनप सकता । धन की रक्षा बाढ़ से है । बाढ़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं एक सक्ता उसी प्रकार जनों से बिना जीवन मयम आरिज ज्ञान दहन हम रत्नों की रक्षा दुर्लभ है । हे भाई धन धारण करो और वासन भी करो । धारणा और वासना ही जीवन की सधना है । जीवन की महानता और साधकता है । यही मानव धर्म है ।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या ? आत्मा एक मूल है । एक इन्द्र है । क्या ५ इन्द्र ? क्या सव ? पट इन्द्रों में एक निरामा और मयनत्वों में एक अग्नीय अनुमय इन्द्रका अस्तित्व ही अपन इन्द्र का अनुटा है । सब जग है पर यह अस्मिता अन्तम स्वभाव से कभी च्युत नहीं होता । अन्तर-अन्तर अविनश्य और विरमन है । इन्द्रका अज्ञात स्वरूप स्वयं अपन में है । अन्य इन्द्र भी अपने-अपने में स्वयन्मय हैं । सब भिन्न भिन्न हैं । सत्य स्वयं स्वतन्त्र है । छ ५ इन्द्रों में आत्मा जीव और पुनस्त ये दो मूल वा इन्द्र अपन-अपन स्वरूप में च्युत हो जगोगी दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों इन्द्र निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं । कभी विकृती नहीं होते । जीव और पुनस्त भिन्न-भिन्न विवर्त होते हैं । विचार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विवर्तित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं । वभाविक परिणाम ही समार परिघमण का कारण है । यह विभाव जब तक है तभी तक समार है दुःख और क्लेश है । त्रिस्त काल आत्मा और जब कम नोकम का विभाजन होगा उस समय मटटा और मयचन पत की भाँति दोनों मयका अलग अलग हो जायेंगे । उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे । एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुन अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है । यही यथाय है ।

आत्मा का क्षेत्र कहाँ है ? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है । उसी के असंख्यत प्रवेश उस का क्षेत्र है । अपनी इच्छा का बट कभी उत्सर्जन नहीं करता । और करेगा भी नहीं । आत्मा सत्काल अपने में ही स्वयं अवस्थित है । यह है निरुधय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावपेक्षा । व्यवहार न्यायपेक्षा आत्मा का क्षेत्र कोई भी निरुधय नहीं है । वभावून आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा से उस यन्त्र-तन्त्र निवास करना पड़ता है । नाम कम की बनवत्ता से बट जसा स्थान सूक्ष्म शरीर पाता है उनमें ही प्रमाण में सकीच या विस्तार रूप होकर टाँपता है । गतिनाम कम चारों गतियों में विहार करता है त्रिस्त गति में त्रिस्त आकार से शरीर मिला उसी हिसाब से आत्मा लघु दीप हलका भारी मोटा-पतला आदि अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है । इस स्थिति में हमका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता । यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का क्षेत्र नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का निश्चित क्षेत्र है । अन्तिम शरीर से कि चित्

सद मोक

गमन

में स्थित या स्व

म अपना विर क्षेत्र निवास

कार
है
सार

श्री जिनमेव के रूप लावण्य का वजन आचार्यों द्वारा उपलब्ध होता है। इस
 व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह दिये कहते
 हैं। कहीं व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार की वचन प्रणालियाँ
 सामान्य जनो को भ्रांति पगकर देती हैं। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से
 विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता
 है। एकांतपक्षी व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु सापेक्ष सत्य व्यवहार
 निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कर्म
 जातीय का उत्सृजन न कर विचारन पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यसापेक्षा
 कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर साक्षात् पुण्य मुक्ति का
 साधक है और निरनिशय ससार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का सफल ही है
 पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह
 परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है इससे आत्मशुद्धि में बड़ा साधक है बाधक
 नहीं। मयोवि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ
 स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय मिथ्य नहीं
 हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। ज्ञाताबोध निर
 वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अन्त का प्रकाश है। हृदय की प्रफुल्लता प्रगूढ है।
 मनकासार सत्य वृत्ति है। मनोमिलाया होना तो एक नैसर्गिक है परन्तु उमका तंत्र
 भिन्न करना यह स्व पुरुषार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्व का प्रदर्शन है। मा
 पीदुगात्रिण है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही।
 कसा है? सयोगी है। दो पुरुष पण्यों में ही सयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया
 रण्य देती है कि आत्मा और कर्म दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई
 संस्कारित सम्बन्ध नहीं है। आपतु भीर नीरक्त संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर
 हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए हैं। आत्मा स्वयं स्वयं पुरुष है
 कर्म भिन्न है। दोनों का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है तथैव वृत्ति है।
 हे साधो विचार कर देखो सत्यता भिन्न पण्यों में शक्तीकरण किस प्रकार हो सकता
 है। यदि एक हो जाय तो द्रव्यसत्ता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर २।
 या ७ = द्रव्य हो जायेंगे। पर ऐमा मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता
 है। यही विशेष महत्त्व की चीज है। इसे समझना ही तत्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवे
 चना होना ही चाहिए। हाँ तत्व निगयानुसार किया होना परमावश्यक है। किया
 नहीं तो तत्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ किया जातिव सम्यक है वहाँ
 सम्यग्दर्शन और ज्ञान अवश्यममारी की है। किन्तु सम्यक्त्व के रहने ज्ञान की रीति
 भवतीय है-हो भी और नहीं भी हो। जातिव परमावश्यक है। श्री अमरनाथजी
 ने पुरुषाय निजपुत्राय मे किया है कि शिव सपर जहाँ भी तथैव धारण कर
 का भाव हो उसी समय तत्क्षण धारण कर लेना चाहिए। वगैरह

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी व्रत धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता। शेष की रक्षा बाढ़ से है। बाढ़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार व्रतों से बिना जीम मयम चारित्र्य ज्ञान दहन रूप रत्नों की रक्षा दुर्लभ है। हे भाई व्रत धारण करो और पावन भी करो। धारणा और पालना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक तत्त्व है। एक द्रव्य है। कसा ५ द्रव्य? क्या तब? पट द्रव्यों में एक विराला और नवतत्त्वों में एक अद्वितीय अनुपम दृग्का अस्तित्व ही अपने दृग् का अनुठा है। सब जगह है पर यह अकेला चतन्य स्वभाव से कभी च्युत नहीं होता। अजर-अमर अविनश्वर और चिरन्तन है। इसका अपना स्वरूप स्वयं अपने में है। अन्य द्रव्य भी अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सदान स्वयं स्वतन्त्र है। छह द्रव्यों में आत्मा जीव और पुद्गल ये दो तत्त्व या द्रव्य अपने-अपने स्वरूप से च्युत ही मयागी दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों द्रव्य निरंतर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विकारी नहीं होते। जीव और पुद्गल भिन्न-भेद विभक्त होते हैं। विकार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विचित्रित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं। वभाविक परिणाम ही ससार परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और क्लेश है। जिस काल आत्मा और जब कम नोकम का विभाजन होगा उस समय मट्टा और मक्खन घृत की भांति दोनों मक्खन अलग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है। यही यथाथ है।

आत्मा का धर्म कहीं है? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है। उसी के असंख्य प्रपञ्च उस का धर्म है। अपनी इच्छा का वह कभी उल्लंघन नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सदाकाल अपने में ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा। व्यवहार न्यायिता आत्मा का धर्म कोई भी निश्चित नहीं है। कर्माद्वित आत्मा परलम्ब है पर प्रेरणा से उम यत्न-तन्त्र निवास करना पड़ता है। नाम ब्रह्म की बलवत्ता से वह जसा स्थान मूढम शरीर पाता है उतने ही प्रमाण में मकोच या विचार रूप होकर टहरता है। यतिनाम ब्रह्म चारों यतियों में विहार करता है जिस यति में जिन आचार से शरीर मिला उसी हिमाव से आत्मा तब दीप्त हुनका भारी मोटा-पतला आदि अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में हमका कोई भी रूप या आचार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा के धर्म की बर्णन सबका गार यही है कि अशुद्धात्मा का धर्म नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित धर्म है। अन्तिम शरीर में कि ब्रह्म-व्यन पुरुषाकार तत्त्व मोक्ष के आवागम प्रपञ्चों में स्थित या स्व असंख्य प्रपञ्चों में स्थित। यह है - यत्न समन्वय का निर्माण अपना चिर धर्म निवास स्थान शुद्ध निरन्तर निविकार।

वह है जो सब का परमात्म मुक्ति का द्वार है और उसमें छ रागा है परम मुक्ति।
होगे ज्ञान का चिह्न लेकर उनके ज्ञानों की रागी रागी भावों को दशाप्रो जाने
म जाने जाने में गुणों में ही सब जाओ सब में ही दूज जाओ। यही है अर्थात्
ज्ञान अर्थात् मान ही अर्थात् ।

आत्मा आत्मा गुण समूह का घनकार है। परन्तु यदि स्वयं का स्वयं आत्मा
 पूर्णता का भाव न हो तो भाव उगका वह उगे क्या मिलेगा ? कुछ नहीं। भाव
 बना बना रहेगा। भाव इतना ही का काम है। मूर्तता है। फिर क्या करना ?
 प्रथम आत्मा पूर्णता का ध्यान कर उग जान करे और पुन उगका उपयोग प्रयोग कर।
 तदाभार वह की उत्पत्ति होती। आत्मा पाग बीज है भूमि है परन्तु मेरी है यह
 बिम्ब नहीं तो कुछ नहीं। प्रथम आत्मा विस्मय होना चाहिए कि मेरी जमीन और
 भूमि है। पुन क्या बीज ? जमीनी जमीन है किम श्चतु म बाने योग्य है किम प्रकार
 का भूमि व साम्य है किम काव म बाना चाहिए इत्यादि का परिज्ञान होना चाहिए
 पुन तदनुसार क्रिया करता होगा। जमीन शुद्धिकरण करता पुन वही पर बाना
 जहाँ बाधा चाहिए। पुन उस साधना आदि क्रिया करता चाहिए। सब करके भा
 उसका पहला देना होगा। यदि ऐसा बाढ़ नही लगायी तो पकी पकायी खनी उन्नत
 जायगी ही जायगी। उभी प्रकार आत्मा गुण विकास की भी प्रक्रिया है। प्रथम आत्मा
 परमात्मा हो जाता है यह श्रद्धा हो पुन उनका स्वरूप का परिज्ञान हो। वनमान
 वशा और भावी पारणमन का ज्ञान हो तदनन्तर साम्यक चरित्र क्रिया हो तब वह
 स्वरूप प्राप्त होगा।

निश्चय सम्पत्त्य की सिद्धि करना है ता व्यवहार सम्पन्नान का आश्रय तो ।
सारागता व बिना वाररागता नही आ सकता । बीनरागता के आन पर वही सारागता
निक नही सकती यह नियम है । बिना पुण्य व फल नहा आ सकता किन्तु फल क
आते ही पुण्य नही रह सका । प्रकृति का यह नियम है कारण के बिना कार्य नही
होता । और कार्य के हान पर कारण नही रह सकता । हे आत्मन् कार्य सिद्धि व हेतुओं
क पात ही कार्य सिद्धि करन का प्रयत्न करा कारणों की उत्पन्न म पड़ने की आव
श्यकता नही । कारण तो स्वयं हटते ही जायेंगे । अपन अन्तरङ्ग माह राग-द्वेष पर
विजय कर । समाहित चित्त हाते ही इष्टानिष्ट बुद्धि समाप्त हो जायेगी और तब
कोई भी ससार की वस्तु शुभाशुभ व रहेंगी फलन बीनराग भाव जाग्रत हागा ।
एकाग्र ध्यान हागा । आत्मनिष्ठता आयेगी । पर पन्थों का समचार विकल्पा का
उत्पादक है । अपन का सम्हालन स सब सम्हाल जायगा । स्वयं तू यथास्थान हो सारा
ससार व्यवस्थित हो जायगा । तू अव्यवस्थित है स्वयं इसीलिए तुझ विश्व अस्तव्यस्त
दृष्टिगत हो रहा है । फलत उगकी उत्पन्न म स्वयं की उत्पन्न भूल कर उत्पन्न
उत्पन्न रहा है । का पराई भूल का दो रहा है । रे जानिन् समस्त समस्त अपना
दम्य अपना स्वरूप । पहिचान अपना धाम । निवास कर वही त्वय अपने म ।

पाटी में ऊपर ऊपर कर्मात्मक और वध हीन-हीन हात जाते हैं । जितने अश में रागाश होता है स्वल्प आश्रय होता है और जितने अश में ज्ञान भाव ज्ञानानुभूति रहती है उतने अश में आश्रय-वध का अभाव रहता है यह क्रमानुगत परम्परा है पूज्य पाद स्वामी ने लिखा है—इष्टापदेश में कि मोह समन्वित ज्ञान स्वभाव को प्राप्त नहीं कर सकना । किन्तु प्रकार मनो मत्त व्यक्ति वस्तु स्वरूप निगम नहीं कर पाता । सम्पत्ति में होने पर भी स्वानुभूति की उससे साथ सम्पत्ति नहीं है किन्तु विषय व्याप्ति है । जब स्वानुभव होगा तो सम्पत्ति उपयोग रूप है किन्तु स्वानुभव के साथ अथ घट पटादि की अनुभूति भी रहती है उसमें कोई विरोध नहीं है । यही बात अध्यात्म उद्बन्धन सम्पत्ति ज्ञान व साथ है । मतिज्ञान अतज्ञान अवधि ज्ञान आदि साधन शक्ति ज्ञान अपूर्ण है पूर्णता की अपेक्षा यह सब गूँथ है यानी अपने शुद्ध स्वभावमय नहीं है । अर्थात् यथा स्वात चारित्र्य व नहीं होने पर ज्ञान अधूरा ही है और इस ज्ञान की यह कमजारी ही आश्रय की हस्त बननी है । ज्यो-ज्यो ज्ञान स्वस्थ होता जाता है आश्रय का प्रभाव मात्र शक्ति भी कम-कम होती जाती है । तब मन मन अपना वेगपूर्वक पुरुषार्थानुसार सब कर्मात्मक द्वार क्रमशः अपना एक साथ बंद हो जाते हैं पूर्व साधित कम पुण्य एक साथ सिर जाने है और आत्मा स्वयं अपने निज ब्रह्म ज्ञानपत्र स्वभाव का प्राप्त हो जाता है । यही स्व स्वरूपोपनिधि है । आत्मा का निज स्वरूप है । हे साधो ! अनादि अशुद्ध विषय परिरणित को भाङ्गना है तो मात्र शुद्धि ज्ञान शुद्धि और चारित्र्य शुद्धि का प्रयत्न करो । क्रमिक विक्रम ही पूरा विकास की सफलता है । ठास अभ्यास और दुःख विश्वासा होने पर एक नाथ अक्षय रूप से भी कम निर्भर होकर पूरा शुद्धि होना संभव है । पुरुषार्थ की प्रवृत्ति ही इसमें प्रमुख है । तब गुणिया का होना परमात्मरूप पुरुषार्थ है । गुणिया गुण साधु ही परमात्म की गिर करने में समर्थ होता है । गुणिया की पूर्णता होने-होना आत्म स्वरूप प्रकट होता जाता है । सबसम रहित दशा ही अपनी आत्मा का ज्ञान है । हे आत्मन् आत्म यज्ञ विधान करो । बाह्य विधान क्रिया-काण्ड से आत्म शक्ति नहीं हो सकती । इन यज्ञ में बाह्य द्रव्यावलम्बन की आवश्यकता नहीं होती । इसी साधन समय की जरूरत है न बिना मुहूर्त निधिवार सन्त की पूरा स्वतन्त्र अवसर है मात्र आश्रित मनोबल धृतिरूप और हृदय सफल । आत्मा स्वयं यज्ञ कर्ता है । ज्ञान जोति ही उपाया है शुभन-कथान बन्धि है तब का हवन कुछ रत्न-रूप तीन कुछ है चारों आराधनाएँ चार दोरक है, कुछ कम निज-नु साधना है । कम एकाग्रचित्त से अपने में स्वयं अपने आत्म यज्ञ का प्रारम्भ करा सत्कार से पर होना में दर न सपना । कानिमा जाक हा जायनी भ्रम किन्तानिराध ध्यान पवन से उड़ जायगी ठिठ सपना । रम करी की शक्ति में मृग जायेगा कम मात्र रह जायेगा कुछ चैन य विद्रूप जानारमा । यही मा ज्ञान धन रूपता है । एसा कुछ ज्ञान के प्राप्त न मा पुन कथ कानिमा मुक्त नहीं होती । अन्य भाव के प्राप्त होकर और कान कुछ उरी रूप में रहेगा । नकार दुःख ने पार होना है ता इस यज्ञ का तेरा में स नद हो बाधा । धीर धीर परिणाम मुक्ति

होते-होते पूर्ण शुद्धता हा जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छाडा अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना हागा रतत्रय भावना को परिपक्व बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ो और बढ़ते ही जानो जहाँ वरम पाक हो जायेगा बस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायेगा । इसी लिए तो सुभोपयोग दशा बुद्धि पक्क धारण करना परमावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूरा परिपाक बिना शुद्ध की सीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना शुद्ध आत्मज्ञान-परमात्मदशा प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार शिव लाभ हो सकता है ? अन्य प्रकार नहीं हो सकता ।

‘व्रततोतिव्रत जो चढ़े और बाढ़ लगावे वह बन है’ अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे व्रत कहते हैं । इसीलिए उमास्वामि आचार्य परमेश्वरी ने कहा है तत्त्वार्थ सूत्र में नि शक्त्यो व्रती’ अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन शक्त्या से जो रहित है वही व्रती हो सकता है । चूँकि ये तीनों आत्म पालक हैं आत्मा का विभक्त रूप परिणाम कराने वाली है । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा को बुद्धि बिना इनके त्याग व नहीं हो सकती । व्रती बन बिना ससार दुःखोच्छेद नहा हा सकता । अभी यह पञ्चम काल हुआ व सपिनी चल रहा है इसका १८६ हजार वर्ष बाकी हैं पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अति दुःखमा काल आ रहा है पुन २१ हजार का छठाँ और २१ हजार का तत्पश्चात् ५वाँ काल आयेगा । मध्यस्थ छठव काला म ४२ हजार वर्षों तक धर्म राजा और अग्नि का सोप रहगा । समस्त जीव धर्म कम विहीन-पापी भाँसाहरी दुःखचरित्री होंगे । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुच्छ इस सपथ निर्णय निरतिधार अण व्रत भी पालन करेगा वह सागरा की स्थिति धुन स्वर्ग प्राप्त कर इन दुःखों से बचिहा सकता है बच सकते हैं बचपा नहीं । ह भक्ष्यात्मन् निमत बन धारण कर निर्णय पालन कर नू साधु है साधना म रत हा स्व-स्वरूप का विचार कर बलव्य मं मुहड़ हो । अपने का तपाये बिना तुम्हारे अन्दर छुपा आत्म दुःख प्रकट नहीं हो सकता है । संवेगोत्पन्न करो । बिना सगार भय व भव सागर निरा नहो जा सकता । आत्मा का वराम्य और सबस दानो ही होना चाहिए । इनका बिना शरीर माह कम नहीं हो सकता । शरीर वराम्य सर्वोपरि है । ओमों व वैराग्य हो भी जाय किन्तु शरीर वैराग्य और भी कठिन है । या हा तीनों ही प्रकार के वैराग्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूगर की अपेक्षा कमी होती है । जो हा बिना वैराग्य और सबस के न तो अनुग्रह धारण हा सकते हैं और न महाव्रत हा । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अति दुःखम है पालन भी बिय और साविचार हा वह निरा धर्म का बोझ डाले व समान है । उसमें आश्रय रक नहीं सकता । अब निवरा या हूँ तो वह कोई, कायकारी नहीं है । ह साक्षा । अन्वयन के साथ मनन । पदना उसमें है किन्तु मनना सर्वोपरि है । बिना सुविचार के पठन का फल

होने-होते पूष शुद्धता हो जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छोड़ो अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना होगा । रतत्रय भावना को परिष्कृत बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ो और बढ़ते ही जाना जहाँ चरम पाव हो जायेगा वस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायेगा । इसी लिए तो भुभोपयोग दशा बुद्धि पूर्वक धारण करना परमावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूष परिष्कृत बिना शुद्ध की सीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना शुद्ध आत्म-ज्ञान-परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार शिव लाभ हो सकता है ? अन्य प्रकार नहीं हो सकता ।

व्रततीतिव्रत जो बहुतों और बाड़ लगावे वह व्रत है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे व्रत कहते हैं । इसीलिए उमास्वाति आचार्य परमेष्ठी ने कहा है तत्त्वार्थ सूत्र में नि शब्दो व्रती अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन शक्तियों से जो रहित है वही व्रती हो सकता है । चूंकि ये तीनों आत्म घातक हैं आत्मा का विभाव रूप परिणामन कराने वाली हैं । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा की शुद्धि बिना इनके त्याग व नहीं हो सकती । व्रती बने बिना ससार दुःखो-छा नहीं हा सकता । अभी यह पञ्चम काल हुआ व सपिणी चल रहा है इसका १८३ हजार वर्ष बाकी है पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अति दुःखमा काल आ रहा है पुन २१ हजार का छठवाँ और २१ हजार का सप्तमतर प्रथम काल आयेगा । मध्यस्थ छठवें काला में ४२ हजार वर्षों तक घम राजा और अग्नि का लोप रहगा । समस्त जीव घम कम विहीन-पापी भ्राताहरी दुःखचरित्री होंगे । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुरुष इन समय निर्णय निरतिचार अण व्रत भी पालन करेगा वह सागरों की स्थिति युन स्वयं प्राप्त कर इन दुःखों में वचित हो सकते हैं बच सकते हैं अथवा नहीं । ह भव्यात्मन निमग्न बने धारण कर निर्दोष पालन कर मू साधु है साधना में रत हा स्व-स्वरूप का विचार कर कलम्य में सुदृढ़ हो । अपने को तपावे बिना तुम्हारे अन्दर छरा आत्म बुन्दन प्रकट नहीं हो सकता है । सबगोत्पन्न करो । बिना ससार भय क भव सागर निरा नहीं जा सकता । आत्मा का बराग्य और सबग दानो ही होना चाहिए । इनक बिना शरीर मोह कम नहीं हो सकता । शरीर बराग्य सर्वोपरि है । भोगो से बराग्य हो भी जाय किन्तु शरीर बराग्य और भी कठिन है । या ता तीनों ही प्रकार के बराग्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूसरे की अपेक्षा कमी वैशी है । जा हो बिना बराग्य और सबग के न तो अनुग्रह धारण हा सकते हैं और न महाग्रह हा । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अति दुःख है पालन भी बिय और साधनचार हुए तो वह निरा गद्य ब्रमे के समान है । उससे आश्रय दक नहीं सकता । साधन निजरा भी हुई साधन निजरी नहीं है । हा साधो ! अभ्यसन क साधन व कर । यदना उत्तम है

मयावन नहीं मिल सकता। दूध अच्छा है दही उत्तम है उतका मयना ओर अष्ट है किंतु पूरा मयन किये बिना मत्तन पाना अनि दुःख है। इससे भी अधिक उम मक्खन का रक्षण दुःखमय और फिर भोगना दुःखमय है। बस यही बात है आत्म तत्त्वोपनिषद् के विषय में अनेक धरो उगका स्वरूप समझो उसको यथा योग्य क्रिया वित्त करो उगके दागों का समझा प्रतिनिधि उनका विचार विमर्श करो। प्रत्येक वन के वितने अनिवार हैं वहाँ वहाँ लग मड़ते हैं उनसे बचन का क्या उपाय है? किस प्रकार क्रिया करने से उनसे रक्षण हो सकता है। उनकी भावना कौन कौन है। प्रत्येक भावना का प्रतिनिधि बार बार विचार करो। हर क्षण उधर लक्ष्य रखने का प्रयास करो। बार बार चिंतन ही भावना है। अनादि के अविरत रूप परिणाम सरलता से नहीं छूट सकते हैं। ह आत्मन् स्वात्म भावना का विचार करो तो स्वात्म स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है अन्यथा नहीं। आत्म स्वरूप जान बिना अन्य ज्ञान कुछ भी नहीं निस्सार है। आत्म ज्ञान होने पर भी अन्य ज्ञान कुछ नहीं है। ह भाई व्यो त्यों कर आत्मज्ञान भक्तिज्ञान जाग्रत करो। लोभ का संवरण करो। लोभ कपाय वत चारित्र्य की घातक है। लोभाम् भिभूत जीव अन्यत्र स्थित नहीं हो सकता लोभाविष्ट प्राणी का विवेक नष्ट हो जाता है। मान मयाया का विवेक नहीं रहता। विषय-कषायों से रुचि नहीं हटता। भक्ष्यभक्ष्य विवेक नहीं रहता हिताहित विवेक नष्ट हो जाता है। याय और अयाय का भेद समाप्त प्राय हो जाता है। आज के संसार में लोभ का व्यापार बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। दहज प्रया लोभ का प्रकट रूप है। इस तृष्णा के चपुल में कसा मानव दानव बनता जा रहा है। राक्षस रूप धारण करने में तनिक भी नहीं शर्माना भय और लज्जा से दूर हटता जा रहा है। हिसक बन क्रूर परिणामी होने से तनिक भी भय नहीं है। सुशील, शीलवती सुन्दर सुयाम्य बन्ध्याओं का जीवन से खिलवाड़ करने वाला लोभ क्रूर मानव उनके अद्भुत विकृति जीवन का अंतगम्य में ही समाप्त करने में नहीं हिचकिचाते। यह है भयकर लोभ का प्रत्यक्ष ताण्डव। परिवार के परिवार धराशायी हो रहे हैं। दुखी हैं सन्नत हैं अपमान तक भी बर झालत हैं भला इससे बढ़कर लोभ का क्या प्रदर्शन हो सकता है?

मनोविकार आत्मविकार का प्रमुख कारण है। मानसिक संतुलन बिगड़ने से आत्मा संतुल नहीं रह सकती। मन की दौड़ रुकने पर ही आत्मस्थिति आ सकती है। यद्यपि आत्मा स्थितप्रज्ञ है। वह तो अचल अकम्प निमल और निर्विकार ही है परन्तु मन के निमित्त से उत्तम माना विकार का प्रादुर्भाव होता है। मन की चञ्चलता इन्द्रियों की चंचलता का कारण है और मन इन्द्रियों की दौड़ है आत्मा की विकृति का हनु। यह क्रम अनानि से है। इतना गहरा है कि आत्मा का स्वभाव विभाव का पृथक्करण करना अग्राह्य सा प्रतीत हो रहा है। वास्तव में सूक्ष्म इन्द्रिय विचार करे तो चिन्ति होगा कि आत्मा निरनिराला ज्ञायक विज्ञानधन स्वरूप है। मात्र इनके अन्त कुछ भी नहीं है। स्थूल इन्द्रिय में यह विपरीत सा मालूम पड़ता है।

क्योंकि राग द्वेष कृपाहि कषाय आदि भी जीव से भिन्न निराश्रित नहीं होने । यह प्रत्यक्ष दृष्टव्य हो रहा है । फिर भला किस प्रकार माना जाय कि ये आत्मा के स्वभाव नहीं हैं । तत्त्व है परन्तु शुद्ध निश्चय नय ही इसका निगम करता है कि ये सब नाटक अणुआत्मा के ही विचार हैं । मूल म ये भी जड़ ही है क्योंकि पौद्गलिक कम निमित्तक है । जड़ में जड़ भाव ही सम्भव है स्वज्ञान परिणाम ही वास्तविक है । विज्ञानीय त्रिगुण सब त्रिभाव रूप ही होती हैं । यह है निमित्त निमित्तक भाव । असंख्य परिणामन हे आत्मन् शुद्ध निश्चय नय भी एक स्वयं अनिवर्तनीय-अवकाश त्रिधा है । निश्चय म कथन है ही नहीं । वस्तु के अनेक धर्म हैं उन धर्मों का पुनः-पुनः कथन व्यवहार तब का विषय है अभिजातमक गुणों का निरूपण यद्यपि स्थूल दृष्टि से निश्चय नय का कहा जा सकता है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से वह मात्र निवध्यात्मक ही है । यह भी नहीं ऐसा भी नहीं यू भी नहीं इत्यादि । आखिर फिर है क्या ? जो है यही है । वह शब्दातीत है । शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता । अत अवकाश ही है । हे साधो ! वस्तु तुम्हारे अनुभव का विषय है । अनुभूति मात्र ही उसका उद्घाटन है । अनुभव द्वारा ही वह पाया जा सकता है । उसका आनन्द लिया जा सकता है । स्वयं ही उसमें आत्मन् के सकता है । कथन नहीं किया जा सकता है । कोई चाहे उसका वर्णन कर दू तो यह असम्भव है । वर्णनातीत है यह काय बस एकाग्र हो जाओ । इन्द्रिया का दमन करो मन का रोध करा । विषय तूष्णा को भस्म करो एकाग्र हो जाओ । अपने म अपने ही द्वारा अपने ही को देखो जानो परस्पर और टटोलो यही है स्व स्वरूपानुभव का अर्थ बिना इसके आत्मानन्द नहीं आ सकता ।

हे आत्मन् तू चिन्ताकार बन्य है । अपना तेरा स्वयं प्रकाश है फिर भला अपने ही प्रकाश में अपने को नहीं देख सका तो किसे देखेगा ? जो स्वयं का जाता दृष्टा है वही पर का भी जाता दृष्टा हो सकता है । जो स्वयं को जानता देखता नहीं है वह पर को भी जान देख नहीं सकता । आत्मा दण्ड है निमित्त आरसी है उसमें स्व और पर समस्त अनन्त पदार्थ उनकी अनन्तों पर्यायी सहित युग पत एव साथ चलवती हैं । फिर तुम क्यों दीवान बनो हो जी काठ के सन्धे की भाँति तुम में क्यों नहीं यह शक आती ? ओ- बड़ा सेद है रावमुच यह शोचनीय है विचारणीय है कि यह अनौकिक शक्ति आखिर है कहीं कि घर चली चली गई क्यों चली गई । गई कहीं नहीं है जो मान आवत्त हो गई है । ठक गई है । अच्छान्ति हो रही है । भैया शीशा के सामने कागज का बूट आढा कर सो और फिर देखो अपना चेहरा क्या स्थिति ? नहीं । क्यों ? क्योंकि भ्रष्ट में आवरण आ गया इसलिए । शीशा क्यों का क्यों है उसका स्वभाव भी यथा स्था है । किन्तु उसमें कोई विकार नहीं है । यह आत्मा का भी यही स्वभाव है । आत्मा अपने ही स्वभाव में है । स्वयं निजको ही निज में ही देख रही है ।

श्री जिननेव क रूप लावण्य का वणन आचार्यों कृत उपलब्ध होता है। इधर
 व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार का अभूताप कह देय कहते
 हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार की कथन प्रणानियों
 सामान्य जनों को भ्रांति पदाकर देती हैं। किन्तु यदि सम्यक् प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से
 विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता
 है। एकांतपत्नी व्यवहार मिथ्या व अभूताप हेय है। किन्तु सापेक्ष सत्य व्यवहार
 निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य स कर्म
 जातीय का उत्पन्न न कर विचारों पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यापेक्षा
 कोई भेद नहीं है। किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सातत्य पुण्य मुक्ति का
 साधक है और निरनिगम सत्ता का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही है।
 पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह
 परिभाषा पुण्य को उपायेय मित्र करती है। इससे आत्मशुद्धि में वह साधक है बाधक
 नहीं। क्योंकि परस्पर से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो उपाय
 स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय मित्र नहीं
 हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही प्रमाण हो सकता है। जानाबोझ निर
 वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अतः का प्रकाश है। हृदय की प्रफुल्लता प्रमूत है।
 मनकागाय मय वसति है। मनोभिन्नाया होना तो एक नैमित्तिक है परन्तु उपाय संय
 मित करना यह स्व पुण्यार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रवर्णन है। मन
 पीदुर्भावित है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही।
 क्या है? सयापी है। दो पृथक् पृथक् ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रणिया
 साधक कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। मनका परस्पर कोई
 सम्बन्धित सम्बन्ध नहीं है। आपनु गीर नीरवन् शयोग है। यही प्रणिया आत्मा पर
 हारी है। आत्मा की प्रभावित अवस्था किसे हुए है। आत्मा स्वयं स्वयं व पृथक् है
 कम भिन्न है। ज्ञान का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सत्य व ज्ञान है।
 ह साधो विचार कर लेनी सत्यता भिन्न पृथक् ही संकीर्णता किम प्रकार हो सकता
 है। यदि एक ही ज्ञान तो न्यूनता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर १५
 वा ३५ इत्येव ज्ञानार्थ है। पर ऐसा बुद्धि प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता
 है। यही विचार मन्त्र की शीर्ष है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवे
 चना ही ही शक्ति है। ही तत्त्व विचारानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। क्रिया
 नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। यही क्रिया चार्मिक सम्बन्ध है यही
 सम्बन्धन ही और ज्ञान अवस्थाकारी की है। किन्तु सम्बन्धन के रहने ज्ञान चार्मिक
 अवस्थित है ही भी और नहीं भी है। चार्मिक परम सत्य है। श्री ज्ञानचार्मिक
 के पुण्य व निरुद्ध व मे विचार है कि विचार समस्त ज्ञान ही सत्य कारण करने
 का धर्म ही है जो सत्य सम्बन्ध कारण कर लेना ही है। ही ही है। ही ही है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वस्तु धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता। क्षेत्र की रक्षा बाढ़ से है। बाढ़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार व्रतो से बिना शीन समय धारित ज्ञान दक्षन रूप रत्नों की रक्षा दुर्लभ है। हे भाई व्रत धारण करो और पापन भी करो। धारणा और बालना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक रत्न है। एक द्रव्य है। क्या द्रव्य? कृपा तत्त्व? पद द्रव्यों में एक निराला और नवतत्त्वों में एक अन्तिम अनुपम इमका अस्तित्व ही अपने दम का अनुठा है। सब जग है पर यह अकेला स्वतन्त्र स्वभाव से कभी ज्युन नह। होता। अजर-अमर अविनाश और चिरन्तन है। इसका अपना स्वरूप स्वयं अपने में है। अन्य द्रव्य भी अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सतत स्वयं स्वतन्त्र हैं। छद्म द्रव्यों में आत्मा जीव और पुद्गल ये दो तत्त्व या द्रव्य अपने-अपने स्वरूप से ज्युन हो सयोगी दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों द्रव्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विकारी नहीं होते। जीव और पुद्गल भिन्न-भिन्न विभक्त होते हैं। विचार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विवर्जित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं। विभाविक परिणाम ही ससार परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और क्लेश हैं। जिस काल आत्मा और जड़ कम नोकम का विभाजन होगा उस समय गट्टा और मक्खन धूत की भाँति दोनों सबका अलग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धृक् सत्य है। यही यथार्थ है।

आत्मा का क्षेत्र कहाँ है? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है। उसी के असंख्य प्रदेश उस का क्षेत्र है। अपनी इच्छा का वह कभी उत्सर्जन नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सगुण अपने में ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा। व्यवहार गणपथा आत्मा का क्षेत्र कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मावृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा में उसे यत्र-तत्र निवास करना पड़ता है। नाम कम की बलवत्ता से वह जसा स्थान सूक्ष्म शरीर पाता है उतने ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है। गतिनाम कम चारों गतियों में विहार कराना है जिस गति में जिस आकार से शरीर मिला उसी हिसाब से आत्मा सध दीर्घ हलका भारी भोग-वनता आदि अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में इमका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का क्षेत्र नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित क्षेत्र है। अन्तिम शरीर से कि वित् न्यून धुल्लका सिद्ध लोक के आकाश प्रदेशों में स्थित या स्व असंख्य प्रदेशों में निगल समयसार ता विरक्ष निवास स्थान

आत्मा का स्व काय और स्व भाव भी स्व-रूप और स्व धर्म की स्वतन्त्र और निराला है। इन्हें ही स्व चतुष्टय कहा जाता है। इसी प्रकार से प्रह्व का अन्तः अन्तः स्व चतुष्टय है। अन्तः की अन्तः इनका वही पर चतु कहना है। इसी स्व पर की अन्तः में प्रत्येक स्व के अन्तः अन्तः नास्तिक धर्म का साक्षात् या विद्यमान रहना है। क्योंकि दोनों धर्मों का कथन साथ नहीं हो सकता इसलिए अवकाश धर्म भी हो जाता है। इनके संयोग से ४ के तीन धर्म कथित होते हैं और सब मिलकर सप्तधर्म हो जाते हैं। क्योंकि मध्या नहीं होते इसलिए कथविद् कहे जाते हैं। इसीलिए स्यात् शब्द का प्रयोग हो अनिवार्य है स्यान्ति २ स्यान् नास्ति ३ स्यान् अस्ति नास्ति ४ स्यान् अवकाश ५ स्यान्ति अवकाश ६ स्यान् नास्ति अवकाश और ७ स्यान् अस्ति नास्ति अवकाश ये ही ७ भगवत् वस्तु प्रतिपादन में सम्भव है। क्योंकि प्रश्न भी ७ ही सम्भव है। इन्हीं धर्मों का नाम अनेकान्त है। अनेक विरोधी धर्म भी जन्म बिना विरोध के अवस्थिति पालें उन्हें ही अनेकान्त सिद्धान्त सम्प्रदाय कहाँ। यही बल स्थिति है इसी पर सभार की प्रक्रिया आधारित है और इसी से वस्तु तत्त्व निर्णय अवश्य सिद्ध होना है।

आत्मा का स्व काय और स्व भाव भी स्व-द्रव्य और स्व क्षेत्र की भाँति स्वतन्त्र और निराला है। इन्हें ही स्व चतुष्टय कहा जाता है। इसी प्रकार से प्रत्येक द्रव्य का अपना प्रपञ्च स्व चतुष्टय है। अन्त्य की अपेक्षा इतर का वही पर चतुष्टय कहना। इसी स्व पर की अपेक्षा में प्रत्येक द्रव्य के अन्तर अस्तित्व और नास्तित्व धर्म ब,लाया १ या विघमा रहा है। चूँकि दोनों धर्मों का कपन एक साथ नहीं हो सकता इसलिए अशक्य धर्म भी हो जाता है। इनके संयोग से अन्ते के तीन धर्म बधिन होने हैं और सब मिलकर सन्तमग हो जाने हैं। क्योंकि ये संकषा नहीं होते इसलिए वर्यविद् कहे जाते हैं। इसीलिए स्यात् शब्द का प्रयोग होना अनिवाय है स्यान्ति २ स्यान् नास्ति ३ स्यान् अस्ति नास्ति ४ स्यात् अवक्तव्य ५ स्यान्ति अवक्तव्य ६ स्याद् नास्ति अवक्तव्य और ७ स्यान् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ये ही ७ भग वस्तु प्रतिपादन में सम्भव है। क्योंकि प्रश्न भी ७ ही सम्भव हैं। इन्हीं क्रमों का नाम अनेकान्त है। अनेक विरोधी धर्म भी ज्यों बिना किसी विरोध के अवस्थिति पालें उन्हें ही अनेकान्त सिद्धान्त समझना चाहिए। यही वस्तु स्थिति है इसी पर ससार की प्रक्रिया आधारित है और इसी से वस्तु तत्त्व निर्णय अवाध सिद्ध होता है।

आत्मा का स्व काम और स्व भाव भी स्व-द्रव्य और स्व श्रेय की भाँति स्वयं-त और निरात्म है। इन्हें ही स्व चतुष्टय कहा जाता है। इसी प्रकार से प्रत्येक द्रव्य का अपना अपना स्व चतुष्टय है। आप की अपेक्षा इनर का वही पर चतुष्टय कहना। इसी स्व पर की अपेक्षा में प्रत्येक द्रव्य ने अन्तर अस्तित्व और तात्स्तित्व धर्म का स्थापना या विद्यमान रहता है। चूँकि दोनों धर्मों का कथन एक साथ नहीं हो सकता इसलिए अवक्तव्य धर्म भी हो जाता है। इनके संयोग से आगे के तीन धर्म कथित होने हैं और सब मिलकर सम्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि ये संख्या नहीं होते इसलिए कथञ्चिद् कहे जाते हैं। इसीलिए स्यान् शब्द का प्रयोग होना अनिवार्य है स्यान् अस्ति २ स्यान् नास्ति ३ स्यान् अस्ति नास्ति ४ स्यान् अवक्तव्य ५ स्याद् अस्ति अवक्तव्य ६ स्याद् नास्ति अवक्तव्य और ७ स्यान् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ये ही ७ भगवत्सु प्रतिपादित में सम्भव है। क्योंकि प्रश्न भी ७ ही सम्भव हैं। इन्हीं क्रमों का नाम अनेकान्त है। अनेक विरोधी धर्म भी जहाँ बिना किसी विरोध के अवस्थिति पालें उन्हें ही अनेकान्त सिद्धान्त समझना चाहिए। यही वस्तु स्थिति है इसी पर संसार की प्रक्रिया आधारित है और इसी से वस्तु तत्त्व निर्णय अबाध मिट्ट होता है।

